मथुरा जिले की बोली

डॉ. चन्द्रभान रावत

हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

"इस प्रबंध के निर्देशक के रूप में, मैं कह सकता हूँ कि लेखक ने इसमें विवरणात्मक और संरचनात्मक भाषा-वैज्ञानिक शोध की अधुनातन पद्धतियों का उपयोग किया है। वैज्ञानिक प्रविधि के निर्वाह और विश्लेषण की सूक्ष्मता ने प्रबंध को अनुसंधान का उच्चस्तर प्रदान किया है।"—**डॉ० विश्वनाथप्रसाद**

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, दिल्ली।

"It represents an important example of the application of structural linguistic technique to the problem of the analysis of Braja. Working with Dr. Rawat on the data collection and analysis was both enjoyable and instructive............I believe, it will stimulate future research as well as be contributing to our knowledge of contemporary Indian Languages.

—*Dr. Lawis Lavine*

[Asst. Prof. Anthropology, The University of North Carolina, U. S. A.]

मथुरा जिले की बोली

[आगरा विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० उपाधि के लिए
स्वीकृत शोध-प्रबन्ध]

डॉक्टर चन्द्रभान रावत एम० ए०, पी-एच० डी०
रीडर, हिन्दी विभाग, श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय
तिरुपति (आ० प्र०)

हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

प्रकाशक
हिन्दुस्तानी एकेडेमी
इलाहाबाद

•

प्रथम संस्करण : फरवरी १९६७

•

मूल्य : १५·००

•

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय
प्रयाग

सुहृद्वर

श्रद्धेय डॉ० विजयपाल सिंह

को

सादर निवेदित

—चन्द्रभान

प्रकाशकीय

हिन्दी की मूल प्रकृति को समझने की दृष्टि से उसकी उपभाषाओं का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। सन् १९६१ में हिन्दुस्तानी एकेडेमी ने डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी के शोधपूर्ण अध्ययन "आगरा जिले की बोली" को प्रकाशित किया था। उसी परम्परा में आगरा विश्वविद्यालय से स्वीकृत डॉ० चन्द्रभान रावत का यह शोध-प्रबन्ध "मथुरा जिले की बोली" है। हिन्दी भाषा और साहित्य के निर्माण में मथुरा और उसके आस-पास के जनपदों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। खड़ीबोली हिन्दी के क्रमिक विकास में इन्हीं जनपदों की बोलियों से सहारा मिला है। इस दृष्टि से यह अध्ययन महत्त्वपूर्ण और रोचक है।

डॉ० रावत ने परिश्रम के साथ मथुरा जिले की बोली का अध्ययन, उसकी सम्पूर्ण सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए किया है। डॉ० रावत का अध्यवसाय प्रशंसनीय है। विश्वास है, हिन्दुस्तानी एकेडेमी से प्रकाशित यह ग्रन्थ भाषाविदों और विद्यार्थियों में समान रूप से समादृत होगा।

इलाहाबाद
दिनांक ३ मार्च, १९६७

उमाशंकर शुक्ल
सचिव तथा कोषाध्यक्ष

भूमिका

विद्यापीठ शोध-परिषद्

अनुसन्धान-सङ्क्रम

क० मुं० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ प्रमुख रूप से एक शोध-संस्थान है। आरम्भ काल से ही विद्यापीठ ने चार विशिष्ट क्षेत्रों में शोध को वैज्ञानिक स्तर लाने का प्रयत्न किया है—

(क) भाषाविज्ञान
(ख) पाठालोचन
(ग) तुलनात्मक साहित्य
(घ) लोकसाहित्य

इनमें से प्रत्येक विषय में विद्यापीठ ने ठोस वैज्ञानिक प्रणाली का विकास और उपयोग तो किया ही है, साथ ही विषय-विवेचन और प्रस्तुतीकरण में भी स्तर को ऊँचा उठाने का ध्यान रखा है। आज अनुसन्धान-सङ्क्रम की अवधानता में उसके विविध शोध-प्रबन्ध प्रकाशित किये जा रहे हैं। इसमें हमारा उद्देश्य केवल यही है कि ज्ञान के क्षेत्र में हमारा यह योगदान सुविज्ञ अनुसन्धायकों और विचारकों के समक्ष पहुँचे। ज्ञान के क्षेत्र में व्यक्ति और संस्था का महत्त्व अपने कृतित्व को औरों के विचारार्थ प्रतुस्त कर देने तक ही है। उसका उचित मूल्याङ्कन और उपयोग तो विद्वान् पाठकों और आगे के अनुसन्धित्सुओं का ही दायित्व है।

मुझे प्रस्तुत ग्रन्थ को विद्वानों और पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करते हुए अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है और मैं आशा करता हूँ कि हमारे विद्यापीठ के निर्देशन में प्रस्तुत किए गए इस प्रबन्ध का स्वागत होगा। इसके लेखक ने अपनी शक्तिभर पूर्ण परिश्रम और अध्यवसाय से सामग्री को जुटाया है और उसे वैज्ञानिक रूप प्रदान किया है। ज्ञान के उपासक इस अनुसन्धाता का मैं अभिनन्दन करता हूँ, जिसने अपने लिए तो पी-एच० डी० की उपाधि इस व्याज से प्राप्त की है, पर ज्ञान-सुधा की एक घूँट वसुधाभर के लिए सुलभ कर दी है। मैं समझता हूँ, मेरे इस अभिनन्दन

में इस शोध-प्रबन्ध के पाठक भी मेरा साथ देंगे। ज्ञान की ज्योति का यह एक कण अन्य ज्योति-कणों को ज्योतित करने की परम्परा स्थापित करे, यही मेरी शुभ-कामना है।

क० मुं० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान, विद्यापीठ
आगरा विश्वविद्यालय, आगरा
होलिकोत्सव, १९६२ (वि० सं० २०१८)

विश्वनाथप्रसाद
निदेशक

आभार अनुक्रम

प्रस्तुत अध्ययन कई स्थितियों में होकर गुज़रा है। प्रत्येक स्थिति सहयोग और सद्भावना की छोटी-मोटी कहानी ही बन गई---कहानी की भाँति प्रत्येक स्थिति की पात्र-योजना और सूत्र-विधान---और सभी अवान्तर कथासूत्र इस रूप में संग्रथित हो कर एक विधा बनाने में समर्थ हो सके---रचनात्मक विधा नहीं, शोध-विधा !

सभी सहयोगी मित्रों और महानुभावों के प्रति आभार प्रदर्शित करना एक रूढ़ि है---एक प्रसन्न रूढ़ि। इस रूढ़ि के परिपालन में आनन्द तो है, पर कर पाऊँ तब न ! शायद सभी का नाम भी तो याद नहीं---यह नहीं कि जिनका नाम याद नहीं उनके साथ मेरी आत्मीयता कम है। नाम न सही, उनका रूप-बिंब तो मैं भूला नहीं। याद नहीं, क्योंकि मेरी स्मरणशक्ति दुर्बल है। जिनका नाम मैं ले सकता हूँ, उनमें से कुछ तो ऐसे भी हैं, जो कभी यह नहीं जान पायेंगे कि उनका नाम लिया गया---कुछ आदिम जातियों के हैं, कुछ गाँवों में बहुत दूर रहते हैं। घुमन्तू जातियों के सहयोगी मित्रों को खोज कर उनको उनका नाम दिखला भी दिया जाये, तो शायद वे उसका महत्त्व भी समझेंगे नहीं। क्या करूँ, बड़ी-बेबसी है। ऐसे नामों का सम्बन्ध सामग्री-सङ्कलन सम्बन्धी क्षेत्रीय सर्वेक्षण से है।

पहली स्थिति अध्ययन-योजना की थी। इस स्थिति में बड़े दिग्गजों के सम्पर्क में आने का सौभाग्य मिला। योजना की प्रारम्भिक रेखाएँ पहले डॉ० सत्येन्द्र ने खींचीं। मुझे आश्चर्य हुआ कि साहित्य, लोक-साहित्य या लोकवार्ता क्षेत्र के चक्रवर्ती भाषा वैज्ञानिक शोध की रेखाएँ भी इतनी सुनिश्चित बना सकें। इनसे सम्बन्ध इतना पुराना और गहरा था कि रूप की रेखाओं का प्रसाद दे दिया। तब, मुझे कलकत्ता जाने और वहाँ कुछ समय रहने का अवसर मिला। कलकत्ते से एक पत्र मैंने डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल को लिखा, प्रबन्ध की रूपरेखा भी भेजी। उन्होंने लिखा, ऐसा कार्य करने की आवश्यकता है, जैसा डॉ० ग्रियर्सन ने बिहार के कृषक जीवन पर भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से, शब्दों के आधार पर किया था। सुझाव तो अमूल्य था, पर मैं संरचनात्मक दृष्टि से शोध करना चाहता था। डॉ० अग्रवाल से क्षमा माँग ली। कलकत्ते में आधुनिक भारतीय भाषाविज्ञान के सुदृढ़ स्तम्भ, डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी के सम्पर्क में, मैं आया। वे क्षण डॉ० चटर्जी की

सहृदयता और उनकी अगाध विद्वत्ता से स्फीत थे। जब मैंने अपने भावी अध्ययन के सम्बन्ध में उनसे सुझाव माँगे, तो उन्होंने प्रबन्ध की रेखाओं को इतना बदला कि पूर्व रेखाएँ स्तम्भित हो गईं। मुझे उनकी रेखाएँ प्रिय थीं; आज भी वे सहेजी रखी हैं। पर, मैं क्षमाप्रार्थी हूँ कि उन रेखाओं में से मैं सभी को ले कर नहीं चल सका। कारण ?——मेरी असमर्थता। उनके सम्पर्क ने मुझमें एक आत्मविश्वास उत्पन्न किया। फिर, डॉ० विश्वनाथ प्रसाद मेरे निर्देशक बने। उन्हें विषय पसन्द आया, चाहे वे पहले से मुझसे परिचित न हों। यों, मुझे अधिकार है कि अपने भाग्य पर गर्व कर लूँ। प्रस्तावित रूपरेखा के सम्बन्ध में उन्होंने कुछ सुझाव दिए, पर मूल विधान को इतना नहीं बदला कि पहचान में न आ सके। और भी कई मित्र हैं, जिन्होंने रूपरेखा को देखा-सँवारा।

रूपरेखा बन गई, मनःस्थिति बनानी थी। पूना में समर स्कूल ऑफ़ लिंग्विस्टिक्स हुआ——१९५६। अमेरिकन भाषाविज्ञान की नवीन चेतना से यहाँ मेरा प्रथम परिचय हुआ। श्री जी० एच० फेयर बैंक्स, से तो विशेष प्रेरणा मिली ही, अन्य अमरीकी प्रोफ़ेसरों से भी कम प्रेरणा नहीं मिली। कक्षाओं में व्याख्यान और विमर्ष दोनों ही मनःस्थिति को भाषावैज्ञानिक अध्ययन के लिए उपयुक्त बनाते रहे। प्रो० गुम्पर्स ने इसी स्कूल में अपने हिन्दी क्षेत्रीय फ़ील्डवर्क के अनुभव और सञ्चित सामग्री से परिचय कराया। देश के गिने-चुने विद्वानों को सुनने और उनकी कक्षाओं में बैठने का सुअवसर भी यहीं मिला। जिनमें उल्लेखनीय ये हैं : डॉ० सुकुमार सेन, डॉ० एस० एम० कत्रे, डा० टी० पी० मीनाक्षीसुन्दरम्, डॉ० उदयनारायण तिवारी, श्री गोलोकबिहारी धल आदि। यहाँ ऐसा प्रतीत होने लगा, जैसे एक पुराना मनोलोक छूट रहा है और एक नवीन स्थिति में, मैं प्रवेश कर रहा हूँ। इस स्कूल में मेरे साथ, मेरे एक पुराने मित्र डॉ० कैलाशचन्द्र भाटिया भी थे। भाटिया जी न जाने मनःस्थिति को सुदृढ़ करने में कितना-कुछ कर रहे थे। शायद उन्हें अब याद न हो, मुझे भी उस समय ध्यान नहीं था; अब सोचता हूँ तो उत्फुल्ल स्मृतियाँ आने लगती हैं——पूना की सुन्दर जलवायु, हरे-ताजे अञ्जीर और बदली हुई मनःस्थिति के वे सद्यःक्षण !

घर लौट कर कार्य आरम्भ कर दिया। ब्रजभाषा के ध्वनिग्रामों का विवरण प्रस्तुत किया गया। समस्याएँ आना स्वाभाविक था। मनःस्थिति को दिशा-निर्देश की आवश्यकता हुई। तब आटम सेमीनार ऑफ़ लिंग्विस्टिक्स अन्नमलाई विश्वविद्यालय में हुआ——१९५७। डॉ० ग्लीसन जैसे भाषाविद् के गत्यात्मक व्यक्तित्व से विशेष बल और प्रेरणा मिलती रही। श्री कैली से भी यहाँ भेंट हुई। और भी कुछ स्रोत हैं, जिन्होंने मनःस्थिति को और भी दृढ़ किया। उक्त

विद्वानों को शायद ज्ञात भी नहीं होगा कि अज्ञात रूप से उनसे मैंने कितना-क्या लिया। पर, मैं उनके उन विद्यार्थियों में से अवश्य हूँ, जिनका नाम वे अब भूल गये होंगे।

बन गई मनःस्थिति। अब क्षेत्रीय सर्वेक्षण और सामग्री-सङ्कलन की स्थिति है। मुझे आगरे में मिले श्री लुईस लेवीन। वे किसी भारतीय गाँव की बोली पर शोध-कार्य करना चाहते थे। मेरे आग्रह पर उन्होंने इस कार्य के लिए मेरे गाँव को चुना। श्री और श्रीमती लेवीन के सौहार्द्र और स्नेह की बात यहाँ दिशान्तर उपस्थित कर देगी क्योंकि मैं भावुक हुए बिना न रह सकूँगा। यहाँ इतना ही कथनीय है कि क्षेत्रीय कार्य की पद्धति, प्रेरणा और सङ्कलित सामग्री की विश्लेषण प्रणाली देने का श्रेय उन्हीं को है। मैं उनका इन्फ़ोमेंट भी था, क्षेत्रीय कार्य का साथी भी और मित्र भी। सभी रूपों में मैंने उनसे कुछ-न-कुछ पाया। उनकी प्रेरणा, लगन और कार्यदक्षता कहीं भुलाई जा सकती हैं!

और ये हैं वे गाँव जहाँ मैं गया। यहाँ के न जाने कितने स्त्री-पुरुषों से सम्पर्क हुआ। उनसे गीत सुने, कहानियाँ लीं, उनके बिना जाने उनकी बातें रेकर्ड करने की धृष्टता की। यह कोई संकोच की बात नहीं है कि उस समय मेरे पास पैसे कम थे, सो उन्होंने खाना भी खिलाया। ब्रज में घी और बूरा मिला कर खिलाने का रिवाज है। इस रिवाज का मैंने पूरा लाभ उठाया। यह मेरी कविता नहीं, यह वह यथार्थ है जिसे मैं इस शैली में कहे बिना रह नहीं सकता। और मेरी धृष्टता—मैंने उनसे कहा था कि कार्य समाप्त होने पर उसके पास फिर जाऊँगा पर, नहीं गया, नहीं जा सका। उनसे बिदा लेते समय के क्षण बड़े ही आग्रह और अनुरोध से भरे थे। उनमें से इतने नाम तो मुझे याद हैं—देवीराम, ठा० होतीलाल, सोदान सिंह, सोरन सिंह (जाट), हल्ली (गूजर, खामनी), पौहप सिंह (नाहरा), पं० रामदत्त (हातिया), फत्तेगुरु (लोहबन) आदि।

और वे खानाबदोश अब न जाने कहाँ होंगे, जो एक सन्देह की छाया में मुझसे अपनी सारी बातें भी नहीं कह पाये। बंजारे, खुरपल्टा, हाबूड़ा, बर्गी—ब्रज की अपराधी और पिछड़ी जातियाँ। इनके कुछ सदस्यों को मैंने अपने में विश्वास जमाने के लिए विवश कर दिया। रूमाली (खुरपल्टिन), अंगूरी, बादामी, जुग्गनियौ आदि न जाने कितने नाम याद आ रहे हैं। कभी-कभी मैं भूल जाता था कि मैं लोकवार्ता सम्बन्धी शोध कर रहा हूँ या भाषावैज्ञानिक। सब कुछ इतना विचित्र, अनजाना!

प्रबन्ध-लेखन कुछ तो क० मु० हिन्दी विद्यापीठ, आगरा में होता रहा। वहाँ जब मुझे आवश्यक हुआ, मैंने प्राध्यापकों और मित्रों से विचार-विमर्श किया,

सुझाव लिए। अधिकांश कार्य मथुरा में रह कर ही हुआ। डॉ० लेवीन की छाया सदैव यहाँ मेरे साथ रही। उन्होंने एक-एक अक्षर सुना और उचित संशोधन भी किया—पद्धति में। एक ही बात पर मेरा उनसे मतभेद हुआ। वे कहते थे, प्रबन्ध में वाक्य-विचार को छोड़ दो। मैंने उस प्रकरण को रखना चाहा। उनका विश्वास था कि यह विषय इतना बड़ा है कि समय और सुविधा को देखते, इसके साथ पूर्ण न्याय नहीं हो पायेगा। मैंने जैसा बन पड़ा, यह अध्याय भी लिख दिया—उन्हें सुनाया भी नहीं।

इस स्थिति पर सबसे उल्लेखनीय क्षण वे थे जब मेरे निर्देशक डॉ० विश्वनाथ प्रसाद प्रस्तुत प्रबन्ध के अंशों को सुनते थे। ठीक होने पर वे स्वीकार कर लेते थे और विक्षत होने पर पुनर्लेखन सम्बन्धी सुझाव देकर लौटा देते थे। भय और आनन्द के वे मिश्रित क्षण प्रबन्ध की समग्रता की दृष्टि से बड़े महत्त्वपूर्ण थे।

डॉ० केलकर [दकन कालिज, पूना] उस समय आगरे में थे। उन्होंने मेरे प्रबन्ध का ध्वनिग्राम-विवरण देखा। उन्होंने बतलाया कि इसमें खण्डेतर ध्वनिग्राम भी सम्मिलित किए जाने चाहिए। इन ध्वनिग्रामों की स्थापना में केलकर साहब ने पर्याप्त योगदान दिया। इनके अतिरिक्त व्यक्त-अव्यक्त रूप से अन्य विद्वानों से भी सहयोग मिला। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा के ब्रजभाषा सम्बन्धी शोध-कार्य, डॉ० बाबूराम सक्सेना के शोध-प्रबन्ध 'इवोल्यूशन ऑफ़ अवधी' जैसे ग्रन्थों से मैंने बहुत कुछ सीखा।

और, इन सब के सहयोग से प्रबन्ध पूरा हुआ। हिन्दुस्तानी एकेडेमी के अधिकारियों ने प्रबन्ध को प्रकाशित करना स्वीकार कर लिया। तभी मुझे यह विश्वास भी हुआ कि यह प्रकाशित भी होगा। इसके प्रकाशन में मुद्रण सम्बन्धी इतनी कठिनाइयाँ और व्यापारिक लाभ की इतनी कम सम्भावनाएँ थीं कि इसका प्रकाशन कोई साधारण बात नहीं थी। मैं नहीं जानता कि व्यक्तिगत रूप से एकेडेमी के किन विद्वानों को यह प्रबन्ध पसन्द आया। पर, संस्था ही महत्त्वपूर्ण है। इतना मुझे ज्ञात है कि डॉ० सत्यव्रत सिन्हा ने इसके मुद्रण और प्रकाशन में रुचि ली।

प्रकाशन से पूर्व पुनर्विचार आरम्भ हुआ। प्रकाशन के लिए मैं संशोधित अंश भेजता जाता था। कभी-कभी गुत्थियाँ जटिल भी हो जाती थीं। मैं उस समय सागर विश्वविद्यालय में था। वहाँ के भाषाविज्ञान विभाग में श्री रमेशचन्द्र मेहरोत्रा भी थे। वे मेरे मित्र हैं। मैंने भाषाविज्ञान के इतने सजग विद्यार्थी बहुत कम देखे हैं। उन्होंने पुनर्विचार में मुझे पर्याप्त सहायता दी। मुझे सबसे अधिक शंका प्रबन्ध के वाक्य-विचार पर थी। मेहरोत्रा जी ने इस प्रकरण को बड़े ध्यान से पढ़ा—उन्हें पसन्द आया—संशोधन भी किया गया। मेरे एक अंतरंग मित्र

प० बनवारी लाल जी भी तैयार अंशों को सुनते रहे। चाहे सुझाव वे न दे पाये हों, प्रोत्साहन अवश्य देते रहे।

शायद मैंने यह प्रबन्ध की विकास-कथा लिखी। इसमें शैली कुछ भावात्मक भी हो गई है। प्रबन्ध-लेखन के समय मैं प्रतिक्षण शुद्ध बुद्धिवादी, वैज्ञानिक दृष्टि रखे रहा। आभार-अनुक्रम में इस भावात्मक शैली की चाहे आवश्यकता न हो, पर मेरी विवशता इसमें अवश्य है। इस कथा में नाम भी आए, पर, मैंने कहीं भी आभार या कृतज्ञता शब्दों का प्रयोग नहीं किया। तो, मैं सब के प्रति आभारी हूँ, इन और उन सभी का कृतज्ञ!

तिरुपति
राधाष्टमी, सं० २०२३ वि०

चन्द्रभान रावत

सङ्केत-सूची

/ /	स्वनग्रामात्मक लेख	Phonemic Writing
[ ]	संस्वनात्मक लेख	Phonetic Writing
{ }	पदरूपांशात्मक लेख	Morphological Writing
•	अघोष-स्वर-चिह्न	
–य–	य–श्रुति	
–व–	व–श्रुति	
⌒	दीर्घता का ह्रास [ई]	
⌒ˈ	दीर्घता की वृद्धि [ईˈ]	
∠	रेचन युक्त व्यञ्जन [प् ∠]	
१	आतत [ब१]	
२	शिथिल [ब२]	
‾	पूर्णदंत्य [त]	
>	पश्च दंत्य [त>]	
∧	पूर्व [ट∧]	
V	सघोष महाप्राणत्व [फV]	
ह	व्यञ्जन	
अ	स्वर	
सं० मू०	संज्ञा-मूल (stem)	
θ	शून्य	
~	स्वतन्त्र वैविध्य	

पू० प्र०	पूर्व प्रत्यय
लि०	लिङ्ग
वच०	वचन
लि० वच०	लिङ्गवचन प्रत्यय
भू० कृ०	भूतकालिक कृदन्त
व० कृ०	वर्तमानकालिक कृदन्त
पू० कृ०	पूर्वकालिक कृदन्त
सं० क्रि०	संयोजक-क्रिया
क्रि० वि०	क्रिया-विशेषण
↗	आरोही सुर
↘	अवरोही सुर
→	धीर सुर
क्रि० सं०	क्रियार्थक संज्ञा
धा०	धातु
ठा० बो०	ठाड़ी बोली
प० बो०	पड़ी बोली
पू० प० बो०	पूर्वी पड़ी बोली
म० प० बो०	मध्य पड़ी बोली
प० प० बो०	पश्चिमी पड़ी बोली
पू० प्र०	पूर्व प्रत्यय
Phoneme	स्वनग्राम
Allophone	संस्वन
Morpheme	पदरूपांश

ई"

?"

ए"

ए१

ई-

ई॒

उ॒

ई"'ट

╲↑

╱↓

⎿↑

विषय-सूची

० . | प्रस्तावना

०.० ब्रज जनपद के तीन नाम मिलते हैं—मथुरा, मथुरा-मंडल, शूरसेन तथा ब्रज। इस जनपद की सीमाओं में भी परिवर्तन होता रहा है। इसका कारण राजनैतिक भी है और भौगोलिक भी। राजनैतिक कारण तो भिन्न राज्य-व्यवस्थाओं का बनना-बिगड़ना है। भौगोलिक दृष्टि से उसकी स्थिति इस प्रकार है कि किसी और प्रकृति निर्मित अलंघ्य पर्वत या नदी इसकी सीमा नहीं बनाते। इन नामों और सीमाओं का विकास उपलब्ध सामग्री के आधार पर खड़ा किया जा सकता है।

०.१. मथुरा

वैदिक साहित्य में मथुरा का उल्लेख नहीं है। ब्राह्मण-साहित्य के अनुसार 'कमसा' राज्य मथुरा साम्राज्य[१] का भाग था। मथुरा का नामोल्लेख पाणिनि ने किया है।[२] महाभाष्य में भी इस नगर का कई स्थानों पर उल्लेख मिलता है।[३] वहाँ भी मथुरा शब्द नगर वाचक है। यूनानी यात्री प्लिनी मथुरा को 'मैथोरा' नाम से पुकारता है।[४] टालमी इसे 'मौदूरा' कहता है।[५] फ़ाह्यान मथुरा को 'मैटालो' पुकारता है।[६] ह्वेनसांग 'मौटूलो' कहता है।[७] बौद्ध-साहित्य में भी मथुरा नाम

---

१. रे चौधरी, पोलीटिकल हिस्ट्री ऑफ़ एन्शिएन्ट इंडिया, फोर्थ ऐडीशन, पृ० ११९। २. अष्टाध्यायी, ४।२।८२। ३. महाभाष्य, ऐडीटेड बाइकिनहोर्न वोल० १, पृष्ठ १४४, वोल० १, पृष्ठ १९२, वोल० १, पृष्ठ ४७४, वोल० २, पृष्ठ ८, २०५, ४१६ आदि। ४. नेचुरल हिस्ट्री ६२२। ५. मैकक्रिंडल, एन्शेन्ट इंडिया एज डिसक्राइब्ड बाई टालमी, पृ० १२४, (कलकत्ता १९२७)। ६. ट्रेवल्स ऑफ़ फ़ाह्यान, पृ० ४२। ७. वाटरस, औन योर चांग, पृ० ३०१।

मिलता है ।[१] मथुरा नाम पौराणिक साहित्य में भी उपलब्ध होता है ।[२] मुसलमान-लेखकों में पहले महमूद गजनवी का मंत्री 'अलउत्बी' आता है । उसने मथुरा के मंदिरों की बड़ी प्रशंसा की है । मथुरा को एक स्थान पर उसने 'महरतुलहिन्द' कहा है ।[३] अलबेरूनी ने मथुरा के विषय में सामान्य उल्लेख अपनी 'तहकीके हिन्द' में किया है ।[४] अलबदाऊनी (१६वीं शती) ने अपनी मंतखवुत्तवारीख में मथुरा को क़ाफिरों की जगह बताया है ।[५] फ़रिश्ता ने भी महमूद गजनवी के मथुरा विजय का प्रसंग दुहराया है ।[६] यूरोपीय यात्रियों ने भी मथुरा पर कुछ लिखा है । जानद लाएट (इंडियावेरा) ने मामूली वर्णन किया है । केवल दौताना गांव की कब्रों के बारे में लिखा है ।[७] वर्नीयर (१६५६) ने दिल्ली और आगरे के बीच एकमात्र आकर्षण के रूप में मथुरा को लिखा है और मन्दिर की ओर भी इंगित किया है ।[८] जासेफ टीफेथैल (१७४३) ने भी मथुरा का नामोल्लेख किया है ।[९] हेवर (१८२५) ने भी द्वारिकाधीश के मन्दिर के विषय में लिखा है ।[१०] जैके मोहने ने यहाँ की जमीन के विषय में लिखा है ।[११]

वस्तुतः 'मथुरा' नाम मधु राक्षस के नाम से हुआ । ऐसा लगता है कि मधुरा (मधुर का स्त्रीलिंग), मधुपुर का प्राकृतकालीन लघु रूप है । मधु और उसका पुत्र लवण, शत्रुघ्न की विजय से पूर्व यहाँ राज्य करते थे । शत्रुघ्न ने मधु और लवण को जीत कर इस नगर पर आधिपत्य किया, इसका उल्लेख रामायण में भी है ।[१२] राम ने शत्रुघ्न से कहा कि मैं तुमको 'मधुनगर' का राजा नियुक्त करूँगा । उन्होंने यमुना के किनारे सुन्दर जनपद और नगर बसाया । इस प्रकार 'मथुरा' नाम मधु दानव से सम्बन्धित है । महाभारत के अनुसार यह 'मधुपुरी' है जिसकी व्युत्पत्ति 'मधु' शहद से सम्बन्ध रखती है ।[१३] किन्तु यह महोली प्रतीत होता है जो वर्तमान मथुरा से

---

१. वी० ए० स्मिथ—अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया, ४ एडीशन, पृ० १९९; डॉ० विमल चरण लॉ ज्याग्रेफिकल ऐसेज, पृ० २६ । २. विष्णुपुराण १।१२।४; रामायण, उत्तर० ७०।५ । ३. कनिंघम, आरक्यालाजीकल सर्वे आफ़ इंडिया, एनुअल रिपोर्ट, जिल्द २०, पृ० ३४ । ४. ई० सी० साचौ अलबेरूनी इंडिया, लंदन १९१४, जिल्द १, पृ० ३००, ३०८ । ५. जी रेंकिंग, मुंतखबुत्त-वारीख ऑफ अलबदाऊनी ६. हिस्ट्री ऑफ़ द राइज ऑफ़ मुहम्मडन पावर इन इंडिया, जि० १, पृ० ५७-५९७ । ७. ग्राउज, पृ० ११८-२० । ८. बर्नियर्स-हैविल्स इन द मुगल ऐम्पायर, पृ० २८४ । ९. ग्राउज, पृ० १० । १०. ग्राउज, पृ० १४५ । ११ ग्राउज, पृष्ठ १७४, १७५ । १२. उत्तर काण्ड, सर्ग ६२, श्लोक १५-१८ । १३. महाभारत, सभापर्व, ३०, ११०५ से ६ ।

दक्षिण-पश्चिम ५ मील पर है। महोली के समीप ही 'मधुवन' भी स्थित है।[१] विष्णुपुराण में भी इस नाम का सम्बन्ध 'मधु' से बताया गया है।[२] देवी भागवत में भी इसी प्रकार का निर्देश है।[३] कालिदास ने इसका नाम मथुरा ही लिखा है।[४]

जैन-साहित्य में मथुरा नाम तो मिलता ही है[५] पर साथ ही 'सौरिपुर' या 'सूर्यपुर' नाम भी मिलता है।[६] सौर्यपुर का सम्बन्ध वहाँ कृष्ण की एक उपाधि 'सौरि' से जोड़ा गया है।[७] यह विषय विचारणीय है। इस पर आगे 'शौरसेन' नाम के साथ विचार किया जायगा।

०.२. मथुरा-मंडल

पौराणिक साहित्य में मथुरा-मंडल का नाम भी आया है। इससे मथुरा प्रदेश का बोध होता है। वराहपुराण में मथुरा नगर के रूप में भी वर्णित है। इसमें मथुरा की अक्षय नवमी की परिक्रमा की विस्तृत रूप-रेखा दी गई है[८], जिससे मथुरा नगर की परिक्रमा का स्पष्ट बोध होता है। इसी पुराण में 'माथुरं मम मंडलम्' कह कर भगवान मथुरा-मंडल की सूचना देते हैं।[९] मथुरा-मंडल का प्रदेशवाचक होना इस बात से और सिद्ध हो जाता है कि उसका विस्तार २० योजन बताया गया है।[१०] इसी पुराण में मथुरा-मंडल के आकार की चर्चा की गई है।[११] इसका आकार कमलवत् माना गया है। इसके कर्णिका स्थान पर केशव भगवान् विराजमान हैं।[१२] मथुरारूपी कमल के पश्चिमी दल में गोवर्द्धन निवासी भगवान् हैं।[१३] उत्तरी दल में श्रीगोविन्द भगवान हैं।[१४] पूर्वी दल में विश्रांत नामक ईश्वर हैं और दक्षिणी दल में वराह भगवान् हैं।[१५] पद्मपुराण में भी 'माथुर-मंडल' नाम मिलता है।[१६] इस मंडल में वृन्दावन और गोवर्द्धन के स्थित होने की भी बात कही गई है।[१७] कालिदास ने भी मथुरा का वर्णन किया है।[१८]

---

१. ग्राउज, मथुरा, ५०-५३। २. विष्णुपुराण अंश ४।४।१०१। ३. देवी-भागवत, स्कंध ४, अध्याय २०। ४. रघु० १५।३६। ५ निशीथ सूत्र ९।१९, ठाणंग सूत्र १०।७१८, वृहत्कल्पभाष्य ५।१५३६ आदि। ६. जैन सूत्र, पृ० ११२। ७. वही, द्वितीय, पृष्ठ ११२। ८. वराहपुराण १६०।५१।६६। ९. वही, १५८।१। १०. वही, 'विंशतिर्योजनानां तु माथुरं मम मंडलम्'। ११. वराहपुराण, अध्याय १५७ १२. वही, श्लोक १८। १३. वही, श्लोक ७। १४. वही, श्लोक ५। १५. वही, श्लोक ४। १६. पद्मपुराण, पृ० ५८३, श्लोक १२,१३। १७. वही, पृ० ५९८, श्लोक १९, २०, २१। १८. रघु० ६,४८; १५,२८,२९।

ब्रज की सीमा का निर्देश करने वाला प्रचलित दोहा भी मथुरा-मंडल नाम ही देता है।[१] आज ब्रज को ब्रजमंडल कहा जाता है। किन्तु इस दोहे में केवल तीन ही सीमा-निर्देशक स्थानों के नाम बताए गए हैं और जैसा कि ऊपर देखा जा चुका है, वराहपुराण में इसको कमलवत् बताया गया है। दोहे का साम्य भागवत से विशेष ठहरता है क्योंकि भागवत में ब्रज को सिंघाड़े के आकार का माना गया है।[२]

०.३. शूरसेन जनपद

वर्तमान मथुरा तथा उसके आसपास का प्रदेश जिसे ब्रज कहा जाता है, प्राचीन काल में शूरसेन जनपद के नाम से प्रसिद्ध था।[३] यह शूरसेन कौन था? रामायण के अनुसार 'शूरसेन' नाम का सम्बन्ध शत्रुघ्न के पुत्र शूरसेन से है, जिसने इस प्रदेश की नींव डाली।[४] विष्णुपुराण में यह भी उल्लेख है कि शत्रुघ्न अपने पुत्रों को राज्य देकर स्वर्ग सिधारे।[५] वायुपुराण में उन पुत्रों की संख्या दो लिखी है और उनके नाम 'सुबाहु' और 'शूरसेन' लिखे हैं।[६] ललितविस्तर नामक बौद्ध-ग्रंथ में मथुरा को एक वैभवशालिनी और घनी जनसंख्या वाली पुरी बताया गया है और यह भी बताया गया है कि यह कंस के वंशज सुबाहु की राजधानी थी।[७] सम्भव है सुबाहु मथुरा से सम्बन्धित हो और शूरसेन की राजधानी दूसरी बनी हो जिसके नाम पर सौरपुर या शूरसेन नगर की नींव पड़ी हो। यूनानी लेखकों ने शूरसेन को कृष्ण का बाबा बताया है।[८] पीछे कंस को मारकर जब कृष्ण तथा उनके वंशजों ने राज्य स्थापित किया और वे 'शूरसेन' कहलाने लगे। मेगास्थनीज़ ने शूरसेनों का उल्लेख किया है।[९] इसमें लिखा है कि कृष्ण को शूरसेन लोग बड़े आदर की दृष्टि से देखते थे। पौराणिक-वंश सूचियों में कृष्ण के पितामह का नाम 'शूर' मिलता है, शूरसेन' नहीं।[१०] अतः शूरसेन नाम इससे सम्बन्धित नहीं दीखता। हरिवंश, विष्णु आदि पुराणों में तथा परवर्ती संस्कृत में कृष्ण का 'शौरि' विशेषण मिलता है, शूरसेन नहीं।[११] जैन-साहित्य

---

१. इत बरहद इत सौन हद, इत सूरसेन कौ गाम।
ब्रज चौरासी कोस में मथुरा मंडल धाम।।

२. ब्रज लोकसाहित्य का अध्ययन, पृ० ५१। ३. ब्रज का इतिहास, मथुरा सं० २०११, पृ० २। ४. रामायण, ७, ७०, ६-९। ५. विष्णुपुराण ४।४।१०१। ६. वायुपुराण ८८, १८५, ६। ७. डॉ० विमल चरण लॉ—ज्याग्राफीकल एसेज, पृ० २६। ८. आरियन, इंडिका ८। ९. एम० सी० क्रिंडल, द इंडिया आफ आरियन, पृ० १६, १७। १०. ब्रज का इतिहास, पृ० १४—कृष्णदत्त वाजपेयी। ११. वही, पृ० १४।

में मथुरा के लिए 'सौरिपुर' की व्याख्या भी इसी प्रकार की गई है।[१] अतः यूनानियों का यह विचार है कि यह नामकरण कृष्ण के पितामह के नाम पर हुआ, भ्रामक है। वाल्मीकि रामायण में भी कुछ ऐसी ही बात कही गई है कि शत्रुघ्न के पुत्र शूरसेन के नाम पर ही इस जनपद का यह नामकरण हुआ है।[२] हरिवंश पुराण में शत्रुघ्न-पुत्र शूरसेन का उल्लेख है जिन्होंने उनके पश्चात् मथुरा प्रदेश पर अपना आधिपत्य बनाए रक्खा।[३] अतः नामकरण इन्हीं शूरसेन के नाम पर हुआ। शूरसेन जनपद के गौरवपूर्ण उल्लेख भारतीय साहित्य में मिलते हैं। मनु ने शूरसेन को 'ब्रह्मर्षि देश' के अन्तर्गत माना है।[४] प्राचीन काल में इस ब्रह्मावर्त तथा ब्रह्मर्षि देश को अत्यन्त पवित्र माना जाता था। बौद्ध[५] और जैन[६] साहित्य में 'सोलस' महाजन पदों का उल्लेख मिलता है, उनमें शूरसेन जनपद का भी नाम है। बौद्ध-साहित्य में लिखा है कि शूरसेन जनपद की स्थिति मत्स्य राज्य के पूर्व में थी। इसकी राजधानी मथुरा थी। पाणिनि ने अन्य जनपदों का नाम गिनाया है[७] पर शूरसेन का नाम नहीं है। कालिदास ने शूरसेन राजा के अधिपति सुषेण का इन्दुमती के स्वयंवर में आना लिखा है।[८]

एक बात स्पष्ट हो जानी चाहिए। शूरसेन जनपद और सौरपुर बटेश्वर को एक नहीं समझना चाहिए। हो सकता है कि जैन ग्रन्थों के सौरिपुर का सम्बन्ध बटेश्वर से हो। शौरि कृष्ण की उपाधि थी।[९] 'शूर' कृष्ण के पितामह का नाम था। मेगास्थनीज़ द्वारा निर्देशित दो नगरों में एक तो स्पष्ट रूप से मथुरा 'मेथोरा' है। दूसरा नाम 'केलिसोबोरा' है। कार्लायल ने इसे वृन्दावन माना

---

१. जैन सूत्र, २, पृ० ११२। २. भविष्यति पुरी रम्या शूरसेना न संशयः—रामायण, उत्तर ७०।६ तथा—

'स पुरा दिव्यसङ्काशो वर्षे द्वादशमे शुभे।
निविष्टः शूरसेनानां विषयश्चाकुतोभयः॥—उत्तर ७०।९

३. हरिवंश १।५४।६२।

४. कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पांचालाः शूरसेनकाः।
एष ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मवर्तादनन्तरः॥—मनुस्मृति २।१८ तथा २०

५. अंगुत्तरनिकाय १।२१३, ४।२५२ से ५६। ६. भगवती सूत्र की सूची बौद्धों की सूची से कुछ भिन्न है, पर शूरसेन जनपद का उल्लेख उसमें भी है। रमाशंकर त्रिपाठी, हिस्ट्री आफ एन्शेन्ट इंडिया, बनारस १९४२, पृ० ८२-४। ७. वासुदेव शरण अग्रवाल, इंडिया एज नोन टू पाणिनि, पृ० ४४३ से ५४। ८. रघु० ६।४५। ९. भागवत १०।२।७।

है।[१] कनिंघम ने इसे सौरपुर बटेश्वर ही बतलाया है।[२] पं० रामचन्द्र शुक्ल ने भी इसे बटेश्वर ही कहा है।[३] इस सौरपुर का बौद्ध-साहित्य में अच्छा स्थान था। अवदान कल्पलता में इसकी नौ ऊखलों में गणना की गई है।[४] अतः मेगास्थनीज ने जिसे समृद्धशाली नगर बताया है, वह यही होगा। किन्तु शूरसेन जनपद और सौरपुर को पृथक् ही समझना चाहिए।

सौरपुर, बटेश्वर का सम्बन्ध कृष्ण के पितामह 'शूर' से है और शूरसेन जनपद का सम्बन्ध शत्रुघ्न के पुत्र शूरसेन से है। मथुरा नगरी का सम्बन्ध 'मधु' दानव से है। पुराणों में शत्रुघ्न के द्वारा इस मथुरापुरी का बसाया जाना लिखना[५] ठीक नहीं प्रतीत होता, यह इसके नाम से सिद्ध है। हो सकता है शत्रुघ्न ने इसकी पुनर्व्यवस्था की हो। रामायण में उल्लेख है कि शत्रुघ्न ने देवों से प्रार्थना की थी कि यह 'मधुपुरी' ऐसी हो जाय कि देव-निर्मित-सी प्रतीत हो।[६] इस उल्लेख में मथुरा और मधुपुरी दोनों नाम आये हैं।

०.३.१. शूरसेन और मथुरा जनपद : एक या पृथक्

परीक्षित के एक प्रश्न का उत्तर देते हुए शुकदेव जी कहते हैं कि पहले यदुपति महाराज शूरसेन मथुरा नगरी में बसकर 'माथुर' तथा 'शूरसेन' दोनों प्रान्तों का भोग करते थे। तभी से मथुरा यदुपतियों की राजधानी हुई।[७] भागवत के इस उल्लेख से यह स्पष्ट होता है कि माथुर और शूरसेन दो पृथक् प्रान्त थे और यदुपतियों ने इस सम्मिलित प्रदेश की राजधानी मथुरा को बनाया।

---

१. आरकेलॉजीकल सर्वे सन् १८७१-२, वोल० ४, पृ० १५८। २. पोस्ट स्क्रिप्ट, पृ० २४४। ३. मेगास्थनीज की भारत-यात्रा, पृ० १०३।

४. रेणुका शूकरः काली काशी व्यालबटेश्वरौ।
कालिंजरमहाकालऊखलानवप्रकीर्तितुम्॥—अवदानकल्पलता, पल्लव २

५. हत्वा च लवणं रक्षो मधुपुत्रं महाबलम्।
शत्रुघ्नो मधुरां नाम पुरीं यत्र चकार वै॥—वि० पु० १-१२-४

६. इयं मधुपुरी रम्या मधुरा देवनिर्मिता।
निवेशं प्राप्नुयाच्छीघ्रमेषमेऽस्तु वरः परः॥—रामायण उत्तर० ७०,५

७. शूरसेनो यदुपतिर्मथुरामावसन् पुरीम्।
मधुराच्छूरसेनांश्च विषयान् बुभुजे पुरा॥—श्रीमद्भागवत १०।१।२७
राजधानी ततः साऽभूत्सर्वयादवभूभुजाम्।
मथुरा भगवान्यत्र नित्यं सन्निहितो हरिः॥१०।१।२८

शूरसेन जनपद और मथुरा में पीछे अभेद ही मिलता है। इसके सम्बन्ध में कृष्णदत्त वाजपेयी का मत द्रष्टव्य है[१]—"ऐसा प्रतीत होता है कि शूरसेन जनपद की यह संज्ञा लगभग ईसवी-सन् के आरम्भ तक जारी रही। जब इस समय से यहाँ विदेशी शक, क्षत्रपों तथा कुषाणों का प्रभुत्व हुआ, सम्भवतः तभी से जनपद की संज्ञा उसकी राजधानी के नाम पर 'मथुरा' हो गई। तत्कालीन तथा उसके बाद के जो अभिलेख मिले हैं, उनमें मथुरा नाम ही मिलता है, शूरसेन नहीं। साहित्यिक ग्रन्थों में भी अब शूरसेन के स्थान पर मथुरा का नाम मिलने लगता है। इस परिवर्तन का मुख्य कारण यह हो सकता है कि शककुषाणकालीन मथुरा नगर इतनी प्रसिद्धि प्राप्त कर गया था कि लोग जनपद या प्रदेश के नाम को भी मथुरा नाम से पुकारने लगे होंगे।

०.३.२. शूरसेन जनपद का महत्त्व

कृष्ण और यादवों के उत्थान-काल में शूरसेन जनपद महत्त्वपूर्ण रहा। यह महाभारत काल था। महाभारत के पश्चात् २३ शूरसेन राजाओं ने भारत पर राज्य किया।[२] इनके नाम तथा ज्ञातव्य बातें उपलब्ध नहीं हैं। महाभारत के पश्चात् जनपदों में पंचाल और कुरु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हुए। पंचाल का वर्णन कुरु के साथ प्राचीन साहित्य में मिलता है।[३] हो सकता है इनमें राजनैतिक सम्बन्ध रहा हो। जैन-साहित्य में यहाँ के एक चक्रवर्ती हरिषेण का जिक्र आया है[४] किन्तु शूरसेन के विषय में साहित्य मौन है। यादवों के नाश के समय जैसे इसने भी अपना गौरव खो दिया हो। शूरसेन जनपद की स्थिति इन दोनों (कुरु-पांचाल) के मध्य में थी। अतः इनकी संस्कृति का प्रभाव पड़ सकता है। बौद्ध-काल के सोलह महाजनपदों में शूरसेन था।[५] पर अधिक महत्त्वपूर्ण मगध, कोशल, वत्स, और अवन्ति ही थे। अन्य जनपद गौण हो गये। इन चारों जनपदों ने अपनी शक्ति-वृद्धि के लिए अन्य जनपदों से वैवाहिक सम्बन्ध किये। अवन्ती के तत्कालीन शासक चण्ड प्रद्योत ने अपनी लड़की का विवाह शूरसेन राजा के साथ किया जिससे अवन्ति पुत्र का जन्म

---

१. कृष्णदत्त वाजपेयी, ब्रज का इतिहास—प्रथम खंड, पृ० १५। २. पार्जीटर, डाइनेस्टीज ऑफ कलि एज, पृ० २३-४। ३. वाजसनेयीसंहिता ११।३।३, कठ सं० १०।६, गोपथ ब्राह्मण १।२।९, कौषीतकी उपनि० ४।१, शतपथ ब्रा० ३, २, ३, १५ आदि। ४. काम्पिल्यपुर तीर्थकल्प सं० २५। ५. अंगुत्तर-निकाय १, २१३; ४, २५२ से ५६।

हुआ।[1] इससे शूरसेन की स्थिति कुछ महत्त्वपूर्ण हुई। बौद्ध धर्म की दृष्टि से मथुरा का महत्त्व बढ़ा। ग्रीक यात्रियों के भी उल्लेख मिलते हैं तथा बौद्ध-साहित्य में भी मथुरा के वैभव के उल्लेख हैं। महाकच्चायन ने यहाँ बौद्ध धर्म का प्रचार जोरों से किया।[2] यहाँ अशोक के बौद्धतीर्थों की यात्रा के पथ-प्रदर्शक उपगुप्त ने भी निवास किया।[3] जैन-साहित्य में भी उल्लेख हैं, किन्तु शूरसेन प्रदेश का राजनैतिक महत्त्व उल्लिखित नहीं है।

क्षत्रपों के समय मथुरा को अपना विगत वैभव प्राप्त हुआ। शूरसेन जनपद का स्थान 'मथुरा' ने लिया। कनिंघम का अनुमान है कि इस समय में मथुरा राज्य का विस्तार उत्तर में दिल्ली तक, दक्षिण में ग्वालियर तक तथा पश्चिम में अजमेर तक था।[4] कुषाण-काल में भी जनपद अपने चरम पर रहा।

गुप्त काल में शूरसेन जनपद की स्थिति महत्त्वपूर्ण थी। कालिदास के उल्लेख, इस युग की महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ हैं। कालिदास ने मगध, अंग, अवन्ती, अनूप, कलिंग और अयोध्या के बड़े राजाओं के बीच शूरसेन नरेश सुषेण की गणना की है।[5] सुषेण को बड़ा प्रतापी चित्रित किया गया है।[6] सुषेण का यमुना में विहार करने का भी उल्लेख है।[7] कवि ने वृन्दावन के वन की शोभा की उपमा कुबेर के चैत्ररथ नामक उद्यान से दी है।[8] गोवर्द्धन के पावस-सौन्दर्य और मयूरों का वर्णन भी मिलता है।[9] यह उल्लेख शूरसेन प्रदेश की महत्त्वपूर्ण परम्परा के पाँचवीं शती के रूप की बात कहते हैं।

मध्यकाल में चीनी-यात्रियों का वर्णन मथुरा के महत्त्व की बात कहता है। ह्वेनसांग[10] ने मथुरा राज्य का क्षेत्रफल ५,००० ली० लगभग ८३३ मील बताया है। उसने यहाँ बौद्ध-धर्म के प्रचार की बात कही है, प्रसिद्ध संघारामों की चर्चा की है तथा भूमि अच्छी और मनुष्य सच्चे लिखे हैं।

महमूद गजनवी के आक्रमण के समय के यहाँ के मन्दिरों सम्बन्धी उल्लेख पहले दिये जा चुके हैं।

---

१. कृष्णदत्त वाजपेयी, ब्रज का इतिहास, पृ० ६५। २. अंगुत्तर०, १, ६७, मंज्झिम०, २, ८३। ३. वी० ए० स्मिथ, अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, चतुर्थ एडीशन, पृ० १९९। ४. क्वाइंस आफ ऐन्शेन्ट इंडिया, लंदन १८९१, पृ० ८५; एलन ने इसी की भूमिका, पृ० ११२-११५ में यही बात कही है। ५. रघुवंश, सर्ग ६, ४५ से ५१। ६. वही, ६, ४५। ७. वही, ६, ४८। ८. वही, ६, ५०। ९. वही, ६, ५१। १०. टामस वाटर्स, आन हुवानच्वांग्स ट्रेविल्स इन इंडिया, लंदन १९०४, जिल्द १, पृष्ठ ३०१ से १६।

राजपूत काल में यहाँ की ब्रजभाषा और संस्कृति का प्रचार आरम्भ हो गया था और यहाँ से ब्रजभाषा के विस्तार और उसकी समृद्धि का इतिहास आ जाता है।

०.४. ब्रज

वैदिक साहित्य में ब्रज या मथुरा के सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं है। 'ब्रज' शब्द का प्रयोग वहाँ अवश्य मिलता है[१] किन्तु इसका प्रयोग जनपदवाचक नहीं है। इसका प्रयोग पशुओं का समूह, पशुओं की गोचर भूमि या उनके बंधने के बाड़े के अर्थ में हुआ है। रामायण और महाभारत[२] में तथा परवर्ती-साहित्य[३] में भी ब्रज शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में मिलता है। अतः ब्रज जनपदवाचक पीछे हुआ। पहले यह शूरसेन प्रदेश के नाम से जाना जाता था। पर शूरसेन से प्राचीन उल्लेख मथुरा का मिलता है। मथुरा नगर के सम्बन्ध में उल्लेख है—मथुरा जनपदवाचक बाद को हुआ।

ब्रज शब्द का वैदिक प्रयोग स्थानवाचक तो था पर उससे किसी विशिष्ट स्थान का बोध नहीं होता था। सामान्यतः उसका अर्थ चरागाह था। भागवत में ब्रज शब्द का कई स्थलों पर प्रयोग मिलता है। राजा परीक्षित पूछते हैं—"कृष्ण पिता के घर से ब्रज क्यों चले गए ?[४] कृष्ण ने मधुपुरी में और ब्रज में निवास करने के समय क्या-क्या कार्य किए ?[५]" एक उल्लेख से स्पष्ट होता है कि ब्रज मथुरा से पृथक् था और वहाँ के अधिपति ब्रजाधिप नंद थे।[६] 'नन्द का ब्रज' कई स्थलों पर उल्लिखित है।[७] 'नन्द के गोकुल' की भी बात कही गई है।[८] इस प्रकार ब्रज का उल्लेख तो कई बार हुआ है पर यह निष्कर्ष निकालना कठिन है कि उससे किसी अलग ब्रज-प्रदेश का निर्देश है। नन्द अपने समुदाय के भी अधिपति हो सकते हैं। अस्थायी नागरिकों का समूह भी ब्रज कहला सकता है। चाहे ब्रज किसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ हो, कृष्ण के समय में ब्रज का महत्त्व बहुत अधिक बढ़ गया। नन्द को प्रतिवर्ष कंस को कर देना पड़ता था।[९]

---

१. ऋग्वेद २,३८,८; ५।३५।४, ७।२७।१, ७।३२।१०, ८।४६।९, ८।५१।५, १०।४।२, १०।२६।३; अथर्ववेद—३।२।५, ४।३८।७; शांखायन आरण्यक—२।१६। २. महाभारत १, ४०, १७; १, ४१, १५। ३. मनुस्मृति ४।४।५ मेधातिथि की टीका; कौटिल्य अर्थशास्त्र २।६।२४। ४. श्रीमद्भागवत १०।१।८। ५. वही, १०।१।९। ६. वही, १०।११।१७। ७. वही, १०। २।७, १०।५।१८। ८. वही, १०।३८।१, १०।४६।७। ९. श्रीकृष्णदत्त वाजपेयी, ब्रज का इतिहास—प्रथम खण्ड, पृ० ३०।

यह कर कंस के राज्य की भूमि को गोचर रूप में उपयोग करने के सम्बन्ध में भी हो सकता है।

इतने बड़े गोधन के स्वामी नन्द तथा उनके साथियों को घुमन्तुओं की भाँति स्थान परिवर्तन अवश्य करना पड़ता था। हरिवंशपुराण में गोकुल को छोड़कर वृन्दावन जाने की बात का उल्लेख मिलता है।[१] तब कृष्ण ७ वर्ष के थे। स्थान-परिवर्तन का एक कारण गोकुल का भर जाना है।[२] ब्रह्मपुराण और विष्णुपुराण में यह उल्लेख है कि गोचर भूमि तथा जल के सुवास के कारण तथा अन्य आवश्यक सुविधाएँ प्राप्त हो जाने से लोगों को वहाँ बड़ा आराम मिला। गोवर्द्धन का भी उल्लेख मिलता है। इससे प्रतीत होता है कि ब्रज एक निश्चित भूभाग कृष्ण के समय में था। सुविधाओं के आकर्षण से नन्द आदि स्थान-परिवर्तन भी करते थे। पर घूमने की प्रवृत्ति कुछ कम होती जा रही थी और अस्थायी बस्तियाँ गोकुल, वृन्दावन, गोवर्द्धन आदि थीं। इस प्रकार ब्रज का रूप खड़ा हो रहा था।

इस घुमन्तू जाति में स्थिरता लाने की चेष्टा, इस जाति को कृषिकर्म में प्रवृत्त करना हो सकती थी। कृषिकार्य के लिए जल की सुविधा आवश्यक है। इस प्रयत्न का आरम्भ 'हलधर' बलराम ने किया। ब्रह्मपुराण में उल्लेख है कि बलराम ने अपने हल से यमुना को अपनी ओर खीच लिया।[३] विष्णुपुराण में भी यह उल्लेख मिलता है।[४] हरिवंश में स्पष्ट उल्लेख है कि यमुना पहले दूर बहती थी, बलराम उसे निकट लाए जिससे यमुना वृन्दावन के खेतों के पास बहने लगी।[५] इस प्रकार कृषिकार्य ने ब्रज की घुमन्तू जाति को कुछ स्थिरता प्रदान की।

ब्रज का जनपद के रूप में उल्लेख प्राप्त नहीं है। पर ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रज और मथुरा मध्यकाल में पर्याय हो गए। ब्रज शब्द भाषा के साथ जुड़कर अपनी परम्परा बनाता है।

०.४.१. ब्रज की सीमाएँ तथा विस्तार

ब्रज की सीमाओं का निर्धारण एक कठिन कार्य रहा है। इसके विस्तार का उल्लेख विशेषतः धार्मिक दृष्टि से हुआ है। वराहपुराण में मथुरा-मण्डल था जिसका

---

१. 'तस्मिन्नेव ब्रजस्थाने सप्तवर्षो बभूवतः —हरि० ६५।१। २. वही, १८४।४२ से ६०। ३. ब्रह्म० १९८।८, १९८।१९। ४. विष्णु० २४।८, २५।१९। ५. हरिवंश १०३।

विस्तार २० योजन लिखा है।[१] अन्य पुराणों में विस्तार की चर्चा नहीं मिलती। ह्वेनसांग ने मथुरा राज्य का विस्तार ५००० ली, लगभग ८३३ मील माना है।[२] नारायण भट्ट ने जो ब्रजयात्रा के आरम्भकर्त्ता और रूप सनातन गोस्वामी के शिष्य थे, ब्रज की सीमाएँ इस प्रकार निर्धारित की हैं—पूर्व में हास्यवन, पश्चिम में उपहारवन, दक्षिण में जह्नुवन तथा उत्तरी सीमा भुवनबन है।[३] ब्रजभाषा के सबसे प्राचीन व्याकरण के लेखक मिर्ज़ाखां ने ब्रज की सीमाओं का इस प्रकार उल्लेख किया है—ब्रज भारत के उस प्रदेश का नाम है जो मथुरा को केन्द्र मानकर ८४ कोस के बीच मण्डलाकार स्थित है।[४] कनिंघम महोदय ने ह्वेनसांग के विस्तारोल्लेख का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया—सातवीं शताब्दी में मथुरा का प्रसिद्ध नगर एक विशाल राज्य की राजधानी थी जो परिधि में ५००० ली अथवा ८३३ मील बताया जाता है। यदि यह अनुमान ठीक है तो इस प्रान्त में न केवल वैराट और अतरौली के जिलों का ही समस्त प्रदेश सम्मिलित होगा, वरन् इससे भी विशाल क्षेत्र आगरा से परे नरवर तक और शिवपुरी तक दक्षिण में, सिंध नदी तक पूर्व में—इसमें भरतपुर, खिरावली तथा धौलपुर की छोटी रियासतों और ग्वालियर राज्य के उत्तरार्द्ध के साथ मथुरा जिला सम्मिलित है। पूर्व में उसकी सीमा पर जिझौती राज्य होगा, दक्षिण सीमा पर मालवा।[५]

ब्रज की सीमाओं के सम्बन्ध में ब्रज में एक दोहा भी प्रचलित है।[६] उसके अनुसार ब्रज के एक ओर बरहद, एक ओर सौनहद तथा एक ओर शूरसेन का गाँव हैं। इस दोहे में ब्रज के चौरासी कोस का भी उल्लेख है। ग्राउज़ ने इसी दोहे को आधार मानकर ब्रज की सीमाएँ इस प्रकार निश्चित कीं—[७] ब्रज मण्डल के एक ओर की हद 'वर' स्थान है, दूसरी ओर सोन नदी है और तीसरी ओर शूरसेन का गाँव है।[८] वहीं ग्राउज़ ने नारायण भट्ट के श्लोक से इस दोहे का सामंजस्य इस प्रकार किया है—हास्य वन

---

१. वराहपुराण १५८।१। २. टामसवाटर्स, आन् युवानच्वांग ट्रेविल्स इन इंडिया, लन्दन १९०४, जिल्द १, पृ० ३०१ से १३।

३. पूर्वं हास्यवनं चैव पश्चिमस्यौपहारिकम्।
दक्षिणे जह्नुसंज्ञाकं भुवनाख्यं तथोत्तरे॥—ब्रजविलास

४. दे०, लेखक का 'ब्रज भाषा का सबसे प्राचीन व्याकरण', पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ। ५. ऐन्शेन्ट ज्याग्राफ़ी आफ इंडिया, पृ० ४२७।

६. इत वरहद इत सौन हद इत सूरसेन कौ गाम।
ब्रज चौरासी कोस में मथुरा मंडल धाम॥

७. मथुरा मैमॉयर्स, पृ० ७९। ८. बटेश्वर शूरसेन का गाँव कहलाता है।

वरहद का वन है। पश्चिम का उपहार वन गुड़गांव जिले में सोन नदी के किनारे है। दक्षिण का जह्नुवन बटेश्वर के निकट है। उत्तर का भुवनवन या भूषण शेरगढ़ के निकट है। वंशभास्कर के रचयिता प्रसिद्ध चारण सूरजमल ने दिल्ली-ग्वालियर के मध्य ब्रजप्रदेश की स्थिति मानी है।[१] लल्लू जी लाल ने ब्रज का परिचय इस प्रकार दिया है—"ब्रज आगरा और दिल्ली के बीच में स्थित एक जिला है जिसकी राजधानी मथुरा है। इसमें राजा भरतपुर का राज्य भी सम्मिलित है तथा गोवर्द्धन के पहाड़ भी गोवर्द्धन में ही हैं।"[२] सन् १८८८ में बाबू तोताराम ने 'ब्रजविनोद' पुस्तक लिखी, जिसमें ब्रज की सीमाएँ इस प्रकार बताई गई है—श्री मथुरा, गोकुल, वृन्दावन के आस पास २४ कोस ब्रज मण्डल प्रसिद्ध है। इस ब्रज मण्डल की लम्बाई ४२ मील और चौड़ाई ३० मील है। इसके मध्य में श्री यमुना जी बहती हैं। यमुना जी के दाहिने तट पर कोसी और छाता के परगने हैं और बाएँ किनारे पर माट, नोहझील और कुछ महावन का परगना है।[३] डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने अपनी पुस्तक में सीमाएँ इस प्रकार दी हैं—"धार्मिक दृष्टि से ब्रज मण्डल मथुरा जिले तक ही सीमित है किन्तु ब्रज की बोली मथुरा के चारों ओर दूर-दूर तक बोली जाती है।[४]" डा० दीनदयालु गुप्त ने ब्रजमण्डल पर अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये हैं— "साधारणतया मथुरा के आसपास ८४ कोस के स्थान को ब्रज कहते हैं।[५]" उनके अनुसार बटेश्वर ब्रज में नहीं है क्योंकि आगरा गजेटियर में उसका नाम 'सूरजपुर' दिया हुआ है और उसे सम्मिलत करने से ब्रज का वृत्ताकार बेडौल हो जाता है। डा० सत्येन्द्र का मत यह है—"चौरासी कोस का इतना महत्त्व भौगोलिक दृष्टि से नहीं है जितना धार्मिक और आध्यात्मिक दृष्टि से है। ब्रज और मथुरा समान सीमावाले हुए, फिर मथुरा में ही सीमित हो गये। आज ब्रज का कोई जनपद अपनी निश्चित सीमाओं के साथ कहीं मान्य नहीं है। मण्डल शब्द से वृत्त का ही बोध नहीं होता, वह प्रदेश अथवा क्षेत्र वाचक भी है।[६]"

वस्तुतः आज धार्मिक दृष्टि से ब्रज का विस्तार चौरासी कोस माना जाता है, पर यथार्थ भौगोलिक सीमाएँ आज निश्चित होना कठिन है। सीमा और

---

१. पुर दिल्ली और ग्वालियर, बीच ब्रजादिक देस।
पिंगल उपनायक गिरा, तिनकी मधुर विसेस॥

२. जनरल प्रिंसीपल्स आफ इन्फ्लेक्शन एण्ड कंजूगेशन इन ब्रजभाषा, भूमिका भाग। ३. ब्रजविनोद, पृ० २। ४. नाम-माहात्म्य, श्री ब्रजांक, अगस्त १९४०, ब्रजभाषा-लेख। ५. ब्रजभारती, वर्ष ४, संख्या १०, ११, १२, पृ० १। ६. ब्रज लोकसाहित्य का अध्ययन, प० ५१।

विस्तार के निर्धारण के कथनों में धार्मिक, राजनैतिक आदि कई दृष्टियाँ आ जाने से प्रश्न जटिल हो गया है।

०.५. ब्रज में भाषा का विकास

ब्रज मण्डल की स्थिति मध्यदेश में है। मध्यदेश के सम्बन्ध में अनेक गौरवपूर्ण लेख प्राचीन साहित्य में बिखरे पड़े हैं। मध्य युग में ब्रजभाषा ने जो लोकप्रियता प्राप्त की, उसके सम्बन्ध में डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने लिखा है––"मध्य युग के उत्तर भारत के साहित्यिक इतिहास में ब्रजभाषा का स्थान सबको विदित है। ऐसा जँचता है कि अपनी बेटी ब्रजभाषा में शौरसेनी अपभ्रंश को नवीन-कलेवर मिला, नये आयुकाल को उसने प्राप्त कर लिया। उत्तर बंगाल से लेकर महाराष्ट्र और पश्चिम पंजाब तक ब्रजभाषा-कविता, संगीत और राधाकृष्ण विषयक वैष्णवशास्त्र ग्रन्थों की भाषा बनी। बंगाल के कवियों की लिखी ब्रजभाषा-कविता मिली है जैसे शौरसेनी अपभ्रंश की।"[१] कवि भूषण ने अपनी ओजमयी ब्रजभाषा में महाराष्ट्र कुलभूषण हिन्दू-तिलक श्री शिवराज जी की प्रशस्ति लिखी। मराठे 'पोवाड़ा' या युद्ध-गीत के लेखक लोग भी कभी-कभी ब्रजभाषा का व्यवहार करते थे। सिक्ख गुरुओं के धर्मोपदेश की भाषा तो अपने मूल में ब्रज और खड़ी बोली ही है। तुर्क और पठान सुल्तानों के राज्यकाल में दिल्ली में और उसके बाद अकबर बादशाह के समय में आगरे में जब मुगल सल्तनत की राजधानी प्रतिष्ठित हुई और आखिर जब दिल्ली फिर पायतख़्त बनी, तब ब्रजभाषा और दिल्ली की खड़ी बोली, हिन्दी के ये दो रूप उत्तरभारत में फिर प्रतिष्ठित हुए। ब्रजभाषा के इस अखिल उत्तरभारत व्यापी प्रभाव का कारण ऐतिहासिक है। ब्रजभाषा एक प्राचीन भाषा-परम्परा की कड़ी है। उसे उस परम्परा का उत्तराधिकार मिला है। इस भाषा-परम्परा को देख लेना आवश्यक है।

०.५.१. प्राचीनकाल

आर्यों की अनेक शाखाएँ भारत में आईं। यहाँ की मूल जातियों से उनका संघर्ष-सम्पर्क हुआ। समन्वय का क्षेत्र बना। भाषा के रूपों में पार्थक्य स्वाभाविक था। छन्दस् और संस्कृत के बीच जो अन्तर मिलता है, वह ऐसे ही कारणों से है। ऋग्वेद में तीन बोलियों का रूप मिलता है–पश्चिम पंजाब की आर्य बोली, दूसरी ऐसी बोली जो ब्राह्मण-ग्रन्थों की रचना के समय मध्यदेश में स्थापित हुई, तीसरी

---

१. पोद्दार अभिनन्दन-ग्रन्थ, पृ० ८०।

वैदिक क्षेत्र से पूर्व की ओर प्रचलित बोली।[१] ब्राह्मण-ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि उत्तर भारत में आर्यावर्त का विस्तार गांधार से विदेह तक हुआ। ऋग्वेद में मिलने वाली तीनों बोलियों का विकास उदीच्य, मध्यदेशीय तथा प्राच्य के रूप में हुआ। मध्यदेशीय भाषा के क्षेत्र में ही शूरसेन-प्रदेश (मथुरा-मण्डल) आता है। अतः शूरसेन क्षेत्र की भाषा-परम्परा का आरम्भ ऋग्वेद की दूसरी बोली तथा ब्राह्मण-ग्रन्थों में उल्लिखित मध्यदेशीय भाषा से हुआ। शूरसेन जनपद मनु द्वारा निर्दिष्ट ब्रह्मर्षि-देश का एक भाग था।[२] वैदिक साहित्य का सम्पादन और नियोजन वेद-व्यास ने मध्यदेश में ही किया।[३] वैदिक भाषा दैवी भाषा के रूप में मान्य रही। उसके मन्त्र ध्वनि-प्रतीक बन गये, जिनमें परिवर्तन करना अमङ्गलकारी समझा जाता था।

संहिताओं की भाषाओं के पश्चात् ब्राह्मण-भाषा की स्थिति आती है। ब्राह्मण-साहित्य की भाषा क्लासीकल संस्कृत से अधिक मिलती-जुलती है। वैदिक मन्त्रों के अनेक शब्द इस स्थिति तक आते-आते लुप्त हो गये। अनेक शब्दों का व्यंजनत्व लुप्त होकर केवल हकार शेष रह गया——सध/सह, गृभ/गृह। ब्राह्मण-साहित्य के पश्चात् की भाषा-स्थिति का प्रतिनिधित्व यास्क का 'निरुक्त' करता है। इसके पश्चात् पाणिनि-युग आता है। इस प्रकार संस्कृत के विकास की तीन स्थितियाँ मध्यदेश की प्राकृत-पूर्व भाषा-परम्परा में सम्मिलित की जाती हैं——१—वैदिक भाषा: संहिता-साहित्य, ब्राह्मण-साहित्य; २—वैदिक भाषा की अन्तिम स्थिति जिसकी सीमा पाणिनि हैं; तथा ३—क्लासीकल संस्कृत: महाकाव्य, काव्य, नाटक, स्मृतियाँ——यहाँ तक की भाषा-परम्परा को शूरसेन-प्रदेश से सम्बन्धित करके विशेष रूप से नहीं दिखाया जा सकता। भाषा की दृष्टि से मध्यदेश या ब्रह्मर्षिदेश एक इकाई हो सकता है, शूरसेन-जनपद नहीं।

०.५.२. प्राकृत युग

जब संस्कृत भाषा का स्वरूप पूर्णरूपेण सुस्थिर, सुनिश्चित हो गया तब भाषा-विकास की स्थिति उत्पन्न हुई। ई० पू० छठी शती से लेकर ईसा की दसवीं शती तक का समय प्राकृतों के विकास का युग है। ग्रियर्सन ने इसे द्वितीय श्रेणी की

---

१. सु० कु० चटर्जी, राजस्थानी भाषा, पृ० ४२।

२. कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पांचालाः शूरसेनकाः।
एष ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मावर्तादनन्तरः॥——मनु० २।१९

३. सु० कु० चटर्जी, पोद्दार अभिनन्दन-ग्रन्थ, पृ० ७७।

प्राकृतों का युग कहा है।[१] डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने इस काल की भाषाओं को मध्यभारतीय आर्यभाषाओं (मभाषा) की संज्ञा दी है। इनके अनुसार प्राकृत युग को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—

१— आरम्भिक अवस्था	४०० ई० पू० से	१०० ई० तक।
२— मध्य अवस्था	१०० ई०	से ५०० ई० तक।
३— उत्तरकालीन अवस्था	५०० ई०	से १००० ई० तक।

प्रारम्भिक अवस्था में पालि और अशोक के शिलालेखों की प्राकृत आती है। पालि के पश्चात् अन्य प्राकृतें विकसित होती हैं। उत्तरकालीन अवस्था अपभ्रंशों की अवस्था है।

मुख्यतः सात प्राकृत मानी जाती हैं[२]—महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी, अर्द्ध-मागधी, जैन महाराष्ट्री, जैन शौरसेनी तथा अपभ्रंश। किन्तु इनमें 'पालि' का उल्लेख नहीं है। पालि प्राकृतों की आरम्भिक स्थिति का प्रतिनिधित्व करती है। पालि को कुछ विद्वान् आरम्भिक मागधी प्राकृत मानते हैं। बुद्धघोष ने इसे 'मगध बोहार' नाम से सम्बोधित किया है।[३] एक मत यह भी है कि पालि नाम सिंहलियों द्वारा दिया हुआ है।[४] इसका सम्बन्ध 'पल्ली' से भी जोड़ा जाता है। पल्ली का अर्थ है ग्राम और 'पालि' का अर्थ है ग्राम-भाषा। कुछ इसे प्राकृत नाम से ही पुकारते हैं। 'छन्दस्' के समय में अनेक 'प्राकृत' अथवा प्रादेशिक भाषाएँ प्रचलित थीं। उनसे पालि सम्बन्धित थी। 'छन्दस्' से पालि का सम्बन्ध दीखता है।

भण्डारकर का मत है कि पालि मध्य-संस्कृत का प्रतिनिधित्व करती है, जिसका समय 'ब्राह्मणों' की रचना तथा यास्क-पाणिनि युग के बीच ठहरता है।[५] वी० फासबाल ने 'सुत्तनिपात' की भूमिका में लिखा है—"वैदिक भाषा के जो भव्य रूप पालि में प्राप्त होते हैं वे क्लासीकल संस्कृत में भी प्राप्त नहीं होते।[६]" अधिकांश विद्वान् यह मानते हैं कि पालि और प्राचीन मागधी प्राकृत एक ही बोली है। इस सम्बन्ध में डा० सुनीतिकुमार चटर्जी का मत ही अधिक वैज्ञानिक दीखता है—"पालि दर-असल मध्यदेश की ही भाषा का साहित्यिक रूप है, मगध की बोली के आधार

---

१. लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया, १९२७, पृ० १२१। २. वुलनर, इन्ट्रोडक्शन टु प्राकृत, पृ० ४। ३. विजयचन्द्र मजूमदार, हिस्ट्री ऑफ़ बंगाली लैंग्वेज, पृ० १९३। ४. वही। ५. कलक्टेड वर्क्स ऑफ़ आर० जी० भण्डारकर, जिल्द ४, पृ० ३१२। ६. सै० बु० ई०, जिल्द ९।

पर पाली नहीं बनी। कलिंगराज खारवेल ने जिस भाषा में अपने लेख को लिखवाया था वह सचमुच मथुरा प्रान्त से आए हुए अपने जैन-गुरु या शिक्षकों की निजी शौरसेनी थी। खारवेल की यह भाषा पाली से खूब मिलती-जुलती है। इसके अतिरिक्त अश्वघोष ने अपने नाटकों में पुरानी शौरसेनी या मध्यदेशीय प्राकृत का प्रयोग किया।[१]

मध्यकालीन भाषाकाल में अनेक प्रादेशिक भाषाएँ अस्तित्व ग्रहण करने लगीं। मध्यदेश में भी कई प्राकृतों का विकास हुआ, किन्तु मध्यदेश की प्राकृतों पर संस्कृत का प्रभाव अधिक रहा। अन्य प्राकृतों पर प्रभाव कम होता गया।

"प्राकृत" शब्द प्रकृति से व्युत्पन्न हुआ है। इसका अर्थ यह हो सकता है कि ये भाषाएँ उस मूल भाषा से उत्पन्न हुईं जिसमें किसी प्रकार का संस्कार या विकार उत्पन्न नहीं हुआ था। सांख्य में प्राकृत का यही अर्थ है—वह जो प्रकृति से उत्पन्न हुआ मौलिक तत्व हो। किन्तु रूढ़ परम्पराओं से प्राकृत का एक और भी अर्थ होता रहा—स्वाभाविक, साधारण, अपरिमार्जित, प्रादेशिक। यह शब्द पहले-पहल साधारण बोलचाल की भाषा के लिए भी प्रयुक्त हुआ हो सकता है, जो परिष्कृत संस्कृत से भिन्न समझी जाती थी। अब प्राकृत के वैयाकरणों का प्राकृत की उत्पत्ति के सम्बन्ध में मत देखना समीचीन होगा।

प्राकृत के प्रायः सभी वैयाकरण—हेमचन्द्र,[२] मार्कण्डेय[३] आदि प्राकृत को संस्कृत से ही विकसित मानते हैं। षड्भाषचन्द्रिकाकार[४] ने भी यह मत स्वीकृत किया है। 'प्राकृतचन्द्रिका'[५] भी यही बात[६] कहती है। 'प्राकृत संजीवनीकार' का कथन है कि समस्त प्राकृतों का जन्म संस्कृत से हुआ।[७] वैयाकरण जब एकमत होकर यह घोषित करते हैं तो काव्यशास्त्र के व्याख्याता भी इस मत का पोषण किए बिना नहीं रह सकते। किन्तु कुछ विद्वान् इस मत को अस्वीकृत भी करते हैं। ८वीं शती के वाक्पतिराज का कथन है—समस्त भाषाएँ तथा बोलियाँ प्राकृत में ही प्रविष्ट होती हैं और उसी से निर्गत होती हैं, जैसे समस्त जल समुद्र में ही गिरता

---

१. राजस्थानी भाषा, पृ० ४५। २. सिद्ध हेमचन्द्र, ८।१।१—प्रकृतिः संस्कृतं तत्र भवं तत् आगतं वा प्राकृतम्। ३. मार्कण्डेय, प्राकृत सर्वस्व, पृ० १—प्रकृतिः संस्कृतम् तत् भवं प्राकृतमुच्यते।

४. प्रकृतेः संस्कृतायास्तु विकृतिः प्राकृती मता।

५. प्रकृतिः संस्कृतं तत्र भवत्वात् प्राकृतं स्मृतम्॥—पीटरसन की तृतीय रिपोर्ट, ३४३-७। ६. प्रकृतस्य तु सर्वमेव संस्कृतं योनिः—वासुदेव, कर्पूरमंजरी पर टीका, ९।११। ७. प्रकृतेरागतं प्राकृतं प्रकृतिः संस्कृतम्—दशरूपक, २,६४।

और वहीं से निकलता है।[1] ११वीं शती के एक जैन-विद्वान् नमिसाधु रुद्रट के 'काव्यालङ्कार'[2] की टीका करते समय लिखते हैं—प्राकृत भाषा का स्वाभाविक प्रयोग है। उसका प्रयोग संसार के सभी प्राणी करते हैं। यह व्याकरण आदि के द्वारा परिष्कृत नहीं हुई है। यह भाषा स्वयं प्रकृति से निकली है, अतः प्राकृत कहलाती है।[2] प्राकृत का अर्थ यह विद्वान् 'आदि उत्पन्न' भी मानता है (प्राक्-कृतः)। यह भाषा सभी बच्चे और स्त्रियों द्वारा समझी जा सकती है। साथ ही यह समस्त भाषाओं का मूल स्रोत है। यही आदि भाषा संसार के सभी देशों में वितरित की गई। धीरे-धीरे इसी भाषा को परिष्कृत किया गया। यही आगे चलकर संस्कृत बनी। काव्य के क्षेत्र में यह मत इतना मान्य हुआ कि जो हेमचन्द्र व्याकरण के क्षेत्र में प्राकृत की उत्पत्ति संस्कृत से बताता है वही हेमचन्द्र 'काव्यानुशासन' में कुछ और ही बात कहता है—प्राकृत अकृत्रिम है, मधुर शब्दावली से युक्त है। वही समस्त भाषाओं में परिणत हुई है।[3] इन दोनों ग्रन्थों के पश्चात् हेमचन्द्र ने 'देशी नाममाला' ग्रन्थ लिखा। इसमें भी हेमचन्द्र दूसरे मत की ही पुष्टि करता है। आरम्भिक श्लोक में वह जैन-भाषा (अर्द्ध-मागधी) को प्रणाम करता है जो समस्त भाषाओं का आदि-स्रोत है।[4] अर्द्ध-मागधी अन्य भाषाओं में भी विकसित हुई, इसकी पुष्टि में देशी नाममाला के द्वितीय श्लोक में हेमचन्द्र लिखता है—जिन-भाषा देवों की दैवी, मानवों की मानवी, शबरों की शबरी है तथा पशु-पक्षी उसे अपनी भाषा मानते हैं।

काव्य-शास्त्र के टीकाकार और व्याख्याकारों के प्राकृत-सम्बन्धी विचार इस प्रकार समझे जा सकते हैं—

१. समस्त भाषाएँ प्राकृत में प्रविष्ट होती और निकलती हैं।[5]

---

१. गौडवहो—संपा०, एस० पी० पण्डित, इन्ट्रोडक्सन, पृ० १००। २. वाग्भटालङ्कार, २।१२

३. अकृत्रिमस्वादुपदां परमार्थाभिधायिनीम्।
सर्वभाषापरिणतां जैनीं वाचमुपास्महे॥—
काव्या०, पृ० १, श्लोक १

४. गमणय पमाणगहिरा सहिययहिययंगमरहस्सा।
जयइ जिणि दाण असे समासपरिणामिणी वाणी॥—
दे० ना०, श्लो० १

५. वाक्पतिराज, गौडवहो, श्लो० ९३

२. प्राकृत भाषा का स्वाभाविक रूप है। व्याकरण के द्वारा यह 'संस्कृत' नहीं है, स्वयं प्रकृति से निकली हुई भाषा प्राकृत है ।[१]

३. यह सर्व-सुबोध है, स्त्री और बच्चे भी इसे समझ सकते हैं ।[२]

४. समस्त भाषाएँ इससे निकली हैं ।[३] विभिन्न देशों में भी यही भाषा भिन्न रूपों में फैली है। पीछे परिष्कार किये जाने से यही संस्कृत बनी।

५. इस भाषा में मधुर शब्दावली है ।[४]

प्राकृत भाषाओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध में आधुनिक विद्वानों का मत जान लेना भी अनुचित न होगा। आर० काल्डवेल का मत है कि इन प्राकृतों का जन्म द्राविड़ी तथा सिथियन भाषाओं के प्रभाव से हुआ ।[५] उनके मत से संस्कृत की शब्दावली का कुछ ही भाग इन अनार्य-भाषाओं से लिया गया। इस प्रकार के शब्दों की एक सूची भी उक्त विद्वान् ने दी है।[६] किन्तु इन शब्दों का अस्तित्व साहित्यिक द्राविड़ी भाषा में नहीं मिलता। बीम्स ने इस मत का पूर्ण खण्डन किया है। इस मत को वे भौगोलिक, ऐतिहासिक तथा भाषावैज्ञानिक दृष्टि से निर्मूल बताते हैं। आर्यों के उपनिवेशों और द्राविड़ी भाषाओं के बीच में मुंडा भाषा पड़ती है। फिर आर्य-भाषा इन अनार्यभाषाओं के सम्पर्क में आई कब? यदि वैदिक युग में यह सम्पर्क हुआ, तो वैदिक भाषा संश्लिष्टात्मक कैसे रह सकी? अतः अनार्य भाषाओं के प्रभाव से प्राकृतों के जन्म का सिद्धान्त खण्डित हो जाता है।[७] आधुनिक आर्यभाषाओं का विश्लेषणात्मक गठन की ओर अग्रसर होना एक भाषावैज्ञानिक विकास-नियम का परिणाम है, किसी बाहरी प्रभाव के कारण ऐसा नहीं हुआ। श्री विजयचन्द्र मज़ूमदार भी द्राविड़ी प्रभाव वाले सिद्धान्त के पक्ष में हैं।[८] इसके उत्तर में भी यही बात कही जा सकती है कि वैदिक भाषा में इस प्रभाव का चिह्न क्यों नहीं मिलता। डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी का इस सम्बन्ध में यह मत है—"द्राविड़ी प्रभाव तो स्पष्ट दीखता है, किन्तु प्रत्यय तथा उपसर्गों के अध्ययन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि द्राविड़ी तत्त्व सीधे उधार नहीं लिए गए। यह भी नहीं कहा जा सकता कि आर्य भाषाओं का गठन उनकी शैली पर हुआ।[९]" बीम्स प्राकृतों की उत्पत्ति बोली जाने

---

१. नमिसाधु वाग्भटालङ्कार, २, १२. २-३. वही। ४. हेमचन्द्र, काव्यानुशासन, पृ० १, श्लोक १ ५. कम्परेटिव ग्रामर आफ द्रविडियन लैंग्वेजेज, पृ० ३७ ६. वही, पृ० ४३९-४८ ७. विशेष विवरण के लिए देखिए, कम्परेटिव ग्रामर आफ दि माडर्न इण्डियन लैंग्वेजेज ८. हिस्ट्री आफ बंगाली लैंग्वेज, पृ० ५८-५९ ९. दि ओरिजिन एण्ड डेवलपमेण्ट आफ दि बंगाली लैंग्वेज, जि० १, पृ० १७३

वाली संस्कृत से मानता है, जो साहित्यिक संस्कृत से पृथक् थी। इस शैली का अनुसरण करते हुए डॉ० जे० म्योर जर्मन विद्वानों के मत का सारांश इस प्रकार देता है—"लासेन तथा बेनफे के अनुसार संस्कृत (वह भाषा जो पीछे की संस्कृत से कुछ अङ्कों में पृथक् तथा वैदिक से मिलती जुलती थी) एक समय में बोली जाने वाली भाषा थी। वेबर के अनुसार यह वह भाषा थी जो 'संस्कृत' के विकसित होने से पूर्व प्रचलित वर्नाक्यूलर थी।[1]" वेबर के अनुसार इससे आगे के युग में संस्कृत बोल-चाल की भाषा नहीं रह गई। उस युग में प्राकृत भाषाएँ बोली जाती थीं, जो प्राचीन आर्य 'वर्नाक्यूलर' से विकसित हुईं।[2] डॉ० ग्रियर्सन का भी मत देख लेना युक्तियुक्त होगा—"वैदिक तथा संस्कृत 'आदि प्राकृतों' (PRIMARY PRAKRITS) से विकसित हुईं। पाणिनि के समय में साहित्यिक रूप में इन प्राकृतों का अस्तित्व समाप्त हो गया। इन्हीं प्राकृतों से आगे की साहित्यिक प्राकृत भाषाएँ निकलीं, जैसे—पाली, जैन अर्द्धमागधी, अशोक के शिला-लेखों की भाषा। इन भाषाओं की मध्य स्थिति का प्रतिनिधित्व नाटकों की प्राकृत तथा जैन महाराष्ट्री करती हैं। इनकी अन्तिम स्थिति अपभ्रंश के द्वारा प्रकट होती है।[3]" इस प्रकार आधुनिक मतों के अनुसार यही निष्कर्ष निकलता है कि प्राकृत वैदिक या संस्कृत से विकसित नहीं हुईं; संस्कृत तथा प्राकृत दोनों ही आरम्भिक प्राकृतों से उत्पन्न हुईं।

प्रायः सभी प्राकृत अभी संश्लिष्टात्मक स्थिति में थीं। प्राचीन व्याकरण की जटिलताएँ सरलता की ओर प्रगतिशील थीं। ऋग्वेद में कारक और क्रियाओं के अनेक रूप मिलते हैं। उनमें से अनेक रूप पाणिनि तक आते-आते छूट जाते हैं। अपभ्रंश तक आते-आते व्याकरण बहुत सरल हो गया। इस सरलता के होते हुए भी व्याकरण के मूल रूप में कोई अन्तर नहीं हुआ। महत्वपूर्ण साहित्यिक रचनाएँ भी अभी संस्कृत में होती थीं। अर्द्धमागधी तथा अन्य जैन-बौद्ध प्राकृतें धार्मिक साहित्य की वाहिका होने के कारण जन-साधारण से अलग पड़ गयी थीं; उनका भी साहित्यिक रूप निश्चित होने लगा। यह अवश्य दीखता है कि सभी संस्कृत-भाषी साहित्यिक प्राकृतों को समझ लेते थे। शौरसेनी प्राकृत तो संस्कृत से इतनी प्रभावित थी कि उनका बोलने वाला तो संस्कृत-शिक्षित हुए बिना ही संस्कृत के अनेक शब्दों और वाक्यों को समझ लेता था। इससे पूर्वकाल में तो यह अन्तर और भी कम होगा।

---

१. दि ओरिजिनल संस्कृत टेक्स्ट्स, जिल्द २, पृ० १४४ २. Indische Literaturgeschichte, Page. ३. लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया, जिल्द १, पृ० १२७-२८

जब प्राकृतें लोकप्रिय होने लगीं तब उन पर व्याकरण लिखे गये। प्राकृतों के छह मुख्य व्याकरण आज उपलब्ध हैं। वररुचि का 'प्राकृत प्रकाश' तथा हेमचन्द्र का 'हेम-व्याकरण' इनमें अधिक प्रसिद्ध हैं। हेमचन्द्र ने 'देशी नाममाला' नामक एक कोष भी लिखा। महाराष्ट्री को दोनों ही प्रमुख प्राकृत मानते थे। हेमचन्द्र 'महाराष्ट्री' नाम नहीं लिखता, उसे केवल 'प्राकृत' कह देता है। ये सभी प्राकृतों का जन्म संस्कृत से मानते हैं। वररुचि और हेमचन्द्र महाराष्ट्री की भाँति शौरसेनी को भी संस्कृत से निकली हुई मानते हैं। साथ ही ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि शौरसेनी, पैशाची और मागधी का आधार थी। हेमचन्द्र कुलिका और अपभ्रंश का भी व्याकरण लिखता है। दण्डी अपभ्रंश को आभीरों की भाषा मानता है। त्रिविक्रम अपनी 'प्राकृत-सूत्र-वृत्ति' में छह भाषाओं का व्याकरण देता है। 'चन्द्र' ने 'षड्भाषा-चन्द्रिका' की रचना की। लक्ष्मीधर भी छह भाषाओं का विवरण देता है।

वैसे प्राकृतों में स्वतन्त्र साहित्य भी मिलता है, पर मुख्यतः इनका प्रयोग नाटकों में किया गया है। सम्भ्रान्त स्त्रियाँ नाटकों में शौरसेनी प्राकृत बोलती हैं। स्त्रियाँ यदि कविता या गीतों का प्रयोग करती हैं तो माध्यम महाराष्ट्री प्राकृत बनती है। शौरसेनी का प्रयोग कुछ निम्न कोटि के पात्र भी करते हैं। साधारण सिद्धान्त तो यह दीखता है कि जिस प्रदेश का पात्र होता है वह उसी प्रदेश की प्राकृत का प्रयोग करे। साहित्यदर्पणकार ने इस सम्बन्ध में अत्यन्त सूक्ष्म नियम दिए हैं। इन नियमों में अनेक भाषाओं का उल्लेख मिलता है। पर ये समस्त भाषाएँ प्रादेशिक अन्तर-जनित हैं। सभी विद्वान् मुख्य छह प्राकृत मानते हैं।

शौरसेनी और महाराष्ट्री प्राकृत

प्राकृतों के युग में दो प्राकृत प्रमुख होती दीखती हैं—शौरसेनी तथा महाराष्ट्री। पालि मध्यदेश की भाषा थी। मध्यदेश उस समय उज्जैन से लेकर मथुरा तक विस्तृत था।[१] यह पालि एक प्रकार से पश्चिमी हिन्दी-क्षेत्र की पूर्व भाषाओं में से एक मानी जा सकती है। इसी क्षेत्र में आगे चलकर शौरसेनी प्राकृत विकसित हुई। इसका प्रमाण यह है कि पालि तथा शौरसेनी में ध्वनि-विकास की अनेक स्थितियाँ समान हैं। कुछ नवीन ध्वनि-विकार भी शौरसेनी में हैं, जो पालि से आगे के विकास की सूचना देते हैं। यह संक्षेप में देखा जा चुका है कि शौरसेनी प्राकृत इस युग की सबसे अधिक उन्नत, लोकप्रिय तथा संस्कृत से प्रभावित भाषा थी। शौरसेनी ब्रजभाषा का पुराना रूप है। दूसरी मुख्य प्राकृत महाराष्ट्री प्राकृत

---

१. सुनीतिकुमार चटर्जी, इण्डो एरियन एण्ड हिन्दी, पृ० १६१

है, जैसा कि इस नाम से विदित होता है, यह महाराष्ट्र प्रदेश की प्राकृत होगी। महाराष्ट्री प्राकृत के विस्तार-क्षेत्र के सम्बन्ध में इस प्रचलित मत के अतिरिक्त एक और मत सामने आता है। इस मत का प्रारम्भ सम्भवतः मनमोहन घोष ने किया। उन्होंने यह माना कि महाराष्ट्री प्राकृत का सम्बन्ध मराठा देश से नहीं है, यह मध्य-देश की ही भाषा थी। यह शौरसेनी के विकास की द्वितीय स्थिति की सूचना देने वाली है।[1] इस मत की पुष्टि डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी ने वररुचि के व्याकरण के आधार पर की है।[2] यदि महाराष्ट्री प्राकृत उस प्रदेश की भाषा होती तो आज की मराठी भाषा उसी तरह विकसित हुई होती। मालिसवर्थ ने महाराष्ट्री के कोष में अनेक शब्दों की व्युत्पत्ति हिन्दी से मानी है। इससे 'मराठी' भाषा पर शौरसेनी प्राकृत का प्रभाव दीखता है। साथ ही यह तो कोई भी नहीं कह सकता कि मराठी का जन्म महाराष्ट्री प्राकृत से हुआ। मराठी भाषा के अनेक रूप शौरसेनी और मागधी प्राकृतों से भी मिलते-जुलते हैं। इस प्रकार यह मत निराधार नहीं हैं कि महाराष्ट्री प्राकृत मध्यदेश की ही भाषा थी और शौरसेनी प्राकृत के विकास की आगे की स्थिति थी। अतः महाराष्ट्री प्राकृत, शौरसेनी प्राकृत तथा शौरसेनी अपभ्रंश के बीच की एक कड़ी है। इस प्रकार 'आर्यदेश' में सदैव ही मध्यदेश की भाषा प्रधान रही। ईसा से पूर्व पालि सर्वमान्य भाषा बनी। ईसा की आरम्भिक शताब्दियों में शौरसेनी और महाराष्ट्री प्रमुख हुईं तथा लगभग १००० ई० या १२०० ई० तक 'अपभ्रंश' उत्तरापथ की भाषा बनी रही।

मध्यदेश की संस्कृत से अत्यधिक प्रभावित शौरसेनी प्राकृत सर्वप्रमुख थी। यही ब्रजभाषा तथा हिन्दी के क्षेत्र की प्राकृत थी। इसी से हिन्दी-क्षेत्र की बोलियों का विकास हुआ। मथुरा के आसपास का प्रदेश शौरसेनी प्रदेश कहा जाता था। यहाँ की प्राकृत का भी यही नाम हुआ। संस्कृत के प्राचीन नाटकों में इसी प्राकृत का प्रयोग मिलता है। अन्य नाटकों में तो इसका प्रयोग स्त्री, विदूषक तथा परि-चारक ही करते हैं, पर 'कर्पूरमंजरी' में इसका प्रयोग राजा भी करता है। यह संस्कृत के सबसे अधिक समीप है, अतः इसे संस्कृत और हिन्दी (पश्चिमी-हिन्दी) के बीच की स्थिति का प्रतिनिधि कहा जा सकता है।

शौरसेनी प्राकृत

शौरसेनी प्राकृत की संक्षिप्त रूपरेखा यहाँ दे देना असङ्गत न होगा। संस्कृत

---

१. महाराष्ट्री, ए लैटर फेज आफ शौरसेनी, पृ० ८६ २. इण्डो आर्यन एण्ड हिन्दी, पृ० १६२

नाटकों में स्त्री-पात्रों तथा मध्यकोटि के पुरुष-पात्रों द्वारा शौरसेनी प्राकृत का प्रयोग किया जाता था। वररुचि ने अपने प्राकृत-प्रकाश में शौरसेनी प्राकृत की मुख्य विशेषताओं का उल्लेख किया है। इस प्राकृत ने अनेक प्राकृतों को प्रभावित किया। पैशाची भी इस पर आधारित रही।[१] मागधी की प्रकृति भी शौरसेनी के तत्त्वों से निर्मित थी।[२] हेमचन्द्र भी अनेक प्राकृतों का आधार शौरसेनी प्राकृत को ही मानता है।[३] शौरसेनी प्राकृत का विस्तार यदि नाम के आधार पर देखा जाए तो शूरसेन-प्रदेश में इस भाषा के प्रचलन का अनुमान लगाया जा सकता है। पर यह समस्त मध्यदेश में प्रचलित थी। गङ्गा-यमुना की घाटी इसका प्रमुख विस्तार-क्षेत्र था।[४] शौरसेनी प्राकृत का आधार महाराष्ट्री प्राकृत मानी गई है।[५] किन्तु अनेक आधुनिक विद्वानों ने महाराष्ट्री को शौरसेनी प्राकृत का परवर्ती रूप माना है। इस सम्बन्ध में ऊपर पर्याप्त विचार हो चुका है। अतः प्राकृत-वैयाकरणों ने शौरसेनी की उन विशेषताओं को ही दिया है जो महाराष्ट्री से भिन्न थीं। वररुचि ने शौरसेनी का आधार संस्कृत माना है।

प्रकृतिः संस्कृतम्[६]

इस सूत्र का यह तात्पर्य दीखता है कि अन्य प्राकृतों की अपेक्षा शौरसेनी प्राकृत संस्कृत से अधिक सम्पृक्त और सम्बन्धित रही। इसकी ध्वनि-सम्बन्धी विशेषताएँ वररुचि ने अपने 'प्राकृत-प्रकाश' में इस प्रकार दी है—

१. दो स्वरों के बीच में स्थित संस्कृत के त् और थ् का क्रमशः द् और ध् हो जाता है[७]—

गच्छति = गच्छदि
यथा = जधा

दो स्वरों के बीच में स्थित द् और ध् वैसे ही रहते हैं—

जलदः = जलदो
क्रोधः = क्रोधो

---

१. वररुचि, प्रा० प्र० १०।२ २. प्रकृतिः शौरसेनी, वही ११।२ ३. सिद्ध हेमचन्द्र, शब्दानुशासन, ४।४४६ ४. दिनेशचन्द्र सरकार, ग्रामर आफ दि प्राकृत लैंग्वेज, पृ० १०१ ५. प्रा० प्र०, ११९१ ६. वही, १२।२ ७. प्रा० ०, १२।३

२. व्यापृत शब्द में त् के स्थान पर ड हो जाता है[1] —

व्यापृत = वावुडो

पुत्र शब्द में प्रयुक्त त् का भी कभी-कभी ड हो जाता है[2] —

पुत्रः = पुड्डो

३. गृध्र—जैसे शब्द में ऋ के स्थान पर इ हो जाती है[3] —

गृध्र = गिद्ध

आज भी ब्रज की बोली में गिद्ध शब्द ही प्रचलित मिलता है।

४. ण्य, ज्ञ तथा न्य के स्थान पर कभी-कभी ञ्ञ हो जाता है[4]—

ब्रह्मण्यं	=	बम्हञ्ञो	(बम्हण्णं भी)
विज्ञ	=	विञ्ञो	(विण्णो भी)
यज्ञ	=	जञ्ञो	(जण्णो भी)
कन्यका	=	कञ्ञका	(कण्णका भी)

'सर्वज्ञ' के 'ज्ञ' और इङ्गित के 'ङ' के स्थान पर 'ण' आ जाता है[5] —

सर्वज्ञ = सव्वणो
इङ्गित = इण्णिदो

'त्वा' स्थान पर 'अ' आ जाता है[6] —

कृत्वा = करिअ

ब्रज की बोली में आज केवल 'करि' अवशिष्ट है। शौरसेनी प्राकृत की ये कतिपय ध्वन्यात्मक विशेषताएँ हैं। शौरसेनी प्राकृत पर हेमचन्द्र ने भी पर्याप्त विचार

---

१. 'व्यापृते डः' (प्रा० प्र०, १२।४) २. 'पुत्रेऽपि क्वचित्' (प्रा० प्र० १२।५) ब्रजभाषा में भैंस के बच्चे को पड्डा कहा जाता है। ३. 'इ गृध्र-समेषु' (१२।६) ४. 'ब्रह्मण्य, विज्ञ, यज्ञ, कन्यकानां ण्य-स- न्यानां वा' (१२।७) ५. 'सर्वज्ञेङ्गित योर्णः' (प्रा० प्र०, १२।८) ६. प्रा० प्र०, १२।९ प्राकृतानुशासन में श्रीपुरुषोत्तमदेव ने 'कदुअ' रूप दिया है (१९।३९)।

किया है।[१] पुरुषोत्तमदेव ने अपने प्राकृतानुशासन[२] में इसकी विशेषताएँ लिखी हैं। उन्होंने शौरसेनी का सम्बन्ध कुछ अन्य भाषाओं से भी माना है। पैशाची भाषा की सामान्य विशेषताओं का उल्लेख करके 'शेषे शौरसेनी' लिखा है।[३] अवन्ती भाषा में महाराष्ट्री और शौरसेनी दोनों तत्त्वों का समावेश माना है[४] मागधी को भी शौरसेनी पर आधारित माना है।[५] टक्कदेशीय विभाषा भी शौरसेनी और संस्कृत से सम्बन्धित मानी है।[६] कैकय पैशाचिका संस्कृत और शौरसेनी की विकृति के रूप में मानी गयी है।[७] पैशाचिका का एक भेद ही शौरसेनी पैशाचिका माना है। इस प्रकार शौरसेनी प्राकृत के मध्य की स्थिति उसके प्रभाव का विस्तार पूर्व और पश्चिम की ओर करती रही। कहीं उसका प्रभाव संस्कृत के साथ होकर पहुँचा, कहीं स्वतन्त्र रूप से और कहीं महाराष्ट्री के साथ हो कर। शौरसेनी का प्रभावक्षेत्र अत्यन्त विस्तृत रहा। पुरुषोत्तमदेव ने शौरसेनी प्राकृत की ध्वनि-सम्बन्धी विशेषताओं पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। संक्षेप में उनको दिया जाता है—

थ——ध[८]

प——ब[९]

फ——भ[१०]

द, ध, ब और य में कोई परिवर्तन नहीं होता। वे जैसे संस्कृत में रहते हैं, वैसे ही शौरसेनी प्राकृत में रहते हैं।[११] 'मदनिका' आदि शब्दों को छोड़कर क में कोई परिवर्तन नहीं होता।[१२] 'आर्य' शब्द में-'र्य' का ज्ज में परिवर्तन नहीं होता, उसका य्य हो जाता है।[१३] क्षेत्र आदि शब्दों में क्ष का परिवर्तन ख में हो जाता है।[१४] ब्रजभाषा में क्ष का परिवर्तन कभी छ में और कभी ख में होता है।

क्षीर—खीर; क्षत्री—छत्री

'दश' और 'चतुर्दश' शब्द में, ऐच्छिक रूप से 'श' का 'ह' हो जाता है।[१५] ब्रज

---

१. हेमचन्द्र, ४।२६०-८६ २. वही, अध्याय ९ ३. प्राकृतानुशासन, १०।१४ ४. 'महाराष्ट्री शौरसेन्योरैक्यम्'' वही, ११।१ ५. 'शौरसेनीत—— ायः' (वही, १२।१) ६. 'सस्कृत शौरसेन्यो' (१६।१) ७. 'संस्कृत शौरसेन्योर्विकृतिः (प्राकृतानुशासन, १९।३) ८. 'थस्य घः' (प्राकृतानुशासन, १९।९०) ९. 'पस्य बः' (वही, १९, ११) १०. 'फस्य भः' (वही, १९, १२) ११. 'दधवयाः प्रकृतयः' (वही, १९।१४)१२. 'ककारः प्रकृत्यामदनिकादेः' (वही, १९।१७) १३. वही, १९।२० १४. वही, १९।२१ १५. 'दश-चतुर्दश्योः शस्य हो वा' (वही, १९।२२)

की भाषा में आज यह प्रवृत्ति नहीं मिलती है। 'स्त्री' का 'इत्थी' हो जाता है ।[१] 'एवस्य' का 'य्येव' हो जाता है ।[२] 'इव' का 'विअ' हो जाता है ।[३] 'आश्चर्य' का 'अच्छरिअ' हो जाता है ।[४] 'शत्रुघ्न' 'सत्तुद्ध' में परिवर्तित हो जाता है ।[५] 'तावक' और 'मामक' शब्द क्रमशः 'तुहकेर' और 'महकेर' हो जाते हैं ।[६] व्याकरण के सम्बन्ध में श्री पुरुषोत्तमदेव ने कहा है कि सन्धि-विधान संस्कृत-जैसा है। इस प्रकार ध्वनि-सम्बन्धी नियम देने के पश्चात् व्याकरण-नियम दिए गए हैं। श्री पुरुषोत्तमदेव ने शौरसेनी प्राकृत पर सबसे अधिक लिखा है।

०.५.३. अपभ्रंश-युग

वैयाकरणों ने अपभ्रंश की भी चर्चा की है। भाषा-विज्ञान की दृष्टि से यह प्राकृत से आगे की स्थिति का प्रतिनिधित्व करती है। यह आधुनिक भाषाओं तथा प्राकृतों के बीच की विकास-कड़ी है। विशेषतः पुरानी हिन्दी, ब्रजभाषा और गुजराती से तो उसकी बहुत ही समानता है।

अपभ्रंश का व्याकरण हेमचन्द्र, त्रिविक्रम और क्रमदीश्वर ने लिखा है। वररुचि ने अपनी रचना में अपभ्रंश की चर्चा भी नहीं की है। किन्तु यह प्रायः सिद्ध है कि अपभ्रंश का अपना साहित्य भी था। हेमचन्द्र ने व्याकरण के नियमों के उदाहरण-स्वरूप अनेक पद्यों को उद्धृत किया है। 'विक्रमोर्वशीय' नाटक के चतुर्थ अङ्क में राजा की विक्षिप्तावस्था में जो वाक्य निकलते हैं, वे अपभ्रंश में ही हैं। हेमचन्द्र ने जो उदाहरण दिए हैं वे प्रायः उसी छन्द में हैं जो पुरानी हिन्दी अथवा ब्रजभाषा में मिलते हैं। सबसे अधिक लोकप्रिय छन्द दोहा-चौपाई है। ब्रजलाल जी द्वारा खोजे हुए ग्रन्थों[७] की भाषा हेमचन्द्र की दी हुई अपभ्रंश से पीछे की लगती है। इसके साहित्य पर दृष्टिपात किया जाय तो ज्ञात होगा कि वररुचि ने अपने 'प्राकृत-प्रकाश' में अपभ्रंश की चर्चा भी नहीं की है। चण्डकृत 'प्राकृत-लक्षण' में अपभ्रंश के स्वरूप का दर्शन होता है। उसमें अन्य प्राकृतों से अपभ्रंश की यह विशेषता बताई गई है कि उसमें अधोरेफ का लोप नहीं होता। इसके पश्चात् हेमचन्द्र ने तो इसका स्वरूप

---

१. वही, १९।२७ २. वही, १९।२८ ३. वही, १९।२९ ४. "दश-चतुर्दश्योः शस्य हो वर" १९।३० ५. वही, १९।३१ ६. 'तावक मामकादेः' (वही, १९।३२) ७. पं० ब्रजलाल मुंजरास की कृति का उल्लेख करते , जो अपभ्रंश में लिखी है और जिसका दूसरा नायक प्रसेनजित नाम का राजा है, किन्तु उसकी भाषा हेमचन्द्र की भाषा से अधिक आधुनिक प्रतीत होती है। दे० आर० जी० भण्डारकर, कलेक्टेड वर्क्स, जिल्द ४, पृ० ३६३।

विस्तार से बताया है किन्तु अपभ्रंश के भेदों का इसमें उल्लेख नहीं है। इसमें दिए हुए उदाहरणों में एक विशेषता हमारा ध्यान आकर्षित करती है कि कुछ शब्दों में 'ऋ' स्वर पाया जाता है।[१] 'र' का लोप तो केवल विकल्प से होता है।[२] हेमचन्द्र के व्याकरण की दूसरी प्रवृत्ति पद के आदि में असंयुक्त क, ख, त, थ, प और फ के स्थान पर क्रमशः ग, घ, द, ध, ब और भ का आदेश हो जाता है।[३] हेमचन्द्र के पश्चात् के वैयाकरण—क्रमदीश्वर, मार्कण्डेय और रामतर्कवागीश अपभ्रंश के तीन भेद बताते हैं—ब्राचड, नागर और उपनागर। 'स्वयंभू' के 'हरिवंश पुराण' में ढक्की भाषा में विरचित एक 'कडवक' मिलता है।[४] यह भाषा—पञ्जाब के 'ढक्क' देश की प्रतीत होती है, क्योंकि इसमें मागधी के लक्षण दिखाई नहीं देते।[५] इस 'ढक्की' भाषा की एक धारा सिंध की ओर तथा दूसरी गुजरात की ओर प्रवाहित हुई। वहाँ अहमदाबाद के 'नगर' प्रदेश में प्रतिष्ठित होने के कारण उनका नाम 'नागरी' हुआ। सम्भवतः आभीरों के साथ यह प्रवृत्ति गुजरात में आई। इसी से नमिसाधु ने इसे ही आभीरी कहा होगा।[६] इसमें परुष वर्णों को मृदुल बनाया गया। इसी से इस भाषा ने साहित्यिक क्षेत्र में स्थान प्राप्त किया। ब्राचड 'ग्राम्य' कहलाई। गुजरात से सिंध तक इसका मिश्रण पाया गया; मिश्रण 'उपनागर' बनी। विभिन्न प्रदेशों की अपभ्रंशों में भिन्नता रही होगी, पर धारा का प्रवाह आन्तरिक रूप से समान था, अतः सभी अपभ्रंश कहलाईं। अनेक प्राचीन लेखों से अपभ्रंश और देशी समानार्थक प्रतीत होते हैं। उसको राहुलजी ने भी स्वीकार किया है।[७]

अपभ्रंश भाषा का विस्तार बहुत अधिक था। वह अपने युग की एक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक भाषा बनी। उत्तरीभारत के राजपूतों के दरबारों में तुर्कराज्य स्थापित होने से पूर्व उसका चलन था। यही वह भाषा थी जो बंगाल से महाराष्ट्र तक चलती थी। बंगाल तथा उत्तरी भारत के प्रायः सभी प्रदेशों के कवियों द्वारा यह ग्रहण की गई।[८] महापण्डित राहुल सांकृत्यायन इसकी पुष्टि करते हुए कहते हैं—"जहाँ सरहपा और शबरपा विहार-बंगाल के निवासी थे, वहाँ अब्दुर्रहमान का जन्म मुल्तान में हुआ था। स्वयंभू और कनकाभर शायद अवधी और बुन्देली

---

१. प्राकृत व्याकरण, ८, ४, ३९३ २. वही ३. वही ४. अपभ्रंश पाठावली (अहमदाबाद, १९३४ ई०) उद्धरण ४, ११ ५. हीरालाल जैन, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५०, सं० २००२, अङ्क ३-४, पृ० १०३ ६. वही, पृ० १०३ ७. हिन्दी काव्यधारा, भूमिका, पृ० ३ ८. डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी, इण्डोआर्यन ऐण्ड हिन्दी, पृ० १६४

क्षेत्रयुक्त प्रान्त के थे, तो हेमचन्द्र और सोमप्रभ गुजरात के। और रसिक तथा आश्रयदाता होने के कारण मान्यखेट (मालखेड, निजाम हैदराबाद) का भी इस साहित्य के सृजन में हाथ रहा है। इस प्रकार हिमालय से गोदावरी और सिंध से ब्रह्मपुत्र तक ने इस साहित्य (अपभ्रंश) के निर्माण में हाथ बटाया है।[१]"

किन्तु यह साहित्यिक भाषा बोलचाल की बोलियों का ही सामान्य परिष्कृत रूप था। इन बोलचाल की भाषाओं की एक सूची 'प्राकृत-चन्द्रिका' में दी हुई है—व्राचडी, कैकेयी, लाटी, गौड़ी, वैदर्भी, औड्री (उड़िया), नागरी, सैंहली, बर्बरी, गुर्जरी, आवन्ती (मालवी), आभीरी, पांचाली, मध्यप्रदेशी, टक्की आदि। मार्कण्डेय के 'प्राकृत-सर्वस्व' की प्रमुख अपभ्रंश ये हैं—पांचाली (कनौज-बरेली), सैंहली, वैदर्भी (बरारी), आभीरी, लाटी (दक्षिण गुजराती), मध्यदेशीय, औड्री, गुर्जरी, कैकेयी, पाश्चात्या (पछैयां), गौड़ी।

शौरसेनी अपभ्रंश

आजकल विद्वान् लोग यह कल्पना करते हैं कि प्रत्येक प्राकृत की एक अपभ्रंश भी थी। इस प्रकार शौरसेनी प्राकृत से सम्बन्धित शौरसेनी अपभ्रंश होगी। पर व्याकरण के प्राचीन ग्रन्थों में इस प्रकार से विभाजन उपलब्ध नहीं होता। रुद्रट के अनुसार देश-भेद से बनने वाली अपभ्रंशों की बात अवश्य कही गई है।[२] शारदातनय (१३वीं शती) ने अपभ्रंश के तीन भेद किए हैं—नागरक, ग्राम्य और उपनागरक।[३] पुरुषोत्तमदेव के अनुसार भी अपभ्रंश के तीन भेद हैं—नागरक, व्राचड और उपनागरक। इनमें नागरक को मुख्य माना गया है। मार्कण्डेय (१७वीं शती) ने भी इसी प्रकार विभाजन किया है (प्राकृत सर्वस्व)। इस प्रकार वैयाकरणों ने अपभ्रंशों का देशगत विभाजन नहीं किया। अपभ्रंश साहित्य का विभाजन तीन वर्गों में किया गया है—[४]

१. पश्चिमी अपभ्रंश।
२. दक्षिणी अपभ्रंश।
३. पूर्वी अपभ्रंश।

---

१. हिन्दी काव्यधारा, भूमिका, पृ० ५-६
२. "षष्ठोऽत्र भूरिभेदा देशविशेषादपभ्रंशः"—काव्यालङ्कार २।१२
३. एता नागरकग्राम्योपनागरकभेदतः।
त्रिधा भवेयुरेतासां व्यवहारो विशेषतः॥—भावप्रकाश, पृ० २१०
४. हिस्टारिकल ग्रामर आफ अपभ्रंश, पृ० १५

पश्चिमी अपभ्रंश का क्षेत्र लगभग वही माना गया है जिसे ग्रियर्सन ने शौरसेन-प्रदेश माना है। इस क्षेत्र में गुजरात, राजस्थान और हिन्दी प्रान्त आते हैं। पश्चिमी अपभ्रंश इस प्रकार ब्रज प्रदेश से सम्बन्धित हुई। इसको सुविधा की दृष्टि से 'शौरसेनी अपभ्रंश' कहा जा सकता है। इसमें निम्नलिखित साहित्य उपलब्ध होता है—

१. कालिदास—विक्रमोर्वशीय के पद्य।
२. जोइन्द्र—परमात्म-प्रकाश और योगसार।
३. देवसेन—सावयधम्म दोहा।
४. रामसिंह—पाहुड दोहा।
५. धनंजय—दशरूपक में कुछ पद्य।
६. धनपाल—भविसदत्तकहा।
७. भोज—सरस्वतीकंठाभरण के कुछ पद्य।
८. जिनदत्त—उपदेशतरंगिणी, अपभ्रंश काव्यत्रयी।
९. लक्ष्मणगणि—सुपासणाह चरिअ।
१०. हरिभद्र—सनत्कुमार चरित।
११. हेमचन्द्र—सिद्धहेम, हरिवंश पुराण।
१२. सोमप्रभ—कुमारपाल प्रतिबोध।

शौरसेनी अपभ्रंश को भी साहित्य के क्षेत्र में वही प्रतिष्ठा प्राप्त हुई जो कभी शौरसेनी प्राकृत को प्राप्त थी। शौरसेनी अपभ्रंश या पश्चिमी अपभ्रंश की ध्वनि और व्याकरण की समस्त विशेषताओं को यहाँ नहीं दिया जा सकता। सामान्य विशेषताओं का उल्लेख ऊपर हो चुका है।

इन समस्त प्रान्तीय भाषाओं में शौरसेनी या मध्यदेशीय अपभ्रंश प्रमुख हुई। इस अपभ्रंश का स्थान सर्वोच्च था। नागर अपभ्रंश को शिष्ट, प्रचलित तथा महत्त्वपूर्ण अपभ्रंश माना गया। डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी के मतानुसार यह शौरसेनी अपभ्रंश के अतिरिक्त कुछ नहीं थी—"लगभग ८०० ई० से शुरू होकर १२००-१३०० तक शौरसेनी अपभ्रंश भाषा, जो 'नागर अपभ्रंश' भी कहलाने लगी, उत्तरभारत में एक विराट् साहित्यिक भाषा के रूप में विराजती थी। संस्कृत के बाद इस शौरसेनी अपभ्रंश ही का स्थान उस समय था। विभिन्न प्रान्तीय अपभ्रंश भाषाएँ थीं तो सही, पर उनमें साहित्य-सर्जना मानो नहीं के बराबर ही थी। चार-छह सौ वर्षों तक सिंध प्रदेश से पूर्वी बंगाल तक, कश्मीर, नैपाल, मिथिला से लेकर महाराष्ट्र और उड़ीसा तक तमाम आर्यावर्ती देश इस शौरसेनी या नागर अपभ्रंश साहित्यिक-भाषा का क्षेत्र बन गया था। राजपूत राजाओं का प्रभाव

इसका एक कारण हो सकता है। पर मेरी राय में इससे उत्तर भारत का एक साधारण भाषा-साम्य या भाषा-विषयक सहज-बोधता भी प्रमाणित होती है। पछाँह-खण्ड में, जो कि शुद्ध हिन्दी का अपना देश है, और मालव, राजस्थान तथा गुजरात में तो शौरसेनी अपभ्रंश की निजी भूमि ही थी।—यह सच है कि शौरसेनी अपभ्रंश उन दिनों की आन्तर-प्रादेशिक भाषा ही थी और आजकल की ब्रजभाषा, खड़ीबोली आदि विभिन्न प्रकार की हिन्दी का उद्भव इस शौरसेनी अपभ्रंश से ही हुआ है।"[१] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी यही बात प्रतिपादित की है।[२] हेमचन्द्र ने जिस अपभ्रंश का उल्लेख अपने व्याकरण में किया है वह पछाँही भाषा है, जिसका व्यवहार ब्रज-मण्डल से लेकर राजपूताना और गुजरात तक था। इस बात को उन्होंने 'शेषं शौरसेनीवत्' कह कर स्पष्ट किया है। अपभ्रंश के जो दोहे उन्होंने दिए हैं वे पछाँही भाषा के हैं। 'प्रबन्ध चिन्तामणि' और 'कुमारपाल-प्रतिबोध' आदि ग्रन्थों में जो पद्य हैं, उनका ढाँचा पश्चिमी हिन्दी का है। इन उदाहरणों में ब्रजभाषा के अनेक नियमों और रूपों का बीज मिल जाता है।

छन्दस् से पालि और पालि से प्राकृतों के विकास में केवल कुछ क्लिष्ट उच्चारणों को सरल किया गया। व्याकरण के वृहत् कलेवर को भी छोटा किया गया और द्विवचन आदि कुछ प्रयोगों को समाप्त कर दिया गया। प्राकृतों में यह अन्तर और अधिक हो गया। सुबन्त, तिङन्त या शब्दरूप और धातुरूप की शैली में कोई मौलिक अन्तर नहीं आया। किन्तु अपभ्रंश ने उस धारा को एक बहुत बड़ा मोड़ दिया। भाषा के ढाँचे में ही परिवर्तन हो गया। अपभ्रंश नवीन सुबन्त तथा तिङन्तों की धारा संस्कृत पालि और प्राकृत की मूलधारा से भिन्न हो गई और वह हिन्दी के अधिक समीप आ गई। इसको 'प्राचीनतम हिन्दी' नाम दिया जा सकता है। ब्रजभाषा के जन्म की स्थिति यहीं से आरम्भ होती है।

सरलता के साथ-साथ अपभ्रंश में मृदुलता और माधुर्य भी लाने का प्रयत्न प्रबल हो उठा। माधुर्य शौरसेनी अपभ्रंश में बस गया और लालित्य उसके पूर्वी रूप में। अपभ्रंश का स्वरूप संक्षेप में श्री हीरालाल जैन ने दिया है। उसको ज्यों का त्यों यहाँ दिया जाता है[३]—

१. स्वरों में ऐ और औ का सर्वथा और ऋ का प्रायः अभाव एवं स्वरों में परस्पर अनियमित व्यत्यय।

२. मध्यवर्ती अल्पप्राण व्यञ्जनों का प्रायः लोप और केवल उनके संयोगी

---

१. पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ७९ २. बुद्धचरित की भूमिका, पृ० १०२
३. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५०, अङ्क ३-४, पृ० १०३-४

स्वरों का कहीं-कहीं 'य' अथवा 'व' श्रुति के साथ या बिना इनके भी उच्चारण तथा महाप्राण व्यञ्जनों के स्थान पर 'ह्' का आदेश।

३. कारक विभक्तियों की कमी।

४. सर्वनामों में विशेष उल्लेखनीय हैं—उत्तम पुरुष एकवचन का 'हउ' और मध्यम पुरुष तृतीया का 'पइ'।

५. क्रियापदों में उल्लेखनीय हैं—उत्तम पुरुष एकवचन की विभक्ति 'उ' तथा अन्य पुरुष एकवचन की विभक्ति 'इ'। विभक्ति से पूर्व क्रिया को अकारान्त बना लेने की प्रवृत्ति।

६. कृदन्त भूतकालिक अव्यय की विभक्तियाँ 'इय', 'इवि', 'एवि', 'एविणु', 'एफिणु' और 'ऊण' हैं।

७. स्वार्थक और विशेषणात्मक प्रत्यय अल्ल, इल्ल, एल्ल, आल, इर, य (क) ड आदि का प्रयोग।

८. ध्वनिसूचक नाना शब्दों का प्रयोग।

इस स्वरूप के देखने से स्पष्ट हो जाता है कि अपभ्रंश का ढाँचा अत्यधिक परिवर्तित हो गया था। इसमें वे तत्त्व विकसित हो गए थे जो आगे की भाषाओं में विकसित हुए। शौरसेनी अपभ्रंश से हिन्दी के प्रायः समस्त रूपों और विशेषतः ब्रजभाषा का जन्म हुआ।

०.५.४. आधुनिक भाषाएँ

इन प्रादेशिक अपभ्रंशों में से होकर आधुनिक भाषाओं के रूप खड़े होने लगे। यद्यपि अपभ्रंश से आधुनिक आर्य भाषाएँ विकसित हुईं फिर भी बहुत समय तक अपभ्रंश की परम्परा बनी रही। आगे चल कर इस अपभ्रंश की परम्परा के दो रूप मिलते हैं—या तो शुद्ध अपभ्रंश के रूप में या उसका वर्ण-विज्ञान, शब्दकोश तथा उसकी प्रवृत्तियाँ आधुनिक आर्यभाषाओं पर छाए रहे। अतः हम आधुनिक आर्य-भाषाओं के आदि रूप को अर्द्ध-अपभ्रंश का नाम भी दे सकते हैं। पृथ्वीराज-रासो की भाषा अर्द्ध-अपभ्रंश ही कही जा सकती है। पूर्वी भागों में इसी को अवहट्ट नाम दिया जाने लगा था। १५वीं शती के 'प्राकृत-पैंगल' की रचना अपभ्रंश की परम्परा के जीवित रहने की सूचना देती है। यह अपभ्रंश उसी क्षेत्र की भाषा थी जिस क्षेत्र में पालि और शौरसेनी प्राकृत तथा आधुनिक हिन्दी प्रचलित है।

राहुल सांकृत्यायन ने ७६०-११०० ई० के मध्यकालीन युग के कवियों का संग्रह प्रकाशित किया है।[१] उसकी भूमिका के आरम्भ में वे कहते हैं—"हमारे इस युग की

---

१. हिन्दी काव्यधारा

भाषा और आज की भाषा में काफी अन्तर है—तो भी हम बतलायेंगे कि मूलतः वह भाषा और आज की भाषा एक है।"[१] उसी संग्रह की भाषा-विषयक प्रस्तावना का उपसंहार करते हुए वे कहते हैं—"अपभ्रंश के कवियों को विस्मरण करना हमारे लिए हानि की वस्तु है। वही कवि हिन्दी काव्यधारा के प्रथम स्रष्टा थे।"[२] पुरानी अपभ्रंश, संस्कृत और प्राकृत से मिलती है और पिछली पुरानी हिन्दी से।[३] कुछ उदाहरण गुलेरी जी ने ऐसे दिए हैं जिन्हें अपभ्रंश भी कह सकते हैं।[४]

अपने 'पुरानी हिन्दी' नामक लेख में स्व० गुलेरी जी ने लिखा है—"पुरानी गुजराती, पुरानी राजस्थानी, पुरानी पश्चिमी राजस्थानी आदि नाम कृत्रिम हैं और वर्तमान भेद को पीछे की ओर ढकेल कर बनाए गए हैं—कविता की भाषा प्रायः सब जगह एक-सी ही थी, जैसे नानक से लेकर दक्षिण के हरिदासों तक की कविता ब्रजभाषा कहलाती थी, वैसे अपभ्रंश को पुरानी हिन्दी कहना अनुचित नहीं, चाहे कवि के देशकाल के अनुसार उसमें कुछ रचना प्रादेशिक हो।[५]" ग्राउज महोदय ने जहाँ भाषा-क्रम दिया है, वहाँ अपभ्रंश का उल्लेख न करके उसके स्थान पर ब्रजभाषा को ही बताया है।[६] इस प्रकार अपभ्रंश और आधुनिक आर्य-भाषाओं के बीच कोई सुस्पष्ट विभाजक-रेखा नहीं खींची जा सकती। राहुलजी के अनुसार यह युग ७६० ई० से ११०० ई० तक था, जिस युग की रचनाओं को आदि हिन्दी की रचनाएँ कहा जा सकता है। वुल्नर के अनुसार इस प्रकार की भाषा का युग १२वीं शताब्दी के हेमचन्द्र के व्याकरण में उल्लिखित अपभ्रंश तथा प्राचीन हिन्दी के आदि काव्य की भाषा के मध्य में है।[७] उनके अनुसार पृथ्वीराज रासो हिन्दी का आदि ग्रन्थ है (लगभग १२वीं शती)। वस्तुतः यह युग राहुलजी द्वारा निर्धारित युग के आगे का युग है।

ब्रजभाषा—विविध नाम

ब्रजभाषा कई नामों से जानी जाती है। यह कभी 'भाषा' नाम से ही अभिहित रही, कभी 'मध्यदेशी' इसका नाम रहा। 'अन्तर्वेदी' संज्ञा भी इसको दी गई।

---

१. वही, भूमिका, पृ० ३ २. हिन्दी काव्यधारा, पृ० १२ ३. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, निबन्ध रत्नावली, बा० श्यामसुन्दरदास द्वारा सम्पादित, पृ० २६१ ४. वही ५. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, निबन्ध रत्नावली, बा० श्यामसुन्दरदास द्वारा सम्पादित, पृ० २६१ ६. दि नान आर्यन एलीमेण्ट इन हिन्दी स्पीच, इण्डियन एण्टीक्वेरी, जिल्द १, सन् १८१२ ई०, पृ० १०३ ७. इण्ट्रोडक्शन टु प्राकृत, पृ० २

'ग्वालेरी' भाषा तो बहुत प्रसिद्ध रही। राजस्थान में इसका 'पिंगल' नाम रहा। ब्रजभाषा नाम तो है ही। इन नामों के सम्बन्ध के उल्लेखों पर एक दृष्टि डाल लेना उपयुक्त होगा।

भाषा (भाखा)

जिस समय अपभ्रंश वर्तमान भाषाओं का रूप धारण कर रही थी उस समय न सभी रूपों को भाषा कहा जाने लगा। रूढ़ रूप में संस्कृतेतर भाषाएँ 'भाखा' कहलाने लगीं। महाकवि चन्दबरदाई ने अपनी भाषा के सम्बन्ध में लिखा है—

"षट भाषा पुरानं च कुरानं च कथितं मया।"

इसमें षट् भाषा शब्द महत्व का है। यहाँ भाषा रूढ़ अर्थ में नहीं, व्यापक अर्थ में ही है।[१] तुलसी ने अपनी भाषा को 'भाखा' लिखा है।[२] नन्ददास जी भी 'भाखा' शब्द का प्रयोग करते हैं।[३] केशवदास जी को भी विवश होकर 'भाखा' का कवि होना पड़ा।[४] 'कृष्ण-रुक्मिणी री बेलि' के रचयिता भी 'भाखा' में लिखते हैं।[५] कुलपति मिश्र संस्कृत के समकक्ष भाषा को रखते हैं।[६] इस प्रकार 'भाखा' शब्द

---

१. भिखारीदास जी ने इस षट्भाषा का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है—

ब्रजमागधी मिलै अमर नाग यमन भाखानि।
सहज पारसी हू मिलै षट्विधि कहत बखानि।।

इस दोहे में 'अमर' से संस्कृत का भी बोध होता है। रूढ़ अर्थ में 'भाषा' में संस्कृत नहीं आती। मिश्रित भाषा को स्पष्ट करने वाला एक और दोहा पं. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी ने उद्धृत किया है—(दे० 'भारती', जून, १९५४, पृ० ७)।

अन्तर्वेदी नागरी, गौड़ी पारस देस।
अरु जामें अरबी मिलै, मिश्रित भाषा भेस।।

२. भाखा बद्ध करब मैं सोई।—रामचरितमानस

३. ताही ते यह कथा जथामति भाखा कीनी।

४. भाषाकवि भो मन्दमति तिहि कुल केसोदास।—कविप्रिया

५. भाखा संस्कृत प्राकृत भणंतां, मूझ भारती ए मरय।
चारण भाट सुकवि भाखा चित्र, करि एकठा तो अरथ कहि।

६. जिती देवबानी प्रगट, है कविता की घात।
तें भाषा में होय तो, सब समझें रस बात।।—रसरहस्य

किसी प्रदेश से बँध कर नहीं रहा। मिरजाखाँ ने भाखा शब्द का स्पष्टीकरण किया है। वह इस प्रकार है—संस्कृत और प्राकृत को छोड़ कर सभी बोलियाँ 'भाखा' कहलाती हैं।[1] साथ ही वह यह कहता है कि खास तौर से 'भाखा' का सम्बन्ध ब्रज से ही है।[2] लल्लूलाल जी ने अपनी 'ब्रजभाषा व्याकरण' (अंग्रेज़ी) में[3] 'भाखा' का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है—"तीसरी नरवाणी या 'भाखा' है। इस भाखा का हम व्याकरण लिख रहे हैं। 'भाखा' संस्कृत शब्द है, जिसका मूल अर्थ सामान्य भाषा से है। किन्तु अब इसका प्रयोग नरबानी या हिन्दुओं की जीवित भाषा से लिया जाता है। खास तौर से यह 'भाखा' ब्रज प्रदेश में बोली जाती है। ब्रज, आगरा और दिल्ली के बीच एक जिला है, जिसमें भरतपुर भी सम्मिलित है।" आगे लल्लूलाल जी कृष्ण कवि का एक दोहा उद्धृत करते हैं, जिसमें भाखा की स्थिति बतलाई गई है—

पौरुष कविता त्रिविध है, कवि सब कहत बखान।
प्रथम देवबानी बहुरि, प्राकृत भाखा जान।।

इस प्रकार रूढ़ अर्थ 'भाखा' शब्द से ब्रजभाषा का बोध होता था। सामान्यत: सभी संस्कृतेतर बोलियों का भी बोध होता था, ('ग्रामर आफ द ब्रजभाषा,' जिया-उद्दीन, पृ० ७)। गार्सा द तासी ने भाषा का प्रयोग किया है (हिंदुई साहित्य का इतिहास, अनु० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ० २)।

पिङ्गल—अर्द्ध अपभ्रंश की स्थिति अपभ्रंश और भाखा के बीच की स्थिति बताती है। इसका रूप पृथ्वीराज रासो तथा राजस्थान के 'पिङ्गल'-साहित्य में मिलता है।[4] गुरु गोविन्दसिंह (सं० १७२३ से ६५) के विचित्र नाटक में यह शब्द मिलता है।[5] इसके पश्चात् इस शब्द का प्रयोग राजस्थान के अनेक चारण कवियों ने किया। बाँकीदास,[6] बुधाजी,[7] सूरजमल,[8] मुरारिदान[9] आदि ने इस शब्द का

---

१. ग्रामर आफ द ब्रजभाषा, जियाउद्दीन, पृ० ७ २. वही। ३. जनरल प्रिंसिपल्स आफ इन्फ्लैक्शन एण्ड कञ्जूगेशन इन द ब्रजभाषा, कलकत्ता, १८११ ४. डा० सुनीतिकुमार चटर्जी, इन्डोएरियन एण्ड हिन्दी, पृ० ९९ ५. दशमग्रन्थ, श्री गुरुमत प्रेस, अमृतसर द्वारा प्रकाशित, पृ० ११७—'भाषा पिङ्गल दी' ६. बाँकीदास ग्रन्थावली, भाग २, पृ० ८१ ७. वही, पृ० २ ८. वंश-भास्कर, प्रथम रश्मि, चतुर्थ मयूख, पृ० ४० ९. डिङ्गल कोष, पृष्ठ १९

प्रयोग किया है। पिङ्गल शब्द का प्रयोग ब्रजभाषा के लिए होता था।[१] डॉ० ग्रियर्सन ने पिङ्गल की उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से बताई है।[२] डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी ने भी यही बात कही है।[३] सूरजमल ने 'पिङ्गल उपनायक गिरा' की स्थिति दिल्ली और ग्वालियर के बीच बताई है।[४]

मध्यदेसी—यह नाम बहुधा नहीं मिलता। बनारसीदास जैन के अर्द्ध-कथानक में यह शब्द प्रयुक्त हुआ है—

मध्य देस की बोली बोलि।
गर्भित बातें कहूँ जो खोलि॥

मध्यदेश का परिचय तो 'कविप्रिया' में महाकवि केशवदास जी ने भी दिया था और वहाँ की भाषा को 'सुभाषा' लिखा है, अर्थात् सुन्दर भाषा।[५] इन पद्यों में भाषा मध्यदेशी नहीं कही गई, केवल मध्यदेश की बोली या भाषा की बात कही गई है।

अन्तर्वेदी—पं० अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी ने एक दोहा उद्‌धृत किया है[६]—

अन्तर्वेदी नागरी, गौड़ी पारस देस।
अरु जामें अरबी मिलै, मिश्रित भाषा भेस॥

---

१. मोतीलाल मेनारिया, राजस्थान का पिङ्गल साहित्य, पृष्ठ १४ २. लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया, भाग प्रथम, पृष्ठ १२६ ३. राजस्थानी भाषा, पृष्ठ ६४

४. पुर दिल्ली औ ग्वालियर, बीच ब्रजादिक देस।
पिंगल उपनायक गिरा, तिनकी कथा बिसेस॥

५. आछे-आछे असन बसन बस पास पसु,
दान सनमान मान वाहन बखानिए।
लोग भोग योग आग बाग राग रूपयुत,
भूषननि भूषित सुभाषा मुख आनिए॥
सातौ पुरी तीरथ सरित सब गंगादिक,
'केशोदास' पूरन पुरान गुन जानिए।
गोपाचल-ऐसे गढ़ राजा मानसिंह जू-से,
देशन की मणि यह मध्यदेश जानिए॥

६. भारती, जून, १९५४, पृ० ७

इसमें 'अन्तर्वेदी' शब्द आया है। डॉ० ग्रियर्सन ने भी लिखा है कि ब्रजभाषा को अन्तर्वेदी भी कहा जाता है।[१] अन्तर्वेद की भाषा इसका अर्थ है। अन्तर्वेद का परिचय उन्होंने इस प्रकार दिया है—यज्ञों की भूमि के अन्तर्गत स्थित पवित्र देश।[२]

ग्वालियरी—श्री अगरचन्द नाहटा ने 'ग्वालियरी हिन्दी का प्राचीनतम ग्रन्थ' नामक एक लेख लिखा है।[३] उनके अनुसार जयकीर्ति ने सं० १६८६ (सन् १६२९) में 'कृष्ण-रुक्मिणी री बेलि' पर टीका लिखी थी। उसने ग्वालेरी भाषा के सम्बन्ध में एक दोहा उद्धृत किया है।[४] जयकीर्ति ने जिस ग्वालेरी भाषा वाली टीका के बारे में कहा है उसका कर्त्ता गोपाल कवि है, जो अपनी पुस्तक में अपनी भाषा को 'ब्रजभाषा' कहता है। अर्थात् ग्वालियरी भाषा और ब्रजभाषा कभी पर्याय थीं।[५] भाषा कई थीं, पर उन सब में 'ग्वालेरी' भाषा 'रससार' मानी जाती थी।[६] राहुल जी के मत से 'ब्रज बुन्देलखण्डी' भाषा ग्वालेरी कही जाने लगी।[७]

प्रारम्भ में 'भाखा' कहलाने वाली भाषा 'ब्रज भाखा' हुई।[८] डॉ० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार 'ब्रजभाषा' शब्द का प्रयोग पहले-पहल भिखारीदास ने किया।[९] पर सं० १६४४ में ही इस शब्द का प्रयोग गोपाल ने अपने 'रसविलास' में इस प्रकार किया है—

> **मरु भाषा निरजल तजी, करि ब्रज भाषा चौज।**
> **अब गोपाल यातैं लहैं, सरस अनोपम मौज॥**[१०]

समरथ कृत 'रसिकप्रिया' की टीका, सं० १७५५ में, भी इस शब्द का प्रयोग हुआ है—

---

१. लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया, जिल्द ९, भाग १, पृ० ६९। २. वही।

३. 'भारती', मार्च १९५५

४. ग्वालेरी भाषा गपिल, मन्द अरथ मतिभाव।
बात बन्य किय भाषवित्, समक्षत हिय समभाव॥

५. राहुल सांकृत्यायन, 'भारती', अगस्त १९५५, पृ० १६७

६. देस-देस तें होत सो, भाषा बहुत प्रकार।
लेखत हैं तिन सबन में, ग्वालियरी रससार॥

लल्लूलाल जी द्वारा 'जनरल प्रिंसिपल्स आफ इनफ्लेक्शन एण्ड कञ्जूगेशन इन द ब्रजभाषा' की भूमिका में उद्धृत।

७. 'भारती', अगस्त १९५५, पृ० १६७ ८. मोतीलाल मेनारिया, राजस्थान का पिङ्गल साहित्य, पृ० १० ९. ब्रजभाषा व्याकरण, भूमिका, पृ० १० १०. अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर की हस्तलिखित प्रति, सं० १७४९, पद्य ४५

सुर भाषा तें अधिक हैं, ब्रज भाषा कौं हेत।
ब्रज भूषन जाकौ सदा, मुख भूषन करि लेत॥[१]

इन्होंने ब्रजभाषा को संस्कृत के समान माना है। घनानन्द ने (सं० १७७१ से ९६) भी इसी शब्द का प्रयोग किया है।[२] कुलपति मिश्र ने भी ब्रजभाषा को संस्कृत के समान ही माना है और उसकी श्रेष्ठ रचना सतसई मानी है—

ब्रज भाषा भावत सकल, सुरवानी समतूल।
ताहि बखानत सकल कवि, जानि महा सरतूल॥
ब्रजभाषा बरनी कविन, बहुविधि बुद्धि विलास।
सबकी भूषन सतसैया, करी बिहारीदास॥[३]

मिरजा खाँ ने इसी 'ब्रजभाखा' के व्याकरण की रचना की है।[४] लल्लूलाल जी ने भी इस ब्रजभाखा का व्याकरण लिखा।[५] भिखारीदास ने अपने काव्य-निर्णय में इस भाषा की व्याख्या की है।[६] ब्रजभाषा शब्द इस प्रकार काफी प्रचलित रहा।

विकास

डॉ० ग्रियर्सन ने ब्रजभाषा का सम्बन्ध शौरसेनी प्राकृत और अपभ्रंश से बताया है।[७] डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी ने ब्रजभाषा की परम्परा इस प्रकार बताई है—"ऐतिहासिक विवेचन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उदीच्य और मध्यदेश, पञ्जाब और पछाँह, विशेषकर के मध्यदेश, में भारतीय आर्य सभ्यता ने अपनी विशेषताएँ प्राप्त कीं और इन प्रान्तों की भाषा युग-युग में सर्वजनगृहीत और सर्वजनसमादृत

---

१. दानसागर भण्डार बीकानेर की हस्तलिखित प्रति, सं० १७९९, पद्य १७
२. नेही महा ब्रजभाषा प्रवीन औ सुन्दरतान के भेद को जानै।
भाषा प्रवीन सुछंद सदा रहै सो घनजू के कबित्त बखानै॥
३. लल्लूलालजी द्वारा 'ब्रजभाषा व्याकरण की भूमिका' में उद्धृत।
४. इसका अनुवाद श्री जियाउद्दीन ने किया है। वह प्रकाशित हो गया है।
५. 'जनरल प्रिंसिपल्स आफ इन्फ्लैक्शन एण्ड कञ्जूगेशन इन द ब्रजभाषा', कलकत्ता, १८११
६. ब्रजभाषा भाषा रुचिर, कहै सुमति सब कोय।
मिलै संस्कृत पारस्यौ, पै अति प्रकट जु होय॥
७. लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया, जिल्द ९, भाग १, पृ० २

हुई—संस्कृत, पालि, शौरसेनी, अपभ्रंश, ब्रजभाषा।"[१] मोतीलाल मेनारिया का मत है, "चौदहवीं शताब्दी में जिस समय राजस्थानी भाषा का उदय हो रहा था लगभग उसी समय शूरसेन देश अथवा ब्रज मण्डल में ब्रजभाषा विकसित हो रही थी, जिसका आधार शौरसेनी अपभ्रंश था। आरम्भ में यह भाखा कहलाती थी, पर बाद में ब्रजभाषा के नाम से पुकारी जाने लगी।"[२] गार्सां द तासी ने भी अपने इतिहास में 'भाखा' ही लिखा है।[३] डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी इसके विकास-क्रम को इस प्रकार बताते हैं—"ऐसा जँचता है कि अपनी बेटी ब्रजभाषा में शौरसेनी अपभ्रंश को नवीन कलेवर मिला; नए आयुकाल को उसने प्राप्त कर लिया।"[४] आगे वे मध्यदेश की भाषाक्रम के सूत्र देते हैं[५]—

१. संस्कृत।

२. प्राचीन शौरसेनी, जिसका एक साहित्यिक रूप है, पालि।

३. शौरसेनी प्राकृत।

४. शौरसेनी अपभ्रंश तथा उसी का रूप-भेद नागर अपभ्रंश।

५. राजस्थान की पिङ्गल भाषा तथा पुरानी ब्रजभाषा।

६. मध्यकालीन ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली की मिश्र शैली।

७. दकनी।

८. दिल्ली की खड़ी बोली।

९. आधुनिक नागरी हिन्दी, उसका मुसलमानी रूप उर्दू। उर्दू का जन्म भी ब्रजभाषा से हुआ।[६] मौलाना आजाद का भी यही मत था।[७]

०.५.६. ब्रजभाषा का विस्तार

भिखारीदास जी ने लिखा है कि ब्रजभाषा की कविता करने के लिए ब्रजवास आवश्यक नहीं है। ब्रजभाषा का परिचय ब्रज से बाहर रहने वाले कवियों से भी

---

१. ऋतम्भरा, हिन्दी की उत्पत्ति, पृ० ७ २. राजस्थान का पिङ्गल साहित्य, पृ० १० ३. हिन्दुई साहित्य का इतिहास, अनु०—लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ० २ ४. पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ८० ५. वही, पृ० ८१ ६. मद्रास में उर्दू, बाकर आगाह, इब्राहीमिया मशीन प्रेस, हैदराबाद, पृ० ४६ ७. चन्द्रबली पाण्डेय, पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ८६

मिल सकता है।[१] सोलहवीं शती के मध्य तक ब्रजभाषा सारे मध्यदेश की साहित्यिक भाषा हो गई थी।[२] डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने अपने 'मध्यदेश का विकास' शीर्षक लेख में ऐतरेय से लेकर अलबरूनी तक का विकास चित्रित किया है। उनके अनुसार ऐतरेय ब्राह्मण में मध्यदेश का अर्थ कुरु, पाञ्चाल, वंश और उशीनरों का प्रदेश था, अर्थात् पश्चिम में प्रायः कुरुक्षेत्र से लेकर पूर्व में फर्रुखाबाद के निकट तक और उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में प्रायः चम्बल नदी तक का आर्यावर्त देश ऐतरेय ब्राह्मण के युग में मध्यदेश गिना जाता था।[३] मनु के अनुसार हिमालय और विन्ध्य के बीच का देश जो पश्चिम में विनशन तक और पूर्व में प्रयाग तक है, मध्यदेश बताया गया है।[४] विनशन मेवाड़ या उदयपुर के पश्चिम का मरुदेश है।[५] बौद्ध साहित्य में मध्यदेश की सीमाएँ इस प्रकार दी हुई हैं—"मध्यदेश की पूर्व दिशा में कजङ्गल नामक कस्बा है। उसके बाद बड़े शाल के वन हैं और फिर आगे सीमान्त (प्रत्यन्त) देश हैं। पूर्व-दक्षिण में सललवती नामक नदी है। उसके आगे सीमान्त देश दक्षिण दिशा में सेत काणक नामक कस्बा है। उसके बाद सीमान्त देश पश्चिम दिशा में

---

१. सूर, केसव, मंडन, बिहारी, कालिदास, ब्रह्म,
चिन्तामणि, मतिराम, भूषन, सुजानिए।
लीलाधर सेनापति, निपट, नेवाज, निधि,
नीलकण्ठ, मिश्र सुखदेव, देव मानिए॥
आलम, रहीम, रसखान, सुन्दरादिक,
अनेकन सुमति भए कहाँ लौं बखानिए।
ब्रजभाषा हेत ब्रजवास ही न अनुमानौ,
ऐसे-ऐसे कविन की बानी हू सौं जानिए॥

२. मोतीलाल मेनारिया, राजस्थान का पिङ्गल साहित्य, पृ० ११। यहां लेखक ने एक टिप्पणी दी है—"कनौज के राजकवि राजशेखर (सं० ९३७ से ७७) के अनुसार बनारस मध्यदेश का पूर्वी बिन्दु था। पञ्जाब के कर्नाल जिले का पृथूदक अथवा पिहोवा उसकी उत्तरीय एवं आबू पर्वत पश्चिमीय सीमा थे। दक्षिण में उसका विस्तार गोदावरी तक था जिससे राजस्थान का भी एक बड़ा भाग सम्मिलित था।"

३. 'विचारधारा', पृ० १०

४. हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं यत् प्राग् विनशनादपि।
प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः॥ (मनु० २, ११)

५. भारती, जून १९५४, पृ० ७

थून नामक ब्राह्मण ग्राम है। उसके बाद सीमान्त उत्तर दिशा में उशीरध्वज नामक पर्वत है। उसके बाद सीमान्त देश है।[१] इत्सिंग ने अपनी यात्रा के विवरण में मध्यदेश की ये सीमाएँ लिखी हैं—"स्थूल रूप से भारत के मध्यदेश से सीमान्त भूमियों (प्रत्यन्तक) तक का अन्तर पूर्व में और पश्चिम में ३० योजन से अधिक है। दक्षिण में और उत्तर में प्रत्यन्तक की दूरी ४०० योजन से अधिक है।"[२] सं० १३६१ में मेरुतुङ्गाचार्य ने, 'प्रबन्ध चिन्तामणि' में मध्यदेश का नाम तो दो बार लिया है पर उसकी सीमाएँ नहीं लिखीं।[३] ई० चौदहवीं शती के अन्त में 'मानकुतूहल' की रचना हुई। उसका फारसी अनुवाद सन् १६६६ में फ़कीरुल्ला ने किया। उसने लिखा है कि मानसिंह तोमर द्वारा प्रवर्तित ध्रुपद के पद देशी भाषा में लिखे जाते थे। वह इस प्रदेश को 'सुदेश' कहता है। इस सुदेश की सीमाओं के सम्बन्ध में वह लिखता है—"सुदेश से मतलब है ग्वालियर से, जो आगरा का राज्यकेन्द्र है और जिसके उत्तर में मथुरा तक, पूर्व में उन्नाव तक और दक्षिण में ऊज तथा पश्चिम में बाराँ तक है। भारतवर्ष में इस बीच की भाषा सब से अच्छी है।[४] कवि केशवदास जी ने सं० १६०१ में मध्यदेश में सातों पुरी, सब तीर्थ, गङ्गादिक नदी, गोपालगढ़ लिखे हैं।"[५] वनारसीदास जैन ने अपने 'अर्द्ध-कथानक' में सीमा तो नहीं लिखी पर अपना निवास 'मध्यदेश' में बताया है।[६] उन्होंने अपनी भाषा को मध्यदेश की बोली बताया है।[७] इस प्रकार मध्यदेश और ब्रजभाषा का सम्बन्ध माना जाता रहा।

पीछे के लेखकों ने ब्रजभाषा की सीमाओं पर जो लिखा है उस पर और दृष्टि डाल लेनी चाहिए, ताकि ब्रजभाषा के विस्तार का विकास स्पष्ट हो सके। 'वंश-भास्कर' के रचयिता प्रसिद्ध चारण सूरजमल ने एक दोहे में ब्रजभाषा का प्रदेश दिल्ली और ग्वालियर के बीच माना है।[८] 'तुहफतुल-हिन्द' के कर्ता मिरजा खाँ

---

१. जातक (भदन्त आनन्द कौसल्यायन का अनुवाद), प्रथम खण्ड, पृ० ६४ २. इत्सिग की भारत यात्रा, (सन्तराम बी० ए०), भूमिका, पृ० 'य'। ३. प्रबन्ध चिन्तामणि, सिन्धी जैन ग्रन्थमाला, पृ० ४५, तथा ८७ ४. हरिहरनिवास द्विवेदी, मानसिंह और मानकुतूहल, पृ० ९१ ५. यह कवित्त 'कविप्रिया' में है और पीछे उद्धृत हो चुका है।

६. याही भरत सुखेत में, मध्यदेस सम ठाऊं।
बसै नगर रोहतिगपुर, निकट बिहौली गांऊं।।

७. मध्यदेस की बोली बोलि। गर्भित बातें कहूं जी खोलि।

८. पुर दिल्ली और ग्वालियर, बीच ब्रजादिक देस।
पिंगल उपनायक गिरा, तिनकी मधुर विसेस।।

ब्रजभाषा के क्षेत्र का इस प्रकार उल्लेख करते हैं—भाखा ब्रज तथा उसके पास-पड़ोस में बोली जाती है। ग्वालियर तथा चन्दवार[१] भी उसमें सम्मिलित हैं। गङ्गा-यमुना का दोआब भी ब्रजभाषा का क्षेत्र है।[२] इसके पश्चात् जो ब्रजभाषा व्याकरण मिलता है, वह लल्लूलालजी का है। उसमें ब्रजभाषा का क्षेत्र दिया हुआ है। मुखपृष्ठ पर ही लेखक ब्रजभाषा को स्पष्ट करता हुआ लिखता है कि "ब्रजभाषा वह भाषा है जो ब्रज, जिला ग्वालियर, राज भरतपुर, बुएस्वर, भदावर, अन्तर्वेद तथा बुन्देलखण्ड में बोली जाती है।"[३] आगे लेखक बताता है कि ब्रज और ग्वालियर जिलों की भाषा शुद्ध 'ब्रजभाखा' है। डॉ० ग्रियर्सन ने ब्रजभाषा के विस्तार को इस प्रकार लिखा है—मथुरा को केन्द्र मानते हैं। दक्षिण में यह आगरे तक, भरतपुर राज्य के बड़े भाग में, धौलपुर में तथा करौली में ब्रजभाषा बोली जाती है। ग्वालियर के पश्चिमी भागों तथा जयपुर के पूर्वी भाग तक यही भाषा है। उत्तर में गुड़गाँव के पूर्वी भाग तक ब्रजभाषा प्रचलित है। उत्तर-पूर्व में इसकी सीमाएँ दोआब तक, बुलन्दशहर, अलीगढ़, एटा तथा गङ्गापार तक, बदायूँ, बरेली तथा नैनीताल के तराई परगनों तक जाती है।[४] मध्यवर्ती दोआब की भाषा को 'अन्तर्वेदी' कहा गया है।[५] मध्यवर्ती दोआब की सीमाओं में आगरा, एटा, मैनपुरी, फर्रुखाबाद तथा इटावा जिले आते हैं। यहाँ इतनी बात जान लेनी चाहिए कि इटावा और फर्रुखाबाद में कनौजी है, शेष में ब्रजभाषा।

अलीगढ़ की भाषा को अधिकांश ब्रजभाषा कहा गया है।[६] मैनपुरी की भाषा को गजेटियर में ब्रज नाम नहीं दिया गया है। पर यहाँ की भाषा की जो विशेषताएँ दी गई हैं, वे ब्रज से मिलती-जुलती हैं।[७]

कैलाँग ब्रजभाषा के क्षेत्र के विषय में कहता है कि राजपूताना की बोलियों के उत्तर-पूर्व, पूरे 'अपर दोआब' में तथा गङ्गा-यमुना की घाटियों में ब्रजभाषा बोली

---

१. आगरा के पूर्व २५ मील पर स्थित, मथुरा से इटावा वाले रास्ते पर यमुना नदी के किनारे चौहानों की बस्ती। देखिए, जैरेटस, आईने-अकबरी, पृ० १८३ २. जियाउद्दीन, द ग्रामर आफ ब्रजभाखा, भूमिका, पृ० ७ ३. जनरल प्रिन्सिपल्स ऑफ इनफ्लैक्शन एण्ड कञ्जूगेशन इन द ब्रजभाखा। ४. लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया, जिल्द ९, पृष्ठ ६९ ५. वही, पृष्ठ ६९ ६. एच० आर० नौविल, अलीगढ़ गजेटियर, पृ० ५५-५६। ९४.१४ प्रतिशत जनसंख्या अन्तर्वेदी बोलती है।

७. स्टैटिस्टीकल डिस्क्रिप्टिव एण्ड हिस्टोरीकल एकाउन्ट आफ एन० डब्ल्यू० प्राविसेज आफ इण्डिया (एटकिंसन), जिल्द ४, भाग १, पृ० ५६९

जाती है।[१] डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने इन सीमाओं को और विस्तृत कर दिया है और उसका प्रसार निम्नलिखित प्रदेशों में माना है—उत्तर प्रदेश के मथुरा, अलीगढ़, आगरा, बुलन्दशहर, एटा, मैनपुरी, बदायूँ तथा बरेली के जिले; पञ्जाब के गुड़गाँव जिले का पूर्वी भाग; राजस्थान में भरतपुर, धौलपुर, करौली तथा जयपुर का पूर्वी भाग; मध्यभारत में ग्वालियर का पश्चिमी भाग। क्योंकि ग्रियर्सन साहब का यह मत लेखक को मान्य नहीं कि कनौजी स्वतन्त्र बोली है, इसलिए उत्तर प्रदेश के पीलीभीत, शाहजहाँपुर, फर्रुखाबाद, हरदोई, इटावा और कानपुर के जिले भी ब्रज प्रदेश में सम्मिलित कर लिए गए हैं।[२]

ब्रज साहित्य मण्डल के फीरोजाबाद अधिवेशन में भाषण करते हुए श्रीकृष्णदत्त पालीवाल ने ब्रज की सीमाओं के विषय में श्रीनारायण चतुर्वेदी के मत का उल्लेख करते हुए कहा था कि "अभी तक ब्रज की सीमाएँ पूर्णतया निश्चित नहीं हो पाईं। परन्तु एक दृष्टि से दिल्ली के दक्षिण से लेकर इटावे तक और अलीगढ़ से लेकर धौलपुर और ग्वालियर तक ब्रज मण्डल का विस्तार है।[३]" श्री जगदीश चतुर्वेदी के अनुसार उत्तर-पूर्व में ब्रजभाषा की सीमा अलीगढ़ जिले तक तथा एटा जिले में सोरों के आसपास तक जाती है; पूर्व में यह भाषा शिकोहाबाद, इटावा व मैनपुरी की सीमाओं तक बोली जाती है। आगरा जिला तो ब्रज के क्षेत्र में है ही। दक्षिण में धौलपुर, ग्वालियर राज्य की उत्तर सीमा तक यही भाषा है। दक्षिण-पश्चिम में धौलपुर तथा ग्वालियर राज्य का कुछ भाग इस भाषा क्षेत्र में सम्मिलित है।[४]

यह बोली जाने वाली भाषा की सीमाएँ हुईं। काव्य के लिए इस भाषा का प्रयोग बहुत व्यापक था। इस सम्बन्ध में डॉ० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र कहते हैं—"ब्रज की वंशी-ध्वनि के साथ अपने पदों की अनुपम झङ्कार मिलाकर नाचने वाली मीरा राजस्थान की थीं, नामदेव महाराष्ट्र के थे, नरसी गुजरात के थे, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भोजपुरी भाषा क्षेत्र के थे। ब्रजभाषा को अपनाकर एक से एक कवियों की रससिद्ध वाणी से उसे इतना समृद्ध बना देने वाले पुष्टिमार्ग के आचार्य भी दाक्षिणात्य थे। बिहार में भोजपुरी, मगही और मैथिली भाषा क्षेत्रों में भी ब्रजभाषा के कई प्रतिभाशील कवि हुए हैं।"[५] अगरचन्द नाहटा के एक लेख[६] के अनुसार ब्रजभाषा कच्छ तक समादृत थी। वहाँ के महाराव लखपत बड़े विद्याप्रेमी थे। इसके प्रचार के लिए

---

१. ग्रामर आफ दि हिन्दी लैंग्वेज, पृ० ६६ २. ब्रजभाषा, पृ० ३३, ३. 'ब्रजभारती', वर्ष ५, सं० १, पृ० ३ ४. 'ब्रजभारती', वर्ष २, अङ्क ४, पृ० २६ ५. 'नई धारा', पटना, वर्ष ४, अङ्क ११, पृ० ६, ६. सुन्दर शृङ्गार की भाषा, 'भारती' अप्रैल १९५५, पृ० ३१२ से १४

उन्होंने एक विद्यालय खोला था, जिसमें मारवाड़, गुजरात आदि दूर-दूर से ब्रज-काव्य की शिक्षा पाने के इच्छुक पहुँचते रहे हैं। राहुल सांकृत्यायन के अनुसार सुदूर दक्षिण में भी ग्वालियरी भाषा पहुँची थी। ग्वालेरी का उल्लेख जयकीर्ति आदि ने ही नहीं किया, बल्कि सुदूर दक्षिण में स्थापित बहमनी उत्तराधिकारिणी रियासतों के साहित्यकार भी ग्वालेरी कविता का बड़ी श्रद्धा के साथ उल्लेख करते थे।[1] अगरचन्द नाहटा ने भी ब्रजभाषा के प्रसार पर अपना मत देते हुए लिखा है—"मध्यकाल में ब्रजभाषा का प्रसार ब्रज एवं उसके आसपास के प्रदेशों में ही नहीं, पूर्ववर्ती प्रदेश में भी रहा है। बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात, काठियावाड़ एवं कच्छ आदि में भी ब्रजभाषा की रचनाएँ हुई हैं।"[2] बंगाल के कवियों ने भी ब्रजभाषा में कविता लिखी।[3] मराठा पोवाड़ा या युद्धगीत के लेखक भी कभी-कभी ब्रजभाषा का प्रयोग करते थे।[4]

मद्रास में उर्दू का आधार बन कर ब्रजभाषा पहुँच गई।[5] पीछे इस बात पर विवाद भी रहा। पर उर्दू के प्राचीन रूप पर ब्रज का प्रभाव निर्विवाद है।

०.५.७. ब्रजभाषा का विकास

१००० ई० तक अपभ्रंश भाषा और साहित्य का बोलबाला रहा। उसके पश्चात् एक नवीन मोड़ आता है। प्राकृतें प्रादेशिक अपभ्रंशों की राह से परिवर्तित होकर आधुनिक भारतीय भाषाओं का रूप ग्रहण करने लगीं। वैसे अपभ्रंश की परम्परा इस समय भी थोड़ी-बहुत चल रही थी। यह अपभ्रंश-परम्परा दो रूपों में रही—शुद्ध रूप में तथा देशी भाषाओं की शब्दावली तथा मुहावरों के रूप में। इस प्रकार एक अर्द्ध-अपभ्रंश और अर्द्ध नवीन भाषा साहित्यिक रूप में प्रतिष्ठित हुई। पश्चिम में इस भाषारूप के दर्शन राजस्थान के डिङ्गल तथा पृथ्वीराज रासो आदि पिङ्गल ग्रन्थों में मिलते हैं। पिङ्गल और ब्रजभाषा में कोई मौलिक अन्तर नहीं है। अपभ्रंश का नव्यभारतीय भाषा से मिश्रित या प्रभावित एक रूप १४०० ई० के लगभग पूर्वी भारत में 'अवहट्ठ' के रूप में विकसित हो रहा था। नव्यभाषा की प्रतिष्ठा दृढ़ से दृढ़तर होती जा रही थी। इसमें सांस्कृतिक कारण भी कार्य कर रहा था।

---

१. 'भारती', अगस्त १९५५, पृ० १६७ २. 'ब्रजभारती', वर्ष १२, सं० १ (सं० २०११), ब्रजभाषा का विशिष्ट ग्रन्थ प्रवीणसागर। ३. डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी, पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ८०, ४. वही, ५. बाकर आगाह, मद्रास में उर्दू, इब्राहीमिया मशीन प्रेस, हैदराबाद १९३८, पृ० ४६

तुर्कों के साथ एक असहिष्णु, आक्रामक धर्म भारत में प्रविष्ट हुआ। उच्च और जागरूक वर्गों के सामने आध्यात्मिक और सांस्कृतिक सुरक्षा का प्रश्न प्रबल था। सभी वर्गों में भारतीय संस्कृति के तत्वों को पहुँचाने का प्रश्न था। इस कार्य के लिए लोक-भाषा ही माध्यम हो सकती थी। ब्राह्मणों ने रामायण, महाभारत, तथा अन्य पुराणों के अध्ययन और अनुवाद प्रस्तुत किये। दूसरा प्रचारक वर्ग साधुओं का था, जो राम, शिव आदि का मर्मोद्घाटन करता फिरता था। इनकी शैली भक्तिपूर्ण गीतों और पदों की थी। अपनी परम्परा के अनुसार इस धार्मिक और पौराणिक साहित्य की रचना मध्यदेश की भाषा में हुई। पश्चिमी अपभ्रंश समस्त उत्तर भारत की काव्य भाषा बन गयी थी। पश्चिमी अपभ्रंश का विकास दो रूपों में हुआ।

आकारान्त और औकारान्त परम्परा

हेमचन्द्र (१०८८-११७२ ई०) ने अपने प्राकृत व्याकरण में पश्चिमी अपभ्रंश के प्रचलित साहित्य के कुछ उदाहरण दिए हैं। नीचे एक उदाहरण है—

भल्ला हुआ जो मारिआ, वाहिणि मसारा कन्तु।
लज्जेज्जम् तु वअस्सि अहु, जइभग्गा घर एन्तु॥

इस पद्य में भल्ला, हुआ, मारिआ, महारा भग्गा शब्द आकारान्त वाली धारा का परिचय दे रहे हैं। ब्रजभाषा, पिङ्गल, बुन्देली, कनौजी बोलियों में यह आकारान्तता नहीं मिलती। इन शब्दों का इन बोलियों में औकारान्त हो जाता है, पर उकारान्तता अवश्य मिलती है। इससे स्पष्ट होता है कि उकार-बहुलता तो समस्त पश्चिमी अपभ्रंश की विशेषता थी। पर आगे चलकर उसके विकास की दो दिशाएँ हो गईं—औकारान्त और आकारान्त। औकारान्त भाषा का रूप 'पउम-चरिउ' जैसे काव्य-ग्रन्थों में भी मिलता है।[१] पञ्जाब से दिल्ली तक भाषा का आकारान्त रूप रहा। ब्रज में औकारान्त वाली प्रवृत्ति चली। पहली विशेषता खड़ीबोली—हिन्दुस्तानी की है।

अब तक मुसलमानों का राज्य स्थापित हो चुका था। उनके सम्मुख किसी भारतीय भाषा को अपनाने का प्रश्न था; स्वभावतः उन्होंने पञ्जाब की प्रचलित भाषा को अपनाया। फिर मुस्लिम राज्य और संस्कृति का केन्द्र दिल्ली हुआ। पञ्जाब की बोली का जो रूप मुसलमानों के साथ-साथ दिल्ली आया, वह दिल्ली के उत्तर और उत्तर-पश्चिम के जिलों की बोली से कुछ बातों में मिलता था।

---

१. मुनि जिनविजयजी, 'पउमचरिउ की भूमिका', जिल्द १, पृ० ६१

आकारान्तता विशेष रूप से समान थीं। ब्रजभाषा, कनौजी और बुन्देली औकारान्त बोलियाँ थीं, जिनमें काव्य रचा गया जो सांस्कृतिक विषयों को लेकर चलीं। देशज हिन्दुस्तानी (मेरठ, रुहेलखण्ड, डिवीजन एवं अम्बाला जिला), बाँगडू या हरियानी (दिल्ली, रोहतक, हिंसार, पटियाला), बोली आकारान्त थीं। मुसलमानों का आश्रय पाकर ये बोलियाँ बोलचाल में प्रयुक्त होने लगीं। वैसे दिल्ली का स्पर्श राजस्थानी और ब्रजभाखा भी करती हैं, पर बाँगड़ू के मध्य स्थित होने के कारण दिल्ली में मुसलमानों के द्वारा विकसित नई भाषा पर बाँगड़ू और देशज हिन्दुस्तानी का प्रभाव अधिक पड़ा। सन्त साहित्य, मुस्लिम प्रभाव के कारण खड़ी-बोली के रूपों से युक्त रहा और भक्ति-साहित्य कृष्ण और ब्रज के प्रभाव के कारण ब्रजभाषा में अधिक रचा गया।

सर्वनाम का भेद

खड़ीबोली और ब्रजभाषा का एक और अन्तर है। यह अन्तर है सर्वनाम रूपों में। 'ता', 'वा', 'या', 'जा', 'का' तिर्यक् सर्वनाम रूप ब्रजभाषा में मिलते हैं। खड़ीबोली समूह में 'तिस्', 'उस्', 'इस्', 'जिस्', 'किस्' आदि मिलते हैं। इस विषय में भी पञ्जाबी का खड़ीबोली से साम्य है।

इस युग की भाषा की अवस्था यह बनी—मुसलमान अपनी साहित्य-रचना फारसी में करते थे। राजस्थान के साहित्यिक राजस्थानी के साहित्यिक रूप 'डिङ्गल' में तथा पश्चिमी अपभ्रंश के राजस्थान में प्रचलित रूप 'पिङ्गल' का व्यवहार करते थे। मथुरा केन्द्र ब्रजभाषा का था। पूर्व में बिहार तक, पश्चिम में पञ्जाब और राजपूताना के कुछ भाग तक, दक्षिण में बरार तक तथा उत्तर में गढ़वाल तथा कुमायूँ तक उसी के विभिन्न परिवर्तित रूपों का व्यवहार होता था। पञ्जाब के हिन्दू एक प्रकार की पञ्जाबी मिश्रित ब्रजभाषा लिखते थे। ब्रजभाषा के सम्बन्ध में डॉ० चटर्जी का यह मत है—"ईसा के बिलकुल पश्चात् की ही शताब्दियों में सबसे अधिक लालित्यपूर्ण प्राकृत, शौरसेनी प्राकृत की सीधी वंशज ब्रजभाखा का ही ऊपरी गङ्गा के मैदान में साहित्यिक भाषा के रूप में सबसे अधिक प्रचार था एवं उसी का सबसे अधिक अध्ययन भी होता था। यहाँ तक कि उत्तरी भारत के मुसलमान अभिजात-वर्ग भी इसके सौन्दर्य के प्रभाव से बचे न रह सके। पहले तो ब्रजभाखा के समक्ष हिन्दुस्तानी को कोई स्थान नहीं मिला, परन्तु धीरे-धीरे वह आगे बढ़ती गई।[१] मुगल सम्राटों तक ने ब्रजभाखा में कविता कीं। ब्रजभाखा की दूसरी

---

१. भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, पृ० १८६

विशेषता उकार-बहुलता थी। इस पर भी संक्षेप में दृष्टिपात कर लेना उचित होगा।

०.६. उकार बहुला प्रवृत्ति की परम्परा और ब्रज की बोली

मथुरा जिले की बोलियों में एक मुख्य अन्तर उकार बहुला प्रवृत्ति और अकार बहुला प्रवृत्ति का है। ठाड़ी बोली -क्षेत्र में अकारान्त अथवा इकारान्त रूप अधिक मिलते हैं। शेष भाग में उकारान्त रूप अधिक मिलते हैं। छाता तहसील के उत्तरी भाग का पर्यवसान पञ्जाब के गुड़गाँव जिले में तथा पश्चिमी भाग का राजस्थान में होता है। पञ्जाब की बोली उकार बहुला नहीं है। उसी शृङ्खला का एक छोर मथुरा की छाता तहसील दीखती है। गुजराती भी इसी अकार प्रवृत्ति के अन्तर्गत आती है। सिन्ध उकार प्रवृत्ति से प्रभावित है। ब्रज की इस उकार बहुला प्रवृत्ति का बीज किस परम्परा से सम्बन्धित है और इसका विकास-पथ कैसा रहा, यह विचारणीय है।

भरत ने एक 'विभृष्ट' भाषा की सूचना दी है। इसके सम्बन्ध में भरत ने कई सूचनाएँ दी हैं। इसमें उकार की बहुलता पाई जाती है।[1] यह आभीरों की भाषा है।[2] यह भाषा हिमवत्, सिन्धु और सौवीर में प्रचलित है।[3] यह संस्कृत और देसी से पृथक् मानी गई है। दण्डी ने भरत की 'आभीरोक्ति' को एक अपभ्रंश माना है।[4] डॉ० गुने ने अपभ्रंश को प्राकृत का वह भ्रष्ट रूप माना है, जिसे विदेशी (आभीर) बोलते थे।[5] इस प्रकार उकार बहुला प्रवृत्ति का सम्बन्ध आभीरों से जोड़ने का प्रयत्न किया है। इस समस्या को यहीं छोड़ते हुए, इस उकार बहुला प्रवृत्ति के विकास और विस्तार पर विचार करना है।

भरत ने इस उकार बहुला भाषा के उदाहरण भा दिये हैं। उनमें से कुछ नीचे दिये जाते हैं—

१. मोरुल्लउ नचन्तउ
   महाभगे संभत्तउ
२. मेहउ हर्तुं जेई जोण्हउ
   पिच्च णिप्पहे एहु चंदहु।

---

१. नाट्यशास्त्र, १७।६१ २. वही १७।४९, ५४, ५५
३. हिमवत् सिंध सौवीरान्, येऽन्य देशान् समाश्रितान्।
   उकार बहुलां तेषां नित्यं भाषां प्रयोजयेत्॥
४. काव्यादर्श, १।३६, ५. Introduction to Bh. K, Page 41.60.

इन उदाहरणों में अन्त में और मध्य में भी उकार मिलता है। यह उकार बहुलता एक महत्वपूर्ण ध्वनि सम्बन्धी विशेषता थी जिसने भरत का ध्यान भी आकर्षित किया। पालि में उकार की प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। वहाँ 'ऋ' का परिवर्तन 'उ' में हो जाता था।[१] नीचे कुछ उदाहरण दिये जाते हैं :—

१. ऋ	उ
ऋतु	उतु
वृक्ष	रुक्ख

प्राकृतों में भी आरम्भिक ऋ, रि अथवा रु व्यञ्जनों में परिवर्तित हो जाती थी। उदा०, वृक्ष रुक्खो। ऋ उ के भी उदाहरण मिलते हैं; ऋतु उदु; मृणाल मुणाल; पृथ्वी पुहवी; ऋजु उज्जु। अपभ्रंश में भी होती हुई[२] यह प्रवृत्ति ब्रज की बोली तक आ पहुँची। यहाँ ऋ उ वाली प्रवृत्ति नहीं पनपी। ऋ रु वाली प्रवृत्ति दीखती है. यथा वृक्ष रुखु। प्राकृत में रुक्खो मिलता है। संयुक्त व्यञ्जन को सरल किया गया, अतः पूर्व का स्वर दीर्घ हो गया। अन्त्य 'ओ' का ह्रस्व उच्चारण —उ के रूप में रह गया।[३] ब्रज में ऋतु का रुति मिलता है। इस प्रकार ऋ के विकास के रूप में—उ की बहुलता बढ़ी।

दूसरी शती ईस्वी का लिखित प्राकृत धम्मपद पेशावर के आसपास खोतान के निकट गोश्रृंग अथवा गोशीर्ष बिहार में प्राप्त हुई थी। इस प्राकृत धम्मपद में भी उकार प्रवृत्ति पाई जाती है।[४] ललित विस्तर की भाषा भी उकार बहुलता से युक्त है।[५] उदाहरण के लिए प्राकृत धम्मपद का एक पद्य लिया जा सकता है—

---

१. यहाँ ऋ इ, अ, उ मिलता है। भरतसिंह उपाध्याय, पालि साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ३९, ४०। २. The change of the vowel r to u is found mostly in nouns of relationships in all regions, but in the east and the centre it also tends to be i. .As in Pali and in Pkts. OIA r is changed to a, i and u in AP. [Dr. G. V. Tagare, Historical Grof AP p. 40]

३. देखिये, प्राकृत धम्मपद, सम्पादक, बरुआ और मित्रा, कलकत्ता विश्वविद्यालय (१९२१) ४. वही। ५. ललित विस्तर (सम्पा० डॉ० एस० लेफमान, हाल, १९०२ ई०) पृ० १६५, १६६।

उजओ नाम सो भगु अभय नस्र स दिश् ।
रधो अकुयनो नमु धमत्रकेहि सहतो ।
हरि तसु अवरमु स्मति स परिवरन ।
धमहु सरधि ब्रोमि समेदिठि पुरेजबु ।

इस श्लोक में मगु, नमु, अवरमु, धमहु, और पुरेजवु शब्द उकारान्त हैं। पालि का मग्गो ही मगु हुआ है। ब्रजभाषा में भी मगु मिलता है। इस प्रकार प्राकृत में उकार बहुलता का बीज पनपने लगा था। ललितविस्तर का भी एक उदाहरण लिया जा सकता है—

पुरि तम नरवर सतु नृपु यदभू,
नरु तव अभिमुख इम गिरम वची।
दद मम इम महि सनगर निगमां।
त्यजि तद प्रमुदितु न च मनु क्षुभितो।

इसमें सतु, नृपु, नरु, प्रमुदितु उकारान्त हैं। ब्रज की बोली में आज भी ये शब्द उकारान्त हैं।

प्राकृत वैयाकरणों ने उकार-बहुला विशेषता का उल्लेख स्पष्ट रूप से नहीं किया है। पर प्राकृतों में उकारान्त रूप पनपने लगे थे। पुरुषोत्तम देव ने 'टक्क' विभाषा को संस्कृत और शौरसेनी का मिश्रित रूप मानते हुए, इसे उकार-बहुला माना है।[१] अश्वघोष के नाटक (लगभग १०० ई०) की भाषा प्रारम्भिक प्राकृत की उदाहरण है। इसमें दुष्ट गणिका, विदूषक और गोभत्र की भाषा में अ: ओ मिलता है। आगे यह स्पष्ट किया जायगा कि ओ का ह्रस्व उच्चारण होते-होते भी—उ हो गया। निया प्राकृत, सर ओरेल स्टेइन द्वारा उपलब्ध मध्य एशिया के खरोष्ठी लेखों की भाषा है। इसमें अन्त्य अ: उ का वैकल्पिक प्रयोग मिलता है। प्रात: प्रतु, मृत: मृतु; कुञ्जर: कुञ्जरु। इसमें अकारान्त का उकारान्त भी मिलता है—विराग विरकु; मधुर मसुरु। अ: ओ के भी उदाहरण हैं। महाराष्ट्री प्राकृत में अ : उ के उदाहरण मिलते हैं (उदधित) उअहीउ। शौरसेनी में उकारान्त का ओकारान्त मिलता है। मागधी प्राकृत में प्रथमा एकवचन (–सु) में भूतकालिक कृदन्त क्त, से निर्मित शब्दों में विभक्ति का या तो लोप हो जाता है, या उसके स्थान पर–उ का प्रयोग मिलता है।[२] हसित हशिदु (हशिदि) अर्द्ध-मागधी में प्रथमा एकवचन अह: के लिए गद्य में प्राय: ए तथा पद्य में ओ मिलता है।[३] पैशाची

---

१. संस्कृत शौरसेन्यो:(प्राकृतानुशासन, १६।१) उद्वहुलम् (वही, १६।२)।
२. प्राकृत-प्रकार, १२।११ ३. डा० सरजूप्रसाद अग्रवाल, प्राकृत विमर्श, पृ० ८६

प्राकृत को वररुचि ने शौरसेनी पर आधारित माना है।[१] हेमचन्द्र का भी ऐसा ही विचार दीखता है।[२] इसमें भी अः ओ मिलता है। इस प्रकार किसी-किसी प्राकृत में उ मिलता है तथा किसी में ओ वाले रूप मिलते हैं। ओ वाले रूप उ वाले हो गये। इस प्रक्रिया का मुनिजिनविजय जी ने उल्लेख किया है।[३]

अपभ्रंश में यह प्रवृत्ति प्रमुख हो गई। इस सम्बन्ध में मुनिजिनविजय जी का कथन द्रष्टव्य है।[४]

"u (eul-au) is the only termination in the noun and Acc. Sing., there being no form in a or ā Noun. Sing. forms in-O occur sporadically as prakritisms before the indeclinable VI and under metrical stress."

इसके अतिरिक्त अन्य स्त्रीलिङ्ग रूपों में भी उन्होंने यह प्रवृत्ति मानी है।[५] 'सन्देश रासक' की भाषा पर विचार करते हुए श्री मायाणी ने मध्यग-व-के लोप को परवर्ती अपभ्रंश की एक विशेषता माना है। यह विशेषता ब्रजभाषा की विशेषता बन गई।[६] 'व' के लोप होने पर उ का आगम भी एक विशेषता हो गई—जीव जीउ। चौदहवीं शती के 'षडावश्यक बालावबोध' में उकार की बहुलता मिलती है।[७] वहाँ पुरु, नगरु, भद्र, राउ जैसे रूप मिलते हैं। श्री अगरचन्द नाहटा ने वीरगाथा काल के जैन-साहित्य के कुछ उदाहरण दिये हैं। उनमें पूर्वी प्रदेश की बोली में भी उकार प्रवृत्ति मिलती है।[८] बारहवीं शती में काशी के दामोदर पण्डित ने 'उक्ति-व्यक्ति प्रकरण' ग्रन्थ रचा। इसकी भाषा 'प्राचीन कोसली' है।[९] शौरसेनी अपभ्रंश के प्रथमा एक वचन के प्रत्यय-उ का प्रभाव प्राचीन कोसली पर इतना व्यापक जान पड़ता है कि प्रथमा के अतिरिक्त अन्य विभक्तियों में भी उकारान्त पदों का प्रयोग हुआ है। इस प्रकार यह समस्त पूर्वी तथा पश्चिमी अपभ्रंशों की विशेषता हो गई।[१०] श्री जगन्नाथदास रत्नाकर ने इस अन्तर को स्पष्ट करते

---

१. प्रकृतिःशौरसेनी, प्रा० प्रकाश, १०।२ २. शेषं शौरसेनीवत्, प्रा० व्याकरण, ४।३२३ ३. पउम चरिउ—भूमिका, प्रथम खण्ड, पृ० ५६ ४. PC. Intro., Vol-I, Page 61 §55. ५. देखिये, वही पृ० ६४, ६९ ६. सन्देश रासक, व्याकरण, ३३ सं० ७. उद्धरण देखिये, अगरचन्द नाहटा, आचार्यप्रवर तरुण प्रभसूरि, जर्नल आव दि यू० पी० हिस्टारिकल सोसायटी, वर्ष २२—खण्ड १-२ (१९४९)। ८. वीरगाथा काल का जैन साहित्य, ना० प्र० पत्रिका, वर्ष ४६, अङ्क ३, १९९८ वि० ९. डॉ० चटर्जी, उक्ति व्यक्ति प्रकरण, स्टडी, पृ० २ १०. "OIA-अ> AP-उ. It is the characteristic of this that-u of noun sing. is

हुए लिखा था।[१] अतः पुल्लिग संज्ञाओं, विशेषणों तथा कृदन्तों के कर्ता तथां कर्म-कारकों के एकवचन रूपों का उकारान्त अथवा ओकारान्त होना शौरसेनी क्षेत्र की मुख्य पहचान थी। उनका इकारान्त तथा एकारान्त होना मागधी भाषाओं की एवं उनका अकारान्त अथवा आकारान्त होना पञ्जाब प्रान्तीय भाषाओं की। पर इकारान्त, ऐकारान्त वाले प्रदेश में भी वैकल्पिक रूप से ओकारान्त, उकारान्त प्रवृत्ति मिल जाती है, यह देखा जा चुका है। इस प्रकार हेमचन्द्र के बाद 'उक्ति-व्यक्ति' से होती हुई यह प्रवृत्ति अवधी और ब्रजभाषा तक अबाध गति से प्रचलित रही।

विसर्ग>उ—

पालि में अकारान्त शब्दों के परे विसर्ग का–ओ हो जाता है।[२] जैसे देवः देवो; कः को। मार्गः मग्गो; मूकः मूगो। प्राकृतों में भी यही विसर्ग ओ की प्रणाली चलती रही।[३] यशः जसो; क्षुद्रः खुद्दो; त्यागः त्याजो; न्यायः ञायो; स्पन्दः फन्दो। 'निया प्राकृत' में अः उ का वैकल्पिक प्रयोग भी मिलता है—प्रातुः प्रतु; मृतः मृतु; कुंजरुः कुंजरु। पर साधारणतः इसमें अः ओ ही मिलता है। महाराष्ट्री प्राकृत में भी कुछ उदाहरण अः उ के मिल जाते हैं, उदधितः उअहीउ। किन्तु अपभ्रंश में आकर उकार की धारा प्रबल हुई। ओ के स्थान पर–उ आने लगा। शंकरः शंकरु; भयंकरः भयंकरु; तडागः तलाउ;[४] ब्रज की बोली में अपभ्रंश की यही प्रवृत्ति दीखती है। नीचे तुलनात्मक सारिणी से यह बात स्पष्ट हो जाती है—

---

applied to indeclinables also, in all the regional Aps. [G. V. Tagare, Historical Gr. of Ap. p 5] १. कोशोक्तव स्मारक ग्रंथ, ना० प्र० स० (सं० १९८५), पृ० ३७५, साहित्यिक ब्रजभाषा तथा उसके व्याकरण की सामग्री लेख। २. भरतसिंह उपाध्याय, पालि साहित्य का इतिहास, पृ० ४५। ३. अश्वघोष के नाटक की भाषा प्रारम्भिक प्राकृत है (लगभग १०० ई०)। इसमें गणिका और विदूषक की भाषा शौरसेनी है। इसमें अः का ओ मिलता है। गोमय की भाषा अर्द्धमागधी का प्राचीन रूप माना जाता है। इसमें भी अः ओ मिलता है। अर्द्धमागधी में गद्य में अः ए मिलता है तथा पद्य में—ओ मिलता है—(डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल, प्राकृत विमर्श, पृ० ८६)। पैशाची में भी अः ओ रूप मिलता है। मेघ मेखो; केशवः केसयो। ४. सावय धम्म दोहा, १७०

सं०	पा० प्रा०	अप०	ब्रज०
मार्गः	मग्गो	—	मगु
मूकः	मूगो	—	मूकु
शंकरः	—	शंकरु	संकरु
तडागः	—	तलाउ	तलाउ (तलावु)

पालि और प्राकृत का ओ ह्रस्व होता-होता 'उ' के रूप में रह गया हो, यह हो सकता है।[१] यह प्रवृत्ति "पउम चरिय" में दीखती है। इस प्रकार विसर्ग उ के प्रवृत्ति का तारतम्य बैठ जाता है।

मध्यग—व—का लोप और—उ—का आगम—

श्री मायाणी ने मध्यग—व—के लोप को परवर्ती अपभ्रंश की एक विशेषता मानी है। उन्होंने इसे ब्रजभाषा की एक विशेषता माना है।[२] इसके स्थान पर 'उ' आ जाता है।

जीउ = जीव
संताउ = संतावु
पीउ = पीव

ब्रज की बोली में यह प्रवृत्ति ज्यों की त्यों मिलती है। जीउ, पीउ जैसे शब्द आज भी इस बोली में प्रयुक्त होते हैं। नीचे ब्रज की बोली से कुछ उदाहरण सञ्चित किये गये हैं—

जीउ = जीव
राउ = राव
गांउ = गांव

प्राकृतों में भी —व— का लोप तो होता था,[३] पर वहाँ—उ का आगम नहीं था। उनमें अ आ जाता है—जीव जीअ; दिवस दिअहो। पर अपभ्रंश में प्रायः

---

१. 'In the constituted text the genitive and vocative forms have been spelt with short 'O'. The imperative forms are spelt with -u also when none of the MSS has O.'

[जिन विजयमुनि PC, T. Intro. p. 56]

२. सन्देश रासक व्याकरण, ३३ सी०। ३. क-ग-च-ज-त-द-प-य-वा प्रायो लोपः, प्राकृत प्रकाश, २।२

समस्त अकारान्त संज्ञाओं को उकारान्त कर दिया गया। अतः—व— के लोप होने पर—उ—का आना स्वाभाविक था।

अ ७ उ—

स्वर-व्यत्यय का उदाहरण प्राकृतों में मिलता है। इनमें एक अ ७ उ भी है। प्रलोकयति प्रलोएदि; सर्वज्ञ सवण्णु। यह स्वर-व्यत्यय महाराष्ट्री और अर्द्ध-मागधी में विशेष रूप से मिलता है।[1] पर प्राकृत में अकारान्त शब्द ओकारान्त बहुधा होते हैं—

दर्भ	डब्भो
व्यतिक्रम	वितिक्कमो
मुग्ध	मुद्धो
खड्ग	खग्गो
सुप्त	सुत्तो

'निया प्राकृत' में अकारान्त का उकारान्त भी मिलता है। विराग विरकु; मधुर मसुरु। शौरसेनी में अकारान्त का ओकारान्त रूप ही मिलता है। व्यापृत वावुडो; पुत्र प्रड्डो। मागधी प्राकृत की एक विभाषा चाण्डाली[2] में प्रथमा, एकवचन अकारान्त शब्दों में—ए और—ओ दोनों प्रयोग मिलते हैं।[3] इस प्रकार प्राकृतों में ओ तथा उ दोनों रूप ही मिलते हैं। पर शौरसेनी में अ ओ ही प्रमुख है।

अपभ्रंश में अकारान्त को प्रायः नियमित रूप से उकारान्त कर दिया जाता था।

कमल	कवँलु
भ्रमर	भवँरु

इसी प्रवृत्ति के दर्शन ब्रज की बोली में होते हैं। कमलु, भमरु, आदि रूप वहाँ ज्यों के त्यों मिलते हैं। यहाँ भी ब्रज की बोली अपभ्रंश की अनुगामिनी दीखती है।

अकारान्त शब्दों को उकारान्त करने की प्रवृत्ति ब्रज में बहुत व्याप्त हो गई है। अकारान्त पुल्लिग एकवचन संज्ञाओं को तो उकारान्त कर ही दिया जाता है, पर अकारान्त विशेषण जो अकारान्त पुल्लिग एकवचन संज्ञाओं के साथ लगते हैं,

---

१. डॉ० सरजूप्रसाद अग्रवाल, प्राकृत विमर्श, पृ० ९९। २. प्राकृतानुशासन, १४।१ ३. वही, १४।२

उनको भी उकारान्त कर दिया जाता है : लालू, एकु आदि। विशेषण के साथ तो यह प्रवृत्ति इतनी बढ़ गई है कि बहुवचन अकारान्त संज्ञा के अकारान्त बने रहने पर भी विशेषण उकारान्त हो सकता है। जैसे—सब लोग गये। भौतु बातन में कहा धरयौऐ।

इस प्रकार उकारान्त एकवचन संज्ञा को उकारान्त करने की प्रवृत्ति का तारतम्य प्राकृत, अपभ्रंश और ब्रज की बोली में मिल जाता है। इस तारतम्य को नीचे की तुलनात्मक सारिणी से समझा जा सकता है—

संस्कृत	**प्रा०**	**अप०**	**ब्रज की बोली**
अद्य	अज्ज	अज्जू	आजु
कृपण:		क्रिपणु	किरपनु
तत्वम्		तच्चु	तत्तु
तड़ाग:		तलाउ	तलाउ (तलाबु)
प्रिय:		पिउ	पिउ
राजन्		राउ	राउ
रावण:		रामणु	रामनु
वायु		वाउ	बाउ (बाइ)

किन्तु कुछ ऐसे शब्द भी हैं जो प्राकृत या अपभ्रंश में उकारान्त मिलते हैं। संस्कृत का 'बाहु' ब्रज की बोली में 'बाँह' मिलता है। नीचे की सूची से यह बात स्पष्ट हो जाती है—

सं०	**अप०**	**ब्र० बोली**
वस्तु	बत्थु	बत्त
बन्धु	बंधु	बन्द
अभ्यन्तरम्	भीतरु	भीतर
बधू	वहु	बहू
ऋतु	रिउ	रुति
नवनीत	लोणिउ	लौनी

जहाँ तक बाँह का सम्बन्ध है, बाहु संस्कृत में नपुंसक लिंग है किन्तु बाँह ब्रज की बोली में स्त्रीलिंग हो जाती है। यह पहले देखा जा चुका है कि स्त्रीलिंग अकारान्त ब्रज की बोली में उकारान्त नहीं होता। 'वस्तु' के तद्भव रूप का ब्रज की बोली में कभी प्रयोग नहीं होता। केवल जेवरों के सम्बन्ध में बातचीत

करते हुए 'चीज-बत्त' या 'चीज-वस्तु' का प्रयोग होता है। यह भी स्त्रीलिंग में है। 'बन्द' शब्द ब्रज में एकवचन में प्रयोग नहीं होता। 'भाई-बन्द' बहुवचन में ही प्रयुक्त होता है। बहुवचन अकारान्त को उकारान्त नहीं किया जाता। 'भीतर' स्थानवाचक है। स्थानवाचक को ब्रज में उकारान्त नहीं किया जाता—भीतर, बाहर, ऊपर। बधू संस्कृत में अकारान्त है। अतः ब्रज में बहू हो गया। अपभ्रंश से प्रभावित बहु रूप नहीं मिलता। रुति में स्वर-विपर्यय है। नवनीत का लौनी इस प्रकार बना दीखता है—

नवनीत लौनीअ लौनी

नवनीत का लोणिउ होने में यह प्रक्रिया हो सकती है–'व' का लोप होकर–उ का आगम हुआ। स्वरों को ह्रस्व करने की प्रवृत्ति के द्वारा 'नी' का 'णि' हुआ और अकारान्त को उकारान्त कर दिया गया और–'उ' आ गया।

ऐसे बहुत कम उदाहरण हैं जिनमें अपभ्रंश का उकारान्त ब्रज की बोली में उकारान्त न हो। पर ऐसे बहुत उदाहरण हैं जिनमें प्राकृत में अकारान्त ही रूप मिलता है, पर ब्रज में वे उकारान्त मिलते हैं—

सं०	प्रा०	ब्र०
सर्व	सब्ब	सबु
ग्राम	गाम	गामु
गृह	घर	घरु

अकारान्त को उकारान्त करने की प्रवृत्ति ब्रज में इतनी प्रबल है कि केवल संस्कृत तद्भवों में ही यह नहीं मिलती, अपितु विदेशी शब्दों का तद्भव रूप भी उकारान्त करके ही बनता है। नीचे की कुछ सारिणियाँ इस बात को स्पष्ट कर देंगी।

फ़ारसी शब्द–

ज़ोर	—	जोरु
दरबार	—	दरबारु
निशान	—	निसानु
अदरक	—	अदरखु
होश	—	होसु
गरम	—	गरमु
जवाब	—	ज्वाबु

अरबी शब्द—

मालूम	—	मालिमु
लायक	—	लाइकु
हाल	—	हालु
हकीम	—	हकीमु
असबाब	—	असबाबु

अंग्रेजी शब्द—

Boycott	—	बाईकाटु
Summon	—	सम्मनुं
Collector	—	कलट्टरु
Joint-collector	—	जंड़ु
Inspector	—	सपट्टरु
Station	—	अट्टेसुनु

इस उकार बहुला प्रवृत्ति की दृष्टि से ब्रज की बोली सिन्धी भाषा से बहुत मिलती-जुलती है—

सं०	**ब्रज**	**सिन्धी**
ओष्ठ	होटु[1]	—
काष्ठ	काठु	काठु
क्रोश	कोसु	कोसु
क्षण	खनु	खिण
ग्राम	गामु (गाँउं)	गामु
वर	वरु	बरु
चोर	चोरु	चोरु
मेघ	मेहु	मेहु
जाल	जारु	जारु

इसी सूची में केवल क्षण खिण (सिं०) ब्रज से नहीं मिलता। अन्य सभी रूप दोनों में उकारान्त मिलते हैं।

इतना याद रखना चाहिए कि प्रथमा, द्वितीया एक वचन पुंल्लिग में भी अकारान्त का उकारान्त मिलता है। किन्तु विकृत बहुवचन रूप बनाने में अन्[2] जोड़

---

१. गुजराती में होट मिलता है। २. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने इस सम्बन्ध में

दिया जाता है। पर मथुरा जिले के अधिकांश भाग में अनु जोड़ा जाता है—अन् जोड़ने की प्रवृत्ति अन्नें में परिवर्तित हो गई है—आमनु, आमन्नें। खड़ीबोली के ओं (आमों) का सम्बन्ध संस्कृत षष्ठी बहुवचन—'आनां' से माना गया है।[१] पालि में पु० अका० ष० बहुवचन में आनं मिलता है। एक० बुद्धस्सः, बहु० बुद्धानं, अत्त का एकवचन ष० अत्तनो, बहुवचन अत्तानं; राज राजन् का ष० एक० रज्जो, रज्जस्स, राजिनो, राजस्स रूप मिलते हैं। इसका बहुवचन रूप राजानं मिलता है। गुणवन्तु का भी ष० बहुवचन गुणवन्तानं मिलता है।

प्राकृत में भी पुंल्लिग अकारान्त षष्ठी के रूप—आनं से युक्त मिलते हैं—

एक०	बहु०
बच्छस्स	बच्छाण, वच्छाणं

राजन् शब्द में भी षष्ठी बहु० (आम्) के लिए—णं का प्रयोग होता है।[२] जैसे राज्ञाम् राआणं। किन्तु अपभ्रंश में षष्ठी बहुवचन (आम्) में अकारान्त शब्दों के लिए—हुँ रूप का प्रयोग होता है।[३] तृणानां तणहुँ; देव देवहुँ।

ब्रजभाषा में अपभ्रंश वाला रूप प्रचलित नहीं हुआ। आनं या आणं रूप अन् या अनु के रूप में मिलते हैं। अकारान्त का उकारान्त ब्रज में हो जाता है और अपभ्रंश में भी। जैसे सं० कथितं अप० दधिदु ब्र० कहिउ।

इस अनु की बहुवचन बनाने की शक्ति इतनी लोकप्रिय है कि ब्रज में बहुवचन बनाने के लिए इकारान्त, उकारान्त आदि सभी स्त्री० तथा पु० शब्दों को अनु लगा कर बहुवचन बनाया जाता है—

	एक०	बहु०
पुंल्लिग—	पौधा	पौधानु, पौधनु
	बन्दरु	बन्दरनु
	गांठि	गांठिनु

लिखा है, "आधुनिक ब्रज में सम्पूर्ण क्षेत्र में व्यञ्जनान्त संज्ञाओं में 'अन्' जोड़कर विकृत रूप बहुवचन बनाया जाता है। आम से आमन्; ईंट से ईटन्; केवल अलीगढ़, एटा तथा बदायूँ में अनु जोड़ा जाता है"—ब्रजभाषा, पृष्ठ ५८
१. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी भाषा का इतिहास, पृष्ठ २५८ २. आमोंण—प्राकृत-प्रकाश, पृष्ठ ५।४० ३. हेमचन्द्र, प्रा० व्या० ४।३३९

स्त्रीलिंग—बहू	बहूनु
दाई	दाईनु
गऊ	गऊनु
गाइ	गाइनु

इनमें से अधिकांश में केवल—नु ही रह गया है, अ समाप्त हो गया है। स्त्रीलिंग शब्दों के षष्ठी बहुवचन शब्दों का ब्रजभाषा के स्त्रीलिंग शब्दों की तुलना करिये—

	प्रा०	**ब्रज०**
नदी (णई)	णईणं, णईण	नदीनु
माला	मालाणं, मालाण	मालानु
बधू	बहूणं, बहूण	बहूनु

इस प्रकार इस प्रावृत्ति में ब्रज की बोली प्राकृत के अधिक समीप है।

कर्ता एकवचन—

प्रथम द्वितीया एकवचन (सि, अम्) की विभक्तियों के पूर्व शब्द के अन्त्य अ>उ रूप मिलता है।[१] इसको डॉ० तगरे ने सभी प्रादेशिक अपभ्रंशों की विशेषता माना है।[२]

प्रथमा एकवचन के कुछ उदाहरण अपभ्रंश से दिये जा सकते हैं—

दशमुखः	दहमुहु
भयंकरः	भयंकरु
शंकरः	संकरु

द्वितीया एकवचन के उदाहृण—

चतुर्मुखं	चउमुहु
षण्मुखं	छमुहुं

नपुंसक लिंग में भी—उ स्वर हो जाता है—

मुखकमलं	मुंहकमलु[३]

---

१. हेमचंद्र प्राकृत व्याकरण, ४।३३१ २. OIA-a>u. It is the characteristic of this period that -u of Noun. Sing. is applied to indeclinables also, in all the regional Aps. [Historical Gr. of Ap., p. 51] ३. प्राकृत व्याकरण, ४।३३२, छंद २

नपुंसक लिङ्ग के आकारान्त रूपों के प्रथमा और द्वितीया एक० (सु, अम्) में —उ का योग मिलता है[१]—

तुच्छकं तुच्छउं

'उक्ति व्यक्ति प्रकरण' की भाषा को डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने 'प्राचीन कोसली' माना है।[२] शौरसेनी अपभ्रंश के प्रथमा एकवचन के प्रत्यय—उ का प्रभाव इस भाषा पर बहुत है। यहाँ तक कि प्रथमा के अतिरिक्त अन्य विभक्तियों में भी उकारान्त पदों का प्रयोग हुआ है। हेमचन्द्र के बाद 'उक्ति-व्यक्ति' में होती हुई यह प्रवृत्ति अवधी[३] और ब्रजभाषा[४] तक अबाध गति से प्रचलित रही। खड़ीबोली में इस प्रवृत्ति का लोप हो गया। यह भी हो सकता है कि खड़ीबोली से सम्बन्धित अपभ्रंश में यह प्रवृत्ति आरम्भ से ही न रही हो। वर्णरत्नाकर में इस प्रवृत्ति के दर्शन नहीं होते। कीर्तिलता में इसके प्रयोग कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य में ही हैं।[५] सूरसागर में यह प्रवृत्ति नियमित नहीं मिलती, पर ब्रज की प्रचलित बोली में यह स्पष्ट दीखती है। इसमें छप्परु, घरु, बरु आदि शब्द हैं जिनमें यह प्रवृत्ति स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। इस स्थान पर कोई अपवाद नहीं मिलता।

प्रथमा बहुवचन में अकारान्त को उकारान्त ब्रज में नहीं किया जाता। बहुवचन और एकवचन के प्रथमा रूपों में यही मुख्य अन्तर है।

वर्तमानकालिक कृदन्त

प्राकृतों में वर्तमानकालिक कृदन्त शतृ और शानच् के लिए—न्त और—माण प्रत्यय जुड़ते हैं।[६]

पठत्, पठमान् पठन्तो, पठमाणो
हसत्, हसमान् हसन्तो, हसमाणो

अपभ्रंश में—अन्त तथा—माण अन्तवाले वर्तमानकालिक कृदन्त मिलते हैं।[७] पश्चिमी अपभ्रंशों में—अन्तु रूप भी मिलता है। डॉ० तगरे ने इसका काल-क्रम इस प्रकार निर्धारित किया है[८]—

५०० ई० १—भभन्त

---

१. प्राकृत व्याकरण, ४।३५३ २. उक्ति व्यक्ति प्रकरण, स्टडी, पृष्ठ २ ३. उपजा हिय अति हरषु विसेखा (मानस) ४. स्यामु हरित दुति होवु (बिहारी)। ५. तबहु पिआजु पिआजु पइ जसु पत्थावे पुण्डु। ६. न्त-माणौ-शतृ-शानचोः, प्राकृत प्रकाश, ७।१० ७. डॉ० तगारे, Historical Gr. of Ap., पृ० ३१४ ८. वही।

६००-१००० ई०—जणन्तु, बसन्तु, मुणन्तु, सहन्तु, लहन्तो। यह उकारान्त रूप ब्रज की बोली में इसी वर्तमानकालिक कृदन्त में मिलता है। पर इन्हीं शब्दों को यदि ब्रज की बोली में लिखा जाय तो इस प्रकार लिखा जायगा—

अप०	ब्रज
भभन्तु	भभतु
जणन्तु	जान्तु
बसन्तु	बसतु
सहंतु	सहँतु
लहन्तो	लहँतु (लेंतु)

अन्तु वाले रूप केवल प्रथमा एकवचन में मिलते हैं। प्रथमा बहुवचन में—अन्त वाले ही रूप मिलते हैं—भभत, जान्त आदि। ब्रजभाषा में वर्तमानकालिक कृदन्त को उकारान्त कर दिया जाता है।[1] जैसे जाँतु, चल्तु, आँमतु। यदि आरम्भिक ध्वनि दीर्घ स्वर से संयुक्त होती है तो उसका नासिक्यीकरण कर दिया जाता है—आँमतु, जाँतु, खाँतु, गाँमतु। मथुरा जिले के कुछ भागों में, नासिक्यीकरण नहीं मिलता—आवतु जातु, खावतु, रोवतु आदि। मथुरा के जिन भागों में नासिक्यीकरण मिलता है, उन भागों में भी चमारों की बोली में नासिक्यीकरण नहीं मिलता। चमारों की बोली में चल्, गल्, मिल् आदि से बने हुए रूपों ल्तु न मिल कर न्तु मिलता है।

	अन्य	चमार
मिल्	मिल्तु	मिन्तु
चल्	चल्तु	चन्तु
गल्	गर्तु	गन्तु

'न्तु' वाली प्रवृत्ति साम्य के आधार से आई हो सकती है। इसका अपभ्रंश से बहुत कुछ साम्य है।

आज्ञार्थ

प्राकृत वैयाकरणों के अनुसार कुछ विशेष रूप अपभ्रंश में मिलते हैं, जो प्राकृतों में नहीं मिलते थे—

प्र० पु० बहुवचन—हुं (huin)[2]

---

१. 'पश्चिम में साधारणतया–तु—प्रत्यय जोड़ते हैं'—' डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, 'ब्रजभाषा', पृ० ९९ २. क्रमदीश्वर का संक्षिप्त व्याकरण, पृ० ६६

द्वि० पु० एकवचन–इ,–उ,–ए–हृ।[१]

तृ० पुं० एकवचन—ऊ[२]

शेष रूप प्राकृतों के समान ही थे। प्राकृतों में आज्ञार्थ के लिए निम्नलिखित रूप थे।[३]

एकवचन

प्र० पु० आमु (ămu)

द्वि० पु० शून्य (या—अ)– (अ, –ए–) सु,–एहि, अर्द्ध भाग० आहि

तृ० पु० अउ, शौ० मा० ढ० अदु

बहुवचन

प्र० पु० अर्ध० जै-म० आमो; महा०, शौ०, भाग०, ढ० तथा जै० म० मी–
(– –) म्ह

द्वि० पु०—अह, शौ० मा० (ढ)–अथ, –एध, –अथ

तृ० पु०—अन्तु

अपभ्रंशों में इसके अनेक रूप मिलते हैं। पर इन अनेक रूपों में से भी नीचे लिखे छः रूप अधिक प्रयुक्त होते हैं—

द्वि० पुं० एकवचन : शून्य (या-अ)–अह, –अहु

तृ० पु० एकवचन : –(अ) उ, तृ० प्र० बहु० (–) : न्तु

द्वि० पुं० बहुवचन :– (अ) हु।

प्रथम पुरुष के रूप प्रायः नहीं मिलते हैं; जो मिलते हैं वे अपवाद स्वरूप और प्राकृत के अनुकरण पर हैं। अपभ्रंश के ये रूप—उ की ओर ही विकसित होते दीखते हैं। यह बात अहु, न्तु, हु से स्पष्ट है।

ब्रजभाषा

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने प्राचीन ब्रज के मध्यम पुरुष वर्तमान आज्ञार्थ बनाने वाले निम्नलिखित प्रत्ययों का उल्लेख किया है—

एकवचन	बहुवचन
–अ, –उ,–इ–हिं	–अहु, –औ, –ओ
	–हु–उ

---

१. हेमचन्द्र ४, ३८७, क्रमदीश्वर, ६४ २. क्रमदीश्वर, ६५ ३. Pischel, Grammatik § 46

इनमें से एकवचन का अन्तिम प्रत्यय—हिं दीर्घ स्वरान्त धातुओं के बाद आता है—जाहिं, खाहिं, आदि। बहुवचन के प्रत्ययों में अन्तिम दो भी दीर्घ स्वरान्त धातुओं के बाद आते हैं—लेहु, जाउ, आउ, खाउ।

मध्यम पुरुष एकवचन में शून्य (अ) प्राकृत में भी था और अपभ्रंश में भी यह पहले देखा जा चुका है। वही—अ ब्रजभाषा में भी डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने माना है। यह—अ वाला रूप मथुरा की छाता तहसील में आज भी बोलचाल में है। पर अन्य स्थान पर अ वाला रूप नहीं मिलता, वहाँ—इ वाला रूप मिलता है। चलि, टरि, करि आदि। यहाँ हमारा सम्बन्ध–इ वाले रूप से नहीं है। —उ वाला रूप प्रा० और अप० में प्रचलित था। प्राचीन ब्रज में भी था। पर आजकल मथुरा जिले की ब्रज की बोली में केवल दीर्घ स्वरान्त धातुओं में—उ जुड़ा हुआ मिलता है–तू जाउ, तू आउ, खाउ। पर नवीन पीढ़ी के ब्रजभाषा-भाषी अब इस—उ को भी छोड़ रहे हैं। केवल जा, खा, आ, धातु रूप ही बोले जाते हैं। इस प्रकार मथुरा ज़िले की आधुनिक ब्रज की बोली में से—उ वाले मध्यम पुरुष एकवचन, आज्ञार्थ के रूप समाप्त होते जा रहे हैं।

मध्यम पुरुष बहुवचन के रूप प्राकृतों में—अ से युक्त थे। अपभ्रंश में मध्यम पुरुष बहुवचन का रूप—उ से युक्त हो गया, यह पीछे दी हुई सारिणी से स्पष्ट है। प्राचीन ब्रजभाषा में भी—अहु, और—उ वाले रूप थे। पर मथुरा ज़िले की आधुनिक बोली में य—अहु और—उ वाले रूपों का अभाव हो गया। केवल—औ वाले रूप शेष रह गये हैं—चलौ, आऔ, गावौ आदि। पर दीर्घ स्वरान्त धातुओं में—उ लगाने की प्रवृत्ति आज भी प्रचलित है।

तुम	लेउ
तुम	देउ

किन्तु यदि—आकारान्त धातु होती है तो—और ही लगाया जाता है।

उत्तम पुरुष आज्ञार्थ के रूप अपभ्रंश में ही लुप्त हो गये थे।[१] ब्रज में भी नहीं मिलते। अन्य पुरुष के प्रा० और अपभ्रंश रूप—उ से युक्त थे। मथुरा ज़िले की बोली में अन्य पुरुष के निम्नलिखित आज्ञार्थ रूप प्रचलित हैं—

---

१. As expected there are no forms of I p. Singular and plural–Dr. Tagare, Historical Gr. of Ap., p. 297.

एकवचन

१. ह्वाते कहिये उ कि बु चलै (ह्रस्वस्वरान्त धातु)
२. " " जाइ (दीर्घ स्वरान्त धातु)
३. " " आवै "
४. " " खावै "
५. " " न्हावै "
६. " " ले (इ) "
७. " " दे (इ) "

बहुवचन

इसमें चलैं, जाइँ, आमैं, खामैं, न्हामैं, लें, दें रूप हो जाते हैं। इस प्रकार–उ वाले रूप यहाँ से भी लुप्त हो गये।

ऊपर केवल मुख्य रूपों के विकास-इतिहास पर दृष्टि डाली गई है। वैसे अन्य रूपों में भी उकार की प्रवृत्ति मिलती है। जैसे, वर्तमान निश्चयार्थ में सहायक क्रिया तथा मूल क्रिया का मध्यम तथा प्रथम पुरुष, एकवचन हतुऐ रूप मिलता है।[१] वर्तमान सम्भावनार्थ में एकवचन 'होउ' मिलता है। आप प्राचीन ब्रज में परिमाणवाचक उकारान्त क्रिया विशेषण कछु था।[२] समुच्चयबोधक क्रिया विशेषण और का ब्रज में औरु मिलता है। किन्तु ये अधिक महत्वपूर्ण नहीं हैं।

ब्रजभाषा की इन दो ऐतिहासिक विशेषताओं—उकार-बहुलता और 'औकारान्तता' या 'ओकारान्तता'—का विवेचन करने के पश्चात्, साधारणतः ब्रज-भाषा की उच्चारण-विधि और व्याकरण का भी संक्षिप्त परिचय देना आवश्यक है।

१.७.

ब्रजभाषा और ब्रज की प्रचलित बोली में अन्तर है। ब्रज की आधुनिक बोली के अनेक रूप मिलते हैं। बोली रूपों की व्याख्या प्रस्तुत प्रबन्ध में है ही। साहित्यिक ब्रजभाषा की संक्षिप्त रूपरेखा नीचे दी जा रही है—

ध्वनि-प्रकरण

व का ब हो जाता है—

विपिन=बिपिन
दिवस=दिबस
वन=बन

---

१. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, ब्रजभाषा, पृ० १०५ २. वही, पृ० १०८

श का स हो जाता है—

देश=देस

वंश=बंस

शब्द का अन्तिम अक्षर यदि 'ल' हो और दीर्घ हो तो वह 'र' के रूप में परिवर्तित हो जाता है—

काले=कारे

पनाले=पनारे

भोली=भोरी

इसके विपरीत इ=ल—

साऊकार=साऊकाल

रेजु=लेजु

इस नियम के अपवाद भी हैं। पर बहुधा यह प्रवृत्ति देखने को मिलती है। कहीं-कहीं 'ड़' का भी 'र' हो जाता है—

भीड़=भीर

नगाड़े=नगारे

भिड़े=भिरे

संस्कृत 'ण' ब्रज में निर्विवाद रूप से 'न' हो जाता है—

प्राण=प्रान

रण=रन

गण=गन

'क्ष' का विकास दो प्रकार से मिलता है—क्ष=छ और क्ष=ख—

क्षमा=छमा

लक्ष्मी=लच्छिमी

क्षण=छन

क्षोभ=छोभ

क्षीर=खीर

अक्षय=अखै

ध्वनि-विकास की ये प्रमुख दिशाएँ हैं।

उपसर्ग

कर्त्ता—मैं, नें ने
कर्म, सम्प्रदान—कों, कौं, कूं, कुं, कौ
करण, अपादान—सों, सौं, सूं, सुं, ते तें, तैं
सम्बन्ध—को, कों, कौ, कौं, के, कै, कैं, की, कि
अधिकरण—में, मैं, मै, मांझ, पै, पर, माहिं, पाहिं, माँह, महैं, माहीं, मंझारन
मधि।

सर्वनाम

उत्तम पुरुष

एकवचन	मूल रूप	हौं, मैं, हों, हुं
	विकृत रूप	मो, मौ
	सम्बन्ध	मेरौ, मो, मोरी
बहुवचन	मूल रूप	हम
	विकृत रूप	हम
	सम्बन्ध	हमारो, हमारौ

मध्यम पुरुष

एकवचन	मूल रूप	तू, तुं, तैं, तें
	विकृत	तो
	सम्बन्ध	तेरो, तेरौ
बहुवचन	मूल रूप	तुम
	विकृत	तुम
	सम्बन्ध	तुम्हारो, तिहारौ

निश्चयवाचक सर्वनाम

'यह'

एकवचन	मूल रूप	यह, जिह (जिअ)
	विकृत	या, जा
बहुवचन	मूल रूप	ये, ए
	विकृत	इन, इन्ह

'वह'

एकवचन	मूल रूप	वह, वो, (वु)
	विकृत	वा
बहुवचन	मूल रूप	वे, वै
	विकृत	उन, विन

अन्य सर्वनाम

सम्बन्धवाचक जो, जु, (बहु०) जे
 विकृत रूप जा, (बहु०) जिन
नित्यसम्बन्धी सो, (बहु०) ते, से
 विकृत रूप ता, (बहु०) तिन
प्रश्नवाचक कौन, को, कौ
 विकृत रूप का, कौन
अनिश्चयवाचक कोऊ, कोई
 विकृत रूप काहू, काऊ
निजवाचक आप, आपु
 विकृत रूप आपुनि, आपन
आदरवाचक आप, आपु
 विकृत रूप आपुन

सहायक-क्रिया

वर्तमान, भूत और भविष्य निश्चयार्थ में 'होना' क्रिया के निम्नलिखित रूप बनते हैं—

		एकवचन	बहुवचन
वर्तमान	उ० पु०	हों, हौं, हूं	हैं, आहि
	म० पु०	है, (ऐ)	हो (औ)
	अ० पु०	है, अहै, आहि	हैं (एं)
भूत	पुल्लिग	हो, हतो, हुतो, हौ हते, भयौ, भो	है, हुते, हते, भये
	स्त्रीलिंग	ही, हुती, भई	हीं, हुतीं, भईं
भविष्य	उ० पु०	ह्वै, हौं	ह्वै हैं
	म० पु०	ह्वै है	ह्वै हौं
	अ० पु०	ह्वै है, होइ हैं, होयगौ	ह्वै हैं, होउगे, होहिंगे, होंयगे।

कृदन्त

पुल्लिग तथा स्त्रीलिंग दोनों में वर्तमानकालिक कृदन्त के रूप व्यञ्जनात धातुओं में 'अत' जोड़कर तथा स्वरान्त धातुओं में 'त' जोड़कर बनाए जाते हैं—जैसे खावत, आवत, जात आदि। इनके अतिरिक्त पुल्लिग में 'अतु' तथा स्त्रीलिंग में 'ति' या 'ती' लगाकर भी रूप खड़े किए जाते हैं। परियतु, निहारति, इतराती।

भूतकालिक कृदन्त निम्नलिखित प्रत्यय लगाकर बनाये जाते हैं—

एकवचन	बहुवचन
ओ, औ, यो, यौ	ए, ये, यै
स्त्री०—ई	स्त्री०—ईं

पूर्वकालिक कृदन्त, धातु में प्रायः 'इ', 'य', 'ऐ' आदि जोड़कर बनाए जाते हैं। समुझि, खोय (खोइ), दै आदि।

प्रधान-क्रिया

उक्त वर्तमानकालिक कृदन्त रूपों के अतिरिक्त, वर्तमान निश्चयार्थ के लिए धातु में नीचे लिखे प्रत्यय लगाकर भी रूप खड़े किये जाते हैं—

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पु०	ओं, औं, ऊँ	अइँ, एँ, हिं
मध्यम पु०	अहि	ओ, औ
अन्य पु०	ए, ऐ, इ, य	एँ, ऐं

भविष्य निश्चयार्थ में निम्नलिखित प्रत्यय जोड़े जाते हैं—

	एकवचन	बहुवचन
उ० पु०	ऊँगौ, ओंगौ, उँगौ, इहौं, इहों	एँ, इहैं
	(स्त्री०) ओंगी, औंगी, उँगी	(स्त्री०) अहिंगी, इँगी
म० पु०	यगौ, ऐगौ, इहैं	औगे, ओगे, हुगे, इहौ
	(स्त्री०) ऐगी, इगी	(स्त्री०) अहुगी, ओगी, औगी
अ० पु०	ऐगो, एगौ, एगौ, यगौ, इहै	एँगे, हिंगे, ऐंगे, यगे, इहैं
	(स्त्री०) ऐगी, अहिगौ, यगी, इगी	(स्त्री०) अहिंगी, इंगी।

भूत निश्चयार्थ के लिये भूतकालिक कृदन्त रूपों का ही व्यवहार होता है। इनका उल्लेख ऊपर हो चुका है।

साहित्यिक ब्रजभाषा का ढाँचा स्थिर हो गया। भक्तिकाल से भारतेन्दु-काल तक लगभग एक ही साँचे में ढली-पली साहित्यिक ब्रजभाषा चलती रही। उस काल

के बोलचाल के रूप क्या थे, आज यह नहीं बताया जा सकता। वे रूप विकसित होते हुए चले आए हैं। आज जो बोलियाँ ब्रज-क्षेत्र में बोली जाती हैं, उनका अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। साहित्यिक रूप और बोली-रूप में अनेक अन्तर मिलते हैं।

ब्रज की आधुनिक बोलियाँ

ब्रज की बोलियों का अध्ययन अनेक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। सबसे पहली बात यह है कि यहाँ अनेक ऐसी जातियाँ हैं जिनका भारतीय आर्य भाषाओं के विकास में विशेष हाथ रहा है। साथ ही उन जातियों की बोलियों की कुछ विशेषताएँ आज तक बनी हुई हैं। उन विशेषताओं को थोड़ा-बहुत ब्रज का प्रत्येक ग्रामीण समझता है। भाषा ही नहीं, ब्रज की संस्कृति में भी उन जातियों का विशेष स्थान है। कुछ अपराधी घुमन्तू जातियाँ भी ब्रज में मिलती हैं। इनकी भाषा का मोटे रूप से कोई प्रभाव ब्रज की बोलियों पर नहीं पड़ता। पर यह देखना महत्वपूर्ण है कि उनकी ध्वनियाँ कहाँ की हैं और ब्रजभाषा की ध्वनियों का उच्चारण वे कैसे करते हैं।

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने ब्रज के क्षेत्र में आने वाले जिलों का एक-एक उदाहरण अपनी 'ब्रजभाषा' पुस्तक में दिया है।[1] पर जातिगत और स्थानगत विशेषताएँ एक जिले की बोली में ही अनेक भिन्नताएँ उत्पन्न कर रही हैं। उन भिन्नताओं का अध्ययन महत्वपूर्ण होगा, क्योंकि ब्रजभाषा के उपादानों का स्रोत इन्हीं भिन्नताओं में है। प्रत्येक जिले की जातिगत बोली-भेदों को यहाँ नहीं दिया जा सकता। मथुरा जिले की मुख्य-मुख्य जातियों और उनकी भाषागत भिन्नताओं को यहाँ मोटे रूप में दिया जा रहा है। इसी प्रकार प्रत्येक जिले की भाषागत भिन्नताओं का अध्ययन होना चाहिये। ब्रज की आधुनिक बोलियों का अध्ययन इन्हीं भिन्नताओं का अध्ययन है।

०. ८. मथुरा ज़िला : भौगोलिक परिस्थिति

स्थिति—पञ्जाब और राजस्थान से मिला हुआ उत्तरप्रदेश का यह पश्चिमी ज़िला ब्रज में मध्यवर्ती होने के कारण ब्रजभाषा की एक प्रमुख बोली का केन्द्र रहा है। मथुरा ज़िले के उत्तर में ज़िला गुड़गाँव (पञ्जाब) तथा अलीगढ़ का पश्चिमी भाग, पूर्व में ज़िला अलीगढ़ और एटा, दक्षिण में ज़िला आगरा और पश्चिम में ज़िला भरतपुर (राजस्थान) स्थित हैं। अक्षांश तथा देशान्तर रेखाओं के अनुसार मथुरा

---

१. 'ब्रजभाषा', प्रयाग, सं० २०११।

ज़िला क्रमशः २७.° १४.′ ३०″ उत्तरी अक्षांश से २७.° ५८′ उत्तरी अक्षांश और ७७.° १९′ ३०″ पूर्वी देशान्तर से ७८.° ३१′ पूर्वी देशान्तर तक स्थित है।[1]

०.८.१. क्षेत्रफल और जनसंख्या

मथुरा ज़िले का क्षेत्रफल लगभग १,४५२.७ वर्गमील[2] और जनसंख्या ९१२,२३४ है।[3] मथुरा, छाता, माँट और सादाबाद तहसीलों में सम्पूर्ण ज़िला विभक्त है। सन् १९५१ की जनगणना[4] के अनुसार ग्रामीण क्षेत्र की जनसंख्या इस प्रकार है—

तहसील	गाँव संख्या	पुरुष	स्त्री	योग
मथुरा	२४३	९३,५३,६	७९,६६७	१७३,२०३
छाता	१७७	८५,७७८	७३,०९३	१५८,८७१
माँट	२६८	१०६,६३२	९०,४२४	१९७,०५६
सादाबाद	२२७	१०७,२७४	९१,१८८	१९८,४६२

मथुरा, वृन्दावन नगरपालिकाओं तथा जिले के टाउनएरिया और कैण्टूनमेण्ट बोर्ड की जनसंख्या इस प्रकार है—पुरुष—९९,६४४; स्त्री—८४,३७०; योग १८३,९६१।[5]

०.८.२. धरातल

मथुरा ज़िले का अधिकांश भाग समतल मैदान है जिसमें कहीं-कहीं पहाड़ियाँ और बिखरे हुए टीले हैं। इसकी ऊँचाई समुद्र की सतह से प्रायः ५५० और ६५० फीट के बीच है।[6] यमुना नदी उत्तर से दक्षिण बहते हुए इस ज़िले को पूर्वी और पश्चिमी भागों में विभाजित करती है। माँट और सादाबाद परगने जो कि पूर्वी भाग में हैं, गंगा-यमुना-दोआब के अंग हैं। यह भाग समतल मैदान और सिंचाई की सुविधाओं से युक्त है। पश्चिमी भाग जिसमें मथुरा और छाता के परगने आते हैं, अपेक्षाकृत प्राकृतिक सुविधाओं से वञ्चित हैं। ऐतिहासिक अवशेषों की दृष्टि से और पौराणिक दृष्टि से यह भाग बहुत महत्वपूर्ण है।

---

१. इम्पीरियल गजेटियर, जिल्द १०, पृ० ४३। २. वही। ३. ब्रज का इतिहास, (भाग १), सम्पादक, कृष्णदत्त वाजपेयी, पृ० ४। ४. डिस्ट्रिक्ट पापूलेशन स्टैटिस्टिक्स, उ० प्र० (७ मथुरा)। ५. Excluding the Population of two missing N. C. R. S.। ६. कृष्णदत्त वाजपेयी, ब्रज का इतिहास, भाग १, पृ० ६।

कृषि की योग्यता की दृष्टि से मथुरा ज़िले को बञ्जर, खादर और बाँगर मिट्टियों में विभाजित किया जा सकता है। बञ्जर भूमि का उपयोग धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा है। खादर यमुना के तटों और कगारों की भूमि है जहाँ बिना सिंचाई के भी कृषि करना सम्भव है। बाँगर सबसे उपजाऊ मैदानी, कृषि योग्य भूमि है। मिट्टी के प्रकारों की दृष्टि से मथुरा ज़िले में कंकड़ीली, भूड़, दुमट तथा चिकनौट मिट्टी मिलती है। कंकड़ीली भूमि यमुना के कछारों में तथा अन्य तीव्र जलप्रवाह वाले क्षेत्रों में पाई जाती है। नर्मदा नदी के कंकड़-स्तर के समान ही यहाँ कंकड़ीले पर्तों में जीव-वनस्पति-अवशेष (Fossils) पाए गए हैं।[१] भूड़, माँट तहसील के भदौरा और छाँहरी गाँव में मुख्यतः तथा साधारणतः अन्य स्थानों पर भी मिलती है। यह मिट्टी अपनी शुष्कता और अपने ऊबड़-खाबड़ रूप के कारण कृषि-कार्य के लिये सामान्यतः अनुपयुक्त है। दुमट, दोआब की विशिष्ट और उपजाऊ मिट्टी है[२] जिसमें रेत, सिल्ट, तथा चीका (Clay) का मिश्रण रहता है। चिकनौट मिट्टी नोंहझील आदि क्षेत्रों में पाई जाती है। अपने अधिक घनत्व और कठोरता के कारण इस मिट्टी में कृषि-कार्य कठिन है।

०.८.३. मथुरा जिले के पर्वत

मथुरा जिले के पश्चिमी क्षेत्र में अरावली पहाड़ियों की उत्तरी शृंखलाएँ मिलती हैं। इनमें चरण पहाड़ी जो कामबन, बरसाना और नन्दगाँव में फैली हैं, मुख्य हैं। मथुरा तहसील में गिरिराज पर्वत गोवर्द्धन के समीप एक लहर के समान प्रतीत होता है। ये पर्वत सम्भवतः भूगर्भिक इतिहास के प्राचीन युग में बहुत ऊँचे और विस्तृत थे[३] जिनका प्रभाव वहाँ के निवासियों पर अवश्य ही पड़ा होगा। वर्तमान समय में ब्रज की पहाड़ियों का प्रभाव बस्तियों और वहाँ के निवासियों पर विशेष नहीं दीखता। परन्तु फिर भी नन्दगाँव की स्त्रियाँ और वहाँ के पुरुष, मथुरा ज़िले के अन्य स्थानों की अपेक्षा दृढ़ हैं क्योंकि वे कुछ पर्वतीय क्षेत्रों में स्थित हैं।

ब्रज के पर्वतों का वहाँ की आर्थिक क्रियाओं पर स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित हो

---

१. ए० जी० लौगन, ओल्ड चिप्ड स्टोंस आव इण्डिया, पृ० ३१। २. यह कहा जाता है कि जब हिमालय की तीसरी शृंखला शिवालिक पर्वतमाला खड़ी हो रही थी, तब इसकी तलहटी में एक खाई बन गई। इस खाई में गंगा-यमुना एवं अन्य नयी नदियों ने हिमालय के टौल, कंकड़-पत्थर तथा मिट्टी डालना प्रारम्भ किया। खाई के भरने पर गंगा-यमुना का मैदान बना। ३. जिओलाजी आव इण्डिया, **डी० एन० वाडिया।**

सकता है। पर्वतीय क्षेत्रों में स्थित बस्तियाँ कुछ पिछड़ी हुई सी हैं और कृषि-कार्य में स्त्रियों और पुरुष, दोनों के सहकार्य के बिना जीवन-यापन की समस्या हल नहीं हो पाती। पर्वतों में पशु-पालन की सुविधाएँ अधिक होने के कारण, उन क्षेत्रों में पशु-धन की अधिकता है। गूजर, जाट तथा जादों जातियाँ मुख्यतः इस पर्वतीय भू-भाग में पशु-पालन का व्यवसाय मुख्यतः करते हैं।

गोवर्द्धन पर्वत, पर्वत के रूप में मनुष्य-जीवन को अधिक प्रभावित नहीं करता। इसकी स्थिति की सूचना वराहपुराण में मिलती है। गोवर्द्धन गिरि और यमुना के बीच मथुरापुरी है।[1] विष्णुपुराण में गोवर्द्धन शैल का उल्लेख है।[2] यह महात्मा-भार्गव का रम्य एवं पुण्यस्थान है।[3] ब्रह्मपुराण के अध्याय १८७ तथा १८९ में गोवर्धन लीला का विवरण है। इसी प्रकार अन्य पहाड़ों से भी कुछ कृष्ण-कथाओं का सम्बन्ध बताया जाता है। ११ शिलाएँ प्रसिद्ध हैं——सिन्दूरी शिला, कज्जली शिला, बजनी शिला, सुन्दर शिला, श्रृंगार शिला, सुगन्धी शिला, मानक शिला, खिसलनी शिला, चित्र-विचित्र शिला, स्थान शिला और दण्डौती शिला। इन्हीं पर्वतों में ६ स्थान ऐसे बताए जाते हैं जहाँ कृष्ण जी ने गोपियों से दान लिया। वे ये हैं——करहला, गोवर्द्धन पर, दानघाटी, साँकरी खोर, गहवरवन तथा कदम-खण्डी।

पर्वतों का नाम आते ही दूसरा विचार वहाँ के सुन्दर दृश्यों के सम्बन्ध में उठता है। कालिदास ने अपने रघुवंश में 'गिरिराज' की शोभा का वर्णन किया है। उस वर्णन में वर्षा में धुले हुए शिलाखण्डों, शिलाजीत की सी सुगन्धि, रमणीक कन्दराओं तथा मयूरों के नृत्य के सम्बन्ध में उल्लेख है।[4] इस वर्णन में सभी सत्य बातें हैं। वस्तुतः वर्षा-ऋतु में ब्रज के पर्वतों की शोभा बढ़ जाती है। धौ तथा बन्ना के वृक्षों से पर्वत-मालाएँ आच्छादित हो जाती हैं तथा मयूरों की कुहुक तथा उनका नृत्य, वातावरण को और सुन्दर बना देते हैं। बरसाने तथा नन्दगाँव में इसी शोभा को दृष्टि में रखकर कृष्णलीलाएँ भादों में की जाती हैं।

०.८ ४. झीलें

माँट तहसील में नौह झील एक प्रसिद्ध झील है। यह दलदली झील लगभग

---

१. वराहपुराण, अध्याय १६५। २. अंश ५।१०।३८। ३. ब्रह्मपुराण २७।४४; ९१।१।

४. अध्यास्य चाम्भः पृषतोक्षितानि शैलेयगन्धीनि शिलातलानि।
कलापिनां प्रावृषि पश्य नृत्यं कान्तासु गोवर्धनकन्दरासु।।-रघुवंश ६।५१

यमुना से दो मील पूर्व में है। इस झील की औसत लम्बाई २॥ मील तथा चौड़ाई १॥ मील है। वर्षा में यह विस्तार बहुत बढ़ जाता है। दूसरी झील सादाबाद तहसील में पानीगाँव झील है। इन झीलों से ऐसा प्रतीत होता है कि पहले यमुना वहीं होकर बहती थी। मथुरा से पाँच मील दूर कोइला नामक झील है। कीठम झील भी प्रसिद्ध है। अन्य छोटी-मोटी झीलों की प्राकृतिक छटा दर्शनीय है।

इन झीलों का सिंचाई के लिए उपयोग नहीं होता। पानी की चिड़ियों तथा मछलियों का शिकार अवश्य होता है। झील के पास के गाँव में कुछ नमी रहती है। झील के आसपास काफी दूर तक झील के उमड़ने के भय से खेती नहीं हो पाती।

०.८.५. मथुरा की नदियाँ

नदियों की कमी होना ब्रज-प्रदेश की एक विशेषता है। यमुना ही मुख्य नदी है, अन्य दो सहायक नदियाँ (करवन और पथवाह) बरसाती नदियाँ हैं। यमुना नदी चौंदरा गाँव पर मथुरा जिले में प्रविष्ट होकर सादाबाद तहसील के मदोर ग्राम से इस जिले को छोड़ती है। वर्ष के आठ महीनों में यमुना एक मामूली नदी की भाँति रहती है। इसका मार्ग बालू के मैदानों तथा खार और खादर से होकर है। किन्तु यमुना की एक नहर से पश्चिमी किनारे के गाँवों की सिंचाई की काफ़ी सुविधा प्राप्त हुई है। यमुना में नाव भी चल सकती है किन्तु सदैव एक सी भरी नहीं रहती, इसका भाग टेढ़ा-मेढ़ा है तथा आसपास बालू की पट्टियाँ हैं। इसलिए नावों से व्यापार अधिक नहीं होता।

यमुना की स्थिति का मथुरा जिले की बोली के अध्ययन में बहुत अधिक महत्व है। पूर्वी तथा पश्चिमी किनारों की बोलियों में स्पष्ट अन्तर दिखाई पड़ता है। पश्चिमी तट पर 'उकारान्त' शब्द नहीं है जो पूर्वी तट की बोलियों की विशेषता है। इस बोलीगत प्रभाव को आगे देखा जायगा।

०.८.६. जलवायु

गर्मियों में गरम और जाड़ों में यह ज़िला अत्यन्त शीतल रहता है। वर्षा की मात्रा कम और अनिश्चित है। वर्षा की कमी से धूल भरी आँधियों के द्वारा राजस्थान की पीली बालू तक उड़कर आ जाती है, जिससे जलवायु और भी अधिक उग्र हो जाती है। यहाँ पर्वत, नदियाँ तथा झीलें इस प्रकार की नहीं हैं जो जलवायु को प्रभावित कर सकें। अतः यहाँ की जलवायु स्थलीय है।

०.८.७. बनस्पति

प्राचीन काल से ब्रज, बनों के लिये प्रसिद्ध रहा है। परन्तु आजकल कोई विस्तृत बन-खण्ड नहीं मिलते। मथुरा के सम्बन्ध में कहा गया है कि शत्रुघ्न ने मधुवन के जंगल को कटवा कर मथुरापुरी बसाई।[१]

अन्य पौराणिक उल्लेखों से प्रतीत होता है कि यहाँ के बन प्रसिद्ध थे।[२] मुग़लों के समय में भी ब्रज के बन प्रसिद्ध थे और जंगली जानवरों का यहाँ शिकार किया जाता था।[३] आज उन बनों के वही रूप तो नहीं मिलते, पर उन बनों के बारह प्रसिद्ध स्थल अवश्य चले आते हैं। ये ही ब्रज के प्रसिद्ध बारह वन हैं। ये १२ बन इस प्रकार हैं—तालबन,[४] तालवृक्षों का बन था। मधुबन[५], एक श्रेष्ठ बन था। कुन्द बन[६] कमोद बन काम्यक बन[७] या काम बन। बकुलबन को वराहपुराण में बहुल बन कहा गया है।[८] यमुना के उस पार भद्रबन है।[९] 'खदिरबन' का उल्लेख वराहपुराण[१०] तथा पद्मपुराण,[११] दोनों में है। महाबन को गोकुल का अत्युत्तम

---

१. छित्वा वनं तत्सौमित्रः निवेशंसो ऽभ्यरोचयत्।
भवाय तस्य देशस्य प्रार्याः परमधर्मवित्॥—(हरिवंश० १।५४।५५)
हरिवंश पुराण में ही मथुरा को 'उद्यानवन संपन्ना' कहा है (१।५४।५८)

२. पद्मपुराण (पाताल खण्ड, अध्या० ६९) यहाँ यह भी लिखा है कि १२ बन अधिक प्रसिद्ध हैं, जिनमें से ७ यमुना के पश्चिमी तट पर तथा पाँच पूर्वी तट पर हैं। इनमें से महाबन, मधुबन, तथा वृन्दाबन श्रेष्ठ हैं। ३. कृष्णदत्त वाजपेयी, ब्रज का इतिहास, पृ० ७। ४. बलराम ने यहाँ धेनुकासुर को मारा (वराहपुराण १५३।३५), नीलकमल यहाँ के कुण्ड में खिलते हैं (वही १५७।३९-४०), यह ताल वृक्षों से पूर्ण है (विष्णुपुराण ५।८।१), राम और केशव गाय चराते हुए यहाँ घूमते हैं (ब्रह्मपुराण १८६।१-१२)। ५. भाद्रपद की कृष्णपक्षीय एकादशी को कुण्ड में स्नान करने का महत्व (वराहपुराण १५३।३३-३४)——यह बन अत्यन्त उत्तम है। पद्म पु० पाताल खण्ड, अध्याय ६९। ६. भाद्रपद की कृष्णपक्षीय एकादशी को स्नान करने का महत्व (वराहपुराण, १५३।३६)। पद्मपुराण में इसे कुमुदवन कहा गया है (पाताल खण्ड, अध्याय ६९)। ७. यहाँ विमल कुण्ड है (वराहपुराण, अध्याय १५३।३७-३८), पद्मपुराण में इसका नाम 'काम्यबन' है (पाताल खण्ड, अध्याय ६९)। ८. वराहपुराण १७।१-३ : इसकी यात्रा से अग्निलोक की प्राप्ति होती है। (वही १५३।३९)। ९. यात्रा करने से वराह की भक्ति प्राप्त होती है, नाम लोक प्राप्त होता है (व० पु० १५३।४०-४१)। १०. १५३।४२। ६ अध्याय ६९। ११. पद्मपुराण पातालखण्ड, अध्याय ६९।

बन कहा गया है।[१] यह वराह का प्रिय बन है तथा यहाँ की यात्रा से इन्द्रलोक की प्राप्ति होती है।[२] 'भाण्डीर बन' वासुदेव भगवान का स्थान है। इनके दर्शन से मनुष्य जन्म बन्ध-मुक्त हो जाता है।[३] इसका उल्लेख विष्णुपुराण में 'भाण्डीरवट' के नाम से मिलता है।[४] पद्मपुराण में भी इसका नामोल्लेख है।[५] 'लोहजंघबन' सर्वपातक विनष्टकर कहा गया है। यहाँ जाने से मनुष्य नरकगामी नहीं होता।[६] पद्मपुराण में इसे 'लोहबन' कहा गया है।[७] आज भी यही नाम प्रचलित है। 'विल्व बन' की यात्रा से ब्रह्मलोक का लाभ होता है।[८] वृन्दाबन का उल्लेख तो अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। इसके पशु-पक्षियों, वृक्ष, लताओं, तथा इतिहास के सम्बन्ध में उल्लेख पुराणों में बिखरे पड़े हैं।[९] बारहवाँ बन श्रीबन है।

उक्त बारह बनों में से ७ यमुना के पश्चिम तट पर हैं और पाँच पूर्वी तट पर। पुराणों के उल्लेखों के अनुसार इनमें से तीन, महाबन, मधुबन तथा वृन्दाबन अत्यन्त श्रेष्ठ बन थे। मधुबन और लोहजंघ बन राक्षस-संस्कृति के प्रतिनिधि हैं। बनों की यात्रा का भी महत्व था, वहाँ के कुण्डों में स्नान का भी महत्व था। कुछ बन अपनी अपूर्व शोभा के लिए प्रसिद्ध थे।

१२ बनों के अतिरिक्त २४ उपवन माने जाते हैं। गोकुल, गोवर्द्धन, बरसाना, नन्दगाम, संकेत, परिमदिरा, अड़ींग, शेषसायी, भाट, ऊँचा गाम, खेलबन, श्रीकुण्ड, गन्धर्वबन, परासौली, बिलछू, बच्छबन, आदि बद्री, करहला, अंज नोंखरि, पिसायौ, कोकिला बन, दधिबन, कोटिबन, तथा रावल। इस प्रकार मथुरा ज़िला बन तथा उपवनों से घिरा हुआ था।

---

१. बराहपुराण १५३।४३। २. व० पु० १५३।४७। ३. वि० पु० ५।९।२, महाभारत २।५३।८ तथा हरिवंशपुराण २।११।२३ में भण्डीर नामक 'न्यग्रोध वृक्ष' का उल्लेख है। ४. पातालखण्ड, अध्याय ६९। ५. व० पु० १५३।४४; १५३।१६१। ६. पातालखण्ड, अध्याय ६९। ७. व० पु० १५३।४५। ८. केशी वध यहाँ हुआ था, यहाँ के सूर्यतीर्थ में कालियनाग का निवास था (व० पु० १५६।१०-१४)। यहाँ गोविन्दजी का निवास है तथा यह वृन्दादेवी द्वारा सुरक्षित रहता है (वही १५३।४८-४९)। यहाँ अधिकांश कदम्ब के बन हैं (वि० पु० ५।२५।४)। यहाँ बड़े-बड़े वृक्ष हैं, उनके नीचे गाय बैठती हैं तथा स्त्रीरूप लक्ष्मी तथा पुरुषरूप विष्णु का निवास है। कोयलें, भौंरे, मोर तथा सुगन्धित पुष्प यहाँ हैं (पद्मपुराण पृ० ५८५, श्लोक ६१, ६४-६५)। सत्ययुग में एक राजा केदार था। उसकी पुत्री का नाम वृन्दा था। वृन्दा ने यहाँ आकर तपस्या की और वन्दाबन-विहारी को पति-रूप में प्राप्त किया। वही वृन्दाबन है।

आज वस्तुतः इन बनों के चिह्न मात्र रह गये हैं। वृन्दाबन का घना, महाबन के खारों का बन, कीठम का घना, आदि बन अवश्य हैं। नन्दगाँव तथा बरसाने के बीच में भी बन हैं। कामबन की पहाड़ियों में भी वन है। नरीसेमरी तथा छाता के बीच बन है। यहाँ के बनों में करील, पीलू, डूँगर, सिरस, पीपल, बरगद, छोंकर, बबूल, ढाक आदि के वृक्ष अधिकांश मिलते हैं। कुछ नवीन बन-योजनाएँ भी सरकार की हैं। इसके अन्तर्गत गोवर्द्धन, वृन्दाबन, कीठम तथा बाद के आसपास बन लगाने की योजना है।

०.८.८. पशु-पक्षी

पशुपालन के लिए ब्रज सदा प्रसिद्ध रहा है। गाय, बैल, भैंस, भेड़, बकरी, खच्चर, घोड़े, गधे मुख्य रूप से पाले जाते हैं। साँड़ वैसे ही घूमते रहते हैं। इनकी पूजा का भी विधान है। जंगली जानवरों में भेड़िये, गीदड़, सेत, लोमड़ी, खरगोश, नीलगाय, हिरनों की कई जातियाँ, बनगाय, पाड़ी, रोज आदि मुख्य हैं।[१] लक्कड़बग्घा तथा पहाड़ी भेड़िए भी कभी-कभी मिल जाते हैं जो बच्चों को उठा ले जाया करते हैं। नीलगाय, विशेषतः पहाड़ी भागों में रहती हैं। ये खेतों को उजाड़ देती हैं। पाड़ी तथा रोज़ भी खेती के शत्रुओं में हैं।

ब्रज का सबसे सुन्दर और प्रसिद्ध पक्षी मोर है। ह्वेनसांग ने मथुरा को 'मौटूलो' कहकर पुकारा था।[२] अनेक चीनी कोषों में इसका अर्थ मोर किया गया है। मथुरा को मोरों का नगर बताया गया है। ब्रज में अनेक स्थानों का नामकरण 'मोर' के नाम पर हुआ है—मोरकुटी, मोरमन्दिर आदि। बड़े आकार के कारण यह पक्षी पिंजड़े में बन्द करके नहीं रखा जाता। कालिदास ने भी रघुवंश में मयूरों के नृत्य का उल्लेख किया है।[३] ब्रज के दूसरे सुन्दर पक्षी शुक, मैना, कोयल, खञ्जन, हरियल, चकोर, पपीहा, कोक और बत्तख हैं, पर कम। कई प्रकार के कबूतर मिलते हैं। इनको झुण्डरूप में पाला जाता है। इनके अतिरिक्त गौरैया, अबाबील, गलगलिया, पिड्कुलिया, उल्लू, चमगादड़, पतोहरी, पतादीवली, तेलनिया, श्याम-चिरैया, बघा आदि हैं। शिकारी चिड़ियों में बगुला, बीलो, बाज, चील्ह, गिद्ध नीलकण्ठ, ठठेरा, कौआ, चरखी प्रमुख हैं। ये पक्षी दोआब के अन्य भागों में भी मिलते हैं।

---

१. इम्पीरियल गजेटियर, जिल्द १०, पृ० ४७।

२. Walters, On Yuan Chwang, P. 301.

३. रघुवंश, ६।५१।

साहित्य में शुक, पिक, खञ्जन, चातक, चकोर, परेवा, चकवा-चकवी आदि का वर्णन विशेष रूप से मिलता है। मोर तो ब्रजभाषा-काव्य का प्राण ही बन गया था।

०.८.९. उपज

मथुरा के निवासियों का मुख्य धन्धा कृषि करना और कृषि पदार्थों को बेचना है। यहाँ की दो फसलें मुख्य हैं—खरीफ़ और रबी। खरीफ की फ़सल में ज्वार, बाजरा, कपास, मक्का, मोंठ, ज्वार, उर्द, मूंग, तिल, सन उत्पन्न होते हैं। सादाबाद और माँट में अधिकतर बाजरे की फ़सल होती है; ज्वार कम पकती है। मथुरा तथा छाता में ज्वार भी खूब पकती है। इस फ़सल का सम्बन्ध पशुओं और गरीबों से अधिक है। जहाँ यमुना की नहर से सिंचाई पर्याप्त हो जाती है, वहाँ गन्ना काफी होता है। गंगनहर के क्षेत्र में अपेक्षाकृत कम गन्ना होता है।

रबी की फसल में गेहूँ, चना, मटर, मसूड़, आलू, गाजर, सरसों, दूआँ, अलसी आदि की पैदावार मुख्य है। तेल के बीजों की उपज उन स्थानों पर अधिक होती है जहाँ नहर आदि की सुविधाएँ कम हैं। गन्ने की पैदावार काफ़ी होती है पर तम्बाकू की पैदावार कम है।

इन दो मुख्य फ़सलों के अतिरिक्त जायद की फ़सल भी अच्छी हो जाती है। इसमें विशेषतः तरकारी, खरबूजे, तरबूज, सावाँ आदि मुख्य हैं। यमुना की रेती में खरबूज-तरबूज बहुत पैदा होता है। कभी-कभी यमुना की असामयिक बाढ़ खरबूज़-तरबूजों की फ़सल को बहा भी ले जाती है।

खनिज तथा अन्य प्राकृतिक पदार्थ

प्राचीन काल में इस भूभाग में अनेक धातु-पदार्थ मिलते थे।[१] ह्वनसांग ने मथुरा में पीत-स्वर्ण मिलने की बात कही है।[२] किन्तु आज इस प्रकार का कोई पदार्थ प्राप्त नहीं होता। इमारती लकड़ी भी बनों में कम है। शीशम की लकड़ी अवश्य अधिक मिलती है। यहाँ सबसे अधिक चित्तीदार बलुआ पत्थर उपलब्ध होता है। यह हलके लाल रंग के भी होते हैं और गहरे रंग के भी। ऐसे पत्थरों के लिए भरतपुर की रूपवास की खानें प्रसिद्ध हैं। आगरा में भी पत्थर निकलता है। नन्दगाँव के पास भी पहले पत्थर निकलता था, किन्तु अब बन्द हो गया है। बरसाने तथा

---

१. **कृष्णदत्त वाजपेयी, ब्रज का इतिहास (प्रथम खण्ड), पृ० ७**। २. Walters, On yuan Chwang, P. 301.

नन्दगाँव में अधिकांश प्राचीन मन्दिर और मकान इसी स्थानीय पत्थर के बने हुए हैं। पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़ों को ईंट की तरह भी चिना जाता था। नन्दगाँव तथा बरसाने की पत्थर की खानों का उल्लेख इम्पीरियल गज़ेटियर में मिलता है।[१] बरसाने की खानों में मटमैला बलुआ पत्थर मिलता है।

सारे ज़िले में कंकड़ प्राप्त करने के स्थान फैले हैं। यमुना के पूर्वी किनारे पर मिलने वाला कंकड़ बड़ा, मज़बूत, तथा अच्छे रंग का होता है। कंकड़ीला स्तर भी मोटा मिलता है। पश्चिम का कंकड़ इतना अच्छा नहीं होता। कंकड़ सड़क बनाने तथा चूना बनाने के काम में आता है।

०.८.१०. व्यवसाय

मथुरा ज़िला कृषि-प्रधान है। अतः बाहरी व्यापार यहाँ अधिक नहीं होता। कृषि की उपज—गल्ले का व्यापार मुख्य है। मथुरा ज़िले की सबसे बड़ी मण्डी कोसी-कलाँ है। वहाँ तेल आदि की मिलें भी हैं। बड़े-बड़े कारखाने भी मथुरा ज़िले में नहीं हैं।

यातायात की सुविधाएँ मथुरा में पर्याप्त हैं। ईस्टर्न रेलवे मानिकपुर की ओर ज़िले को छूती हुई जाती है। उत्तर-पूर्व रेलवे (छोटी लाइन) मथुरा को हाथरस जंकशन और आगरा से मिलाती है। कोसी के पास मध्य रेलवे मथुरा ज़िले में प्रवेश करती है। ये मथुरा-आगरा को मिलाती हैं। पश्चिमी रेलवे, नागदा भरतपुर से मथुरा को मिलाती है।

मथुरा जिले की मुख्य पक्की सड़क आगरा-दिल्ली रोड है। दूसरी पक्की सड़क मथुरा-भरतपुर सड़क है। तीसरी मथुरा-हाथरस तथा मथुरा-अलीगढ़ है। मथुरा-सादाबाद को भी एक पक्की सड़क मिलाती है।

०.८.११. प्राकृतिक आपदाएँ

मथुरा जिले की मुख्य प्राकृतिक आपदाएँ, सूखा, अकाल तथा वृष्टि की अनिश्चितता है। इस अनिश्चितता के कारण कृषक-जीव में कुछ चिन्ताएँ रहती हैं। एक और प्राकृतिक आपदा टिड्डियों का समय-समय पर प्रकोप है। टिड्डी इस ज़िले की कपास की फ़सल को नष्ट कर देती हैं। वैसे टिड्डियों का प्रकोप नियमित नहीं है। वर्षा के पश्चात् जाड़ा आरम्भ होने से पूर्व कड़ी धूप और अपेक्षाकृत ठण्डी रातों का एक ऐसा मौसम बन जाता है, जिसमें मलेरिया के कीटाणु उत्पन्न होकर

---

१. इम्पीरियल गज़ेटियर आफ़ इण्डिया, जिल्द ९, पृ० ४५।

बीमारी फैला देते हैं। चेचक का प्रकोप तो अक्टूबर-नवम्बर तथा अप्रैल-मई में लगभग नियमित ही है।

०.९. मथुरा जिले की जातियाँ

मथुरा ज़िले की जातियों को पहले तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—हिन्दू, मुसलमान और घुमन्तू जातियाँ। हिन्दू जातियाँ इस प्रकार गिनाई गई हैं—[1] चमार, हिन्दू जनसंख्या के १७.७१ प्रतिशत, ब्राह्मण १६.९८ प्रतिशत, इनमें चौबे भी सम्मिलित हैं। अहिवासी, जाट १४.९३ प्रतिशत, राजपूत ९.९१ प्रतिशत, वैश्य ७.४१ प्रतिशत, कोली, जोगी, गुसाँईं, गड़रिया, गूजर, बढ़ई, नाई, कुम्हार, कहार, अहीर, कायस्थ, भंगी, माली, धोबी, लोधे, सुनार, ढूंसर, ये जातियाँ मुख्य हैं। वैसे छोटी-मोटी ८३ जातियाँ बताई गई हैं। इनमें खंगार, मलिकाने, खटीक, गोले, काछी, कढ़ेरे, बरगी आदि हैं। इनकी जनसंख्या बहुत कम है। मुस्लिम जातियों में सैयद, सक्का, फ़क़ीर, साँईं, बनजारे, व्यौपारी, मेव, मन्यार, कसाई आदि हैं। गाँवों में मुख्यतः सक्का, फ़क़ीर, सांईं, बनजारे, मेव, मन्यार पाए जाते हैं। मेवों को छोड़कर अन्य ग्रामीण मुस्लिमों की बोली हिन्दू जनसंख्या से पृथक् नहीं है। घुमन्तू जातियों में हाबूड़ा, खुरपल्टा (संसी) कञ्जर, बनजारे, बरगी, नट भूभड़िया, सिकिलीगर, सँपेरे, भाट हैं। इनमें से भूभड़िया, भाट तथा नट ज़िले की सीमाओं को भी पार कर जाते हैं। शेष जातियाँ मथुरा ज़िले में ही रहती हैं। इन जातियों ने कुछ स्थानों पर अपने घर भी बना लिये हैं। भाषा की दृष्टि से जाट, गूजर, ठाकुर, अहीर, चमार तथा मेव महत्वपूर्ण हैं। चौबों की भी अलग बोली है, पर उनकी बस्ती मथुरा शहर में ही है। अतः उनकी बोली का विस्तृत अध्ययन नहीं किया गया। इन जातियों का सामान्य परिचय यहाँ दिया जाता है। सभी जातियों का परिचय देना आवश्यक नहीं है।

०.९.१. स्थायी जातियाँ—आभीर

०.९.१.१. अहीर

आभीर ब्रज की एक महत्वपूर्ण जाति है। आज इस जाति को 'अहीर' नाम से पुकारा जाता है। इनके तीन वर्ग हैं—नन्दवंश, यदुवंश और ग्वालवंश। मध्य दोआब के अहीर अपने को 'नन्दवंश' बताते हैं; यमुना के पश्चिम और 'अपर

---

१. मथुरा गजेटियर (१९११ ई०), पृ० १०६-१४।

दोआब' वाले यदुवंश और 'लोअर दोआब' वाले ग्वाल वंश कहे जाते हैं।[१] बनारस के आसपास भी ग्वालवंश के अहीर ही मिलते हैं।

इनके विवाहों में चार गोत्र बताए जाते हैं—पिता का, माता का, दादी का तथा नानी का। छोटे भाई का विवाह बड़े भाई की विधवा से हो जाता है। यह प्रथा विशेषतः दिल्ली के पास वाले अहीरों में मिलती है। इस प्रान्त के सभी अहीर अपना मूल-स्थान मथुरा या उसके कुछ पश्चिम में बताते हैं। अपने को कृष्ण का वंशज मानने में इनको गर्व का अनुभव होता है।

आभीर और मथुरा के गोप तथा वल्लभ एक ही थे। इसकी पुष्टि पद्मपुराण से होती है। अवतार लेने के पूर्व विष्णु आभीरों को सावधान करते हैं—"आभीरो! मेरा आठवाँ जन्म मथुरा में तुम लोगों के यहाँ होगा।[२]" इसी पुराण में आभीरों को उच्चकोटि का दार्शनिक बताया गया है।[३] आभीर जाति गोपाल कृष्ण के मत की पोषक थी।[४]

आभीरों की उत्पत्ति

आभीरों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कई उल्लेख प्राचीन साहित्य में मिलते हैं। मनु[५] के अनुसार इनकी उत्पत्ति ब्राह्मण पिता और अम्बष्ठा[६] स्त्री से हुई। ब्रह्मपुराण में इनकी उत्पत्ति क्षत्रिय पिता और वैश्य माता से मानी गई है।[७] इन उल्लेखों से इतना ही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यह जाति मिश्रित रक्त वाली मानी जाती थी। पीछे इसे शुद्ध क्षत्रिय भी माना जाने लगा। पर यह एक आन्दोलन का परिणाम दीखता है।

हरिवंश पुराण के अनुसार 'यदु' का जन्म हर्यश्व तथा मधुमती से हुआ था। मधुमती मथुरा के राक्षस-राज 'मधु' की पुत्री थी। मधु कहता है—"मथुरा के चतुर्दिक् सारा प्रदेश आभीरों का है। पीछे उल्लेख है कि अन्धक और वृष्णि आदि जातियाँ यदु जाति से सम्बन्धित हैं।[८] इस कथन से भी आभीर जाति मिश्रित जाति ही ठहरती है।

---

१. Elliot, Races of N. W. P. Vol. 1, p. 5. **२. पद्मपुराण, सृष्टिकाण्ड, १७।१९। ३. वही, १७।१।** ४. A. P. Karmarkar, A. B. O. R. I. Vol. XXIII (1942) P. 218. **। ५. मनु० १०।१५। ६. वैद्यों की एक जाति थी।** ७. Quoted by Elliot, Races of the N. W. P. of India, Vol. I, P. 2. **८. हरिवंश, सृष्टि-काण्ड, १७।**

समाज में आभीरों का स्थान

भारतीय साहित्य में आभीरों के सम्बन्ध में एक समस्या यही दीखती है कि आभीरों को किस वर्ग में रखा जाये। पतञ्जलि के समय में भी यह विषय विवादास्पद था।[१] प्रश्न यह था कि आभीर शूद्रों की ही एक उपजाति थी अथवा कोई स्वतन्त्र जाति। पतञ्जलि ने इन्हें एक स्वतन्त्र जाति माना।[२] कुछ विद्वानों के मत से पतञ्जलि आभीरों को शूद्र ही मानता था; पीछे उनका वर्गीकरण वैश्यों के साथ किया गया।[३] भरतमुनि ने इनका वर्गीकरण शवर, चाण्डाल आदि वन्य जातियों के साथ किया है।[४] महाभारत ने आभीरों को सिन्धु के किनारे बसने वाले शूद्र माना है।[५] जाति के रूप में इनका वर्णन द्रविण, पुण्ड्र तथा शबरों के साथ किया गया है।[६] यह मत भरत के मत से कुछ साम्य रखता है। यह आभीरों को क्षत्रिय के रूप में वर्गीकृत करने का प्रयत्न दीखता है। इनका वर्णन महाभारत में बर्बर, यवन तथा गर्ग के साथ भी मिलता है।[७] रामायण में इनका उल्लेख सुराष्ट्र, वाह्लीक और मद्र के साथ हुआ।[८] भरु, अनभरु और सूर के साथ भी इनका वर्णन मिलता है।[९] मनु इनका वर्गीकरण[१०] क्षत्रियों के साथ करता है और आभीरों को क्षत्रिय मानता है।[११] वायुपुराण में आभीरों को 'म्लेच्छ' कहा गया है।[१२]

यादवों की जाति का प्रश्न कृष्ण के समय भी था। तत्कालीन अनेक सम्भ्रान्त क्षत्रिय-राजा कृष्ण को क्षत्रिय मानने को तैयार नहीं थे। कृष्ण ने यादवों को क्षत्रिय मनवाने का प्रयत्न किया। इस प्रकार की समस्या यह प्रकट करती है कि आभीर-जाति या तो कहीं बाहर से भारत में आई, जिससे उसकी सामाजिक स्थिति निर्धारित करने की समस्या उठी। या यह कि आभीर जाति आर्य-पूर्व भारत में द्रविड़ों जैसी कोई जाति होगी। किन्तु यह स्पष्ट दीखता है कि यह जाति अत्यन्त ही युद्धप्रिय थी। जब अर्जुन कृष्ण की विधवाओं को लेकर पञ्चनद में प्रविष्ट हुए तब आभीरों ने उन पर आक्रमण किया था।[१३] अर्जुन जैसे योद्धा को ललकारना एक अत्यन्त युद्धप्रिय जाति का ही कार्य हो सकता था। महाभारत में उल्लेख है कि द्रोण

---

१. 'शूद्राभीरम्' पर विचार-विमर्श (महाभाष्य १।२।३), पाणिनि १।२।७२ पर व्याख्या। २. 'इह तावत्-शूद्राभीरं इति आभीर जात्यन्तराणि।' महाभाष्य १।२।३। ३. 'वैश्यभेद एवं आभीरो गवाद्युपजीवी', हेमचन्द्र, अभिधान-चिन्तामणि, ५२२। ४. नाट्यशास्त्र, १७।४९, ५५, ६१। ५. भीष्मपर्व, ३०५। ६. महाभारत १४।३०।१६। ७. २।७८।९९। ८. रामायण, ४।४३।५। ९. वही, ४।४३।१९। १०. मनु० १०।१५। ११. वही १०।४३।४५। १२. वायुपुराण ३७।५।२६३। १३. महाभारत, १४।३०।१६।

के सुवर्ण-व्यूह में आभीरों को महत्वपूर्ण स्थान मिला था।[१] उन्होंने सरस्वती के किनारों पर जमाव डाला। सरस्वती उन्हीं की घूम से लुप्त हो गई।[२] आभीर महाभारतकालीन संशप्तक गणों में थे।[३] इन उल्लेखों से आभीरों की युद्धप्रियता और वीरता स्पष्ट है।

आभीरों का आगमन

आभीर किस समय भारत में प्रविष्ट हुए—यह एक समस्या रही है। साथ ही यह भी एक समस्या है कि क्या वह आर्य-पूर्व भारत में द्रविड़ों के समकक्ष कोई जाति थी। आर० जी० भण्डारकर ने प्रथम शताब्दी ई० में आभीरों का भारत में आना माना है।[४] रामप्रसाद चन्दा के अनुसार ईसा के जन्म के बहुत समय पूर्व ही आभीर भारत में आ चुके थे।[५] इन्होंने पतञ्जलि के महाभाष्य में आए 'घोष' शब्द का उल्लेख किया है।[६] 'घोष' की व्याख्या इन्होंने आभीरों की बस्ती के रूप में किया है। इस अर्थ का आरोप अमर तथा जयादित्य ने भी किया है। किन्तु पतञ्जलि के उद्धरण से यह स्पष्ट है कि आर्यों की बस्तियों के चार भेद थे—ग्राम, घोष, नगर तथा संवाह। यदि 'घोष' का अर्थ 'आभीर पल्ली' लिया जाय तो आभीरों को भी आर्य ही मानना पड़ेगा। किन्तु पतञ्जलि ने आभीरों को शूद्रों की श्रेणी में रखा है।[७] और वायुपुराण में उनके लिए 'म्लेच्छ' शब्द का प्रयोग हुआ है।[८] पतञ्जलि के उल्लेख से इतना निष्कर्ष तो निकाला जा सकता है कि आभीर जाति पतञ्जलि के समय में भारत में बस गई थी और उनको शूद्रों से सम्बद्ध कर दिया गया था। पतञ्जलि का समय लगभग दूसरी शती ई० पू० माना गया है। अतः ईसा से ३०० वर्ष पूर्व आभीर भारत में अवश्य बस गए होंगे।[९] वायुपुराण के उल्लेख से यह प्रतीत होता है कि उसकी रचना के समय आभीरों को शूद्र भी नहीं माना जाता था, इन्हें म्लेच्छ माना जाता था। वायुपुराण में यह उल्लेख भी मिलता है कि आभीर उत्तरी भारत में पहले ही बस चुके थे और दक्षिण में भी बहुत

---

१. वही, ९।३७।२१९। २. वही, २।३५।१०। ३. वही, सभापर्व, ३२।१०। ४. Vaisnavism, shaivism and minor religious systems, P. 37 ५. The Indo Aryan Races, p. 84-85. ६. कः पुनरार्यनिवासः ग्रामो घोषो नगरं संवाह इति—महाभाष्य १।४।७५ ७. शूद्राभीरम् गोवलीवर्दम् तृणोलपमिति न सिध्यति (वार्तिकसूत्र की व्याख्या)। ८. वायुपुराण ३७।५।२६३। ९. N. G. Majumdar, Date of the Abhir Migration into India, The Indian Antiquary, Vol. XLVII (1918) p. 36.

दूर तक फैल चुके थे।[१] इससे आभीरों के आगमन का समय और पहले ठहरता है।

कुछ विद्वानों के अनुसार आभीर द्रविड़ों के समान ही एक जाति थी। आज आभीर शब्द 'अहीर' या 'अहेर' रूप में मिलता है। इस शब्द की व्युत्पत्ति द्रविण स्रोत से प्रतीत होती है।[२] द्रविड़ शब्द 'आयिर' का अर्थ ग्वाला है। इस जाति का अस्तित्व प्राचीन भारत में था। ऐतरेय ब्राह्मण में 'वसाः' शब्द आया है।[३] इसका अर्थ 'वत्स' या 'वंश' किया जाता था। पर यह अर्थ भ्रमपूर्ण है। इस शब्द का वैदिक अर्थ साधारणतः गाय होता है।[४] पीछे के वैदिक साहित्य में इसका प्रयोग केवल बाँझ गाय के लिए रूढ़ हो गया था। आभीर तथा मथुरा के गोप और वल्लभ एक ही हों, इसका प्रमाण पद्मपुराण में मिलता है।[५]

आभीर जाति कृष्णमत की पोषक और उन्नायक थी।[६] ऋग्वेद में कृष्ण (हृप्स) का उल्लेख हुआ है।[७] इसके सम्बन्ध में डी० आर० जी० भण्डारकर ने लिखा है—"यह पीछे के साहित्य में वर्णित कृष्ण ही हैं। यहाँ कृष्ण और इन्द्र का युद्ध हुआ दिखाया है। इन्द्र ने कहा, कृष्ण अपनी सेना सहित अंशुमती या यमुना के किनारे शिविर डाले पड़ा है। तब इन्द्र ने मरुतों से कहा, मैंने कृष्ण को अंशुमती, (यमुना) के ऊँचे-नीचे कगारों पर तीव्रता से घूमते हुए देखा है...वीरों, तुम जाओ और उस सेना से युद्ध करो"[८] हरिवंश के एक उल्लेख से यह स्पष्ट होता है कि कृष्ण ब्राह्मण धर्म के विरोधी थे। कृष्ण ने कहा, "ब्राह्मण मन्त्रयज्ञ करते हैं, कृषक हल-यज्ञ करते हैं और हम पर्वत-यज्ञ करते हैं। मैं बलात् गो-पूजा आरम्भ करूँगा।"[९] इन उल्लेखों से कृष्ण और आभीरों का वेद-पथ से विरोध प्रकट होता है। इसी आधार पर आभीरों को द्रविड़ों के समकक्ष माना जाता है।

बालकृष्ण की नग्न मूर्तियाँ भी मिलती है। मद्रास के संग्रहालय में बालकृष्ण की दो नग्न मूर्तियाँ हैं—नवनीत नृत्त मूर्तियाँ।[१०] हाथीदाँत की एक वटपत्रशायी कृष्ण की मूर्ति (त्रिवेन्द्रय) है, बालकृष्ण की कुछ मूर्तियाँ एक हाथ में मक्खन का

---

१. वायुपुराण, अध्या० ४५, श्लो० ११५, १२६। २. A. P. Karmarkar ABORI, Vol. XXIII (1942) P. 218. ३.। ऐ० ब्रा० ८।१४।३। ४. Vedic Index, Vol. II, under Vas'a.। ५. पद्मपु० ५, सृष्टिकाण्ड, १७।१९। ६. A. P. Karmarkar, ABORI, Vol. XXIII (1942) P. 218. ७. ऋ० ८।८५।१३-१५। ८. Some Apects of Ancient Indian Culture, P. 82.। ९. वही। १०. गोपीनाथ राउ, Elements of Hindu Iconography pt. I, Pl. facing P. 205.

डेला लिए हुए तथा दूसरा हाथ टेककर घुटने के बल बैठने की स्थिति में है।[१] बम्बई के म्यूज़ियम आफ़ इण्डियन हिस्टारीकल रिसर्च इन्स्टीट्यूट में कृष्ण की काँसे की नग्न मूर्ति है। इसमें कृष्ण खड़े हैं। इन नग्न मूर्तियों के आधार पर कुछ विद्वान् आभीर जाति को द्रविणों के समकक्ष ठहराते हैं।

महाभारत में आभीरों को मत्स्यों का मित्र बताया गया है।[२] मत्स्य एक पूर्व-वैदिक जाति थी। ऋग्वेदीय योद्धा सुदास[३] को मत्स्यों से यद्ध करना पड़ा था। हरप्पा क्षेत्र में भी उनके राज्यों के चिह्न मिलते हैं।[४] पौराणिक साक्षियों से भी यह स्पष्ट होता है कि यह जाति एक स्वतन्त्र मत रखती थी। इनको आभीरों से सम्बद्ध बताया जाना भी एक महत्वपूर्ण बात है। इससे आभीरों की स्थिति भी पूर्ववैदिक प्रतीत होती है। इस समस्या पर अभी और प्रकाश वाञ्छित है। पर इतना स्पष्ट है कि ब्रज की अहीर जाति अध्ययन की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

भरत ने "आभीरोक्ति" नामक एक विभाषा का उल्लेख किया है।[५] दण्डी ने उसे एक अपभ्रंश के रूप में माना है।[६] इसके आधार पर डॉ० गुने ने अपभ्रंश को प्राकृत्त का भ्रष्ट रूप माना है, जिसे विदेशी (आभीर) बोलते थे।[७] काव्यादर्श, अपभ्रंश में साहित्य-रचना की बात कहता है।[८] धनंजय[९] (१० वीं शती), नमि साधु[१०] (११ वीं शती) तथा हेमचन्द[११] (१२वीं शती) ने आभीरों तथा उनकी भाषा का उल्लेख किया है।

०.९.१.२. गूजर

गूजर शब्द संस्कृत के 'गुर्जर' से व्युत्पन्न है। लोक में यह प्रचलित है कि इस शब्द का सम्बन्ध 'गो-चारन' से है। यह भी कहा जाता है कि ये अपनी गायों को गाजर चराते थे, इसीलिये इनका नाम गूजर हुआ। पञ्जाब के गूजर अपना सम्बन्ध 'नन्दमिहर' से जोड़ते हैं।[१२] कनिंघम के अनुसार इनका सम्बन्ध कुशान, यूची या

---

१. वही, Pl. facing P. 215. २. महाभारत सभापर्व ३२।१० ३. ऋ०, ७।१८ ४. Fresh and Further Light on the Mohenjo Daro Riddle, ABORI, Vol XXI, p. 155 6. ५. नाट्यशास्त्र, १७।४९ (काव्यमाला संस्करण)। ६. काव्यादर्श १।३६ ७. Intro to Bh. K. p. 41-60 ८. दण्डी, काव्यादर्श, १।३६ ९. दशरूपक, २।४२ १०. रुद्रट के काव्यालंकार पर व्याख्या। ११. अभिधान चिन्तामणि (५२२) १२. क्रुक, ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स आफ नार्थ वेस्ट प्राविन्सेज एण्ड अवध, जिल्द २, पृ० ४४०

तोखारी जातियों से है।[१] श्री इब्बेट्सन (Ibbetson, Panjab Ethnography) के अनुसार गूजर और जाट तथा सम्भवतः अहीर भी एक ही जाति-समूह से सम्बन्धित हैं। सुदूर-अतीत में ये कभी एक रहे होंगे। भारत में इनका प्रवेश एक साथ नहीं हुआ। साथ ही यह भी माना जाता है कि जाटों का सम्बन्ध ऊँटों के व्यवसाय से, गूजरों का सम्बन्ध पहाड़ी प्रदेशों में पशुपालन से तथा अहीरों का मैदानों पर पशुपालन से रहा। मथुरा जिले की छाता तहसील में गूजरों की बस्तियाँ या तो चरण-पहाड़ी के तराई में अथवा यमुना के पश्चिमी किनारे पर हैं। कृष्ण-कथा से गूजरियों का सम्बन्ध है।

गूजर जाति अपनी दुर्द्धर्षता तथा पशुओं की चोरी के लिये प्रसिद्ध है। बाबर ने लिखा है[२]—जब-जब मैंने हिन्दुस्तान में प्रवेश किया, जाट और गूजर एक बड़ी संख्या में पहाड़ियों से उतरते रहे और बैलों तथा भैंसों की चोरी करते रहे। जहाँगीर के अनुसार[३] गूजरों की मुख्य आजीविका दूध और दही है। वे खेती बहुत कम करते थे। गूजरों की चोरी की प्रवृत्ति के सम्बन्ध में एक लोकोक्ति भी है—

मैंना, गूजर, कञ्जर
कुत्ता, बिल्ली, बन्दर।
ई जाति नई हौं तीं
तौ खोलि कि बरिया सोती।

गूजरों के सम्बन्ध में एक और कहावत सुनाई पड़ी—

ऊँट कतारा ना तजै, हस्ती तजै न बेल।
गूजर औगुन जब तजै, जब निकरै धूरि में तेल।

इन दोनों की बोली में बहुत थोड़ा अन्तर है। इन्हीं के बीच बसे हुए जादों लोगों की बोली इनसे कुछ भिन्न है। उसमें कुछ पड़ी बोली के तत्व विद्यमान हैं।

०. ९. १. ३. चमार

मथुरा ज़िले में सब जातियों से अधिक जनसंख्या चमारों की ही है। चमार शब्द संस्कृत के 'चर्मकार' (>चम्मार>चमार) से व्युत्पन्न हुआ। मनु ने 'कारावर'

---

१. आरक्यालाजीकल रिपोर्ट्स, जिल्द २, पृ० ६१ २. Leyden's Babar, p. 295 ३. Dowsons Elliot, Vol. VI, p. 303

जाति का उल्लेख किया है जो चमड़ा काटते थे।[१] इस जाति की उत्पत्ति निषाद पुरुष तथा वैदेह स्त्री से बताई गई है। निषाद की उत्पत्ति ब्राह्मण पिता और शूद्र माँ से मानी गई है। वैदेह की उत्पत्ति वैश्य पिता और ब्राह्मण माता से मानी गई है। शेरिंग ने लिखा है[२]—कि यदि वर्तमान चमार मनु के चर्मकारों के वंशज हैं तो चमारों को उच्च वर्णों के सामने अधिक नीच नहीं मानना चाहिये। वतुतः उक्त विद्वान् कुछ चमारों की सुडौलता से प्रभावित हुआ है। पर रिज़ले[३] साहब का मत है कि सामान्य चमार आकृति-रेखाओं, क़द तथा रंग में अनार्य जातियों से अधिक भिन्न नहीं हैं। चमड़े का व्यवसाय अनार्यों का ही व्यवसाय दीखता है। चमार मुख्यतः व्यावसायिक जाति दीखती है जिसमें अनार्य-तत्वों का समावेश है[४]। पौराणिक साक्ष के अनुसार चमार मलाह पुरुष और चाण्डाल स्त्री से उत्पन्न हुए थे[५]।

चमारों की उत्पत्ति के विषय में कुछ अनुश्रुतियाँ भी प्रचलित हैं। एक इस प्रकार है—एक राजा के दो लड़कियाँ थीं—चामू और बामू। विवाहोपरान्त दोनों ने एक-एक पहलवान को जन्म दिया। राजा के महल में एक हाथी मर गया। राजा ने कहा, ऐसा कौन है जो इसे ज्यों का त्यों उठाकर जङ्गल में ले जाय। चामू ने यह कार्य किया। बामू ने चामू को इस पर जाति से बहिष्कृत कर दिया। बामू के वैश्य हुए और चामू के चमार। दूसरी अनुश्रुति इस प्रकार है—पाँच ब्राह्मण भाई साथ-साथ जा रहे थे। रास्ते में उन्हें एक मरी हुई गाय मिली। चार तो एक ओर को हो गये पाँचवें ने मृत गाय को उठाकर एक ओर कर दिया। तब से उस पाँचवें का कार्य ही मरे पशुओं को उठाना हो गया। तीसरी अनुश्रुति के अनुसार इनका सम्बन्ध लोना चमारी से है। जब धन्वन्तरि को तक्षक ने काटा तो उसने अपने पुत्र से कहा कि मेरे मरने के पश्चात् तुम मेरे मृत शरीर को पकाकर खा लेना, तुम्हें औषधि-विज्ञान प्राप्त हो जायगा। पुत्र ने ऐसा ही किया। तब तक्षक ब्राह्मण-रूप में आया और उसे ऐसा जघन्य कार्य करने से रोका। मांस का पात्र गङ्गा में बहा दिया गया। लोना गङ्गा जी में नहा रही थी—उसे खा गई। उसे वह औषधि-विद्या आ गई।

चमारों का धर्म, हिन्दू धर्म से भिन्न नहीं है। इनके विवाह का मुहूर्त्त-शोधन ब्राह्मण ही करता है। वैवाहिक अनुष्ठानों में ब्राह्मण की सहायता नहीं ली जाती।

---

१. इन्स्टीट्यूट्स, X.३६ २. हिन्दू ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स, जिल्द १, पृ० ३८२ ३. ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स, जिल्द १, पृ० १७६ ४. कुक, ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स आव नार्थ वैस्टर्न प्राविन्सेज एण्ड अवध, जिल्द २, पृ० १६९ ५. ईलियट, रेसेज आफ़ दि एन० डब्ल्यू प्राविन्सेज आफ़ इण्डिया, जिल्द १, पृ० ६९।

मृदङ्ग पर 'व्याहुले' गाये जाते हैं और विवाह सम्पन्न हो जाता है। भवानी, नगरसेन, जाहरपीर, कुआवाला आदि लोक-देवताओं की पूजा इनमें प्रचलित है। कुछ देवों को ये बलि भी देते हैं—मुख्यतः सूअर की। कुछ चमार अपने को रैदास से भी सम्बन्धित बताते हैं।

आजकल चमारों का सम्बन्ध विशेषतः कृषिश्रम से है। इनकी जनसंख्या छाता और सादाबाद में सबसे अधिक है।

०.९.१.४. चौबे

मथुरा जिले में चौबों की बस्ती केवल मथुरा नगर में है। कुछ चौबे छुटपुट रूप से अन्य स्थानों पर भी बिखरे हुए हैं जिनका स्वतन्त्र रूप से कोई महत्व नहीं है। चौबों की दो शाखाएँ हैं—कड़ुए और मीठे। कड़ुए चौबों की ही बस्ती मथुरा में है। उनका कहना है कि हम विशुद्ध चौबे हैं। किसी अन्य जाति से विवाह सम्बन्ध स्थापित करने के पश्चात् जो सन्तति हुई वह जाति-बहिष्कृत हो जाती है। उसी समय उनकी संज्ञा मीठे चौबे हो जाती है। कड़ुए चौबों के मुख्य गोत्र शौस्त्रवत, भारद्वाज, वशिष्ठ तथा दक्ष हैं। गोत्र अल्लों में विभक्त हैं। अल्लें इस प्रकार हैं—नगरावर, ककोर, मिहारी। ये नाम मथुरा के चतुर्वेदी-मुहल्लों के अनुसार हैं। अन्य अल्लें भी हैं—बुदऊआ, कारेनाग, दक्ष, पाठक, तिवारी, पांडे, प्रोहित आदि।

उत्पत्ति और विकास के सम्बन्ध में प्रश्न करने पर ज्ञात हुआ—एक बार वाराह भगवान् ने मथुरा में यज्ञ किया। शुद्ध ब्राह्मणों की खोज की गई, पर कोई नहीं मिला। तब वाराह जी ने अपने हृदय से माथुर चतुर्वेदियों को जन्म दिया। तब से माथुर चतुर्वेदी मथुरा में हैं। मथुरा के आस-पास के प्रदेश पर लवणासुर का राज्य था। वह नित्यप्रति एक ब्राह्मण का भक्षण कर जाता था। इस प्रकार उसने समस्त माथुर चतुर्वेदियों का भक्षण कर लिया। केवल सात बचे। उस समय अयोध्या में राम का राज्य था। राम के सभा भवन में एक घण्टा लगा था जो १००० सभासदों के एकत्रित हो जाने पर स्वयमेव बजा करता था। सात माथुर चतुर्वेदी उस सभा-भवन में अर्द्धरात्रि के समय पहुँचे। उनको देखते ही घण्टा सात बार बजा। सोते हुए राम जग गये, आज सात बार घण्टा कैसे बजा। जब राम आए तो सातों ने अपनी विपत्ति-कथा कही। राम ने प्रातःकाल अपने भाई शत्रुघ्न को लवण-दमन को भेजा। शत्रुघ्नजी ने लवण को मारकर अपना राज्य स्थापित किया। चतुर्वेदियों की उन्होंने मान्यता की। चतुर्वेदियों का कहना है कि चतुर्वेदी मथुरा के आदिवासी हैं।

चतुर्वेदियों की कुछ जातीय विशेषताएँ भी हैं। विवाहों में केवल एक गोत्र—पिता का—बचता है। सुना जाता है कि पहले, लड़के वाला लड़की की खोज में निक-

लता था, पर अब लड़की वाला ही लड़के की खोज करता है। साधारणतः दहेज की प्रथा नहीं है। वर्ष के पर्वों पर तथा कन्यादान के समय श्रद्धानुसार सामग्री दी जाती है। स्त्रियाँ विवाह से थोड़े दिन पश्चात् तक बिछुए पहनती हैं। जीवन भर बिछुए पहनना आवश्यक नहीं है। मूलतः चतुर्वेदियों को शक्ति-पूजक बताया जाता है। पर अब सामन्य हिन्दू धर्म से इनका धर्म भिन्न नहीं है। देवी, शीतला, कुंआवाला आदि देवताओं की भी मान्यता है। भैरव के पास इनके बच्चों का अधिकांश मुण्डन-संस्कार होता है।

०.९.१.५. जाट

मथुरा जिले में जाटों की 'घार' छाता और माँट तहसील में है। वैसे सभी स्थानों पर जाट मिलते हैं। जाट की बोली में कुछ मोटापन है। इसके सम्बन्ध में प्रत्येक जाति विज्ञ है। मथुरा जिले में पश्चिमी भाग में लौहकने, रावत, गठौने, बहनवार, तथा डीण्ड़े गोत्र के जाट मिलते हैं। माँट तहसील में नरवार गोत्र के तथा चौधरी जाट अधिक हैं। कुछ सिंसिनवार भी हैं।

मथुरा जिले के उत्तर-पश्चिम भाग से पञ्जाब और राजस्थान संलग्न हैं। पञ्जाब और राजस्थान क्षत्रिय-बहुल प्रदेश हैं। राजपूत और जाट, क्षत्रियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। राजपूत मुख्यतः युद्धजीवी बने रहे। जाट कृषिकार्य में लग। जाट, जिट, जट सभी एक ही जाति के बोधक शब्द हैं। काबुल और बिलोचिस्तान में भी इस प्रकार की बिखरी हुई जातियाँ हैं। उनका नाम भी इनसे मिलता-जुलता है।[१] कुछ लोग इनका सम्बन्ध जर्मन-समूह से मानते हैं।[२] पञ्जाब में जिट शब्द इनके लिये प्रयुक्त होता है। सिन्ध, मुस्लिम जटों का केन्द्र है। राजस्थान के रेगिस्तान में होती हुई यह जाति भरतपुर और धौलपुर तक आ पहुँची है। यही जाति इन स्थानों से छनती-छनती मथुरा जिले के उत्तर-पश्चिम तक पहुँच गई। गुजरात के जाट अपना मूलस्थान गज़नीगढ़ बताते हैं। मारवाड़ भी जाटों का प्रदेश है। जाट और राजपूतों की यह लहर गङ्गा पर पहुँच कर शिथिल पड़ जाती है।

०.९.१.६. ठाकुर : राजपूत

ठाकुर पूर्ण मथुरा जिले में बिखरे हुए हैं। जादों ठाकुरों का बाहुल्य छाता तहसील में है। सादाबाद तहसील में बन्दी गाँव जादों ठाकुरों का है। मथुरा

---

१. लैथम, एथ्नालाजी आफ़ इण्डिया, पृ० २६२।   २. शब्द इसी से सम्बन्धित बताया गया है।

तहसील में ठाकुरों के मुख्य गाँव ये हैं—महरौली, नीमगाँव, पाड़र, गोवर्द्धन, राधाकुण्ड, जुल्हैंदी, बसौती, रार, बाटी, भदार। जादों ठाकुरों के मुख्य गोत्र ये हैं—सूतोलिया, साबौरिया, छातई, तिरवाइ। सूतौलियों के गाँव छाता तहसील में ये हैं—करहला, रहेरा, पिसायौ, लोधौली, उमरायौ, कुञ्जेरा, अरवाई, घरवारी, सांखी, भड़ोई, साबौरियों के गाँव ये हैं—कमई, देवपुरा, ततारपुर, डिरावली, पाली, हातियाँ, चिकसौली, सङ्केत, गाजीपुर, नरी, कौनई (मथुरा तहसील)। छातई गोत्र के जादों ठाकुरों की बस्तियाँ मुख्यतः ये हैं—रनवारी, सेंमरी, बिर्जा कौ नगरा, देवसींग कौ नगरा, दद्धी की गढ़ी, छातई। तिरवाइ गोत्र के गाँव इस प्रकार हैं—बुखरारी, बरकौ, सुजावली, घानौतौ, रूपनगर, बृद्धगढ़ी, फूलगढ़ी, खैरार सहजादपुर, बढ़ा, बिसम्भरौ, औबौ, छिनपारी (माँट)। छाता तहसील में जादों ठाकुरों की बोली जाटों और गूजरों से अंशतः प्रभावित है। छाता के पास गौरए ठाकुरों का एक गाँव रांधैरा है। नौगाए में चौहान ठाकुर हैं। करौली राज्य जादों का है।

जादों ठाकुर अपनी उत्पत्ति के विषय में यह कहते हैं—देवयानी ने कच को शाप दिया कि तेरी सञ्जीवनी विद्या तेरे किसी काम नहीं आवेगी। तब कच ने देवयानी से कहा कि तुझे ब्राह्मण वर नहीं मिलेगा। देवयानी का विवाह ययाति से हुआ। शर्मिष्ठा उसकी बान्दी के रूप में गई। देवयानी से पुरु और यदु दो पुत्र हुए। ये ही यदु जादों ठाकुरों के आदि पुरुष हैं। कृष्ण के साथ यादवों का नाम आता है।

अन्य राजपूत जातियों में जायसवार, कछवाहे, और बाछल हैं। जायसवार माँट तहसील में अधिक हैं। अवध के जायस नगर से अपना सम्बन्ध बतलाते हैं। इनका कहना है कि हमारे पूर्व-पुरुष जसराम तहसील माँट के भदनवारे गाँव में बसे थे। इन्होंने वहाँ के कलारों को पराजित किया था। कछवाहे मथुरा तहसील में ही अधिक हैं। इनका कहना है कि इनका एक पुरखा आमेर से आया था। और आकर कोटा में बस गया। वहाँ से इनकी एक शाखा जैत की ओर चली गई और दूसरी सतोआ, गिरधरपुर, पालीखेरा, महोली, नरौली, नौगाँव, और तारसी की ओर। बाछल छाता तहसील में है। अपने नाम का सम्बन्ध सेई के समीप बछवन गाँव से बताते हैं। यहाँ इनका जाति गुरु रहता है। ये अपने को सिसोदिया बतलाते हैं। पँवार, पुण्डीर, राठौर, सोलंकी तथा खंगार भी मिलते हैं पर कम।

०.९.२. घुमन्तू जातियाँ

यद्यपि घुमन्तू जातियों की बोली का अध्ययन प्रस्तुत प्रबन्ध की सीमा से बाहर है, तथापि उनका तथा उनकी बोली का सामान्य परिचय अप्रासंगिक नहीं होगा। समस्त घुमन्तू जातियों का तो परिचय नहीं प्राप्त किया गया। पर, कुछ से उनकी

उत्पत्ति तथा बोली के सम्बन्ध में चर्चा हुई। अधिकांशतः ये जातियाँ अपने विषय में कुछ भी बताने को तैयार नहीं होतीं। सामान्य परिचय इस प्रकार है—

०.९.२.१. हाबूड़ा

हाबूड़ा, मथुरा की एक अपराधी जाति है। मथुरा में ये अधिकांश थानों (Police Stations) के पास छिट-पुट रूप से बसे हुए हैं। पहले इनकी नियमित रूप से थाने में उपस्थिति होती थी। अब नियमित उपस्थिति तो नहीं होती, किन्तु अपनी सुरक्षा के लिये ये उपस्थिति इसलिए दे आते हैं कि कहीं आस-पास चोरी हो तो पुलिस उनको तंग न करे। इस जाति का सम्बन्ध विशेषतः चोरी से था।[१] सड़कों पर लूटमार भी करते थे। ब्रज में इस जाति के सम्बन्ध में एक लोकोक्ति प्रचलित है, जिसका आशय है कि दिन में तो हाबूड़ा टूटा-सा लगता है किन्तु रात में वह बाघ हो जाता है। आजकल हाबूड़ा मथुरा जिले के राया, सादाबाद और बल्देव थानों के आस-पास बसे हैं। सभी अस्थायी घरों में रहते हैं, जो फूँस के बने होते हैं। निर्धन ये इतने होते हैं कि इनके घरों में धातु के बहुधा बर्तन नहीं मिल सकते। ये मिट्टी के बर्तनों का उपयोग करते हैं। शिक्षा को ये लोग अपने यहाँ वर्जित बतलाते हैं। पर अब कुछ बच्चे पढ़ने लगे हैं।

उत्पत्ति

हाबूड़ा शब्द की व्युत्पत्ति अनिश्चित है। सम्भवतः इसका अर्थ 'बगाबू' है। 'हब्बा' सम्भवतः संकृत के भूत का प्राकृत रूप हो।[२] उक्त शब्द जनता के इनके प्रति भय के भाव का द्योतक कहा जा सकता है। जातीय दृष्टि से यह जाति 'संसिय' और 'भातू' जैसी घुमन्तू जातियों से सम्बन्धित है। एटा जिले के 'नोहहेरा' स्थान (जलेसर) से इनका परम्परागत सम्बन्ध है। यहाँ इस जाति के पहले विवाहोत्सव मनाये जाते थे।[३]

इनके घुमन्तू होने के सम्बन्ध में एक अनुश्रुति है—इनका पूर्वज एक 'रिग' था। एक दिन वह एक खरगोश का पीछा करते-करते सीता जी के आश्रम में पहुँच गया।

---

१. अलीगढ़ के हाबूड़ों का कहना है कि १२ वर्ष की अवस्था में एक हाबूड़ा बालक एक जोगी के सामने दीक्षित किया जाता है, फिर उसे चोरी की शिक्षा दी जाती है। २. Crooke, Tribes and Castes of N.W. provinces and Oudh, Vol. II, p. 473 ३. वही, ४७४

सीता जी उस पर क्रोधित हुईं और उन्होंने शाप दिया—जा तेरे वंशज सदैव यहाँ से वहाँ फिरा करेंगे।

हाबूड़ा नाम के विषय में एक और अनुश्रुति है—ये चौहान राजपूत थे। एक बार इनके एक जंगली सम्बन्धी की मृत्यु हो गई। जातीय लोग उसकी स्त्री को सती कराने गये। स्त्री बाहर गयी। उसी समय उसे एक खरगोश दीखा। तत्क्षण वह उस खरगोश के पीछे 'हाऊ-हाऊ' कहती हुई भागी। इससे इनका नाम हाबूड़ा पड़ गया। उधर प्रतिष्ठित चौहान राजपूतों ने उस स्त्री की अपवित्रता के कारण अपने वन्य चौहान भाइयों को जाति से बहिष्कृत कर दिया।

जातीय-स्तर

ये सभी अपने को हिन्दू बताते हैं। ये गाय का माँस नहीं खाते। चार जातियों के हाथ का खाना ये लोग नहीं खाते—चमार, भंगी, धोबी और कलार। उच्च हिन्दुओं की जूठन भी कभी-कभी खा लेते हैं। कहीं-कहीं ये लोग खेती भी करने लगे हैं। विवाह में तथा अन्य अवसरों पर ब्राह्मण से अनुष्ठान कराते हैं। बालक का नामकरण भी ब्राह्मण ही करता हैं। ये अपने को कञ्जरों से ऊँचा मानते हैं। पञ्चायत की प्रतिष्ठा और मान्यता बहुत है। इनको साधारणतः संसिया, बेरिया, भातू, बहेलिया आदि के वर्ग में रखा जाता है।

जातीय-तत्व

जातीय दृष्टि से, ये मिश्रित समूह के जान पड़ते हैं। अपराधी जातियों में सबसे अधिक सामान्य (average) ऊँचाई 'डोमो' की है—१६६.५३ Cms.। इनसे दूसरे नम्बर पर हाबूड़ा है, जिनकी सामान्य ऊँचाई १६४.९१ Cms है। हाबूड़ा की शिरोन्त सूची ७३.७१ है। नासिका-सूची ७१.२१ है।[१] ये बड़े अच्छे शिकारी हैं। शरीर पतला पर अत्यन्त दृढ़ होता है। वेश्या-वृत्ति अत्यन्त सीमित है। अविवाहित लड़कियों को विवाहित स्त्रियों की अपेक्षा अधिक स्वतन्त्रता रहती है।

व्यवसाय

आजकल अपराध-वृत्ति को त्यागकर ये लोग व्यवसाय-वृत्ति को अपनाते जा रहे हैं। इनका मुख्य व्यवसाय पशु-पालन और उनका क्रय-विक्रय है। इनकी

---

१. **मजूमदार,** The Fortunes of primitive tribes, p. 168

स्त्रियाँ बहुधा घास खोदकर ताँगे-इक्के वालों को बेंचा करती हैं। वृद्ध-वृद्धाएँ और बच्चे भीख भी माँगते हैं। वन्य-जीवन के भी कुछ अवशेष मिलते हैं। वन्य-पशुओं में लोमड़ी, सेह, हिरण, सांड़ा, गोह, न्योला आदि पशुओं का ये आखेट करते हैं; माँस से इनका भोजन बनता है और चमड़ी को बेच देते हैं। वनों से शहद प्राप्त करके भी बेंचते हैं। जङ्गलों से ईंधन-सञ्चय होता है। भोजन विशेषतः गोश्त-रोटी का होता है।

मूलस्थान

ये लोग अपना मूलस्थान चित्तौरगढ़ बताते हैं।[१] ये अपने को राजपूत वंश का मानते हैं। इनके पाँच मुख्य गोत्र हैं—[२] चौहान, पमार, सोलंकी, कछवाहे और डाभ। इनका कहना है कि एक बार किसी मुसलमान बादशाह ने वहाँ आक्रमण कर दिया था। उस समय ये लोग वहाँ से भाग आये। तब से इनका जीवन घुमन्तुओं का-सा हो गया है।

विवाह

पहले ये लोग अन्य जातियों की लड़कियों को भगा कर भी ले जाते थे। किन्तु इन्होंने अब यह कार्य छोड़ दिया है। जाति-पतित या बहिष्कृत स्त्रियों को ये अब भी शरण दे देते हैं। इनके विवाहों में केवल एक गोत्र बचता है। लड़कीवाला, वर की खोज में नहीं निकलता, लड़केवाला वधू की खोज करता है। जब आपस में सब मामला तय हो जाता है तो लड़कीवाला लड़के का तिलक करता है। लड़की की एक कीमत विचौलिया तय करता है जो लड़के वाले के द्वारा लड़की वाले को दी जाती है। विवाह का खर्च भी लड़के वाला सहन करता है। इनके विवाह 'साहे' देखकर होते हैं, चाहे जब विवाह नहीं हो सकता। 'साहा' बताने के अतिरिक्त ब्राह्मण-पण्डित का इनके विवाहों में कोई विशेष योग नहीं रहता। निश्चित दिन बारात आती है। आते ही लड़की वाला एक 'कली' (हुक्का) और एक रुपया बेटे वाले को भेंट करता है। तब बारात, वर-सहित, बेटी वाले के द्वार पर आती

---

१. क्रुक्स के अनुसार ये अलीगढ़ जिले के जरतौली स्थान के चौहान थे। इन्होंने अलाउद्दीन के विरुद्ध क्रान्ति की। बादशाह की सेना ने इनको हराया और वहाँ से निकाल दिया। कुछ तो वनों में भाग गये। कुछ ने बादशाह से सन्धि कर ली और अपने स्थान पर जा बसे।—(वही, पृ० ४७४) २. क्रुक्स ने चार माने हैं—सोलंकी, चौहान, पँवार तथा भेदी।

है। लड़की का भाई, चाहे छोटा हो चाहे बड़ा, दूल्हे को बूरा, शक्कर अथवा अन्य कोई मिठाई उस समय खिलाता है। लड़की वाला वहाँ एक रुपया लड़के वाले को भेंट करता है। दावत से पहले दूल्हे के रूठने की रीति है। उसको कुछ भेंट देकर मनाया जाता है। दावत के समय स्त्रियाँ अत्यन्त अश्लील गालियाँ गाती हैं।

पाणि-ग्रहण के लिये चार बाँसों का माढ़वा बनाया जाता है। चारों बाँसों के जड़ों में चार खूँटे गाड़े जाते हैं। उन चार खूँटों के आसपास सात-बार सूत पूरा जाता है जहाँ-तहाँ उसको हल्दी से चिह्नित कर दिया जाता है। तब 'अग्यारी' की जाती है। गरम घृत उसमें छोड़ा जाता है। प्रज्ज्वलित अग्नि के पास वर-वधू आकर निर्दिष्ट बिछौने पर बैठ जाते हैं। पट्टे पर बैठने का नियम नहीं है। लड़की की बहन, लड़के के दुपट्टे और वधू के पल्ले में सात गांठें लगाती हैं। फिर वर-वधू खड़े होकर अग्नि की परिक्रमा करते हैं। चार परिक्रमाओं में वर आगे रहता है और वधू उसका अनुसरण करती है। शेष तीन परिक्रमाओं में क्रम उलट जाता है। वधू आगे रहती है। परिक्रमाओं के अनन्तर बैठने के स्थानों में परिवर्तन कर दिया जाता है। जिसने पहले ग्रन्थि-बन्धन किया था, उसको फिर बुलाकर गाँठ खोलने को कहा जाता है। वह कुछ 'इनाम' लेकर गाँठों को खोल देती है। दूल्हा और दुल्हिन, जाति के लोगों के सामने यह स्वीकार करते हैं कि वे पति-पत्नी हुए।

भाँवरों के पश्चात् दोनों को एक पलङ्ग पर बैठा दिया जाता है। हल्दी, चावल और बताशों से उनका पूजन होता है। उस समय बेटी वाला कुछ बर्तन देता है और कुछ वस्त्र। अन्य कुटुम्बी जन भी यथा-श्रद्धा कुछ भेंट करते हैं। तदनन्तर बेटी वाले का भातई (लड़की का मामा) या लड़की का भाई गोद में लेकर लड़की को गाड़ी पर बैठाते हैं। लड़की के साथ कुछ पूड़ियाँ जाती हैं।

एटा जिले के हाबूड़ों में एक विशेष प्रकार की वैवाहिक प्रथा पहले पायी जाती थी। दोनों ओर के लोग इकट्ठे होते हैं। फिर उनमें से एक-एक घोड़े पर सवार होकर भागता है। सब लोग उसके पीछे भागते हैं। इस प्रकार सब भाग जाते हैं, केवल दूल्हा-दुल्हिन रह जाते हैं। पास में एक फूस की झोपड़ी बनी होती है। उसमें वे दोनों जाकर विवाह करते हैं। थोड़े समय के पश्चात् सब लौट कर आ जाते हैं और विवाहोत्सव मनाया जाता है।

पतिगृह में आकर वधू को शर्बत पिलाया जाता है। 'परेत' (प्रेत), 'कालिका', 'कालादेव' और 'गोसांईं' की पूजा उससे करायी जाती है। घर की देहली पर गृह-देवताओं को स्थापित कर दिया जाता है। 'परेत' का प्रतीक सफेद कपड़ा, कालिका का लाल, कालादेव का काला और गोसांईं का भी सफेद कपड़ा बिछा दिया जाता है। घर में पीढ़ियों से चले आने वाले गेहूँ रखे जाते हैं। उनको कपड़ों के ऊपर

रख दिया जाता है। इन गेहुँओं को ये लोग पूजते हैं। होली-दिवाली उनको घी और तेल में भिगो देते हैं। नवबधू इन अन्न-वस्त्र रूप देवों को 'धोक' देती है। तब वधू पति-गृह में प्रविष्ट होती है।

धर्म : खोरि

इनके मुख्य देवता प्रेत, कालिका, कालादेव, गोसांईं, बराही, सैयद और मसान हैं। प्रेत की मान्यता सर्वाधिक है। गेहूँ को भी देव के रूप में पूजा जाता है। बराही के चने के दौल पुजते हैं। मसान की पूजा मार्ग-शीर्ष के मंगलों को होती है। उसके भोग के लिए पूड़ी और पूजा की अठावरी[१] की जाती है। घर के लड़कों पर उस अठावरी को उसार कर कुत्तों को खिला दिया जाता है।

ये लोग चोटी रखते हैं। मृतक को जलाते हैं। अविवाहितों को जलाने का विधान नहीं, उनको गाड़ा जाता है।

जब किसी कुटुम्ब या व्यक्ति पर आधि-व्याधियों का कोप होता है तब धर्म की शरण ली जाती है। जाति के कुछ बड़े-बूढ़े एकत्रित होते हैं। पूजा के देव-रूप कपड़ों को बिछा देते हैं। सबसे ऊपर प्रेत का सफेद कपड़ा होता है। उसके एक सिरे को ईश्वर का और दूसरे सिरे को 'पूजा' या देवता का माना जाता है। फिर उस लड़के के दूसरे सिरे पर पूजा के गेहूँ खोल कर रख लिए जाते हैं। 'स्याना' दोनों हाथों में ईश्वर और देवता के गेहूँ उठाता है। फिर उनकी जोड़ी रखता है। यदि ईश्वर के गेहूँ 'ऊने' रह जायँ तो ईश्वर की ओर, यदि देवता के गेहूँ ऊने रह जायँ तो देवता की खोरि मानी जाती है। यह आनुष्ठानिक प्रक्रिया तीन बार चलती है। यदि ईश्वर की खोरि निकले तो गङ्गा-स्नान और होम का वचन दिया जाता है। यदि देवता की खोरि निकले तो फिर यह जाना जाता है कि देवता क्या चाहता है। बहुधा बकरे की बलि का विधान रहता है। इस खोरि के निकालने के पूर्व गेहुँओं को आन (शपथ) दी जाती है। उनमें से कुछ आनें नीचे, उन्हीं की बोली में दी जाती हैं–

१. खाँभरि परेत
अपनी बहनि-भाञ्जी पर तल्लाक
खच्ची बताऔ
झूठ को बोल्लिसमा।

---

१. 'अठावरी' में आठ पूड़ी और मीठे पूए होते हैं। उच्चवर्णों में भी देवी की पूजा में अठावरी का विधान है।

२. खाँभरि देव
केही लग्गी
तुआ मार हों
बुरौ करैंतौ
के भा पै करै, म्हारौं
केटि बात पै।

३. खाँभरि परेत,
त्हारी लकरीन तो हाँ जाने,
झूठ कौ परीजान,
तुम्हैं च लड़नौ-मरनौ परसै।

४. त्हारौ कहाँ कूरी परैन
चार पञ्चों में, चार देवों में,
कूरौं[1] केरे।
खच्ची झलिए[2]
कूर पै पग देसमाँ
झूठ बोल्समाँ,
अपनीं हवै तौ झालिए
झूठ पग को देसमाँ
झूठ पै पग देस
कोढ़ी थाईस।[3]
पाप में डुब्बी जाईस
हित्यारौ थाईस।

यदि देवता बलि माँगता है, तो बकरे की बलि दी जाती है। बलि के लिये गेहूँ का आटा तैयार किया जाता है। एक कोरा घड़ा तोड़कर, उल्टे खपड़े पर उस आटे की रोटियाँ सेकीं जाती हैं। प्रेत के कपड़े पर गेहूँ रूप देवता स्थापित कर दिये जाते हैं। घर या कुटुम्ब का मालिक उस पूजा के सम्मुख बकरा काटकर चढ़ा देता है। फिर उसके छोटे-छोटे टुकड़े करके, माँस को मिट्टी के बर्तन में ही पकाया जाता है। जितने लोग वहाँ उपस्थित होते हैं, गोश्त-रोटी रूप प्रसाद का भोजन करते हैं। सायंकाल कालिका के नाम के पूड़ियाँ बनायो जाती हैं और स्त्रियों

---

१. झूठा २. जानिये ३. होगा

में बाँटी जाती हैं। काटते समय गोश्त के कुछ टुकड़े और रोटी अग्नि में जलायी जाती हैं। उस समय जो 'मन्त्र' बोले जाते हैं, उनका भाव यह होता है—

अबकी बताया सो अब किया,
फिर बतायगा तो फिर करेंगे,
अब तू नाराज मत रहना।

यदि बलि देने के पश्चात् भी देवता सङ्कट दूर न करे तो देवताओं को समाप्त कर दिया जाता है। यदि वही देवता पीछे भला करे और सङ्कट से मुक्त करे तो गेहूँ के कोरे दाने लेकर 'पूजा' की पुनस्स्थापना हो जाती है। इसको 'पूजा निकालना' कहते हैं। समाप्त करते समय, देवों को नदी में बहा दिया जाता है। इस प्रकार 'पूजा' की करामात देखी जाती है और उसी का महत्व है। यदि गेहूँ के दानों में कीड़े लग जायें तो समझा जाता है कि देवता की करामात समाप्त हो गयी और उन गेहुँओं को किसी नदी में प्रवाहित कर दिया जाता है।

अपनी 'परतीति' के लिये ये तीन प्रकार की शपथें खाते हैं–(१) एक दीपक जलाया जाता है। उसे शपथ खाने वाला फूंक से बुझा देता है। इसका अर्थ होता है, यदि मैं झूठ बोलूँ तो मेरा कुटुम्ब इसी तरह नष्ट हो जाय।(२) पीपल के वृक्ष की जड़ काटता है। यदि मैं झूठ बोलूँ तो कुटुम्ब की जड़ कट जाय। (३) देवी और गङ्गा की शपथ।

मृतक-संस्कार

मृत्यु के समय कोई विशेष बात नहीं है। मुर्दे पर कफ़न डालकर उसे काँठी से कस दिया जाता है। गेहूँ की अनेक रोटियाँ लटकायीं जातीं हैं। मृतक को जला कर जब लौटते हैं तो राख को छान कर एक थाली में जमा देते हैं। उनका विश्वास है कि जिस रूप में मृतक का जन्म होता है, उसका चित्र उस राख पर बन जाता है। 'फूलों' को गाड़ा जाता है। जब किसी विशेष व्यक्ति के फूलों को गाड़ा जाता है तो एक वृद्ध हाबूड़ा कहता है—इस देश में हमारी जाति सबसे अधिक स्वतन्त्र और श्रेष्ठ है। यदि फिर जन्म हो तो हाबूड़ों के जाति में ही हो। मृत्यु के तीसरे दिन 'तीजा' होता है और 'कांधियो' को कढ़ी-रोटी खिलायी जाती है। अगले सोमवार या वृहस्पतिवार को बरकटा भी होता है। तेरहवें दिन भोज होता है। कोई-कोई ब्राह्मणों को 'सीधे' भी देते हैं। श्राद्धों की प्रथा इन लोगों में नहीं है।

भाषा

अभी इस जाति की बोली का विधिवत् वैज्ञानिक अध्ययन नहीं हुआ है। किन्तु इतना अवश्य है कि जब ये लोग आपस में बातचीत करते हैं तो इनकी बोली अन्य जाति वालों की समझ में नहीं आती। वैसे, ये अन्य जाति वालों से बातचीत करते समय ब्रजभाषा का भी प्रयोग करते हैं। इनकी बोली का ब्रजभाषा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है किन्तु इनकी बोली पर ब्रजभाषा का कितना क्या प्रभाव पड़ा है, इसका परीक्षण भी अभी नहीं हुआ। साधारणतः सुनने पर इनकी ध्वनियाँ बिल्कुल भिन्न दीखती हैं।

इनके ध्वनि-समूह की सबसे मोटी विशेषता यह है कि स, श, ष, ध्वनियाँ इनमें नहीं हैं। प्रत्येक सकार के स्थान पर ह: ध्वनि का प्रयोग होता है[1]—

केख़	=	[Ke : X]	'केश'
ख़च्ची	=	[Xxci :]	'सच्ची'
ख़ाख़ू	=	[Xa : Xu :]	'सास'
ख़ारौ	=	[Xa : ro :]	'साला'
ख़ारी	=	[Xa : ri :]	'साली'

दूसरी विशेषता द्विर्भूत ध्वनियों की अधिकता है—

बुल्लाया=बुलाया, वेल्लौ = बेला, रज्जा = राजा,
पुच्छौं =पूछा, भौज्जाई = भौजाई, मम्मी = मामी,
मम्मौ =मामा, नन्नौ, = नाना, नन्नी = नानी,
कक्की =काकी, गुट्ठा = अंगूठा।

ध्वनि सम्बन्धी तीसरी विशेषता नासिक्यीकरण की अधिकता है। साधारणतः जहाँ नासिक्य ध्वनि नहीं हैं, वहाँ भी नासिक्य कर दिया जाता है—

मत्थौं=माथा, तारुओं=तलवा, गरों=गला,
बाहुराँ=बाँहें, निंखर=नाखून, धनियानें=बधू

ध्वनि सम्बन्धी अन्य विशेषताएँ अभी खोजी नहीं गयीं हैं। वे अपनी भाषा को लिखाने में आपत्ति करते हैं। धीरे-धीरे उनकी बोली की ध्वनियों का अध्ययन किया जा रहा है। नीचे पारस्परिक सम्बन्धों के द्योतक शब्दों की सूची दी जाती है—

---

१. यह विशेषता असमी भाषा में पायी जाती है।

हिन्दी	हाबूड़ी	हिन्दी	हाबूड़ी
१. बाप	बाबौ	११. नानी	नन्नी
२. मा	आई	१२. बहनोई	बहिनियौं
३. बहन	बाई	१३. भानजा	भान्जों
४. भाई	भाईच्	१४. भूआ	फौई
५. चाची	कक्की	१५. फूफा	फूऔ
६. भाभी	भौज्जाई	१६. साला	खारौ
७. देवर	देवरच्	१७. साली	खारी
८. मामा	मम्मौं	१८. सास	खाखू
९. मांई	मम्मी	१९. श्वसुर	खखरौ
१०. नाना	नन्नौ		

साथ ही शरीर के भागों के नामों में भी कुछ अन्तर मिलता है। कुछ तो उच्चारण की दृष्टि से अन्तर है और कुछ शब्द ही भिन्न हैं। साधारण परिचय के लिए नीचे उनके शब्दों की सूची दी जाती है—

१. मूंड	मौंड़	१९. बाहें	बाहुराँ
२. माथा	मत्थौं	२०. उँगली	आँगरी
३. कान	कान्न	२१. अँगूठा	गुट्ठा
४. केश	केख	२२. हथेली	हथेराँ
५. भौं	भौंहें	२३. कुच	अँचराँ
६. पलक	पलकें	२४. छाती	छताँ
७. आँख	अँखें	२५. पेट	पेट्ट
८. मूंछ	मूंछें	२६. कमर	कमाइरौं
९. ओष्ठ	होंट	२७. चूतड़	पौंध
१०. दाँत	दन्तरेखा	२८. जाँघ	जंघैं
११. जीभ	जीभ	२९. घुटना	घुंटन
१२. मसूड़े	बूटुआँ	३०. पिण्डरी	पेंड़रीच
१३. तलवा	तारुऔं	३१. गाँठें	गँठें
१४. ठोड़ी	ठोर्ही	३२. तलवा	तरुऔं
१५. गाल	गालाँ	३३. पीठ	पींट्ठ
१६. गला	गरौं	३४. नाखून	निंखर
१७. हसली	हाँखली	३५. कन उँगली	चेल्ली आँगरी री।
१८. कन्धे	कुट्ठाँ		

अभी हाबूड़ों की बोली का अध्ययन नहीं हुआ। इसलिए उनकी बोली का व्याकरण नहीं दिया जा सकता। केवल कुछ हिन्दी वाक्यों का उनकी बोली में अनुवाद नीचे दिया जाता है, जिससे कुछ परिचय मिल सकता है—

हिन्दी	हाबूड़ी
१. एक राजा के सात लड़कियाँ थी।	१. एक रज्जानें खात: दिकरी हुतीं।
२. एक दिन राजा ने पूछा।	२. एक दिन रज्जाएँ पुच्छौं तौं।
३. तुम किसके भाग्य का खाती हो ?	३. तौं किन्हां मुकद्दर नौं खाई र्‌ही ?
४. उन्होंने कहा, तुम्हारे भाग्य का खाते हैं।	४. जैनें कह्यों तार्‌हा मुकद्दरना खाई र्‌ही।
५. एक ने कहा	५. इक्कैं कह्यौं

उनकी दस तक गिनती इस प्रकार है—

एक्कच=एक, बैंजना=दो, तर्जना=तीन, चर्जना=चार, पञ्चना=पाँच, छौजना=छ:, खातजना=सात, अट्ठजना=आठ, नौवजना=नौ, दौखजना=दस।

यह हाबूड़ों का संक्षिप्त परिचय है। अभी उनकी रहन-सहन और बोली-भाषा पर अन्य संस्कारों का प्रभाव नहीं है। अत: इस समय उनका अध्ययन हो सकता है। धीरे-धीरे उनको शिक्षित बनाने की चेष्टा हो रही है। तब सम्भवत: उनकी संस्कृति और भाषा का शुद्ध रूप न रह जाय।

०.९.२.२. खुरपल्टा

बस्ती

खुरपल्टा ब्रज की एक घुमक्कड़ और निम्नतम जाति है। भंगियों का जूठा भी ये लोग खा लेते हैं। ब्रज में मथुरा, कोसी, छाता और आगरे में इनकी अस्थायी बस्तियाँ हैं। मथुरा में भूतेश्वर रेलवे स्टेशन के पास लगभग २०० खुरपल्टों की बस्ती है। एक कुटुम्ब की एक गाड़ी होती है। उस गाड़ी पर एक अस्थायी छाजन होता है। गाड़ी के नीचे १-२ चारपाइयाँ पड़ी होती हैं। बस यही उनका घर है। इसी में सारे कुटुम्ब के स्त्री, पुरुष तथा बच्चे रह लेते हैं। लेखक ने कई गाड़ियों के पहियों में दीमक लगी हुई देखी। इससे यह स्पष्ट होता है कि बहुत दिनों से वे गाड़ियाँ यातायात के कार्य में नहीं आ रहीं। वहीं पास में एक समाधि बनी थी। पूछने पर ज्ञात हुआ कि वह समाधि एक ऐसे वृद्ध की है जिसका देहान्त १२५ वर्ष की अवस्था में हुआ था। उस समाधि पर शंख, चक्र, फूल और चरण बने हुए हैं। यह भी ज्ञात हुआ कि अधिक अवस्था में मरने पर समाधि बनती है।

उन लोगों से पूछने पर ज्ञात हुआ कि वे यहाँ लगभग १५० वर्ष से निवास कर रहे हैं, पर अभी उनके निवास में स्थायित्व नहीं आ पाया है। घुमक्कड़ जाति होने के कारण उनके बच्चों को अनिवार्य शिक्षा के नियम के अन्तर्गत शिक्षा भी नहीं मिलती। इस प्रकार वे शिक्षा-संस्कार से मुक्त हैं।

प्रथम प्रतिक्रिया

जब लेखक उनकी बस्ती में पहुँचा तो उसे सन्देह-दृष्टि से देखा गया। उनको भ्रम होने लगा कि जिस प्रकार भूभड़ियों को चित्तौड़ में बसाने का प्रयत्न किया गया था, उसी प्रकार हमें सरकार हमारे मूल स्थान पर भेजना चाहती है और इनको सरकार ने हमारी बोली-भाषा का पता लगाने के लिए भेजा है। अनेक प्रयत्न करने पर भी उनका भ्रममोचन नहीं हुआ। वे एक अक्षर भी लिखाने को तैयार नहीं हुए। पर, जाने-अनजाने उस समय में वे कुछ बातें कहते गए। उन बातों का निष्कर्ष यह है—

१. हमको यहाँ रहते १५० वर्ष हो गये। हमारा अब गुजरात या काठियावाड़ से क्या सम्बन्ध है। हम अब वहाँ नहीं जा सकते। हमको यदि बसाना है तो यहीं बसाओ।

२. हमारी बोली-भाषा, यहाँ जैसी है। रीति-रिवाज़ों में भी कोई अन्तर नहीं है। हम और आप एक हैं।

पहले तर्क में जिस बात को वे छिपाना चाहते थे, वही प्रकट हो गई। उनका सम्बन्ध गुजरात या काठियावाड़ से अवश्य प्रतीत होता है। दूसरे तर्क में उनका यहाँ से न जाने का निश्चय अन्तर्हित है। जब वे आपस में बातचीत करते थे तो उनकी बोली समझ में नहीं आती थी। इससे एक सी बोली-भाषा होने का तर्क भी समाप्त हो गया। पर उन्होंने कोई काम की बात बताई नहीं।

कुछ बातें निरीक्षण से ज्ञात हुईं। सभी स्त्री, पुरुष तथा बच्चे गौरवर्ण के हैं। अधिकांश पुरुष बड़ी-बड़ी मूँछें रखते हैं। साफ़ा प्रायः सभी बाँधते हैं। स्त्रियों में लहँगे का पहनावा है। सभी निरक्षर हैं। स्त्री-पुरुषों को एक-दूसरे के सम्मुख अश्लील से अश्लील गाली बकने में भी संकोच का अनुभव नहीं होता। वृद्धों के सम्मुख स्त्रियाँ पर्दा भी करती हैं। बस, इससे अधिक कुछ ज्ञात न हो सका। दो-चार दिन पश्चात् उनके समीपवर्ती दूकानदार के माध्यम से एक वृद्ध खुरपल्टे का विश्वास प्राप्त किया गया। उससे जो सूचनाएँ प्राप्त हुईं, उनका विवरण नीचे दिया जाता है–

जन्म-संस्कार

जननी को जिस समय कष्ट का आरम्भ होता है, उसी समय से जाति वाले

दारू (शराब) पीना आरम्भ कर देते हैं। अनेक प्रकार से अपने हर्षोल्लास की वे अभिव्यक्ति करते हैं। गीत भी गाए जाते हैं और नृत्य भी चलता है। वाद्य केवल करताल होती हैं। तालियाँ बजा-बजा कर स्त्रियाँ भी गाती हैं। जाति वाले एकत्रित होकर जन्म के आठवें दिन बच्चे का नामकरण करते हैं। उस दिन तक गीत चलते रहते हैं। यदि किसी के बच्चे मरते रहे हों तो बच्चे की नाक को छेद दिया जाता है। कुछ स्त्री-पुरुषों के नाम नीचे उदाहरण स्वरूप दिये जाते हैं––

पुरुषों के नाम

१. बन्ता, २. इन्तज़ार, ३. जुग्गनियौ, ४. गोपालियौ, ५. इक्कमियौ, ६. करीबियौ, ७. टीकमियौ।

स्त्रियों के नाम

१. जसोदी, २. केतकी, ३. रूमाली, ४. बच्छी, ५. अङ्गरी, ६. अकबरी, ७. चाट्टी।

जन्म-संस्कार पर जो गीत गाये जाते हैं, उनका संकलन नही किया जा सका। वैसे उन्होंने बताया कि आजकल अधिकांश फ़िल्मी गाने गाए जाते हैं। आजकल ऐसा सभी जातियों में मिलता है। पर नेग-जोग के गीत भी चलते हैं।

विवाह-संस्कार

लड़के वाला लड़की वाले के पास लड़की माँगने आता है। यदि लड़की वाला सहमत हो जाता है तो विवाह का दिन निश्चित कर दिया जाता है। दिन के निश्चय करने में 'पण्डित' से परामर्श भी लिया जाता है। निश्चित दिन बरात आती है। उसको जनवासे में ठहरा दिया जाता है। लड़की वाला एक हुक्का और एक रुपया भेंट करने जाता है। उसी समय लड़के वाले से अभिवादन किया जाता है और सारी बरात से भोजनार्थ चलने की प्रार्थना की जाती है। भोजन के पश्चात् फेरा (भाँवर) पड़ती हैं।

बेटीवाले की गाड़ी के सामने माढ़वा गाड़ा जाता है। लड़की को गोद में माढ़वे तक लाया जाता है। दूल्हा और दुलहिन दोनों बराबर बैठ जाते हैं। लड़की के सिर पर एक कोरी हड़िया में पानी रखा जाता है। उसके एक हाथ में सात सींकें दे दी जाती हैं। अग्नि के आस-पास इस प्रकार सात चक्कर लगाये जाते हैं। प्रत्येक चक्कर पर साली एक-एक गाँठ खोलती जाती है। प्रत्येक चक्कर की समाप्ति पर दुलहिन, दूल्हें को एक सींक मारती है। दूल्हा उस सींक को दुलहिन से ले लेता है।

इस प्रकार सातों फेरों में सात सींकें मारी जाती हैं और उनको दूल्हा लेता चलता है। विवाह के तीसरे दिन उन सातों सींकों को कुएँ में डाल दिया जाता है। साली को गाठें बाँधने का इनाम दिया जाता है। यदि साली न हो तो यह समस्त कार्य छोटा साला करता है। माँ-बाप को जो कुछ दान करना होता है, वह दुलहिन के सिर पर रखी हाँड़ी में डाल दिया जाता है। तीसरे दिन बरात बिदा हो कर दुलहिन को लेकर चल देती है।

अपने पति के घर आकर उसे अपनी सास के पैर लगना पड़ता है। अन्य वृद्धाओं के भी पैर लगे जाते हैं। तब बधू से कहा जाता है कि—'तारौ हहरो बैठो। घूँघट मारीले' (तुम्हारा श्वसुर बैठा है; घूँघट मार ले)। 'मुँह दिखामनी' की प्रथा भी है। जाति की वृद्धाएँ दुलहिन का मुँह देखती हैं और इसके बदले में उसे 'इनाम' दिया जाता है। यही उनके विवाह की संक्षिप्त रूपरेखा है।

मरण

चाहे बच्चे की मृत्यु हो, चाहे बड़े की, बहुधा विमान निकाला जाता है। सामूहिक रूप से रोने की भी रीति है। मृतक को सदैव ही जलाया जाता है। केवल छोटे बच्चों को नहीं जलाया जाता। दाह-संस्कार के पश्चात् कुछ अवशिष्ट हड्डियों को बीना जाता है और उनको एक स्थान पर गाड़ दिया जाता है। कोई-कोई उस स्थान पर समाधि बनवा देता है। वृद्धों की मृत्यु के पश्चात् जाति-भोज की भी प्रथा है।

धर्म

इस जाति में मुख्यतः कालिका या देवी की पूजा होती है। करौली या अन्य देवी के स्थानों की जात होती है। 'जात' से लौट कर एक देवी के भक्त (विशेषतः चमार) को बुलाया जाता है। वह देवी का 'होम' सम्पन्न कराता है। उस होम के पश्चात् बकरे की बलि चढ़ाई जाती है। उसका रक्त उस 'होम' में डाला जाता है और उसके मांस को होम की अग्नि में पकाया जाता है। उसका वितरण भी होता है। देवी के गीत भी गाये जाते हैं।

व्यवसाय

इस जाति का मूल नाम 'साँठिया' बताया जाता है। किन्तु पशुओं का क्रय-विक्रय और विनिमय करने के कारण इनका नाम खुरपल्टा हो गया है। 'खुर' पशु धन का प्रतीक है। पल्टा का अर्थ है बदलने वाला। इस व्यवसाय के अतिरिक्त इनका एक और कार्य है। जिन बैलों, गायों या अन्य पशुओं के सींग बेतुके होते हैं,

उन्हें छील-छाल कर ये सुघड़-सुन्दर बना देते हैं। पशुओं के खुरों को भी छील देते हैं। बच्चे भीख भी माँगते हैं।

मूलस्थान

ये लोग अपना मूल-स्थान चित्तौड़ बताते हैं और अपने आपको चौहान ठाकुर बतलाते हैं। पर इनकी बोली-भाषा काठियावाड़ी से मिलती-जुलती है। अतः इनका सम्बन्ध गुजरात-सौराष्ट्र से कभी-न-कभी अवश्य रहा दीखता है। इसी दीर्घ सम्बन्ध के परिणाम स्वरूप इनकी भाषा पर वहाँ का प्रभाव है।

भाषा

सबसे पहले सम्बन्धियों के सूचक शब्दों की सूची नीचे दी जाती है—

सम्बन्ध	खुरपल्टों की बोली	ब्रज की बोली
१. पिता	१. बापौ	१. बाप
२. माता	२. मैया	२. अम्मा, मैया
३. भाई	३. बैया	३. भैया
४. बहन	४. बन	४. भैनि
५. पुत्र	५. दीकरौ	५. छोरा
६. पुत्री	६. दीकरी	६. छोरी
७. चाचा	७. काको	७. काका, चाचा
८. भतीजा	८. भत्रीजौ	८. भतीजौ
९. भतीजी	९. भत्रीजी	९. भतीजी
१०. भूआ	१०. बूआ, फूई	१०. भूआ
११. पूफा	११. फूऔ	११. फूफा
१२. बहनेऊ	१२. बनेवी	१२. बहनेऊ
१३. साला	१३. साळो	१३. सारौ
१४. साली	१४. हाड़ी	१४. सारी
१५. श्वसुर	१५. हहरौ	१५. सुसरु
१६. सास	१६. हाहू	१६. सासु
१७. मामा	१७. मांमौ	१७. मामा
१८. मामी	१८. मांभी	१८. माईं
१९. नाना	१९. नानौ	१९. नाना
२०. नानी	२०. आई	२०. नानी

२१. मौसी	२१. मांशी	२१. मौंसी
२२. मौसा	२२. माहो	२२. मौसा
२३. धेवता	२३. दोइतौ	२३. धेवतौ
२४. भानजा	२४. भाणेज	२४. भान्जौ
२५. ननद	२५. नणंद	२५. नन्द
२६. भाभी	२६. भोजाई	२६. भाबी
२७. देवर	२७. दीओर	२७. देवरु

इस सूची से इतना ज्ञात होता है कि कुछ शब्द हाबूड़ों से मिलते-जुलते हैं। कुछ साधारण हैं। कुछ शब्द गुजराती से मिलते हैं, जैसे दिकरा (लड़का), दिकरी (लड़की)। अब नीचे अंग प्रत्यंगों के नामों की सूची दी जाती है :—

माथू=सिर, लेलाड़=माथा, मुआड़=बाल, भांपड़ियां=भों, पलक=पलक, आंख=आंख, नावक=नाक, मूंडू=मुंह, डाड्डी=दाढ़ी, ओट्ठ=ओष्ठ, नाड़ि=गर्दन, कांठिया=कंधा, छात्ती=छाती, जांघि=जांघ, गोडा=घुटना, पींडी=पींडरी, मुचौं=टखना, आंगली=उंगली, अंगूठा=अंगूठा, ताड़ुऔं=तलवा, अथेड़ी=हथेली।

संख्यासूचक शब्दों की सूची इस प्रकार है :—

एवक=एक, वे=दो, तोनि=तीन, चार=चार, पांछ=पांच, छो=छः, हाथ=सात, आठ=आठ, नोव=नौ, दह=दस।

ध्वनि सम्बन्धी विशेषताएँ

(स) के स्थान पर (ह) का प्रयोग मिलता है यथा :—

हाड़ो=साला, हाड़ी=साली, हहरौ=श्वसुर, हाहू=सास, माहो=मौसा, पइहो=पैसा, दह=दस, हाथ=सात।

इसका अर्थ यह नहीं कि इनकी बोली में 'स' ध्वनि नहीं। 'स' का प्रयोग मिलता है पर जिस शब्द में मूलतः (स) होता है, उसके स्थान पर (ह) का प्रयोग होता है। भविष्यकाल की क्रियाओं में (स) की ध्वनि मिलती है :—

पड़से=पड़ेगा, जासे=जायगा।

(ल) के स्थान पर (ड़) का प्रयोग मिलता है यथा :—

मुआड़=बाल, आंगड़ी=उंगली, तड़ुऔं=तलवा, अथेड़ी=हथेली।

(ह) का प्रायः लोप मिलता है, उसके स्थान पर स्वर प्रयुक्त हो जाता है। जैसे :—

बन=बहन, ओठ=होठ, अथेड़ी=हथेली, कई=कही, अमें=हम।

प्रायः अन्त्य (न) के स्थान पर (ण) का प्रयोग मिलता है :—

दूलण=दुलहिन, थण=थन, ईणें=इसने, ऊणें=उसने।

साधारणतः ध्वनि सम्बन्धी ये विशेषताएँ मिलती हैं। उनकी ध्वनियों का वैज्ञानिक वर्गीकरण होने पर सम्भवतः अन्य विशेषताएँ मिलेंगी।

सर्वनाम

ऊं=मैं, तमें=तुम, तू=तू, अमें=हम, जो=जिस, की=किस, आ, ई=इस, ए या ऊ=वह।

अन्य पुरुष का बहुवचन 'वे' का कोई रूपक नहीं मिला। उनसे पूछने पर 'वे' का अर्थ इस प्रकार व्यक्त किया गया 'ऊ सब'।

उनकी बोली के नमूने

हिन्दी	खुरपल्टी
१. तुम अपनी लड़की हम को देते हो कि नहीं।	१. तमे तारी दीकरी अमूनें देऐ क को देनी।
२. मैंने तुम्हें दी।	२. ऊं तौ दई द्यौ तूनें।
३. मैं नहीं दूंगा।	३. ऊं तौ को द्यूनी।
४. दस दिन में तुम अपनी बरात ले आना।	४. तू तारी बरात दह दिन में लई आवे।
५. हमारी बेटी को व्याह ले जाना।	५. अमारी दीकरी नें व्याई नें लई जाजे।
६. उसको एक रुपया दे आओ और राम राम कर आओ।	६. एक रुपयौ नैं ओ को दई आवो। राम राम करी आवो।
७. चलो रोटी खालो।	७. इन्डौ रोटो खाई लो।
८. पीछे फेरा पड़ेंगे।	८. पछें फेरा पड़से।
९. तुम्हारा सुसर बैठा है, घूँघट मार लो।	९. तारो हहरौ बेहो, घुंघटू मारी ले।
१०. सास के पैर पूजती है।	१०. हाहु नें पग पूजै छै।
११. मुंह दिखा दो।	११. मौडूं बताड़ी दे।
१२. एक राजा के सात लड़कियाँ थीं।	१२. एक राजा नैं हाथ छोकरीं हतीं।
१३. एक दिन राजा ने बेटियों से पूछा।	१३. एक्क दन राजा एं छोकरी नें पूछी।
१४. तुम किसके भाग्य का खाती हो ?	१४. तमें सब कीना भाग नूं खाउ।

१५. लड़कियों ने कहा—	१५. छोकरि ये कई—
१६. हम तुम्हारे भाग्य का खाती हैं।	१६. अमें तारा मुक्कर नूं खाई ऐ।
१७. एक ने कहा, हम अपने भाग्य का खाते हैं।	१७. एके कई, अमें अपणा मुकद्दर नू खाई ऐ।
१८. इसने जाकर खाना खाया।	१८. ईगें जाई णें रोटो खायो।
१९. उसने आकर कहा।	१९. ऊणें आईणें कई।

खुरपल्टों की बोली के ये कुछ नमूने हैं। अभी सम्पूर्ण सामग्री नहीं संकलित की जा सकी है। जब सम्पूर्ण सामग्री संगृहीत हो जायगी तब उनकी संस्कृति और भाषा के सम्बन्ध में विस्तार से कहा जा सकेगा। वैसे इस जाति का अध्ययन महत्वपूर्ण होगा।

०.९.२,३. बनजारे

मथुरा ज़िले में बनजारों की बस्ती इन गाँवों में है—दद्धी की गढ़ी, धानौ तौ, रोसन कौ नगरा, खाइरे की नगरिया, धनसींगा, सुरवारी, सिरथरा, पखरपुर, ये गाँव छाता तहसील में हैं। मथुरा तहसील में इन गाँवों में इनकी बस्ती है—तोस, बसौंती, लौह रौ भरनौं के पास का नगला, सहार के पास एक नगला। रांवैरे में भी यह जाति रहती है। उनसे और बसौंती के पास वाले बनजारों से साक्षात्कार किया गया। इनका कहना है कि लाखा बनजारे से इनका सम्बन्ध है। इनके अनुसार लाखा लवानियाँ ब्राह्मण था। एक विधवा ब्राह्मणी तथा ठाकुर से ये अपनी उत्पत्ति बताते हैं। लाखा ने इस मिश्रित सन्तान को 'ग्वार' कहा। कहीं-कहीं इन्हें ग्वार भी कहते हैं। ये अपना मूलस्थान जोधपुर बतलाते हैं। रोहतक और दिल्ली तक इनकी छोटी-छोटी बस्तियाँ चली गई हैं। इनके गोत्र ये हैं—मुद्दार, धरमसौल, कुर्रा, बड़तिया, आमगौत, बीजड़ावत, बीसड़ावत, कुड़ावत, तूरी, बानौत, भूकिया, ल्हावड़िया। मृतक को जलाते हैं। नाम हिन्दुओं जैसे होते हैं। धर्म की दृष्टि से ये कैला, बीजासन (इन्द्रगढ़, करौली), मसानी (गुड़गांवाँ) तथा नगरकोट की देवियों के पूजक हैं। नानकिया, जाहरपीर, कारसवाला देव, नगरसेन, जरवैया, सैयद तथा प्रेत की भी पूजा प्रचलित है। जाहरपीर पर बकरे की, कार्स वाले पर सूअर की, नगरसेन पर बकरे की बलि चढ़ाते हैं। जखैया की पूजा पूड़ी-पापड़ी से करते हैं। सैयद को सैनक (चावल-बूरा) की भेंट दी जाती है।

इनकी बोली के कुछ रूप नीचे दिये जाते हैं—

१. शरीर के भाग—मांथौ (सिर), लिलार (माथा), केस (बाल), भौं

(भों), बांफनी या बन्नी (बिनूनीं), तारुआ (तलवा), घोघ (काग), हंसली (हंसली), भोर (रीढ़), कमर, पौंहचौं।

२. **कुछ वाक्य**—एक राजा नें सात बेटी हुतीं। एक दिणा राजाएं अपणी बेटीऔ ते बूझी तम केरे भागि ते खाऔ छौ। छेन्नें कई हम तारे भागि ते खांवां छा। छेटि ने कई मैं तौ आपणे भागै रौ खांऊं छूं। तू आपण भागैरौ खावै छी तौ तारौ भागि देखणौं कसौ भागि छै तारौ—एक राजा के सात बेटी थीं। एक दिन राजा ने अपनी बेटियों से पूछा, तुम किसके भाग्य से खाती हो। छै ने कहा, हम तुम्हारे भाग से खाती हैं। छोटी ने कहा, मैं तो अपने भाग्य का खाती हूँ। तू अपने भाग्य का खाती है तो तेरा भाग्य देखना है कि तेरा कैसा भाग्य है।

०.९.२.४. बरगी

बरगियों का केवल एक स्थान देखा गया—इनायत गढ़ी (तहसील मांट)। बरगियों की संख्या ज़िले में कम है। ये भी आदि में राजपूत ही बनते हैं। इनका कहना है कि हमारा निकास चित्तौरगढ़ है। इनके गोत्र ये हैं—त्वंर, चौहान, राठौर, तथा बड़गूजर। विवाह में मा-बाप का गोत्र बचाया जाता है। बोली की दृष्टि से ये हाबूड़ों के समान हैं।

१. ।म। 'ख़' की ध्वनि इनमें भी मिलती है। जैसे—मखुड्डा (मसूड़े), हंख़ली (हंसली), मखीन (मसीन)।

२. शरीर के भागों के नाम इस प्रकार हैं—मूंड़(सिर), केख़ (बाल), मात्थूं (मांथा), कान, नाक, डौड़ा (मुंह) ठोड्ढी (ठोड़ी), मुच्छि (मूंछ), दांत, होट्ट, मसुड्डा (मसूड़ा) जीब, ओड़ि (नारि, घुत्तड़ो), काग हंख़ली (हंसली), छात्ती (छाती) चुच्ची, कुच (काड़ि) कमर, खाथड़ें (जांघ) घुट्टण (घुटने) पिण्डी (पींड़री) टाकडूं (टखना) ताड़आ (तलवा)।

३. इनकी दस तक की गिन्ती इस प्रकार है—एक, बै, तरंणि, चार, पांच, छै, खात, आट्ठ, नो, दख।

आगे इन लोगों ने बताना स्वीकार नहीं किया।

०.१०. प्रस्तुत प्रबन्ध का क्षेत्र

मथुरा ज़िले की राजकीय सीमाओं से बाहर इसका क्षेत्र नहीं जाता। सामग्री संकलन का कार्य सन् १९५६ तथा १९५७ में हुआ। अतः समय की दृष्टि से यही प्रबन्ध की सीमा है। प्रबन्ध में मुख्यतः लोहबन '(तहसील मांट) के ब्राह्मणों की बोली का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। लोहबन की स्थिति ज़िले के प्रायः मध्य

में है। लेखक का सम्बन्ध भी ब्राह्मण जाति से है। अतः लोहबन के ब्राह्मणों की बोली का विश्लेषण मुख्यतः किया गया है। अन्य स्थानों और जातियों की बोली का अध्ययन तुलनात्मक है। प्रत्येक बोली का तुलनात्मक विवरण साथ-साथ भी दिया गया है और पंचम अध्याय—बोली भूगोल, अन्तरों को अधिक स्पष्ट कर दिया गया है। प्रबन्ध के लिये सामग्री संकलन एक निश्चित लोक कथा के सभी स्थानों से बोली-रूपांतरों को एकत्रित करके तथा सर्वेक्षण-केन्द्रों पर जाकर वहां के निवासियों के प्रकृत वार्तालाप को सुन कर, किया गया है। सर्वेक्षण-केन्द्रों की प्रायः सभी जातियों से सम्पर्क स्थापित किया गया है। सामग्री में प्रायः सामान्य-स्वाभाविक रूपों को ग्रहण किया गया है। असामान्य तथा विशेष भावुकता-युक्त शैली वाले वार्तालापों का प्रयोग नहीं किया गया है।

०.११. शोध-प्रणाली

लेखक ने स्वयं अपने कानों से सुन कर सामग्री का संकलन किया है। इस कार्य में किसी आधुनिक यन्त्र की सहायता नहीं ली गई। कुछ स्थानों से टेप रेकर्डर पर भी सामग्री लाई गई। एक बोली का पूर्ण विश्लेषण किया गया है। अन्य बोली-रूपों का अध्ययन तुलनात्मक दृष्टि से किया गया है। सामान्यतः गाँव की चौपालों अथवा अन्य जन-संकुल स्थानों पर वहाँ के लोगों की सामान्य बातचीत को सुना गया। साथ ही उनसे एक निश्चित कहानी सुनी गई। एक कहानी उनकी रुचि की भी सुनी गई। एक शब्द-सूची जो पहले तैयार की गई थी, उसको भी स्थान-स्थान से सुना गया। इसी प्रकार समस्त आवश्यक सामग्री एकत्रित हुई। सूचना प्राप्त करने के लिए प्रत्येक जाति से एक व्यक्ति-विशेष भी चुना गया। इस व्यक्ति के चुनाव में इन बातों का ध्यान रखा गया कि ४०-४५ वर्ष से अधिक या कम आयु का न हो। उसका जन्म उस गाँव में हुआ हो आर १-२ महीने से अधिक कहीं प्रवासी न रहा हो। प्रायः अपढ़ हो। उससे विशेषतः कहानी ही सुनी गई।

०.१२. बोली का क्षेत्र—पीछे ब्रज की सीमाओं पर विचार किया जा चुका है (०.४.१) और कृत्रिम, साहित्यिक रूप में ब्रजभाषा के विस्तार का भी कुछ विवरण दिया जा चुका है (०.५.६)। इससे यह भी स्पष्ट निष्कर्ष निकाला गया है कि ब्रज की भौतिक सीमाएँ ब्रजभाषा की सीमाओं से मेल नहीं खातीं। प्रस्तुत प्रबन्ध में मथुरा ज़िले की और ज़िले की बोली की सीमाएँ एक ही हैं।

सर्वेक्षण और विवरण की सुविधा के लिए ज़िले के क्षेत्रफल को प्रथमतः दो भागों में विभक्त किया गया है—पश्चिमी भाग (ठाड़ी बोली क्षेत्र) तथा पूर्वी भाग (पड़ी बोली क्षेत्र)। इस विभाजन का आधार बोलीगत भेद है। पश्चिमी भाग की बोली उत्तर की ओर ज़िला गुड़गाँवा की खड़ीबोली तथा पंजाबी के कुछ रूपों से

प्रभावित हो रही है और दूसरी ओर भरतपुर से संलग्न होने के कारण, राजस्थानी का प्रभाव उस पर आ रहा है। इस प्रकार इस क्षेत्र की उत्तरी सीमा खड़ी बोली से तथा पश्चिमी सीमा राजस्थानी से संस्पृष्ट है। इन प्रभावों से उत्पन्न रूपों को देखते हुए इस क्षेत्र का विभाजन उचित है।

दूसरा भाग ज़िले का पूर्व और दक्षिण का भाग है। इस भाग के पूर्व में अलीगढ़ और एटा ज़िले हैं और दक्षिण में आगरा। वैसे ये सीमावर्ती ज़िले भी ब्रज की बोली के अन्तर्गत माने जाते हैं, पर एटा की बोली पूर्वी बोलियों के प्रभाव से युक्त है। अन्य ज़िले भी पूर्वी हिन्दी की बोलियों से प्रभावित हैं। इस प्रकार मथुरा ज़िले के दक्षिण-पूर्व की बोली भी इनसे कुछ प्रभावित है। ये प्रभावित बोलीरूप इस भाग को पश्चिमी या ठाढ़ी बोली क्षेत्र से पृथक् करते हैं। क्षेत्रफल की दृष्टि से पूर्वीभाग, पश्चिमी भाग से अधिक विस्तृत है। इसलिए इसके उपविभाग किए गए हैं—पूर्वी पड़ीबोली, मध्य पड़ीबोली और पश्चिमी पड़ीबोली। पूर्वी उपविभाग पर पूर्वी का प्रभाव सघन है। मध्य में वह कुछ झीना हो गया है, यद्यपि पश्चिमी बोली का प्रभाव नहीं आ पाया है। पश्चिमी पड़ीबोली क्षेत्र की बोली का ढाँचा पड़ीबोली का ही है, पर यह पट्टी पश्चिमी या ठाढ़ी बोली के प्रभाव से भी मुक्त नहीं है। इस क्षेत्र के कुछ भाग के गाँवों में तो जनता पूर्वी और पश्चिमी दोनों बोलियों के रूपों का प्रयोग जाने-अनजाने करती है। इन तीनों भौगोलिक उपविभागों में एक जातीय उपविभाग भी व्याप्त है। वह है चमारों की बोली का। इन उपविभागों में निवसित इस जाति की बोली का स्वरूप प्रायः समान है। अन्य जातियों की बोलियों के उपविभाग अन्तर्व्याप्त नहीं हैं।

पश्चिमी भाग के भौगोलिक उपविभाग नहीं हैं, पर इस क्षेत्र में कुछ अन्तर्व्याप्त जातीय विभाग अवश्य हैं। मुख्यतः चार जातियों की बोलियों के स्वरूप परस्पर भिन्नता लिए हुए हैं—गूजर, जाट, ठाकुर (जादों) तथा मेव। इनमें मेवों की बोली सबसे पृथक् है, पर इनकी बोली का अध्ययन यहाँ प्रस्तुत नहीं किया गया है। अन्य तीनों जातियों की बोली का सर्वेक्षण और उनकी तुलना पाँचवें अध्याय में हैं।

एक और भाग नगरों की बोली का है—मथुरा, बृन्दाबन। प्रस्तुत प्रबन्ध की सीमाओं से वह क्षेत्र बाहर है।

०.१३. लोहबन-बोली-क्षेत्र—लोहबन मध्य पड़ीबोली क्षेत्र का एक गाँव है जो मथुरा से उत्तर-पूर्व में लगभग २ मील पर है। लोहबन बोली, मध्य पड़ी बोली क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करती है। ग्रियर्सन[१] ने मथुरा को ब्रज क्षेत्र का केन्द्र माना है। इस

---

१. **ग्रियर्सन, लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ़ इण्डिया,** Vol. ix, Part I.

दृष्टि से ब्रज-क्षेत्र के केन्द्र में भी इस गाँव की स्थिति है। इस क्षेत्र की ब्रजभाषा को ग्रियर्सन ने परिनिष्ठित ब्रजभाषा कहा है। साथ ही यह ब्रज का एक पवित्र-स्थान भी है और ब्रजयात्रा का भी एक वन है। ब्रज के ही नहीं, मथुरा जिले का भी यह केन्द्रस्थ गाँव है। लोहबन की इस केन्द्रीय स्थिति के कारण इसकी बोली को मुख्य रूप से लेकर, उसका विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत प्रबन्ध में प्रस्तुत किया गया है। अन्य अन्तरों को तुलना के द्वारा स्पष्ट किया गया है।

बोली-विज्ञान की दृष्टि से भी यह-क्षेत्र महत्वपूर्ण है। लोहबन वह क्षेत्र है जहाँ पूर्वी बोलियों के प्रभाव से युक्त पड़ीबोली समाप्त हो जाती है। यहाँ आते-आते राजस्थानी, खड़ी बोली और पंजाबी के प्रभावों से युक्त पश्चिमी ठाड़ी बोली भी समाप्त हो जाती है। यदि पश्चिमी पड़ीबोली क्षेत्र की बोली को लिया जाता, तो यह एक अनिश्चित, मिश्रित बोली का क्षेत्र है, जहाँ दोनों प्रकार के रूप प्रचलित हैं। पश्चिमी ठाड़ी बोली तथा पूर्वी पड़ीबोली क्षेत्र दो सीमा-विन्दु हैं, जहाँ जिले से बाहर की बोलियों का प्रभाव घना है। इन सब कारणों से अध्ययन के लिए मध्य-पड़ी-बोली क्षेत्र को चुना गया है और उसमें भी उस गाँव की बोली को मुख्यता दी गई है जो पश्चिमी पड़ीबोली क्षेत्र से समीपतम है। एक और दृष्टि, इस चुनाव के पीछे है। पश्चिमी क्षेत्र के अन्तर्व्याप्त जातीय उपविभागों (गूजर, जाट, ठाकुर) में प्राप्त विशिष्ट रूपों से भी यह गाँव मुक्त है, क्योंकि ये जातियाँ इस गाँव में नहीं हैं। चमार-बोली-उपविभाग से बचना सम्भव नहीं था क्योंकि कोई गाँव ऐसा नहीं है, जिसमें चमार न हों। इस प्रकार लोहवन की बोली का चुनाव युक्ति-युक्त लगता है।

ध्वनि-विचार

१

ध्वनि-विचार

१.०. इस अध्याय में मथुरा ज़िले में प्रचलित ब्रज की बोली के ध्वनिग्रामों का विवरण प्रस्तुत किया गया है। खण्ड ध्वनिग्रामों (Segmental phonemes) के पश्चात् कुछ खण्डेतर ध्वनिग्रामों (Supra segmental) पर भी संक्षिप्त विचार संलग्न है। खण्डेतर ध्वनिग्रामों का विवरण बिना किसी य न्त्रिक सहायता के प्रस्तुत किया गया है। अतः उसकी अपनी सीमाएँ हैं। ध्वनिग्रामात्मक, संस्वनात्मक तथा संयुक्त ध्वनियों के स्तर पर प्राप्य वैविध्य को भी यथास्थान स्पष्ट किया गया है।

१.१. **ध्वनिग्राम-सूची**—मथुरा ज़िले के बोली में १० स्वर, ३० व्यन्जन, अनुनासिक तथा शब्द-संधिक (word-juncture) हैं।

क. स्वर— /ई, इ, ए, ऐ, अ, आ, ऊ, उ, ओ, औ/

ख. व्यन्जन— /प, फ, ब, भ, त, थ, द, ध, ट, ठ, ड, ढ, क, ख, ग, घ, च, छ, ज, झ, स, ह, र, र्ह, ल, ल्ह, म, म्ह, न, न्ह ?/

ग. अनुनासिक—/:/ँ/

घ. शब्द संधिक—/+/; उपवाक्यान्तक /।/, ; वाक्यान्तक /।।/

ङ. सुरसरणियाँ (Contours)—आरोही / ↑ /, अवरोही / ↓ /, तथा सम /→/ ये सब अन्त्य सुरसरणियाँ हैं। अन्त्येतर केवल एक है: बलवर्द्धक (Emphatic) /E/

च. सुरसरणि परिवर्तक : (Contour modifiers) : मोड़ /T/, प्लुति /S/, तथा अतिरिक्त ध्वनिवर्द्धक /L/

१.१.१. **स्वर**—दो वर्गों में विभक्त होते हैं—दीर्घ तथा ह्रस्व। इन दोनों वर्गों के स्वरों की कुछ सामान्य विशेषताएँ हैं। उच्चारण के आरम्भ में प्रयुक्त स्वरों के पूर्व स्वरयन्त्रीय-संस्पर्श (glottal catch) का स्वल्पाभास मिलता है। साथ ही मूर्द्धन्य व्यन्जनों से पूर्व प्रयुक्त होने पर कुछ मूर्द्धन्यभाव (retroflexion) भी उत्पन्न हो जाता है, जो स्वरों के उच्चारण के उत्तरांश के रूप में संलग्न रहता है।

नासिक्यव्यञ्जनों, विशेषतः /म/ तथा, नासिक्यव्यञ्जन-द्वित्वों से पूर्व और दो नासिक्य ध्वनियों के मध्यवर्ती होने पर स्वरों का कुछ नासिक्यीभवन (nasalization) हो जाता है। यह नासिक्यीभवन संस्वनात्मक है जो ध्वनिग्रामात्मक अनुनासिक /ँ/ से दुर्बलतर होता है। नीचे दीर्घ तथा ह्रस्वों के स्वल्पान्तर युग्म दिए गये हैं—

/अ/—/आ/—/अब/ 'अब'	/लत/ 'आदत'	/खाज/	'खुजली'
/आब/ 'चमक'	/लात/ 'लात'	/खाजा/	'एक भोज्य पदार्थ'
/इ/—/ई/— f ×	/सिर/ 'सिर'	/खोइ/	'दोष'
	/सीर/ 'खेती'	/खोई/	'खो गई'
/उ/—/ऊ/—/उत/ 'उधर'	/बुरौ/ 'बुरा'	/जोरु/	'शक्ति'
/ऊत/ 'अऊत'	/बूरौ/ 'बूरा'	/जोरु/	'पत्नी'
/ए/—/ऐ/— ×	/मेलु/ 'मेल'	/गिरे/	'गिरे'
	/मैलु/ 'मैल'	/गिरै/	'गिरे!'
/ओ/—/औ/—/ओर/ 'एक गाँव'	/चोरु/ 'चोर'	/तारो/	'लड़की का नाम'
/और/ 'और'	/चौरु/ 'चँवर'	/तारौ/	'ताला'

१.१.११. **दीर्घस्वर**—/ई/, /ए/, /ऐ/, /आ/, /ऊ/, /ओ/ तथा /औ/ दीर्घ स्वर हैं। इन स्वरों की दीर्घता में ध्वन्यात्मक परिस्थिति-जन्य संस्वनात्मक वैविध्य प्राप्त होता है। इस दीर्घता को तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है—दीर्घतम [:] दीर्घतर [˙] तथा दीर्घ [⌒]। इनका ध्वनिवैज्ञानिक विवरण और वैविध्यों के उदाहरण आगे संस्वनों की सूची में दिये गये हैं ( )

१.१.१२. **ह्रस्वस्वर**—/इ/, /अ/, /उ/ तीन ह्रस्व स्वर हैं। इनकी दीर्घता की दो ध्वन्यात्मक श्रेणियाँ मिलती हैं—सामान्य तथा अल्पदीर्घ [⌒]। सामान्य के लिए किसी चिह्न का प्रयोग नहीं किया गया है। ह्रस्व स्वरों का एक स्थिति-जन्य रूप अघोष का भी है [̥] इन स्वर-ध्वनिग्रामों तथा इनके संस्वनों का ध्वन्यात्मक विवरण आगे दिया गया है।

१.१.१३. स्वर ध्वनिग्राम तथा उनके संस्वन इस प्रकार हैं—

१.१.१३१. **दीर्घस्वर**—ऊपर (१.१.१.) स्वल्प स्वरयन्त्रीय संस्पर्श-जन्य स्वनग्रामों की चर्चा हो चुकी है। इस प्रकार [? ई], [? ए], [? ऐ] [? आ] [? ऊ] [? ओ] तथा [? औ] स्वनग्राम मिलते हैं, जिनकी स्थिति उच्चारण के आरम्भ (utterance initial) में रहती है। जैसे [? ईख] 'ऊख', [? एक] 'एक', [? ऐ सौ] 'ऐसा', [? आम] 'आम', [? ऊपर] 'ऊपर', [? ओखरी] 'ओखली', [? और] 'और' मूर्द्धन्य व्यञ्जनों से पूर्व प्रयन्त्य मूर्द्धन्य भाव इतना हलका होता है कि उसका उदाहरण देना अनावश्यक है। नासिक्यी-

करण से उत्पन्न संस्वन सामान्यतः ह्रस्व स्वरों के मिलते हैं। दीर्घस्वरों का, नासिक्य-परिस्थितियों में, नासिक्यीकरण होना, कुछ निम्नवर्गों की बोलियों की विशेषता है। अन्य संस्वनों पर नीचे विचार किया जा रहा है।

क—दीर्घता पर आधारित संस्वन—

/ई/=उच्चतर उच्च (high-high), अग्र, अगोलीकृत स्वर है।

=[ई़], [ई·], [ईः]

=[ई़]–/ऐ/, /औ/ से पूर्व तथा पदान्त में प्रयुक्त होने पर दीर्घता में स्वल्प ह्रास हो जाता है। जैसे—

[र् अ ई़ ऐ़] 'रई को' [ज् अ ई़ ऐ़] 'जई को'

[ग् अ ई़ औ़] 'गई हो' [र् अ ह् ई़ औ़] 'रहना'

[आ द् इ म् ई़] 'आदमी' [इ म् इ ल् ई़] 'इमली'

=[ई·]–दीर्घस्वर या दीर्घस्वराधारित अक्षर से पूर्व प्रयुक्त होने पर पूर्ण-दीर्घता कुछ कम हो जाती है, पर [ई़] के समान नहीं। जैसे—

[भ् ज त् ई· ज् आ़] 'भतीजा' [ग् अ र् ई· ब् ई़] 'गरीबी'

=[ईः]–यह दीर्घतम संस्वन है। इसका प्रयोग इ, अ, उ अथवा इन पर आधारित अक्षरों से पूर्व होता है। जैसे—

[ईः ख् अ़] 'ऊख' [भ् ईँः त् इ़] 'भीत' [फ् अ र् ईः क् उ़] 'फ़रीक'

/ए/=उच्चतर मध्य (high-mid), अग्र, अगोलीकृत स्वर है।

=[ए़], [ए·], [एः]

=[ए़] का प्रयोग पदान्त में होता है। इस प्रकार इसकी दीर्घता का थोड़ा ह्रास हो जाता है। जैसे—

[छ् अ ड़् ए़] 'पैरों का एक गहना' [क् अ ड़् ए़] 'कड़े, हाथ का गहना'

=[ए·]–दीर्घस्वरों अथवा दीर्घस्वर युक्त अक्षरों से पूर्व प्रयुक्त होता है। जैसे—[ल् ए· औ़] 'लेआ' [स् ए· ई़] 'सेई, एक गाँव का नाम'

=[एः]–का प्रयोग ह्रस्व स्वरों अथवा उनसे रचित अक्षरों से पूर्व होता है—

[एः क् उ़] 'एक' [छ् एः द् अ़] 'छिद्र'

[ख् एः अ़] 'धूल'

/ऐ/—निम्नतर मध्य (low-mid) अग्र, अगोलीकृत स्वर है।

=[ऐ़], [ऐ·], [ऐः]

=[ऐ़] का प्रयोग पदान्त में तथा /ह/ के पूर्व और पश्चात् होता है—

[ग् इ र् ऐ़] 'गिरे' [ल् ऐ़ ह् ऐ़ र् इ़] 'लहर'

[क् ऐ़ ह् ऐ़ न् इ़] 'कहना' [स ऐ़ ह् ऐ़ र् उ़] 'शहर'

=[ऐ·] दीर्घ स्वरों अथवा उनसे निर्मित अक्षरों से पूर्व प्रयुक्त होता है—
[प् ऐ· द् आ़] 'पैदावार' [प् ऐ· न् आ़] 'चाबुक'
=[ऐ:] यह दीर्घतम स्वनग्राम है। इसका प्रयोग ह्रस्व स्वरों अथवा उनसे रचित अक्षरों के पूर्व होता है—
[ख ऐ: र् अ़] 'खैर, एक गाँव' [प् ऐ: र उ़] 'खलिहान'

/आ/—निम्न, मध्य, अगोलीकृत स्वर है।
=[आ़] [आ·], [आ:]
=[आ़]—ह्रसित दीर्घता-युक्त यह संस्वन पदान्त में प्रयुक्त होता है। जैसे—
[ग् अ ध् आ़] 'गधा' [स् आ· द् आ़] 'सादा, सरल'
=[आ·]—ह्रसित दीर्घतायुक्त तथा दीर्घतम स्वनग्राम के बीच इसकी स्थिति है। इसका प्रयोग दीर्घस्वरों या दीर्घ अक्षरों से पूर्व होता है—
[र्आ· ध् आ़] 'राधा' [स् आ· ध् ऊ़] 'साधु'
=[आ:]—इस दीर्घतम स्वनग्राम का प्रयोग ह्रस्व स्वर तथा इन पर आधारित अक्षरों से पूर्व होता है।
[आ: म् उ़] 'आम' [क् आ: म् उ़] 'काम'
[ग् आ: द् इ़] 'मैल' [ब् आ: त् अ़] 'बात'

/ऊ/—उच्चतर (high-high) पश्च, गोलीकृत स्वर है।
=[ऊ़], [ऊ.], [ऊ:]
=[ऊ़] वैसे इसका प्रयोग अन्य दीर्घस्वरों की भाँति उच्चारान्त (utterance final) होता है, जब कि दीर्घता ह्रसित हो जाती है। पर नासिक्य होने पर इस स्थिति में इसकी दीर्घता कुछ बढ़ जाती है, जो अन्य दीर्घस्वरों से इसे विशेषता प्रदान करती है। अनासिक्य होने पर भी अन्त में प्रयुक्त होने पर इसकी दीर्घता कुछ अधिक ही रहती है। इसका प्रयोग /ऐ/ तथा /औ/ से भी पूर्व होता है। जैसे—
[झ् आ· ऊ़] 'झाऊ' [त् आ· ऊ़ ऐ] 'ताऊ को'
[न् आ ऊ़ औ़] 'नाई ओ!'
=[ऊ·] यह स्वनग्राम [ऊ़] से कुछ दीर्घ है। इसका प्रयोग दीर्घस्वरों से पूर्व होता है। [स् ऊ· ख् आ़] 'सूखा, एक रोग' [प् ऊ· ड़् ई़] 'पूड़ी'
[क् ऊ· ट् ऊ़] 'कूटू, एक अन्न'
[ऊ:] इस दीर्घतम संस्वन का प्रयोग ह्रस्व स्वरों या ह्रस्व स्वरों पर आधारित अक्षरों से पूर्व होता है—
[ऊ: प् अ र् अ़] 'ऊपर' [ल् ऊ: ट् इ़] 'लूट' [स् ऊ: प् उ़] 'सूप'

/ओ/—उच्चतर मध्य पश्च गोलीकृत स्वर है। /ऊ/ से कुछ अधिक दृढ़ (Tense) है।

=[ओ़], [ओ·], [ओः]

=[ओ़] का प्रयोग पदान्त में होता है। वैसे इसका पदान्त प्रयोग अत्यन्त विरल है। जैसे—[क् अ ल् ल् ओ़] 'एक लड़की का नाम'

=[ओ·] का प्रयोग दीर्घस्वरों अथवा इन पर आधारित अक्षरों से पूर्व होता है—

[ढ् ओ· ल् आ़] 'ढोला, एक लोकगीत' [ग् ओ· ट् आ़] 'गोटा'

[मो· र् ई़] 'मोरी' [ज् ओः र् ऊ़] 'पत्नी'

=[ओः] दीर्घतम संस्वन है। इसका प्रयोग ह्रस्व स्वरों या उनसे बने अक्षरों से पूर्व होता है। पर मध्य में प्रयुक्त होने पर [इ] से पूर्व इस दीर्घता में कुछ कमी हो जाती है जैसे—[स् ओः इ् ब् आ़] 'सोना' अन्य उदाहरण—

[ख् ओः ट् उ़] 'खोट, दोष' [गओः ट् अ़] 'गोट, किनारी'

[स् ओः ट् इ़] 'सोट, कड़ी'

/औ/—निम्नतर मध्य (low-mid) पश्च, गोलीकृत स्वर है।

=[औ़], [औ·], [औः]

=[औ़] का प्रयोग पदान्त में तथा /ह/ के पूर्व और पश्चात् होता है। जैसे—

[त् आ· र् औ़] 'ताला' [न् आ· र् औ़] 'नाड़ा'

[ल् औ़ ह् औ़ र् औ़] 'छोटा'

=[औ·]–का प्रयोग दीर्घ स्वरों या उनसे रचित अक्षरों से पूर्व होता है—

[ल् औ· ट् आ़] 'गुड़ का एक प्रकार' [प् औ· ध् आ़] 'पौधा'

=[औः]–का प्रयोग ह्रस्व स्वरों अथवा अक्षरों से पूर्व होता है—

[ल् औः द् अ़] 'लकड़ी' [प् औः द् इ़] 'पौद'

ख—श्रुति पर आधारित संस्वन—

जब /ई/ तथा /ऊ/ अन्य दीर्घ स्वरों के पूर्व प्रयुक्त होते हैं, तो संस्वनात्मक ध्वनिखण्ड क्रमशः [य] तथा [व] उत्पन्न होते हैं। इनको क्रमशः /ई/ /ऊ/ /ओ/ के उच्चारण का उत्तरांश ही माना गया है। इस प्रकार [ई^{य}] [ऊ^{व}] [ओ^{व}] संस्वन प्राप्त होते हैं। उदाहरण हैं—[द् ई^{य} ए] 'दीपक' [घ् ई^{य} आ] 'घिया' [स् ऊ^{व} आ] 'सुआ, तोता' [स् ऊ^{व} औ] 'सुआ, बोरे सीने की बड़ी सुई' [त कू^{व} आ] 'तकुआ'

[व] का एक स्थल और है जहाँ इसकी मुखरता यद्यपि कम रहती है, फिर भी अस्तित्व अवश्य रहता है। /ओ/ का प्रयोग जब /आ/ से पूर्व होता है, तो [ओ व] संस्वन प्राप्त होता है। जैसे—[ख् ओ व आ] 'खोया' [च् ओ व आ] 'चूने वाला' [फ् ओ व आ] 'रुई का फोआ'।

ग—नासिक्यीकरण-जन्य संस्वन—

ध्वनिग्रामात्मक /ँ/ से युक्त होने पर निम्नतर मध्य-अग्र-अगोलीकृत /ऐ/ तथा निम्नतर मध्य-पश्च-गोलीकृत /औ/, निम्नतर स्थिति से कुछ ऊपर उठ जाते हैं। इन संस्वनों को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—[ऐ^] तथा [आ^] उदाहरण—/पौंगा/=[प्औ^ ँग्आ] 'मूर्ख' /ऐंड़/=[ऐ ँड़्अ्] 'अँगड़ाई'

घ—संस्वनात्मक नासिक्यीकरण—

(i) दो नासिक्य व्यञ्जनों के बीच प्रयुक्त होने पर, दीर्घस्वरों के साथ अर्द्धमुखर नासिक्यीकरण श्रव्य होता है। यह स्वर के सम्पूर्ण उच्चारण पर नहीं, उसके उत्तरांश पर छाया रहता है।

(ii) उच्चारान्त या पदान्त नासिक्य व्यञ्जन के पश्चात् आने वाला दीर्घस्वर भी संस्वनात्मक नासिक्यीकरण ग्रहण करता है।

उदाहरण—/मीना/=[म् ई न् आ] 'मीना'/नाभी/=[न् आ भ् ई] 'प्रसिद्ध /नौनु/=[न् औ न् उ] 'नमक' /पानी/=[प् आ न् ई] 'पानी'।

(iii) नासिक्य दीर्घ स्वरों के पूर्व प्रयुक्त होने पर भी उक्त नासिक्यीकरण श्रव्य होता है। जैसे—/साईं/=[स् आ ईँ] 'स्वामी' /धूआँ/=[ध् ऊ आँ] 'धुआँ' /सैऊँ/=[स् ऐ ऊँ] 'गेहूँ के साथ उत्पन्न होने वाला एक अनाज'।

१.१.१३२. ह्रस्व स्वर—

ह्रस्वर स्वर तीन हैं /इ/, /अ/, /उ/, इनके संस्वनात्मक वैविध्य और उसके आधारों का विवरण नीचे प्रस्तुत किया गया है—

क—दीर्घता के आधार पर—इन ह्रस्व स्वरों की दो संस्वनात्मक कोटियाँ प्राप्त होती हैं—सामान्य दीर्घतायुक्त तथा ह्रसित दीर्घतायुक्त। पहली श्रेणी को इस विवरण में किसी चिह्न-विशेष से चिह्नित नहीं किया गया है। ह्रसित दीर्घता वाले संस्वनों को इस प्रकार लिखा गया है—[इ्] [अ्] तथा [उ्]

ख—घोष के आधार पर—उक्त स्वर सघोष और अघोष दोनों ही रूपों में प्राप्त होते हैं। अघोषता का आधार प्रयोग की व्यञ्जनात्मक परिस्थिति और

बोलने की गति है। अघोष व्यञ्जनों के पश्चात् पदान्त प्रयुक्त /इ/, /उ/ बहुधा अघोष [इ̥] [उ̥] के रूप में मिलते हैं। अन्त्य-प्रयुक्त /अ/ तो बहुधा अघोष [अ̥] ही रहता है। पद के मध्य में सघोष व्यञ्जनों से पूर्व प्रयुक्त ह्रस्व स्वर ह्रसित होकर भी सघोष बने रहते हैं। त्वरा से बोलने पर घोष का ह्रास होने लगता है। कभी तो घोष की मात्रा अल्पतर हो जाती है और कभी घोष शून्य भी हो जाता है।

ग—अर्द्धस्वर—प्रस्तुत अध्ययन में अर्द्धस्वर य, व को स्वतन्त्र ध्वनिग्राम नहीं माना गया है, उनको क्रमशः /इ/ तथा /उ/ के संस्वनों के रूप में ही स्वीकार किया गया है। इसके दो कारण हैं—एक ध्वन्यात्मक तथा दूसरा पद वैज्ञानिक। ध्वनि-वैज्ञानिक दृष्टि से दोनों के प्रयोग की परिस्थितियों में पूरक-बंटन (Complementary distribution) मिलता है। जैसे—

य/इ—य—की परिस्थितियाँ	**इ—की परिस्थितियाँ**
#———आ, औ	×
व्यं०———आ, औ	×
आ———आ	×
आ———औ	×
×	#———व्यं०
×	व्यं०———व्यं०
×	व्यं०———#

व/उ—व—की परिस्थितियाँ	**उ—की परिस्थितियाँ**
व्यं०———आ	×
व्यं०———ए	×
व्यं०———ऐ	×
×	#———व्यं०
×	स्व०———स्व०
×	व्यं०———व्यं०
×	व्यं०———/आ, ए, ऐ/ के अतिरिक्त स्वर

दूसरा कारण पदवैज्ञानिक विवरण की सरलता और सुविधा है। इस प्रकार दो ध्वनिग्रामों के सूची से हटा देना सुविधाजनक रहता है।

घ—इन स्वरों के कुछ नासिक्यीकृत स्वनग्राम भी हैं, जो नासिक्य परिस्थितियों के कारण उत्पन्न हो जाते हैं। ये नासिक्य परिस्थितियाँ इस प्रकार हैं—

(i) #——/न्न्/, /म्म्/
व्यं——/न् न्/, /म् म्/

(ii) /न्/——/न/
/म्/——/म्/

(iii) व्यं०——/न्/+व्यञ्जन
व्यं०——/म्/+व्यञ्जन

(iv) /न्/——#
/म्/——#

(v) /ँ/+दीर्घस्वर——#

ऊपर ह्रस्व स्वर-ध्वनिग्रामों के वैविध्यों के सामान्य आधारों पर विचार किया गया है। इनके अतिरिक्त भी कुछ वैविध्य मिलते हैं जिनका सम्बन्ध स्वर-विशेष से है। ऊपर के आधारों पर तथा अन्य वैविध्यों का संक्षिप्त विवरण और उदाहरण नीचे प्रस्तुत किए गए हैं।

१.१.१३३. ह्रस्व स्वरों का संस्वनात्मक विवरण—

/इ/—निम्नतर-उच्च (low-high) अग्र, अगोलीकृत स्वर है।

=[इ] [इ़] [इ॒] [इ^{य}], [य्]

[इ]—अपनी प्रकृत दीर्घता (length) से युक्त है। इसका प्रयोग पद के आदि में अथवा पद के आद्यक्षर के आधार के रूप में व्यञ्जन से पूर्व मिलता है—

[इत्–] 'इधर' [स् इ ल्] 'सिल' [त् इ ल्] 'तिल'

[इ़]—ह्रसित दीर्घतावाले इस संस्वन का प्रयोग बहुधा उच्चारान्त में सघोष व्यञ्जन के पश्चात् और पद के मध्य में दीर्घाक्षर से पूर्व होता है—

[ग् आ द् इ़] 'मैल' [न् आ म् इ़] 'पशुओं का एक रोग'

[ग् इ़ ड् आ र् अ॒] 'गिड़ार' [ग् इ़ त् आ र् अ॒] 'गीत गाने में चतुर'

[इ॒]—अघोष व्यञ्जन के पश्चात् पदान्त प्रयुक्त होने पर यह अघोष संस्वन प्राप्त होता है। जैसे—

[ग् अ त् इ॒] 'गति' [म् अ त् इ॒] 'मति' [ग् आँ ठ् इ॒] 'ग्रन्थि'

[स् आ ठ् इ॒] '६०'

केवल पदान्त होने पर (उच्चारान्त नहीं) भी इसका प्रयोग होता है।
जैसे—[स् औ त् इ̥+कूँ] 'सौत को'

[इ^य]—इस संस्वन का प्रयोग व्यञ्जन तथा दीर्घस्वरों के पूर्व होता है: व्यं०—दी० स्व०। जैसे—

[ह् इ^य आ ब् अ॒ क् औ] 'हिम्मत' [ग् इ^य आ भ् अ न् अ॒] 'गाभन'

[ग् अ त् इ^य ऐ] 'गति है' [घ् इ^य औ] 'घी'

[य्]—का प्रयोग#—आ, औ तथा दो दीर्घस्वरों के बीच मिलता है।
जैसे—

[य् आ र् उ॒] 'यार' [य् आ द् इ॒] 'याद' [म् आ य् आ] 'माया'
[य् औ ढ़ आ॒] 'दाँव'।

/अ/—मध्य (mean-mid) अगोलीकृत स्वर है।

=[अ] [अ॒] [अ̥] [अ→]

[अ]—अपनी प्रकृत दीर्घता से युक्त इस संस्वन का प्रयोग पद के आरम्भ में तथा पद के मध्य में होता है। केवल /ब/ के पश्चात् मध्य में प्रयुक्त होने पर यह अघोष [अ̥] श्रव्य होता है।
[अ त् अ र् उ̥] 'इत्र' [अ क् अ ल् इ̥] 'अक़ल'
[घ् अ र् उ̥] 'घर' [प अ र् उ̥] 'पारसाल'

[अ॒]—यह /अ/ की ह्रसित दीर्घतावाला संस्वन है। इसका प्रयोग पद के मध्य में दीर्घाक्षर से पूर्व तथा उच्चारान्त होता है। जैसे—
[म् अ च् आ न् उ॒] 'मंच' [ब् आ त् अ॒] 'बात'
[घ् आ त् अ॒] 'घात' [ल् आ ग् अ॒] 'लागत'

[अ̥]—इस अघोष संस्वन का प्रयोग अघोष व्यञ्जन के पश्चात्, केवल पदान्त प्रयुक्त होने पर होता है। जैसे—
[स् आ त् अ̥ –] '७' [ल् आ त् अ̥ –] 'लात'

[अ→]—/ज/ तथा /झ/ से पूर्व प्रयुक्त होने पर इसके उच्चारण में कुछ अग्रता आ जाती है; साथ ही इसकी 'ऊँचाई' भी कुछ कम हो जाती है (Fronted and lowered) जैसे—
[ग् अ→ज् ज् ओ॒] 'व्यक्ति-नाम' [द् अ र् अ ब् अ→ज् ज् औ] 'दरवाज़ा'

/उ/—निम्नतर-उच्च पश्च गोलीकृत स्वर है।

=[उ] [उ॒] [उ॰] [उ^व] [व्]

=[उ]—अपनी प्रकृत दीर्घता से युक्त इस संस्वन का प्रयोग पद के आदि में अथवा पद के आद्यक्षर के आधार के रूप में व्यञ्जन से पूर्व मिलता है।

जैसे—

[उ ख् अ ट् आ॒] 'वृक्षों का एक रोग' [क् उ ट् ई॒] 'कुटिया'

=[उ॒]—ह्रसित दीर्घता वाला यह संस्वन उच्चारान्त में सघोष व्यञ्जन के पश्चात् तथा पद-मध्य में दीर्घाक्षर से पूर्व प्रयुक्त होता है—

[ब् अ न् उ॒] 'बन' [ब् आ ग् उ॒] 'बाग'

[स् आ ज् उ॒] 'साज़' [त् इ न् उ॒ क् आ॒] 'तिनका'

=[उ॰]—यह अघोष संस्वन अघोष-व्यञ्जन के पश्चात् पदान्त में प्रयुक्त होता है। जैसे—

[त् अ क् उ॰] 'तोलने का बड़ा काँटा' [ग् आ त् उ॰] 'शरीर'

=[उ^व]—श्रुति-युक्त इस संस्वन का प्रयोग, व्यञ्जन तथा अग्र दीर्घस्वरों के बीच में होता है। जैसे—

[स् उ^व ई॒] 'सुई' [घ् अ र् उ^व ऐ] 'घर है'

=[व्]—का प्रयोग व्यञ्जन तथा /आ/ के बीच में होता है। जैसे—

[क् व् आ र् उ॰] 'क्वार' [ग् व् आ र् इ॰] 'ग्वार' [ब् व् आ] 'उस'

उक्त संस्वनों के अतिरिक्त, नासिक्य संस्वन [~] भी प्राप्त होते हैं। इनके प्रयोग की स्थितियाँ पहले [१.१.१३२. घ) दी जा चुकी हैं। आसपास के नासिक्य स्वरों और व्यञ्जनों के प्रभाव से ह्रस्व स्वरों में संस्वनात्मक, अर्द्ध-मुखर नासिक्यीकरण श्रव्य होता है, जो प्रभावित स्वर के उच्चारण के उत्तरांश पर झूलता रहता है। इनके उदाहरण यहाँ दिए जा रहे हैं—[झ् इँ न् न् आँ॒] 'झीना' [ढ इँ म् म् आँ॒] 'ढेला' [छ् अँ न् न् आ॒] 'छानने का कपड़ा' [अँ म्-म् आ॒] 'मा']उ न् न् आ॒]' भेड़ का बच्चा' [ग् उ म् म् आ॒] 'एक प्रकार की ईंट' [च् अ म् प् आ॒] 'चम्पा' [क् अ ण् ड् आ॒] 'कंडा' [ग् उ ण् ड आ॒] 'गुण्डा' [च् इ न् त् आ॒] 'चिन्ता' [ख् इ ङ ग् उ॒] 'सिंह, वीर' [ट् इ ञ च् अ॰] 'तैयार' [भ् इ ण् ड ई॒] 'भिंडी' [ग् अँ न् द् आँ॒] 'गन्दा' [स् अँ ङ ख् उ॰। 'शंख' [स् उँ

न्द्अर्उ्] 'सुन्दर' [प्उङग्आ्] 'मूर्ख' [प्अञ्ज्आ्] 'पंजा' [ज्आ-म्इन्इ] 'जामुन' [म्अन्उ] 'मन' [म्उन्इह्आई्] 'मुनिहाई', जायदाद' [न्उन्उख्र्आ्] 'नमकीन' [घअन्उ] 'धन' [म्अन्इ] 'मणि' [ब्आस्अन्अ] 'बर्तन' [दआँइ] 'दाइँ' [प्आँउ] 'पैर'

१.१.१३४. नासिक्य स्वर ध्वनि ग्राम––

स्वर ध्वनि ग्रामों के पूर्ण उच्चारण पर स्थित पूर्ण मुखर अनुनासिकता छाई रहती है। इसकी स्थिति ध्वनिग्रामात्मक है। इसको सिद्ध करने के लिए नीचे कुछ स्वल्पान्तर युग्म दिए जा रहे हैं—

/ई/ – /ईँ/ : /गई/ 'गई' (एक) /गईँ/ 'गईं' (बहु०)
/ऐ/ – /ऐँ/ : /पैठ/ 'ज्ञान' /पैँठ 'पैंठ, साप्ताहिक बाजार'
/आ/ – /आँ/ : /खातु/ 'खाद' /खाँतु/ 'खाता'
/ऊ/ – /ऊँ/ : /जूआ/ 'जुआ' /जूँआँ/ 'स्वेदज'
/औ/ – /औँ/ : /गौ/ 'गया' /गौँ/ 'स्वार्थ'
: /कौड़ा/ 'बड़ीकौड़ी' /कौंड़ी/ 'कुन्दा'
/अ/ – /अँ/ : /अगार/ 'आगे' /अँगार/ 'अंगार'
/इ/ – /इँ/ : /सिगार/ 'सिगरेट' /सिँगार/ 'सींगवाली'
/उ/ – /उँ/ : /पाउ/ 'एकपाव' /पाउँ/ 'पैर'
: /जाउ/ '(तू) जा' /जाउँ/ '(मैं) जाऊँ?'

दीर्घ अनुनासिक स्वर पद के आरम्भ, मध्य, तथा अन्त में आ सकते हैं––/आँ/ का प्रयोग आरम्भ और अन्त में अन्य अनुनासिक दीर्घ व्यञ्जनों की अपेक्षा कम होता है। /ऐँ/ का प्रयोग पद के आरम्भ में प्रायः मूर्द्धन्य व्यञ्जनों के पूर्व ही होता है। इन प्रयोगों के उदाहरण ये हैं––/ईँधनु/ 'ईंधन' /सीँक/ 'सींक' /गईँ/ 'गईं' /ऐँड़/ 'अँगड़ाई' /ऐँठ/ 'अभिमान' /पैँठ/ 'पैंठ, हाट' /चलैँ/ '(वे) चलें' /आँसू/ 'अश्रु' /काँटौ/ काँटा /ऊँटु/ 'ऊँट' /खूँटा/ 'खूँटा' /जाकूँ/ 'इसके लिए' /औंगा/ 'एक वृक्ष का नाम' /ढौँगु/ 'ढोंग' /गौँ/ 'स्वार्थ'।

/ओ/ तथा /ए/ के अनुनासिक रूप प्राप्त नहीं होते। नासिक्य व्यञ्जन /म्/ और /न्/ से भी पहले इनके प्रयोग नहीं देखा गया। /म्/ तथा /न्/ के पीछे जाने पर भी इनमें संस्वनात्मक नासिक्यीकरण नहीं प्रविष्ट होता।

ह्रस्व स्वर भी अनुनासिक ध्वनिग्राम के रूप में मिलते हैं—/इँ/, /अँ/ तथा /उँ/ यह /इ/, तथा /अ/ के साथ पद के मध्य में प्रयुक्त हो सकता है। केवल कण्ठ्य व्यञ्जनों से पूर्व प्रयुक्त होने पर ही /अ/ तथा /उ/ के अनुनासिक रूप पद के प्रारम्भ में मिलते हैं। साधारणतः /इँ/ का प्रयोग पद के आरम्भ में, /उँ/ का प्रयोग पद के मध्य में तथा /अँ/ का पद के अन्त में नहीं पाया जाता। इनके कुछ उदाहरण ये हैं—/सिँदरफु/ 'स्त्रियों के द्वारा प्रयुक्त सुहाग चिह्न'; /अँगारु/ 'अंगार' /भँगरा/ 'एक गाँव का नाम' /कँगूरा/ 'कँगूरे' /हँसिबौ/ 'हँसना' /उँगरिया/ 'उँगली' /पाँउँ/ 'पैर' /सिँगारु/ 'श्रृंगार' /पाँइँ/ 'पैर (बहु०)'।

१.१.१४. स्वर-संयोग—

संयुक्त स्वरों को इस चित्र से स्पष्ट किया जा सकता है—

द्वितीय स्वर

प्रथम स्वर	ई	इ	ए	ऐ	ऊ	उ	ओ	औ	अ	आ
ई	×		×	×	×	×		×	×	×
इ				×	×					
ए	×			×	×	×		×	×	×
ऐ	×				×					×
ऊ	×	×	×	×	×			×	×	×
उ	×	×		×						
ओ	×	×	×	×	×					×
औ	×				×					
अ	×	×	×	×	×		×	×		
आ	×	×	×	×	×	×		×		

चित्र – १

क—द्वितीय स्वर दीर्घ—/ई/ संयुक्त स्वर के द्वितीयांश के रूप में /इ/ के अतिरिक्त सभी स्वरों के पश्चात् आ सकता है। जैसे /आदिमी ई/ 'आदमी ही' /ल्हेई/ 'लेही' /सेई/ 'एक गाँव का नाम' /छोई/ 'ऊख की छूँछ' /लोई/ 'ऊनी चादर' /जगैई/ 'जगह ही' /बाजूई/ 'बाजूही' /तारौई/ 'ताला ही' /रई/ 'मथानी' /राई/ 'राई'।

/ऊ/ भी /उ/ के अतिरिक्त सभी स्वरों के साथ द्वितीयांश के रूप में संयुक्त हो सकता है। जैसे /आदिमीऊ/ 'आदमी भी' /छालिऊ/ 'छाल भी' /चीतेऊ/ 'चीते भी'

/जनेऊ/ 'यज्ञोपवीत' /कलेऊ/ 'नाश्ता' /कैऊ/ 'कई' /बहूऊ/ 'बहू भी' /दोऊ/ 'दोनों' /गरौऊ/ 'गला भी' /गऊ/ 'गाय' /नाऊं/ 'नाई' /झाऊ/ 'झाऊ'।

/ए/ संयुक्त रूप के द्वितीयांश के रूप में /ई/, /ऊ/, /ओ/, /अ/ तथा /आ/ के पश्चात् आ सकता है। जैसे /हीए/ 'हृदय' /सूए/ 'सुए' /कोए/ 'आँखों के कोने' /परोए/ 'परोहे' /अए/ 'एक स्थान का नाम' /नए/ 'नवीन' /रा ए/ 'चूल्हे का राया'।

/ऐ/ संयुक्त रूप के द्वितीयांश के रूप में /ई/, /इ/, /ए/, /अ/, /आ/, /ऊ/, /उ/, तथा /ओ/ के पश्चात् देखा जाता है। जैसे /आदिमी ऐ/ 'आदमी को' /चाँदि ऐ/ 'सर को' /गरे ऐ/ 'गले को' /बात ऐ/ 'बात को' /करेजा ऐ/ 'कलेजा को' /नाऊ ऐ/ 'नाई को' /धातु ऐ/ 'धातु को' /कल्लो ऐ/ 'कल्लो को'।

/आ/ का प्रयोग /ई/, /ए/, /ऐ/, /ऊ/ तथा /ओ/ के पश्चात् संयुक्त रूप के द्वितीयांश के रूप में होता है। जैसे /लढीआ/ 'लढ़िया, गाड़ी' /खे आ/ 'खेनेवाला' /बैआ/ 'बया, एक पक्षी' /जूआ/ 'जुआ' /खोआ/ खोया /फोआ/ 'रुई का फ़ाया'।

/ओ/ का प्रयोग /अ/ के पश्चात् संयुक्त रूप के द्वितीयांश के रूप में होता है। घर+ओ/=/घर ओ/ 'घर था'।

/औ/ संयुक्त रूप के द्वितीयांश के रूप में /ई/, /ए/, /ऊ/, /अ/, तथा /आ/ के पश्चात् प्रयुक्त होता है। जैसे—/हीऔ/ 'हृदय' /लेऔ/ 'पतीली के नीचे लगा हुआ मिट्टी का पर्त' /सूऔ/ 'सुआ' /पऔ/ 'पओ! रोटी तवे पर डालो!' /गाऔ/ 'गाओ'।

ख—द्वितीय स्वर ह्रस्व—/इ/ का प्रयोग संयुक्त रूप के द्वितीयांश के रूप में /ऊ/, /उ/, /ओ/, /अ/, /आ/ के पश्चात् होता है। जैसे—/छूइबौ/ 'छूना' /तुइबौ/ 'पशुओं का समय से पूर्व बिया जाना' /खोइ/ 'दोष' /मकोइ/ 'एक प्रकार का पौधा' /पइबौ/ 'रोटी पकाना' /गाइ/ 'गाय' /राइ/ 'एक जाति'।

/अ/ का प्रयोग संयुक्त रूप के द्वितीयांश के रूप में /ई/, /ए/, तथा /ऊ/ के पश्चात् होता है। जैसे—/धीअ/ 'पुत्री' /खेअ/ 'धूल' /रूअ/ 'रुई'।

/उ/ संयुक्त रूप के द्वितीयांश के रूप में /ई/, /ए/, तथा /आ/ के पश्चात् प्रयुक्त होता है। जैसे—/जीउ/ 'जीव' /पीउ/ 'पीव' /लेउ/ 'लो!' /दाउ/ 'दाव' /चाउ/ 'चाव'।

दो ह्रस्व स्वरों के संयुक्त रूप अत्यन्त विरल हैं।

ग—तीन स्वरों का संयोग—तीन स्वरों के संयुक्त रूप बोली में अत्यन्त विरल हैं। नीचे इनकी एक सूची दी गई है। इनमें वे रूप सम्मिलित नहीं किये गये हैं जिनमें संस्वनात्मक [य] [व] श्रुतियाँ आ जाती हैं।

/आ ई ई/ जैसे — /रा ई ई/ 'राई ही'
/ई ए ई/ जैसे — /दी ए ई/ 'दीपक ही'
/आ ऊ ई/ जैसे — /खा ऊ ई/ 'खाने वाले ही'
/आ उ ई/ जैसे — /दा उ ई/ 'दाव ही'
/ई औ ई/ जैसे — /ही औ ई/ 'हिया ही'
/आ ई ऐ/ जैसे — /भाई ऐ/ 'भाई को'
/ई ए ऐ/ जैसे — /दी ए ऐ/ 'दीपक को'
/आ ऊ ऐ/ जैसे — /ना ऊ ऐ/ 'नाई को'
/अ ऊ आ/ जैसे — /क ऊ आ/ 'कौआ'
/आ ई ऊ/ जैसे — /रा ई ऊ/ 'राई भी'
/ई ए ऊ/ जैसे — /ही ए ऊ/ 'हृदय भी'
/ई औ ऊ/ जैसे — /ही औ ऊ/ 'हृदय भी'

घ—नासिक्य स्वरों के संयोग—इस प्रकार के केवल तीन स्वर-संयोग ही सम्भव हैं—

/औँ ईँ/ जैसे — /सत रौं ईं/ 'क्रुद्ध होकर (स्त्री०)'
/आँ इँ/ जैसे — /भाँ इँ/ 'चिन्ता' /दाँ इँ/ 'दाँइ'
/आँ उँ/ जैसे — /नाँउँ/ 'नाम' /गांउँ/ 'गाँव'।

१.१.१५. **स्वर-सन्धि**—कुछ स्वरों के पास आने से कुछ विकार उत्पन्न हो जाते हैं। ये विकार दो प्रकार के हैं—एक तो श्रुत्यात्मक, जिनका विवरण /इ/ तथा /उ/ के श्रुत्यात्मक संस्वनों के रूप में ऊपर दिया जा चुका है। दूसरा स्वर-मिश्रण है। इसमें एक स्वर अपनी सत्ता को दूसरे स्वर में लीन कर देता है। इसके उदाहरण ये हैं—

क— /अ/ + /ऐ/ 7 /ऐ/ जैसे — /घर/ + /ऐ/ = /घरै/ 'घर है'
/धीअ/ + /ऐ/ = /धीऐ/ 'पुत्री को'
ख— /उ/ + /ओ/ 7 /ओ/ जैसे — /नटु/ + /ओ/ = /नटो/ 'नट था'
/घरु/ + /ओ/ = /घरो/ 'घर था'
ग— /औ/ + /ओ/ 7 /ओ/ जैसे— /गइऔ/ + /ओ/ = /गइयो/ 'गया था'
घ— /उ/ + /ऊ/ 7 /ऊ/ जैसे— /बोल्तु/ + /ऊँ/ = /बोल्तूँ/ 'बोलता हूँ'
ङ— /इ/ + /ई/ 7 /ई/ जैसे— /मति/ + /ई/ = /मती/ 'मति थी'

१.१.२. **व्यञ्जन-ध्वनिग्राम**—इनकी सूची ऊपर (१.१) दी जा चुकी है। इनके स्वल्पान्तर-युग्म नीचे दिए जा रहे हैं—

/क/—/ख/

/कील/ 'कील' /सकरी/ 'संकुचित' /पाक्/ 'पवित्र'
/खील/ 'खील' /सरवरी/ 'कच्चा खाना' /पाख्/ 'पक्ष'

/क/—/ग/

/काम्/ 'काम' /अरकु/ 'अर्क' /आक्/ 'आक'
/गाम्/ 'गांम' /अरगु/ 'अर्घ्य' /आग्/ 'आग'

/ग्/—/घ्/

/गाम्/ 'गाँव' /वाग/ 'बाज़'
/घाम्/ 'धूप' /बाघ/ 'बाघ'

/ट्/—/ड्/

/टीका/ 'माथे की बिन्दी' /लट्टू/ 'भौंरा' /झट्ट/ 'जल्दी'
/डीका/ 'गलती' /लड्डू/ 'लड्डू' /झड्ड/ 'सामना'

/ट्/—/ठ्/

/टाटु/ 'टाट' /कोटा/ 'एक गांव' /काट/ 'काटना'
/ठाटु/ 'शान' /कोठा/ 'एक कमरा' /काठ/ 'काष्ठ'

/ड्/—/ढ्/

/डाँक/ 'डाक'
/ढाँक/ 'एक बाजा'

/त्/—/द्/

/ताख/ 'दिवाल' /लातिबौ/ 'दूध बन्द करना' /लात/ 'लात'
/दाख/ 'मुनक्का' /लादिबौ/ 'लादना' /लाद/ 'बोझ'

/त्/—/थ्/

/तानौँ/ 'ताना' /माँतौ/ 'मस्त' /कोत/ 'छोटा'
/थानौँ/ 'पुलिसथाना' /माँथौ/ 'मांथा' /कोथ/ 'ज्वार का कच्चा भुट्टा'

/द्/—/ध्/

/दूंआँ/ 'तेल के बीज' /गदा/ 'गदा' /बँन्ध/ 'भाई'
/धूंआँ/ 'धुंआ' /गधा/ 'गधा' /बँन्द/ 'रुका हुआ'

/प्/—/ब्/

/पलु/ 'पल' /कपरा/ 'कपड़े' /ताप्/ 'धूप'
/बलु/ 'शक्ति' /कबरा/ 'कमरा' /ताब्/ 'साहस'

/प्/—/फ्/

/परिया/ 'ढक्कन' /जापु/ 'जप' /लप्/ 'खौंच'

/फरिया/ 'चादर' /जाफु/ 'बेहोशी' /लफ्/ 'लचीला होना'

/ब्/—/भ्/

/बार/ 'बाल'

/भार/ 'भार' /गरबु/ 'गर्व'

/गरभु/ 'गर्भ'

/फ्/—/भ्/

/फूला/ 'फूल' /सफा/ 'साफ़'

/भूल/ 'भूल' /सभा/ 'सभा'

/थ्/—/ध्/

/थानु/ 'स्मारक'

/धानु/ 'चावल' /साथ/ 'साथ'

/साध/ 'इच्छा'

/ठ्/—/ढ्/

/ठोक/ 'सिरा'

/ढोक/ 'प्रणाम' /गट्ठ/ 'गट्ठा'

/गड्ढ/ 'गड्ढा'

/ख्/—/घ्/

/खात/ 'खाद' /बखेड़ा/ 'झगड़ा'

/घात/ 'चोट' /बघेरा/ 'शेर'

/च्/—/ज्/

/चार/ 'चार' /कचरा/ 'मैल' /काच/ 'शीशा'

/जार/ 'कांटीली डार' /कजरा/ 'काजल' /काज/ 'कार्य'

/चोरु/ 'चोर'

/जोरु/ 'शक्ति'

/च्/—/छ्/

/चाल/ 'गति' /कच्चा/ 'कच्चा' /काच/ 'शीशा'

/छाल/ 'छाल' /कच्छा/ 'काछने का' /काछ/ 'लांग'

/ज्/—/झ्/

/जाँतौ/ 'जाते हो' /सूजिबौ/ 'सूजना' /साँझ/ 'संध्या'

/झाँतौ/ 'अधिक अवस्था का' /सूझिबौ/ 'सूझना' /साज/ 'बाजे'

/छ्/—/झ्/

/बछेरा/ 'घोड़े का बच्चा' /झूंट/ 'असत्य'

/बझेरा/ 'गोवर्द्धन का एक टीला' /छूट/ 'छुट्टी'

/ल्/—/र्/

/लार/ 'मुंह का पानी' /फरकु/ 'अन्तर' /साल/ 'एक प्रकार की लकड़ी'

/रार/ 'राल' /फलकु/ 'फलक' /सार/ 'पशुओं के बाँधने का स्थान'
/ल्/—/ल्ह्/=/ल्हायौ/ 'लहाया, तेल के बीज' /लायौ/ 'लाया'
/र/—/र्ह्/—/रह्औ/ 'रहा' /रौ/ = 'धारा'

/ह्/—/स्/
/हासु/ 'हास्य' /राह्/ 'रास्ता'
/सासु/ 'सास' /रास/ 'रासलीला'

/म्/—/न्/
/माँम/ 'शक्ति' /कानीँ/ 'एक आँख वाली' /काम्/ 'कार्य'
/नाँम/ 'नाम' /कामीँ/ 'कामुक' /कान्/ 'कान'
/म्/- –/म्ह्/=/कुमारु/ 'कुमार'/कुम्हारु/='कुम्हार' /म्हौं/ 'मुँह' /मौ/ 'इच्छा
/न्/ – /न्ह्/ = /नानी/ 'नानी' /न्हानी/ 'नहानेवाले' /न्हैं/ 'नख' /नौ/ '९'

१.१.२१. संस्वनात्मक वैविध्य के मुख्य आधार—

क—तनाव तथा ऊष्मीकरण (Tension and Spirantization)—तनाव की तीन श्रेणियाँ उल्लेखनीय हैं। सबसे अधिक आतत या तनाव युक्त व्यञ्जन ये हैं—पद के आरम्भ में प्रयुक्त, द्वित्व व्यञ्जन, संयुक्त व्यञ्जनों के प्रथमांश व्यञ्जन तथा पदान्त में प्रयुक्त व्यञ्जन। दूसरी श्रेणी संयुक्त व्यञ्जन रूपों के द्वितीयांश व्यञ्जनों की है, जो पहले वर्ग से कम आतत होते हैं। स्वर मध्यवर्ती स्पर्श व्यञ्जन तथा सघोष स्पर्श संघर्षी /ज/ अन्य प्रयोग-स्थितियों की अपेक्षा और भी शिथिल होते हैं। विशेषरूप से सघोष-स्पर्शी व्यञ्जनों का उच्चारण अधिक शिथिल होता है। कुछ व्यञ्जनों, जैसे /ब/, /भ/, तथा /फ/, के स्वर मध्यवर्ती उच्चारण में शैथिल्य (laxness) ऊष्मीकरण तथा घर्षण बन जाता है। अथवा यों कह सकते हैं कि शैथिल्य के साथ घर्षण का तत्व आ मिलता है। तनाव तथा शैथिल्य उच्चारण-गति की तीव्रता-मन्दता, इधर-उधर के स्वरों की प्रकृति तथा पद में व्यञ्जन की स्थिति पर निर्भर करते हैं। उच्चारण-गति विवरणात्मक रूप से नियन्त्रित नहीं की जा सकती। दो दीर्घस्वरों के बीच में प्रयुक्त स्पर्श व्यञ्जन, अन्य स्थितियों की अपेक्षा अधिक आतत (Tense) होंगे। इसमें भी उच्च स्वरों के बीच में व्यञ्जन का उच्चारण, निम्न स्वरों के वातावरण की अपेक्षा अधिक आतत होगा। ह्रस्व और दीर्घ-व्यञ्जन के बीच दीर्घ-स्वर-मध्यवर्ती व्यञ्जन की अपेक्षा तनाव कम होगा। यह परिमाण भी स्वर की उच्चता के अनुसार परिवर्तनीय है। दो ह्रस्वस्वरों के बीच प्रयुक्त होने पर स्पर्शों का तनाव, ह्रसित और स्वाभाविक दीर्घतावाले ह्रस्व स्वरों के बीच

प्रयुक्त स्वरों की अपेक्षा अधिक होगा। अन्त्य ह्रस्व स्वरों से पूर्व प्रयुक्त स्पर्श तथा स्पर्श-संघर्षी व्यञ्जन अन्यत्र स्वर-मध्यवर्ती व्यञ्जनों की अपेक्षा अधिक आतत या तनाव युक्त होते हैं और अघोष स्पर्श तथा स्पर्श-संघर्षी व्यञ्जनों का रेचन (release) तीव्रता के साथ अन्त्य स्वर में प्रविष्ट हो जाता है। उच्चारण जितनी ही द्रुत-गति से होता है, उतनी ही ऊष्मीकरण तथा घर्षण की मात्रा बढ़ जाती है। ध्वनिवर्द्धन (loudness) या बल (opening) के ऊपर निर्भर है। opening जितनी ही कम होगी, ध्वनि-वर्द्धन या बल उतना ही अधिक होगा। /ब/, /भ/, /फ/ के ऊष्मीकृत संस्वनों की स्थिति स्वर-मध्यवर्ती होती है। इसका क्रम इस प्रकार है—दो दीर्घ स्वरों के बीच, जिनमें से एक उच्चस्वर है, यह ध्वनिग्राम शिथिल उच्चरित होते हैं अथवा सघोष घर्षण-रहित ऊष्मीकृत रूप में रहते हैं। यदि घर्षण होता भी है तो अत्यल्प। ह्रस्व तथा दीर्घ स्वर के बीच में प्रयुक्त होने पर, जिनमें से एक उच्च स्वर है, /ब/ में opening कुछ अधिक होती है और परिणामतः कुछ अधिक मुखरित घर्षण श्रव्य होता है। ह्रस्व तथा दीर्घ स्वरों (जिनमें से एक भी उच्च नहीं है) के बीच अथवा दोनों ह्रस्वों के बीच प्रयुक्त होने पर /ब/ के उच्चारण में घर्षण की मात्रा और अधिक हो जाती है।

ख—महाप्राण व्यञ्जन—महाप्राण व्यञ्जनों का विवरण-विश्लेषण दो प्रकार से किया जा सकता है। महाप्राण स्पर्श तथा स्पर्श संघर्षी व्यञ्जनों को व्यञ्जन + महाप्राण के रूप में भी देखा जा सकता है और यह व्यञ्जनों के पश्चात् प्रयुक्त होने वाला महाप्राणत्व /ह/ का एक संस्वन मान लिया जाय। दूसरी रीति यह हो सकती है कि महाप्राण व्यञ्जनों का एक पृथक् वर्ग ही मान लिया जाय। प्रस्तुत अध्ययन में दूसरी प्रणाली को अपनाया गया है। इसका कारण यह है कि /थ/, /घ/ का संस्वनात्मक बंटन (distribution) /त/ और /द/ को अपेक्षा कुछ भिन्न है। दूसरे /फ/ का एक संस्वन ऊष्मीकृत तथा घर्षणयुक्त संस्वन /ϕ/ मिलता है, जब कि /प/ का इस प्रकार का संस्वन प्राप्त नहीं होता।

१.१.२२. व्यञ्जन ध्वनिग्राम तथा उनके संस्वन—

१.१.२२.१. स्पर्श व्यञ्जन—

/प्/—द्वयोष्ठ्य, अघोष, अल्पप्राण, स्पर्शव्यञ्जन। इसके रेचन (release) पर महाप्राण का अत्यल्प रंजन रहता है।

= [प्], [प्'], [प्7]

= [प्]—अपने स्वाभाविक रेचन और स्फोट से युक्त यह स्वनग्राम पद के आरम्भ में प्रयुक्त होता है। जैसे /पत्ता/ 'पत्ता' /पतला/ 'पतला'।

= [प'] — अन्त्य अघोष [अ़] से पूर्व प्रयुक्त होने पर अन्य ह्रस्व स्वरों तथा /अ/ के पूर्व अन्यत्र प्रयुक्त होने से, /प/ अधिक आतत होता है [प'] जैसे — [न् आँ प' अ़] /नाँप/ 'एक मिट्टी का बर्तन' /सि आँ प/ [स् य् आँ प् अ़] 'साँप'।

= [प्7] — यह /प्/ का अरेचक संस्वन है। ओष्ठ दृढ़ता से बन्द होते हैं, पर रेचन नहीं होता। इसका प्रयोग उच्चारान्त होता है — जैसे /चुप्/ = [च् उ प्˺] 'चुप!' (आज्ञा)

/फ/ — द्वयोष्ठ्य, अघोष, महाप्राण, स्पर्श व्यञ्जन।

= [फ्], [फ़.]

= [फ्] — स्वाभाविक महाप्राणत्व से युक्त है और ओष्ठ् स्वाभाविक दृढ़ता से बन्द होते हैं। इसका प्रयोग पद के आरम्भ में होता है। जैसे /फोक/ = [फ् ओ क् अ़] 'छूँछ' /फूल/ = [फ् ऊ ल् उ़] 'फूल'।

= [फ.] — स्वर मध्यवर्ती होने पर /फ/ में दो विकार उत्पन्न हो जाते हैं: ओष्ठ पूर्ण रीत्या बन्द नहीं होते; फलतः कुछ घर्षण श्रव्य होता है — (दे० १.१.२१.क)। दूसरे महाप्राणत्व की मात्रा कम हो जाती है अथवा यह अघोष महाप्राणत्व से युक्त होता है। जैसे — /गोफिन/ = [ग् ओ फ़. इ न् इ़] 'किसान के द्वारा चिड़िया उड़ाने की रस्सी से बनी एक गिलोल' /जाफु/ = [ज् आ फ. उ़] 'बेहोशी' /कफु/ = [क् अ फ़. उ़] 'कफ'।

/ब्/ — द्वयोष्ठ्य, सघोष, अल्पप्राण स्पर्श व्यञ्जन है। यह /प/ की अपेक्षा शिथिल है। इसका स्फोट या रेचन भी /प/ के समान महाप्राण-रञ्जित नहीं है।

= [ब्] [ब़]

= [ब्] पद के आरम्भ में, स्वर मध्यवर्ती द्वित्व रूप में /भ/ से पूर्व प्रयुक्त होने पर तथा /म/ के पश्चात् प्रयुक्त होने पर ओष्ठ दृढ़ता से स्पर्श की स्थिति में रहते हैं। इन स्थितियों में /ब्/ अपने स्वाभाविक रूप में रहता है। जैसे — /बात/ = [ब् आ त् अ़] 'बाट' /कुब्बु/ = [क्-उ ब् ब् उ़] 'कूबड़' /भब्भड़/ = [भ् अ ब् भ ड़् उ़] 'भीड़' /लम्बौ/ = [ल् अ म् ब् औ] 'लम्बा'।

= [ब़] ऊपर की स्थितियों के अतिरिक्त स्वरमध्यवर्ती होने पर /ब/ अपने ऊष्मीकृत, घर्षणयुक्त संस्वन [ब़] के रूप में रहता है। जैसे — /खबरि/ = [ख् अ ब़ र् इ़] 'खबर' /नाब्/ = [न् आ ब़ अ़] 'नाव' — [ऊपर देखिये १.१.२१.क)।

/भ्/—द्वयोष्ठ्य, सघोष, महाप्राण स्पर्श व्यञ्जन है।

=[भ्], [भु]

=[भ्] का प्रयोग पद के प्रारम्भ में तथा /ब/ के पश्चात् होता है, जब कि ओष्ठ दृढ़ता के साथ बन्द होकर स्पृष्ट रहते हैं। जैसे—/भागि/ = [भ् आ ग् इ] 'भाग्य' /भब्भड़/ = [भ् अ ब् भ् अ ड़् उ] 'भीड़'। इसका महाप्राणत्व सघोष और दृढ़ होता है।

=[भु] अन्य परिस्थितियों में स्पर्श पूर्ण नहीं होता। फलतः ऊष्मीभवन तथा घर्षण श्रव्य होता है, पर इसकी मात्रा [ब्] की अपेक्षा कम रहती है। जैसे—/गोभी/ = [ग् ओ भु ई] 'गोभी' /लाभु/ = [ल् आ भु उ] 'लाभ'। इसका महाप्राणत्व शिथिल होता हुआ अघोषवत्-सा हो जाता है।

/त्/ यह जिह्वानोकीय, दन्त्य, अघोष, अल्पप्राण व्यञ्जन है। इसका रेचन भी कुछ महाप्राण-रञ्जित है। जैसा कि ऊपर देखा जा चुका है, पद के आदि में प्रयुक्त होने पर इसका तनाव, स्वरमध्यवर्ती स्थिति से अधिक होता है।=[त्], [त्], [त्]

=[त्] यह /त्/ का अग्र-दन्तीय संस्वन है। इसके उच्चारण में जीभ ऊपर के दाँतों की नोक का इस प्रकार स्पर्श करती है कि कुछ भाग उससे आगे भी निकल जाता है। इस स्थिति में रहने के कारण जी न दाँतों के पृष्ठ भाग को पूर्णतः आवृत नहीं करती। इस संस्वन का प्रयोग स्वर मध्यवर्ती /त्/ के द्वित्व में तथा /थ्/ के संयुक्त होने पर होता है। जैसे—/पत्ता/ [प् अ त् त् आ] 'पत्ता' /जत्था/ = [ज् अ त् थ आ] 'जत्था, समूह'।

=[त्] यह /त्/ का पश्चदन्त्य या पश्चमुख संस्वन है। इसके उच्चारण में जीभ की नोंक दाँतों के पृष्ठ भाग को तो पूर्णतः आवृत करती ही है, मसूड़ों के कुछ भाग पर भी जीभ की नोंक का दबाव अनुभव किया जाता है। इस संस्वन के प्रयोग की स्थितियाँ इस प्रकार हैं—

/आँ/ /औं/ /न/ } ——— { /उ/ /इ/ /औ/ /आ/

जैसे—/खाँतु/ = [ख् आँ त् उ] 'खाता' [प् आँ त् इ] = /पाँति/ 'पंक्ति, ज्योनार' /भाँतौ/ = [भ् आँ त् औ] 'मस्त' /ब्यौंतु/ =

[ब् य् औं त् उ॒] 'नाप' /खौंता/ = [ख् औं त् आ॒] 'किसी नुकीली चीज में हिटक कर कपड़े का थोड़ा फट जाना', /जन्तु/ = [ज् अ न्-त उ॒] 'जानवर' /जन्ति/ = [ज् अ न् त इ॒] 'जन्म देने की क्रिया' /हन्तौ/ = [ह् अ न् त औ॒] 'बुरा' /जन्ता/ = [ज् अ न् त आ॒] 'जनता'।

[त्] अपने सामान्य रूप में /त्/ ऊपर की स्थितियों से भिन्न स्थितियों में प्रयुक्त होता है। इसके उच्चारण में जिह्वा की नोक सामान्य बल से मसूड़ों से ऊपर के दाँतों की नोकों तक दाँतों के पृष्ठांश को ढकती हुई स्पर्श करती है। उदाहरण—/तरबारि/ = [त् अ र् अ ब् आ र् इ॒] 'तलवार' /तीर/ = [त् ओ र् अ॒] 'खेतों से बाल तोड़ने की क्रिया'।

/द्/ यह जिह्वानोकीय-दन्त्य (Apico-dental) सघोष, अल्पप्राण, स्पर्श व्यञ्जन है। इसका समस्त विवरण तथा संस्वनात्मक वैविध्य /त्/ के समान है। नीचे केवल कुछ उदाहरण दिए गए हैं—

=[द्] [द्] [द्]

=[द्] अग्रदन्तीय संस्वन है: प्रयोग-स्थितियाँ [_] के समान हैं। जैसे—/ग द् द् आ/ = [ग् अ द् द् आ॒] 'गद्दा' /सिद्धी/ = [स् इ द् ध् ई] 'सिद्धि'।

=[द्] पश्चदन्त्य संस्वन है। इसकी प्रयोग-स्थितियाँ भी [त्] के समान हैं। जैसे—/खाँदु/ = [ख् आँ द् उ॒] 'खंदक' /माँदि/ = [म् आँ-द् इ॒] 'पुराने गोबर का ढेर' /फाँदौ/ = [फ् आँ द् औ॒] 'फाँदिए।' /बाँदा/ = [ब् आँ द् आ॒] 'एक स्थान का नाम' /गौंदु/ = [ग् औं-द् उ॒] 'गोद' /तौंदि/ = [त् औं द् इ॒] 'बड़ापेट' /रौंदौ/ = [र् औं-द् औ॒] 'रोंदिए' /धौंदा/ = [ध् औं द् आ॒] 'धोंधा' /धन्दि/ = [ध् अ न् द इ॒] 'धोखा, भ्रम' /कन्दु/ = [क् अ न् द् उ॒] 'कन्द, मिश्री' /गन्दौ/ = [ग् अ न् द् औ॒] 'गन्दा' /फन्दा/ = [फ् अ न्-द् आ॒] 'फन्दा'।

=[द्] का प्रयोग अन्यत्र होता है: /दबा/ = [द् अ ब् आ॒] 'दवा' /देह/ [द् ए ह अ॒] 'देह'।

/थ/ और /ध/ क्रमशः अघोष और सघोष जिह्वानोकीय दन्त्य महाप्राण स्पर्श ध्वनियाँ हैं। /त/ एवं /द/ की भाँति इनके भी अग्र, पश्च, तथा सामान्य संस्वन हैं। पर /त्/, /द्/ के संस्वनों से इन संस्वनों की प्रयोग-स्थितियाँ कुछ भिन्न हैं। /थ/ और /ध/ के अग्र-दन्त्य संस्वनों [थ्] [ध्] का प्रयोग /त्/, /द्/, तथा /न्/

के पश्चात् /आ/ के पूर्व होता है। पर, जैसा कि पहले देखा जा चुका है, /न्/ के पश्चात् /त्/, /द्/ के पश्च-दन्त्य संस्वनों [त्], [द्] का प्रयोग होता है, न कि अग्र संस्वनों का। पश्च संस्वनों का प्रयोग /आँ/, /औँ/ के पश्चात् /आ/, /उ/ के पूर्व होता है—

/आँ/ } ———————— { /आ/
/औँ/ } ———————— { /उ/

अन्यत्र सामान्य संस्वन प्रयुक्त होते हैं। इन संस्वनों की प्रयोग-स्थितियों के उदाहरण नीचे प्रस्तुत किये गये हैं—

/थ/—[थ्] [थ्] तथा [थ्]

=[थ्] का प्रयोग /त/, तथा /न्/ के पश्चात् /आ/ के पूर्व होता है। जैसे /कत्था/ = [क् अ त् थ् आ] 'कत्था' /पन्था/ = [प् अँ न् थ् आ] 'बारी, क्रम'।

=[थ्] का प्रयोग /आँ/, /औं/—/आ/, /उ/ परिस्थिति में होता है— /मौँथा/ = [म् औँ थ् आ] 'एक प्रकार की घास' 'सायंकाल'। /रौंथु/ = [र् औँ थ् उ] 'रोंथने या चबाने की क्रिया' /नाथु/ = [न्- आँ थ् उ] 'नाथ'।

=[थ्] का प्रयोग अन्यत्र होता है: /थोरौ/ = [थ् ओ र् औ] 'थोड़ा' /पथरी/ = [प् अ थ् अ र् ई] 'पेट का एक रोग'।

/ध/=[ध्], [ध्], [ध्]

=[ध्] का प्रयोग /द्/ तथा /न्/ के पश्चात्, /आ/ के पूर्व होता है। जैसे— /सिद्ध/ = [स् इ द् ध् उ] 'सिद्धि को प्राप्त करनेवाला' /गिद्ध/ = [ग् इ द् ध् उ] 'गिद्ध' /कन्धा/ = [क् अँ न् ध आ] 'कन्धा'।

=[ध्] का प्रयोग /आँ/, /औं/—/आ/, /औ/, /उ/ परिस्थितियों में होता है। जैसे—/कौंधा/ = [क् औं ध् आ] 'बिजली की कोंध' /सौंधौ/ = [स् औँ ध् औ] 'सोंधा' /चौंधु/ = [च औँ ध् उ] 'चौंधा' /बाँधु/ =[ब् आँ ध् उ] 'बाँध'। /आँ/ और /औ/ के बीच [ध्] का प्रयोग नहीं मिलता। साथ ही /आँ/ और /आ/ के बीच [ध्] प्रयोग का उदाहरण प्राप्त नहीं है।

=[ध्] का प्रयोग अन्यत्र होता है। जैसे /धूँआँ/ = [ध् ऊँ आँ] 'धूम्र' /दुधारौ/ = [द् उ ध् आ र् औ] 'दो धार वाली तलवार'।

/ट/—यह जिह्वानोकीय, पश्चवर्त्स्य, अघोष, अल्पप्राण स्पर्श ध्वनि है (Apico-post-alveolar stop) इसका स्फोट या रेचन महाप्राण-रञ्जित होता

है। पद के आरम्भ में यह विशेष आतत (Tense) श्रव्य होता है। स्वर-मध्यवर्ती होने पर कुछ शिथिल हो जाता है। अन्त्य अघोष स्वर के पूर्व यह कुछ अधिक कठोर सुन पड़ता है। इसके तीन संस्वन हैं—

[ट्] [ट्] [ट्]

[ट] इस संस्वन के उच्चारण में जीभ की नोंक ऊपर के दाँतों के मूल संलग्न अग्रवर्त्स्य का स्पर्श करती है। अतः इसे अग्रीभूत (Fronted) संस्वन कहना चाहिए। इसका प्रयोग /स्/ के पश्चात् होता है। जैसे—/कस्टी/ = [क् अ स् ट् ई्] 'प्रसव-पीड़ा' /नस्ट/ = [न् अ-स् ट् अ्] 'नष्ट, खराब'।

[ट्] यह पश्चीभूत (backed) संस्वन है। इसके उच्चारण में जीभ की नोक ऊपर की ओर मुड़ती है और प्रायः मूर्द्धा के अग्रभाग का स्पर्श करती है। अतः इसे मूर्द्धन्य संस्वन कहना उचित होगा। इसका प्रयोग पद के आरम्भ में /आँ/ के पूर्व, अनुनासिक स्वरों और /ण/ के पश्चात् तथा द्वित्व होने पर होता है। जैसे—/टाँकौ/ = [ट् आँ क् औ्] 'टाँका' /माँटु/ = [म् आँ ट् उ्] 'दूध का मिट्टी का बर्तन' /काँटौ/ =[क् आँ ट् औ्] 'काँटा' /चाँट/ = [च् आँ ट् अ्] 'चाट' /चाँटी/ =[च् आँ ट् ई] 'धोखा' /झाँटू/ = [झ् आँ ट् ऊ्] 'एक गाली' /चाँटै/ = [च् आँ ट् ऐ्] 'चाँटको' /ऊँटु/ = [ऊँ ट् उ्] 'ऊँट' /झूँटा/ = [झ् ऊँ ट् आ्] 'झूठ बोलने वाला' /झूँटौ/ = [झ् ऊँ ट् औ्] 'जूँठा' /ठूँट/ = [ठ् ऊँ ट् अ्] 'बिना पत्तों का सूखा पेड़' /छींटा/ = [छ् ईँ ट् आ्] 'छींटा' /छींट/ = [छ् ईँ ट् अ्] 'एक प्रकार का कपड़ा' /ठौंटि/ =[ठ् औं ट् इ्] 'ठिठुरन' /टौंटी/ =[ट् औं ट् ई] 'टोंटी' /टौटा/ = [ट् औं ट् आ्] 'आदमी जिसका हाथ टूटा हो' /खौंट/ = [ख् औँ ट् अ्] 'कौए की चोंच मारने की क्रिया' /घौंटू/ =[घ् औं ट् ऊ्] 'घुटना' /खौंटै/ = [ख् औँ ट् ऐ्] 'खोंटको' /कौंटौ/ = [क् औं ट् औ्] 'हाथ से बताई जाने वाली एक माप' /घैंटा/ = [घ् ऐं ट् आ्] 'सुअर का बच्चा'। /चण्टु/ = [च अ ण्-ट् उ्] 'चालाक' [च् अ ण् ट् अ्] '(बहु०) चालाक' /अंटी/ =[अ ण् ट् ई्] 'अंटी'।

[ट्]—यह [ट्] का सामान्य रूप है। इसका प्रयोग अन्यत्र होता है। जैसे /टोटौ/ [ट् ओ ट् औ्] 'टोटा' /टूँकु/ = [ट् ऊँ क् उ्] 'टुकड़ा'।

/ठ/—यह जिह्वानोकीय पश्चवर्त्स्य अघोष अल्पप्राण स्पर्श है। इसके दो प्रमुख

संस्वन हैं। एक पश्चीभूत मूर्द्धन्य [ठ़] जिसके उच्चारण में जीभ की नोंक पीछे को मुड़ी रहती है तथा एक पश्च-वर्त्स्य संस्वन जिसके उच्चारण में जीभ मुड़ती नहीं है [ठ्]।

[ठ़] का प्रयोग नासिक्य स्वरों के पश्चात् होता है। जैसे—/गाँठि/ = [ग् आँ ठ़ इ़] 'गाँठ' /साँठ/ = [स् आँ ठ़ इ़] 'एक आभूषण' /सौँठि/ = [स् औँ ठ़ इ़] 'सोंठ' /ऐँठ/ = [ऐँ, अ़] 'अकड़, घमंड' /पीँठि/ = [प् ईं ठ़ इ़] 'पींठ' आदि।

[ठ्] का प्रयोग अन्यत्र होता है। जैसे—/ठीक/ = [ठ् ई क् अ़] 'ठीक' /कठिन/ = [क् अ ठ् इ न् अ़] 'कठिन' /काठ/ = [क् आ ठ् अ़] 'काठ'।

/ड्/—यह जिह्वानोकीय पश्चवर्त्स्य, सघोष, अल्पप्राण स्पर्श है। इसके तीन प्रमुख संस्वन हैं—पहला, पश्चीभूत मूर्द्धन्य पश्चवर्त्स्य स्पर्श; दूसरा, सीधी जिह्वानोक के साथ सामान्य पश्चवर्त्स्य स्पर्श; तथा तीसरा, उत्क्षिप्त —[ड़] [ड्] [ड़] उक्षिप्त [ड़] को इसका संस्वन मानना ही युक्ति-संगत दीखता है, क्योंकि दोनों का पूरक-बंटन (Complementary distribution) सिद्ध हो जाता है। [ड़] का प्रयोग [ण्] के पश्चात् होता है। जैसे—/कण्ड आ/ = [क् अँ ण् ड़ आ] 'उपला' /अण्डा/= [अँ ण् ड़ आ] 'अण्डा' /डण्डी/ = [ड् अँ ण् ड़ ई] 'डण्डी'। यह प्रयोग केवल पद के मध्य में प्राप्त होता है।

[ड्] का प्रयोग आरम्भ में, द्वित्व रूप में तथा /ढ/ के पूर्व होता है। जैसे— /डलिआ/ = [ड् अ ल् इ य् आ] 'डलिया' /गड्डु/ = [ग् अ ड् ड् उ] 'मिश्रण' /गड्ठौ/ = [ग् अ ड् ढ् औ] 'गड्ढा'। इस संस्वन का प्रयोग पद के आरम्भ में तथा पद के मध्य में द्वित्व, संयुक्त या बलाघात से युक्त होने पर ही हो सकता है। द्वित्व, संयुक्त के उदाहरण ऊपर दिये जा चुके हैं। बलाघात युक्त प्रयोग ऐसे उदाहरणों में अत्यन्त विरल रूप से मिलता है, जो उपसर्ग-युक्त शब्द होते हैं। बलाघात, उपसर्ग पर न होकर, मूल पद पर होता है। जैसे—/निडर/ = [न् इ 'ड् अ र अ़] 'निर्भय' /आडम्बर/ =[आ 'ड् अ म् ब् अ र् अ़] 'आडम्बर'।

[ड़] का प्रयोग [ड्] या [ड़] की प्रयोग-स्थितियों में कभी नहीं होता। अर्थात् इसका प्रयोग केवल पद के मध्य या अन्त में ही होता है। मध्य में प्रयुक्त होने पर यह बलाघात-युक्त कभी नहीं हो सकता। जैसे—

/साँड़/ = [स् आँ ड़् उ] 'साँड़' /पैंडा/ = [प् ऐं ड़ अ] 'टुकड़ा'
/पेड़ा/ = [प् ए ड़् अ] 'पेड़ा' /लाड़ी/ = [ल् आ ड़् ई] 'दुलहिन'.
/आ ड़/ = [आ ड़् अ] 'रुकावट'।

/ढ़/—जिह्वानोकीय पश्चवर्त्स्य, सघोष महाप्राण स्पर्शध्वनि है। इसके दो प्रमुख संस्वन हैं—एक सामान्य [ढ्] तथा दूसरा उत्क्षिप्त [ढ़]। इसके प्रयोग की स्थितियाँ इस प्रकार हैं—

[ढ्] का प्रयोग पद के आरम्भ में, /ड्/ के पश्चात् तथा बलाघात-युक्त होने पर पद के मध्य में होता है। जैसे—/ढाल/ = [ढ् आ ल् अ] 'ढाल' /ढोलक/ = [ढ् ओ ल् अ क् अ] 'ढोलक' /बुडढौ/= [ब् उ ड् ढ् औ] 'बुड्ढा' /बेढंगा/ = [ब् ए' ढ् अ ङ ग् अ] 'बेढंगा'। बलाघात युक्त मध्य प्रयोग के उदाहरण प्रायः इसके अतिरिक्त नहीं हैं।

[ढ़] का प्रयोग पद के मध्य में बलाघात रहित रूप में होता है। जैसे—[बूढ़ौ] = [ब् ऊ ढ़ औ] 'बुड्ढा' /मढ़ी/ = [म् अ ढ़ ई] 'मठ'।

/क्/—जिह्वापश्च-कंठ्य (Dorso-Velar) अघोष, अल्पप्राण, स्पर्शध्वनि है। इसका स्फोट कुछ महाप्राण-रञ्जित रहता है। अघोष स्वरों के पूर्व, अन्त में प्रयुक्त होने पर महाप्राणत्व की मात्रा कुछ बढ़ जाती है। इस संस्वनात्मक वैविध्य के अतिरिक्त दो संस्वन और हैं—पद के आरम्भ में प्रयुक्त होने पर यह अधिक आतत रहता है और स्वर मध्यवर्ती होने पर तनाव कुछ कम हो जाता है। इनके अतिरिक्त और कोई वैविध्य प्राप्त नहीं होता। इस प्रकार [क्] सामान्य महाप्राण स्फोट वाला, [क्'] विशेष महाप्राण स्फोट युक्त, तथा [क॰॰] 'शिथिल', ये तीन संस्वन हो सकते हैं—

[क्]—का यह प्रयोग पद के आरम्भ में होता है : /कारौ/=[क् आ र् औ] 'काला' यह आतत होता है।

[क']—का प्रयोग पद के अन्त में अघोष स्वरों से पूर्व होता है। जैसे—[त् अ क' उ] 'तोलने की बड़ी डण्डी' /फाँक/=[फ् आँ क' अ] 'फाँक'।

[क॰॰]—यह शिथिल संस्वन स्वरमध्यवर्ती स्थिति में प्रयुक्त होता है। जैसे—/चकुला/=[च् अ क्॰॰ उ ल् अ] 'छोटी चक्की' /छिलुका/ = [छ् इ ल् उ क्॰॰ अ] 'छिलका'।

/ख्/—जिह्वापश्च कंठ्य, अघोष, महाप्राण स्पर्शध्वनि है। पद के आरम्भ, स्वर मध्यवर्ती तथा अन्त में इसका प्रयोग होता है। अन्त में दीर्घ अथवा अघोष व्यञ्जनों से पूर्व इसका प्रयोग होता है। जैसे—/खरौ/ = [ख् अ र् औ]

'शुद्ध' /रखवारौ/ = [र् अ ख् अ ब् आ र् औ̣] 'रखवाली' /दाख/ = [द् आ ख् अ̥] 'मुनक्का'।

/ग/—जिह्वापश्च कंठ्य, सघोष अल्पप्राण, स्पर्शध्वनि है। इसका प्रयोग पद के आदि, मध्य, अन्त में होता है। जैसे /गोतु/ [ग् ओ त् उ̥] 'गोत्र' /पागल/ =[प् आ ग् अ ल् अ̥] 'पागल' /झाग्/ = [झ् आ ग्] 'झाग'।

/घ/—जिह्वापश्च कंठ्य, सघोष, महाप्राण, स्पर्शध्वनि है। इसका प्रयोग पद के आदि और मध्य में हो सकता है। जैसे—/घोड़ा/ = [घ् ओ ड़् आ̣] 'घोड़ा' /कंघा/ = [क् अ ङ घ् आ̣] 'कंगा' /बाघु/ = [ब् आ घ् उ̥] 'बाघ'

/ʔ/—काकल्य (Glottal) स्पर्शध्वनि है। इसका प्रयोग केवल कुछ निषेधात्मक पदों तक सीमित है। इसका प्रयोग अन्त्य /अ/ के पूर्व होता है। जैसे—[हँ अ ʔ अ̣] 'नहीं' [न अँ ʔ अ̣] 'नहीं'। बलपूर्वक निषेधात्मक उत्तरों में यह ध्वनि अरेचक भी होता है। जैसे—[न् अँ ʔ], [ह अँ ʔ]

१.१.२२.२. **स्पर्श संघर्षी**—/च्/, /छ्/, /ज/ तथा /झ/ अघोष तथा सघोष, अल्पप्राण तथा महाप्राण जिह्वाग्र-तालव्य (Fronto-palatal) ध्वनियाँ हैं। /च/ तथा /ज/ द्वित्व होने पर तथा /छ/ तथा /झ/ के पूर्व प्रयुक्त होने पर प्रथमांश स्पर्श ध्वनि-रूप में उच्चरित होते हैं। जिह्वाग्र-तालव्य स्पर्शध्वनियों में परिवर्तित हो जाते हैं। अन्यत्र इनके रूपों में अन्तर उपस्थित नहीं होता।

/च्/=[च्] [चॅ]

=[चॅ] जिह्वाग्र-तालव्य स्पर्श है जिसका प्रयोग /च/ अथवा /छ/ के पूर्व होता है। जैसे—/बच्चा/ = [ब् अ चॅ च् आ̣] 'बच्चा' /गुच्छा/= [ग् उ च छ् आ̣]

=[च] का प्रयोग अन्यत्र होता है। जैसे—/चारि/ = [च् आ र् इ̥] '४' /काचु/ = [क् आ च् उ̥] 'शीशा'।

/ज्/= [ज्] [जॅ]

=[जॅ] का प्रयोग [ज] तथा /झ/ से पूर्व होता है जैसे—/लज्जा/ = [ल् अ-जॅ ज् आ̣] 'लज्जा' /मज्झु/ = [म् अ ज झ् उ̣] 'मध्य'।

=[ज्] का प्रयोग अन्यत्र होता है। जैसे—/जाड़ौ/ = [ज् आ ड़ औ̣] 'जाड़ा' /नजरि/ = [न् अ ज् अ र् इ̥] 'नज़र'।

/छ्/—इसका प्रयोग केवल पद के आदि और मध्य में होता है। जैसे—/छापौ/= [छ् आ प् औ̣] 'छापा' = /पाछौं/ = [प् आ र् छ् औं̣] 'पाछीं'।

/झ/—का प्रयोग भी पद के आदि और मध्य में होता है। जैसे—/झोका/= [झ् ओ क् आ̣] 'झोका' /साँझ/ = [स् आँ झ अ̣] 'संध्या'।

१.१.२२.३. ऊष्म व्यञ्जन—

/स्/—यह जिह्वाग्रीय, पश्च-दन्त्य ऊष्म व्यञ्जन है। जीभ का अग्रभाग ऊपर के मसूड़े के विरुद्ध क्रियाशील रहती है। इसका प्रयोग पद के आदि में, स्वर और व्यञ्जन के मध्य में, दो स्वरों के बीच तथा एक ही शब्द के पृथक् उच्चारण में, बलाघात हीन रूप में पद के अन्त में होता है। जैसे— /सागु/=[स् आ ग् उ̥] 'सब्जी' /फसलि/ = [फ् अ स् अ ल् इ̥] 'फ़सल' /किस्ति/ [क् इ स् त् इ̥] 'किश्त'।

/ह्/—यह कंठद्वारीय संघर्षीध्वनि है। इसके दो संस्वनात्मक वैविध्य पाए जाते हैं। अपने सघोष रूप में यह पद के आदि में और स्वरमध्यवर्ती होने पर प्रयुक्त होता है और उच्चारान्त होने पर इसका घोषत्व ह्रसित होकर अघोष हो जाता है।=[ह्] [ह्̬]

[ह्] यह कंठद्वारीय अघोष स्वनग्राम उच्चारान्त प्रयुक्त होता है, जैसे /माह/ = [म् आ ह्] 'माघ' /साह/ = [स् आ ह्] 'ईमानदार'

[ह्̬] यह कंठद्वारीय सघोष स्वनग्राम पद के आदि या स्वर-मध्यवर्ती होने पर होता है। जैसे—/हाती/ = [ह्̬ आ त् ई̥] 'हाथी' /सहरु/ =[स् ए̥ ह्̬ ए̥ र् उ̥] 'शहर'।

१.१.२२.४. नासिक्य व्यञ्जन—/म/ यह द्वयोष्ठ्य नासिक्य व्यञ्जन है। यह पद के आदि और मध्य में प्रयुक्त हो सकता है। जैसे—/मेला/ =[म् ए ल् आ̥] 'मेला' /माला/ =[म् आ ल् आ̥] 'माला' /नामु/ = [न् आँ म् उ̥] 'नाम'।

/न्/ यह दन्त्य नासिक्य है। इसके चार संस्वनात्मक वैविध्य माने जा सकते हैं—[न्] दन्त्य नासिक्य है। इसके उच्चारण में जिह्वा की क्रिया और स्थिति /त्/ के समान रहती है। [ण्] पश्च-वर्त्स्य नासिक्य है। जीभ की स्थिति /ट्/ के उच्चारण जैसी रहती है। [ञ] तालव्य-नासिक्य है। [ङ] कण्ठ्य नासिक्य है। इनका प्रयोग विवरण इस प्रकार है।

[न्] का प्रयोग पद के आरम्भ में, स्वरमध्यवर्ती होने पर, द्वित्व होने पर तथा स्वर के पश्चात्, /त/ /द/, /थ/, /ध/ के पूर्व होता है। जैसे—/नेरौ/ = [न् ए-र् औ̥] 'एक गाँव का नाम' /नारु/ = [न् आ र् उ̥] 'नार' /तिनुका/ = [त् इ न्-उ क् आ] 'तृण' /छन्ना/=[छ् अ न् न् आँ] 'छानने का कपड़ा' /सन्तु/ = [स् अ न्-त् उ̥] 'सन्त' /मन्दिरु/ [म् अँ न् द् इ र् उ̥] 'मन्दिर' /पन्थु/ = [प् अँ न् थ् उ̥] 'पन्थ' /कन्धा/ [क् अ न् ध् आ̥] 'कन्धा' स्वर तथा /स/ के बीच भी इसी का प्रयोग होता है। जैसे—/संसै/ = [स् अँ न् स् ऐ̥] 'संशय'।

[ण्] का प्रयोग केवल स्वर और मूर्द्धन्य व्यञ्जनों के पूर्व होता है। जैसे—

/चण्टु/=[च् अँ ण् ट् उ॰] 'चालाक' /कण्ठी/=[क् अँ ण् ठ् ई॰] 'माला' /मंडी/=[म् अँ ण् ड ई॰] 'मंडी'।

[ञ्] का प्रयोग स्वर तथा तालव्य स्पर्श संघर्षियों के बीच में होता है। जैसे— चञ्चलु/ =[च् अँ ञ् च् अ ल् उ॰] 'चंचल' /पंजौ/ =[प् अँ ञ् ज् औ॰] 'पंजा'

[ङ] का प्रयोग स्वर और कण्ठ्य स्पर्श व्यञ्जनों के बीच में होता है। जैसे— /संका/ =[स् अँ ङ क् आ॰] 'शंका' /पंखा/ =[प् अँ ङ ख् आ॰] 'पंखा' /गंगा/ =[ग् अँ ङ ग् आ॰] 'गंगा'।

/न्ह/ तथा /म्ह/ महाप्राण रूप हैं। जैसे—/न्हौं/ = [न्ह् औ॰] 'नख' /म्हौ/ =[म्ह् औं] मुँह'। इनके स्वल्पान्तर युग्म पहले दिये जा चुके हैं।

१.१.२२.५. पार्श्विक व्यञ्जन—/ल्/ दन्त्य, सघोष, अल्पप्राण पार्श्विक व्यञ्जन है। प्रयत्न /त/ के उच्चारण जैसा रहता है। इसका एक संस्वन मिलता है, जिसमें जीभ अग्रीभूत होती है। इस प्रकार [ल्] तथा [ल्॒] दो संस्वन हैं। प्रथम की अपेक्षा दूसरा अग्रीभूत (Fronted) है। इनके प्रयोग की स्थितियाँ इस प्रकार हैं।

[ल्॒] के अग्रीभूत होने के साथ-साथ, घोष में भी ह्रास हो जाता है। इसका प्रयोग उच्चारान्त तथा द्वित्व होने पर प्रथम अंश के रूप में होता है। जैसे— /चाल्/ =[च् आ ल्॒] 'चाल' /मल्ला/ =[म् अ ल्॒ ल् आ] 'एक मिट्टी का छोटा बर्तन।'

[ल्] का प्रयोग अन्यत्र होता है। जैसे—/लाभ/ =[ल् आ भ् अ॰] 'गाड़ी में प्रयोग होने वाली एक रस्सी' /कली/ =[क् अ ल् ई] 'कली'।

/ल्ह/, /ल्/ का महाप्राण रूप है। इसका प्रयोग पद के आदि और मध्य में हो सकता है। जैसे—/ल्हास/ =[ल्ह् आ स् अ॰] 'लाश' /चूल्हौ/ =[च् ऊ ल्ह् औ] 'चल्हा' /ल्हाऔ/ =[ल्ह् आ य् औ] 'एक तेल का बीज'।

१.१.२२.६. लुण्ठित व्यञ्जन—/ड़्/ जिह्वानोकीय पश्चदन्त्य या पूर्व-वर्त्स्य सघोष, अल्पप्राण, लुण्ठित व्यञ्जन है। यह पद के आदि, मध्य में प्रयुक्त होता है। जैसे—/रासु/=[र् आ स् उ॰] 'रास' /रथु/=[र् अ थ् उ॰] 'रथ' /सीरा/=[स् ई र् आ॰] 'शीरा' /तीरु/ =[त् ई र् उ॰] 'तीर'।

/र्ह/ जिह्वानोकीय पश्चदन्त्य, सघोष, महाप्राण, लुण्ठित व्यञ्जन ध्वनि है। इसका प्रयोग केवल पद के आरम्भ में मिलता है। जैसे—/र्हौ/ =[र् ह् औ॰] 'रहा' /र्हामनि/ [र ह् आ म अ न् इ॰] 'पशुओं के बैठने की जगह'।

१.१.२३. व्यञ्जन-संयोग—संयुक्त व्यञ्जनों के रूप बोली में कम हैं। अर्द्ध-स्वरों को, प्रस्तुत अध्ययन में पृथक् ध्वनिग्राम नहीं माना गया है। अतः दो से अधिक

व्यञ्जनों का संयोग मिलता ही नहीं है। साथ ही [य] तथा [व] के साथ संयुक्त रूपों को ध्वनिग्रामात्मक स्थिति प्रदान न करने से, यह भी कहा जा सकता है कि संयुक्त व्यञ्जन पद के आदि में प्रयुक्त ही नहीं होते। उनका प्रयोग पद के मध्य तक सीमित है। संयुक्त व्यञ्जनों की परीक्षा से यह भी स्पष्ट होता है कि संयुक्त रूपों के प्रथमांश के रूप में बहुत कम व्यञ्जन आ सकते हैं और द्वितीयांश के रूप में अधिक। इसके कई कारण हैं—(१) महाप्राण व्यञ्जन संयुक्त रूप के प्रथमांश नहीं हो सकते; (२) अल्पप्राण नासिक्य व्यञ्जन /म्/, /न्/ किसी भी स्पर्श या महाप्राण से पूर्व आ सकते हैं। /म्/+ओष्ठ्य स्पर्श; /न्/ अथवा इसके संस्वन+अन्य स्पर्श, स्पर्श संघर्षी, या संघर्षी व्यञ्जन; (३) /स्/ के साथ /प्/ /त्/ तथा /ट्/ संयुक्त हो सकते हैं; (४) /र्/ के साथ /त्/, /थ्/ /द्/, /ध्/, /च/, /छ/, /ज्/ तथा /स्/ संयुक्त हो सकते हैं। (५) /ल्/ के साथ /त्/, /थ्/, /द्/, /ट्/, /च्/, /ज्/, /झ्/, तथा /स्/ संयुक्त हो सकते हैं। साथ ही प्रत्येक अल्पप्राण व्यञ्जन ध्वनिग्राम अपने से ही संयुक्त होकर द्वित्व बना सकता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक अल्पप्राण व्यञ्जन अपने महाप्राण रूप से पूर्व प्रयुक्त होकर संयुक्त रूप बना सकता है; केवल /ब्/+/भ्/ नहीं प्राप्त होता। संयुक्त व्यञ्जन पद के आदि में प्रयुक्त नहीं होते और न आरम्भिक दीर्घस्वर या दीर्घाक्षर के पश्चात् ही आ सकते हैं। इस वक्तव्य को अगले पृष्ठ [पृ० १४०] के चित्र संख्या २ से समझा जा सकता है।

अ—द्वित्व (Geminates)

क—सभी अल्पप्राण स्पर्श व्यञ्जन स्वनग्राम द्वित्व हो सकते हैं। जैसे—/सक्का/ 'सक्का' /लग्गा/ 'आरम्भ' /कट्टा/ 'कटा हुआ' /गड्डा/ 'बोझा' /पन्ता/ 'पत्ता' /गद्दा/ 'गद्दा' /खप्पा/ 'ठीकरा' /झब्बा/ 'गुच्छा'।

ख—सभी अल्पप्राण स्पर्श-संघर्षी व्यञ्जन स्वनग्राम द्वित्व हो सकते हैं। जैसे—/धज्जी/ 'टुकड़े' /बच्चा/ 'बच्चा'।

ग—ऊष्म /स/ द्वित्व हो सकता है। जैसे—/किस्सा/ 'किस्सा' /गस्सा/ 'ग्रास' /सुस्सौ/ 'खरगोश' /ऊष्म/ /ह/ द्वित्व नहीं हो सकता।

घ—दोनों नासिक्य द्वित्व हो सकते हैं। जैसे—/अँम्माँ/ 'मा' /जुम्माँ/ 'उत्तरदायित्व' /मुँन्नाँ/ 'मुन्ना'। /गन्नाँ/ 'गन्ना'।

ङ—कम्पनयुक्त /र्/ भी द्वित्व हो सकता है। जैसे—/कर्रो/ 'कड़ा' /गिर्रा/ 'ऐसा बैल जिसे गिरने की आदत हो'।

च—पार्श्विक /ल्/ द्वित्व हो सकता है। जैसे—/मल्ला/ 'मिट्टी का एक वर्तन' /भल्ला/ 'आलू की टिकिया'।

छ—अर्द्ध स्वर /य्/ भी द्वित्व हो सकता है। जैसे—/बय्यरि/ 'स्त्री' /भय्या/ 'भाई'।

आ—संयुक्त व्यञ्जन (clusters)

क—अल्पप्राण स्पर्श+स्ववर्गीय महाप्राण स्पर्श। जैसे—/मक्खी/ 'मक्खी' /रग्घड़/ 'दृढ़' /गट्ठा/ 'गठरी' /गड्ढौ/ 'गड्ढा' /जत्था/ 'समूह' /दुद्धर/ 'दूधवाली' /गफ्फारु/ 'एक मुसलमानी नाम' /ब/+/भ/ नहीं प्राप्त होता।

ख—अल्पप्राण स्पर्श-संघर्षी+स्ववर्गीय महाप्राण स्पर्श संघर्षी। जैसे—/मच्छरु/ 'मच्छर' /जुज्झु/ 'युद्ध'।

ग—ऊष्म /स/ + /प्/ /त्/ /द/ जैसे—/दिलचस्पी/ 'मनोरंजन' /कस्तूरी/ 'कस्तूरी' /मस्तु/ 'मस्त' /कस्टी/ 'प्रसव पीड़ा' 'नस्टु। 'बुरा'।

घ—१. नासिक्य /म्/+/प्/ /ब्/ /ह्/ जैसे—/चँम्पा/ 'चम्पा' /दँम्पक/ 'वन्द' /लँम्बौ/ 'लम्बा' /म्हौं/ 'मुँह' /कुम्हारु/

२. नासिक्य /न्/+/त्/ /थ्/ /द्/ /ध्/ /ह्/ जैसे—/कँन्तु/ 'पति' /बँन्ता/ 'बनाव' /पँन्था/ 'क्रम' /कँन्था/ 'कन्था' /मँन्दौ/ 'मन्द' /कुँन्दा/ 'कुंडी' /बँन्धनु/ 'बन्धन' /सँन्धानु/ 'होश' /न्हौं/ 'नख' /न्हाइबौ/ 'नहाना'।

३. नासिक्य [ण]+/ट/ /ठ/ /ड/ जैसे—[टँण्टौ] 'झगड़ा' [कँण्टकु] 'कण्टक' [कँण्ठा] 'कंठा, गले का गहना' [डँण्डा] 'डंडा' [ठँण्डौ] 'ठंडा'।

४. नासिक्य [ञ]+/च/ /ज/ जैसे—[कञ्चनु] 'स्वर्ण' [चञ्चलु] 'चंचल' [कञ्जरा] 'कंजर'।

५. नासिक्य [ङ]+/क/ /ख/ /ग/ /घ/ जैसे—[सँङका] 'शंका' [सँङखु] 'शंख' [गँङगा] 'गंगा' [सँङघ] 'संघ'।

ङ—/र/+/त/ /थ/ /द/ /ध/ /च/ /छ/ /ज/ /स/ जैसे—/कर्ता/ 'करने वाला' /भर्ता/ 'भुना हुआ बेंगन' /अर्थाइबौ/ 'समझाना' /चर्चा/ 'बात' /खर्चु/ 'खरच' /पर्छा/ 'बड़ी कड़ाही' /कर्छुली/ 'चमची' /कर्जु/ 'कर्ज' /कर्सु/ 'कलश' /चर्सु/ 'नशा' /दर्दु/ 'दरद' /बर्धु/ 'बैल'।

च—/ल/+/त/ /थ/ /द/ /ट/ /च/ /ज/ /झ/ /स/ जैसे—/मुल्तानी/ 'मिट्टी' /चल्ता/ 'रिवाज' /उल्था/ 'अनुवाद' /जल्दी/ 'शीघ्र' /पल्टा/ 'एक प्रकार की चमची' /गुल्चा/ 'गाल पर मुक्का' /मिल्जा/ 'मिलजा' /सुल्झाइबौ/ 'सुलझाना' /झल्सा/ 'जलसा' /कल्सा/ 'कलश'।
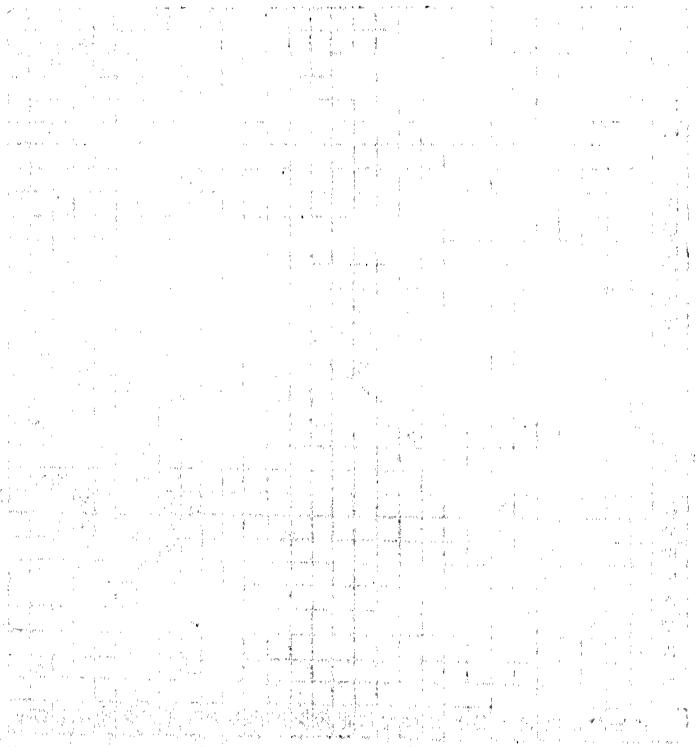
द्वितीय व्यंजन

		प	फ	ब	भ	त	थ	द	ध	ट	ठ	ड	ढ	च	छ	ज	झ	क	ख	ग	घ	म	न	ण	ञ	ङ	र	ल	स	ह
प		×	×																											
फ																														
ब				×																										
भ																														
त						×	×																							
थ																														
द								×	×																					
ध																														
ट										×	×																			
ठ																														
ड												×	×																	
ढ																														
च														×	×															
छ																														
ज																×	×													
झ																														
क																		×	×											
ख																														
ग																				×	×									
घ																														
म		×		×																		×								×
न						×	×	×	×														×							×
ण										×	×	×																		
ञ														×		×														
ङ																		×	×	×	×									
र						×	×	×	×					×	×	×											×		×	×
ल						×	×	×		×				×		×	×											×	×	×
स		×				×				×																	×		×	
ह																														

चित्र संख्या 2 (संयुक्त व्यंजन)

१.१.३. खण्डेतर ध्वनिग्राम—ऊपर जिन खण्ड-ध्वनिग्रामों की सूची और उनका विवरण प्रस्तुत किया गया है, उनके अतिरिक्त कुछ अन्य ध्वनिग्राम भी हैं जिनके उल्लेख के बिना पद और वाक्य का विचार पूर्ण नहीं हो सकता। उन ध्वनिग्रामों की सूची और उनका विवरण नीचे दिया जा रहा है। पर, उनके विषय में और अधिक खोज सम्भव और आवश्यक है। यहाँ इनके सम्बन्ध में सामान्य विचार ही हो सका है।

१.१.३१. सूची—ये ध्वनिग्राम इस प्रकार हैं—

अ—विभाजक—(Juncture) इसके लिये सन्धिक शब्द भी प्रयुक्त होता है। ये तीन प्रकार के हैं—

(i) शब्दान्त /+/,

(ii) उपवाक्यान्त /।/, तथा

(iii) वाक्यान्त /॥/

आ—सुरसरणियाँ—(Contours) इनके दो विभाग हैं—

(i) उपवाक्यान्त तथा वाक्यान्त से सम्बद्ध; अथवा अन्त्य सुरसरणियाँ। इनके तीन भाग हैं—

क—आरोही / ↑ /

ख—अवरोही / ↓ /, तथा

ग—धीर /→/

(ii) अन्त्येतर सुरसरणि यह केवल एक है—बलवर्द्धक (Emphatic) /**E**/

(इ) सुरसरणि-परिवर्तक—(Contour modifiers) तीन हैं : मोड़ /T/, प्लुति /S/ तथा अतिरिक्त ध्वनिवर्द्धन (extra loudness) /L/

शब्दान्त विभाजक के लिए /+/ चिह्न के बजाय रिक्त स्थान छोड़ दिया गया है। बलवर्द्धक /E/ शब्द के पूर्व स्थित रहता है।

१.१.३२. विभाजक—

१.१.३२१. शब्दान्त विभाजक—शब्दान्त विभाजक और उसकी अनुपस्थिति के कुछ स्वल्पान्तर युग्म दिए जा सकते हैं—

/जानैं/ 'जानते हैं, या जानें'

/जा+नैं/ 'इसने'

शब्दान्त विभाजक के होने की सूचना दो बातों से मिलती है। एक तो जो स्वर-संस्वन केवल पद के अन्त में मिलते हैं, वे उच्चारण के मध्य में मिलते हैं। दूसरे, उच्चारण के मध्य में व्यञ्जन संस्वन कुछ अधिक आतत (tenser) मिलते हैं, जो केवल एक पद के उच्चारण में, उन्हीं स्वर-स्थितियों में, इस प्रकार उच्चरित नहीं

होते। ये उच्चारण-मध्य में प्राप्त व्यञ्जन-संस्वन लगभग उन संस्वनों के समान हो जाते हैं, जो पद के आदि में प्राप्त होते हैं। उदाहरण के लिए कुछ युग्म लिये जा सकते हैं—

/हीए/ और /बुआकी एड़ी/ में प्राप्त /ईए/ में स्वर-संस्वनों का अन्तर देखा जा सकता है। प्रथम में /ए/ अन्त्य संस्वन है तथा दूसरे में /ए/ पद के आरम्भ में प्रयुक्त होने वाला है। इसी प्रकार /राएकूँ/ तथा /रस्ता एकु सौ ऐ/ 'रास्ता एक सा है' में /आए/; /आदिमी ऐ/ 'आदमी को' तथा /आदिमी ऐ राजु मिलिऔ/ 'आदमी को राज्य मिला' एवं /आदिमी ऐराकी ऐ/ 'आदमी कुशल है' में प्राप्त /ईऐ/; /गए/ तथा /बाग एकु सौ ऐ/ 'बाग एक सा है' में /अए/; /चाउ/ 'चाव' तथा /चाचा उतरतु ऐ/ 'चाचा उतरता है' में /आ उ/ इसी प्रकार के उदाहरण हैं जिनमें अन्त्य स्वर के संस्वन पदान्त में भिन्न हैं और उच्चारण के मध्य में भिन्न हैं। इसी प्रकार व्यञ्जन-संस्वनों का भी भेद देखा जा सकता है। जैसे /राग/ 'राग' तथा /राग अच्छे ऐं/ में /आग/ दोनों स्थानों पर भिन्न /ग/ संस्वनों से युक्त है—दूसरे में यह अधिक आतत है। इन ध्वन्यात्मक आधारों पर शब्दान्तक विभाजन सिद्ध किया जा सकता है।

इसी विभाजक के आधार पर ध्वन्यात्मक शब्द की परिभाषा की जा सकती है। बोली में ध्वन्यात्मक शब्द ध्वनिग्रामों का वह समूह है जो 'मौन' (Silence) और विभाजक, विभाजक और विभाजक तथा विभाजक और 'मौन के बीच में स्थित रहता है। इसको यों स्पष्ट किया जा सकता है—

#———/+/
/+/———/+/
/+/———#

यह ध्वन्यात्मक शब्द व्याकरणिक शब्द से साम्य नहीं रखता। कुछ ऐसे ध्वनिग्राम-क्रम (Phoneme Sequences) हैं जिनका व्याकरणिक शब्द-सीमाओं से परे का प्रयोग, उनके व्याकरणिक शब्द के बीच प्रयोग से पृथक् नहीं किया जा सकता। ये ध्वनिग्राम-क्रम इन रूपों के हैं /व्यं व्यं/, तथा /व्यं स्व/ ये वे उदाहरण हैं जहाँ व्याकरणिक शब्द व्यञ्जनान्त उपपदरूपांश (Allomorphs) के रूप में प्रकट होते हैं। कुछ उदाहरण लिए जा सकते हैं। /बात् त्री ऐ/ (/बात्/ /तेरी/ /ऐ/) 'तेरी बात है' में /त्त्/, /ज प् प् र् तुऐ/ (/जब/ /पर्तु/ /ऐ/) 'जब पड़ता है' में /प्प्/ ऐसे ही रूप हैं। यहाँ /बात/, /बात्/ तथा /जब/, /जप्/ के रूप में हैं। कुछ स्वल्पान्तर युग्म भी हैं जैसे /ईऐ/ के उदाहरण ऊपर दिए जा चुके हैं /ईऐ/ तथा

/ई+ऐ/ (यहाँ+शब्द विभाजक है)। दीर्घता पर आधारित संस्वन इस प्रकार होंगे [ईऐ·] तथा [ई· ऐ]। यदि श्रुत्यात्मक खण्ड देखा जाय तो /ई+ऐ/ में स्वर-मध्यवर्ती श्रुति /ईऐ/ से कम और दुर्बलतर है। इस प्रकार शब्द-विभाजक (Word-Juncture) की स्थिति ध्वन्यात्मक दृष्टि से स्पष्ट हो जाती है। दीर्घस्वरों के पश्चात् संयुक्त व्यञ्जनों का आना भी इसका प्रमाण है, जो सामान्यतः सम्भव नहीं है।

१.१.३२२. **वाक्यान्त विभाजक**—उपवाक्यान्त और वाक्यान्त विभाजकों को स्पष्ट करने के लिए स्वल्पान्तर युग्म प्राप्त होते हैं। नीचे एक इसी प्रकार का युग्म दिया जा रहा है—

/चाइ ↓ । रोटी ↓ । पानी ↓ ।/ 'चाय, रोटी, पानी . . .' (अपूर्ण गणना)
/चाइ ↓ । रोटी ↓ । पानी ↓ ।।/ 'चाय, रोटी, पानी।' (पूर्ण गणना)

१.१.३२३. **अन्त्य सुरसरणियाँ**—इनके स्वल्पान्तर युग्म इस प्रकार हैं—

/ब्र गयौ ↓ ।।/ 'वह गया' (सामान्य कथन)
/ब्र गयौ ↑ ।।/ 'वह गया' (प्रश्न)
/जा→।।/ 'जा!' (आज्ञा)
/जा ↑ ।।/ 'जा!' (आज्ञा को सुनकर आश्चर्य युक्त प्रश्न)

१.१.३२४. **अन्त्येतर सुरसरणि**—जिस शब्द पर बल दिया जाता है, उसका सुर आरोही होकर परवर्ती शब्द पर धीर होता है। बलवर्द्धक /E/ तथा उसकी अनुपस्थिति का स्वल्पान्तर युग्म नीचे दिया गया है—

/रामु रोटी खाइगौ ↓ ।।/ 'राम रोटी खायगा' (सामान्य कथन)
/रामु E रोटी खाइगौ ↓ ।।/ 'राम रोटी खायगा' (रोटी पर बल)

बलवर्द्धक /E/ के स्थान-भेद का स्वल्पान्तर-युग्म—

/E रामु घर गयौ ↓ ।।/ 'राम घर गया' (राम पर बल)
/रामु E घर गयौ ↓ ।।/ 'राम घर गया' (घर पर बल)

१.१.३२५. **सुरसरणि परिवर्तक**

अ—मोड़ /T/ का प्रयोग सभी अन्त्य सुरसरणियों के साथ हो सकता है: / ↑ T/ का उच्चारण आरोहण की समाप्ति पर अल्पकालिक अवरोहण-युक्त होता है। |↘/ / : / ↓ T/ का उच्चारण अवरोहण की समाप्ति पर अल्पकालिक आरोहण के साथ होता है। |↗/ ; /→T/ का उच्चारण धीर सुर की समाप्ति पर अल्पकालिक आरोहण के साथ होता है। मोड़ और उसकी अनुपस्थिति के स्वल्पान्तर युग्म इस प्रकार हैं—

/ब्र गयौ ↑ ॥/	'वह गया ?'	(सामान्य प्रश्न)
/ब्र गयौ ↑ T॥/	'वह गया ?'	(विवाद युक्त प्रश्न)
/ब्र जाइगौ ↓ ॥/	'वह जायगा'	(सामान्य कथन)
/ब्र जाइगौ ↓ T॥/	'वह जायगा'	(निश्चयार्थक कथन)
/ब्र आवै→॥/	'वह आवे !'	(सामान्य आज्ञा)
/ब्र आवै→॥/	'वह आवे !'	(दृढ़ आज्ञा)

आ—प्लुति (Drawl) /S/—प्लुति और उसकी अनुपस्थिति के स्वल्पान्तर युग्म ये हैं—

/बु जाइगौ ↑ ॥/	'वह जायगा ?'	(सामान्य प्रश्न)
/बु जाइगौ ↑ S॥/	'वह जायगा ?'	(निराश प्रश्न)
/स्याइति बु जाइ ↓ ॥/	'शायद वह जाय !'	(सामान्य सन्देह)
/स्याइति ब्रु जाइ ↓ S॥/	'शायद वह जाय !'	(मात्रा में अधिक सन्देह)

इ—अतिरिक्त ध्वनिवर्द्धन (Extra loudness) /L/ तथा इसकी अनुपस्थिति का स्वल्पान्तर युग्म।

/बु जाइगौ ↑ ॥/	'वह जायगा ?'	(सामान्य प्रश्न)
/बु जाइगौ ↑ L॥/	'वह जायगा ?'	(साश्चर्य प्रश्न)

१.१.४. ध्वन्यात्मक शब्द रचना—ऊपर (१.१.३२१) ध्वन्यात्मक शब्द का विवरण और उसकी परिभाषा दी गई है। बंटन-सीमाओं (Distribution limitations), विशेष संयुक्त स्वरों, संयुक्त व्यञ्जनों तथा 'आरंभिक दीर्घ व्यञ्जनों के पश्चात' व्यञ्जन द्वित्वों तथा संयुक्त व्यञ्जनों के न आने की बात को ध्यान में रखते हुए, शब्द के ध्वनिग्रामीय ढाँचे के संबंध में यह सूत्र दिया जा सकता है: ± ह ± अ^{व} ± अ ± ह' ± ह ± अन् + अ ± ह' ± ह ± अ^{व} +अ. . . .।[1]

१.१.५. शब्द के आक्षरिक विधान के कुछ उदाहरण—

अ	/आ/ 'आ'।
अ अ	/आइ/ 'आकर' /आई/ 'आई'
ह अ	/जा/ 'जा'।

---

१. ह = कोई व्यंजन; ह' = अल्पप्राण व्यंजन; अ = कोई स्वर; अ^{व} = अनाक्षरिक य्, व् श्रुति; अन् = /इ/ तथा /ड/ के अनाक्षरिक संस्वन; + = अनिवार्यतः आता है; ± आ भी सकता है और नहीं भी।

ह् अ	/जि/ 'यह'
ह् अ अ	/गाइ/ 'गाय'
अ ह् अ	/आकु/ 'आक' /आरौ/ 'आला'
ह् अ ह् अ	/तारौ/ 'ताला' /तरौ/ 'तला' /तौल/ 'तोल'
ह् अ ह्ह् अ	/मक्का/ 'मकई' /सक्का/ 'सक्का'
ह् अ ह् अ ह् अ	/तखरी/ 'तराजू' /बुहारी/ 'झाड़ू' /बजारू/ 'बाजारू' /तखतु/ 'तख्त' /लगानु/ 'लगान'
अ ह् अअ	/अताई/ 'नृशंस' /आजादी/ 'आज़ादी' /भारई/ एक प्रकार की चिड़िया। /कमलु/ 'कमल'
ह् अ[व] अ ह् अ अ	/ग्वारई/ 'गाय घेरने का पारिश्रमिक'
ह् अ ह् अ अ	/ककई/ 'कंघी' /चकई/ 'चकवी' /चौतई/ 'चारतहवाली' /चौलाई/ 'एक प्रकार की सब्जी' /कलाई/ 'कलाई' /तलब/ 'याद'
ह् अ अ ह् अ	/लाइकु/ 'लायक' /पाइकु/ 'सेवक'
ह् अ ह्ह् अ ह् अ	/मक्कारु/ 'मक्कार' /गव्वरु/ 'अभिमानी' /मस्तानौ/ 'मस्त'
अ ह् ह् अ ह् अ	/अत्तारु/ 'इत्र बेचने वाला' /अक्कलि/ 'अक़्ल' /चिक्कार/ 'गाली'
अ ह् अ ह् अ ह् अ	/औसखारौ/ 'सुस्त' /ततासीरी/ 'हरातल' /आधासीसी/ 'आधे सिर का दर्द'
ह् अ ह् अ ह् अ ह् अ ह् अ	/खटमुँतना/ 'खाट में मूँतने वाला'

१.१.५. **बोलीगत वैविध्य**—मथुरा जिले में जो ध्वन्यात्मक वैविध्य उपलब्ध होते हैं, उनमें से कुछ का आधार भौगोलिक है और कुछ का जातीय। ये वैविध्य ध्वनिग्रामात्मक, संस्वनात्मक और संयुक्तरूपात्मक हैं।

१.१.४१. **ध्वनिग्रामात्मक अन्तर**—ध्वनिग्राम-स्तर पर केवल एक ही अन्तर प्राप्त होता है: 'ठाडीबोली'—विभाग के खड़ीबोली-क्षेत्र से संलग्न भाग में, विशेषत: जाटों की बोली में /व्/ एक स्वतंत्र ध्वनिग्राम के रूप में प्राप्त होता है, जो अन्य स्थान पर /उ/ के एक संस्वन [व्] के रूप में मिलता है। नन्दगाँव, बठेन, दहगाँव, कोटबन के पश्चिम और उत्तर-पश्चिम में /व/ ध्वनिग्राम का क्षेत्र है। वहाँ /व/ और /ब/ का स्वल्पान्तर युग्म भी मिलता है; जैसे—/वाइ/ 'उसको' /बाइ/ 'वायु का रोग'। इस अन्तर के अतिरिक्त ध्वनिग्रामीय स्तर पर ज़िले में कोई भेद प्राप्त नहीं होता।

१.१.५२. संस्वनात्मक अन्तर—/ए/ के जो संस्वन 'पड़ीबोली' भाग में मिलते हैं, उनके अतिरिक्त ठाड़ीबोली भाग के पश्चिमी क्षेत्र में एक और संस्वन मिलता है [$^{\text{य}}$ए]। इसका प्रयोग पद के आरंभ में मिलता है और मध्य में दो व्यञ्जनों के बीच में मिलता है। उदाहरण—

पड़ीबोली क्षेत्र	ठाड़ीबोली क्षेत्र	
[एकु]	[$^{\text{य}}$एक्]	'एक'
[खेतु]	[ख् $^{\text{य}}$एत्]	'खेत'

दूसरा संस्वनात्मक अन्तर 'पड़ीबोली'-क्षेत्र में ही प्राप्त होता है। पड़ी बोली-क्षेत्र के पूर्वी विभाग में जिसकी सीमाएँ बल्देव के आसपास के गाँवों से आरंभ होती है और समस्त सादाबाद तहसील में व्याप्त होती हुई, एटा ज़िले की सीमा से मिल जाती है। यह अन्तर /ई/ तथा /ऊ/ के संस्वनों में मिलता है। दीर्घस्वरों से पूर्व, मध्य पड़ीबोली भाग, पश्चिमी पड़ीबोली भाग तथा प्रायः समस्त ठाड़ीबोली भाग में, /ई/ और /ऊ/ के क्रमशः [ई$^{\text{य}}$] तथा [ऊ$^{\text{व}}$] संस्वन प्राप्त होते हैं। पूर्वी पड़ी बोली में श्रुत्यांश अधिक मुखर हो जाते हैं और /ग्/ का आगम हो जाता है जैसे—[ई ग् य्] तथा [ऊ ग् व्]। उदाहरण—

शेष क्षेत्र	पूर्वी पड़ीबोली क्षेत्र	
[भ ई $^{\text{य}}$ अ॒ा]	[भ ई ग् $^{\text{य्}}$ अ॒ा]	'भाई'
[ग ई $^{\text{य}}$ अ॒ा]	[ग ई ग् $^{\text{य}}$ अ॒ा]	'गाय'
[न ऊ $^{\text{व}}$ अ॒ा]	[न ऊ ग् $^{\text{व}}$ अ॒ा]	'नाई'
[क ऊ $^{\text{व}}$ अ॒ा]	[क ऊ ग् $^{\text{व}}$ अ॒ा]	'कौआ'

कुछ जातियों में तथा और पूर्वी क्षेत्रों में इनके [भ ग् ग् $^{\text{य्}}$ आ], [ग् अ ग् ग् $^{\text{य}}$ आ], [न् अ ग् ग् $^{\text{व}}$ आ] तथा [क् अ ग् ग् व् आ] रूप मिलते हैं।

साथ ही पड़ी बोली भाग में प्राप्त ह्रस्व स्वरों के अन्त्य संस्वन [इ॒], [इ॰], [अ॒], [अ॰], [उ॒], [उ॰], ठाड़ीबोली-भाग में नहीं मिलते और इस प्रकार के सभी पद शुद्ध व्यञ्जनान्त हो जाते हैं। नीचे इसके उदाहरण दिये गए हैं—

पड़ीबोली-क्षेत्र	ठाड़ीबोली क्षेत्र	
/बात/	/बात्/	'बात'
/गति/	/गत्/	'गति'
/गामु/	/गाम्/	'गाँव'

१.१.५३. स्वर-सन्धिगत अन्तर

पड़ीबोली क्षेत्र	**ठाड़ीबोली क्षेत्र**
१. /अ/+/ई/ = /अई/	/अ/+/ई/=/ई/
/बात+ई/ = /बातई/	/बात+ई/=/बाती/ 'बात थी'
२. /अ/+/ऐ/ = /अऐ/ ~ /ऐ/	/अ/+/ऐ/=/ऐ/
/बात+ऐ/ = /बातऐ/ ~ /बातै/	/बात+ऐ/=/बातै/ 'बात है'
३. /औ/+/ओ/ = /ओ/	/औ/+/ओ/=/औ/
/आयौ+ओ/ = /आयो/	/आयौ+ओ/=/आयौ/ 'आया था'
४. /अ/+/ओ/ /अओ/ : /घरओ/	/अ+ओ/=/ओ/ : /घरो/ 'घर था'

१.१.५४. व्यञ्जन संयोग-गत अन्तर—इन वैविध्यों का आधार भी जातीय और भौगोलिक है। नीचे व्यञ्जन-संयोगों के अन्तर को स्पष्ट करने के लिए कुछ उदाहरण दिये गये हैं—

क—शुद्ध जातीय आधार के अन्तर—मथुरा जिले के चमारों की बोली में, अन्य जातियों में प्राप्त /ल्/ + व्यञ्जन के स्थान पर /न्/ + व्यञ्जन मिलता है।

अन्य जातियों की बोली	**चमारों की बोली**	
/चल्जा/	/चंजा/	'चलजा!'
/पल्टा/	/पंटा/	'रोटी पलटने की एक चम्मच'
/कल्सा/	/कंसा/	'कलश'
/जल्दी/	/जंदी/	'जल्दी'

चमारों के अतिरिक्त अन्य निम्नतर वर्गों में भी यह विशेषता नहीं देखी गई।

ख—जातीय तथा भौगोलिक मिश्रित आधार के अन्तर

सादाबाद के सभी लोगों की बोली, तथा अन्य स्थानों की चमारों की बोली में लोहबन तथा शेष स्थानों की बोली का/र/+व्यञ्जन > व्यञ्जन-द्वित्व मिलता है। जैसे—

लोहबन आदि	**सादाबाद-चमार**	
/पर्तु/	/पत्तु/	'परत', स्तर
/अर्थु/	/अत्थु/	'अर्थ'
/दर्दु/	/दद्दु/	'दरद'
/चर्चा/	/चच्चा/	'चर्चा'
/कर्जु/	/कज्जु/	'क़र्ज'
/चर्सु/	/चस्सु/	'चरस'

ग—शुद्ध भौगोलिक आधार का अन्तर—

बरसाने की बोली में अन्य स्थानों की बोली की अपेक्षा अधिक संयुक्त रूप मिलते हैं। दीर्घ स्वरान्त पदों के उपान्त्य ह्रस्व स्वर वहाँ समाप्त होकर संयुक्त रूप छोड़ जाते हैं। अन्य स्थानों पर वह स्वर सुरक्षित रहता है--

अन्य स्थान				बरसाना
/नकटा/	–	'नक्टा'	–	/नक्टा/
/चुकतौ/	–	'चुकता'	–	/चुक्तौ/
/बकिबौ/	–	'बकना'	–	/बक्बौ/
/इकिलौ/	–	'अकेला'	–	/इक्लौ/
/निकसौ/	–	'निकला'	–	/निक्सौ/
/उखटा/	–	'उखटा'	–	/उख्टा/
/देखतौ/	–	'देखता'	–	/देख्तौ/
/राखिबौ/	–	'रखना'	–	/राख्यौ/
/बाखरी/	–	'पुरानी ब्याई हुई भैंस'	–	/बाखरी/
/लगतौ/	–	'पास'	–	/लग्तौ/

पद-विचार

२

नाम-विचार

२.०. प्रस्तुत अध्याय में 'नाम' की संरचना और उसके व्युत्पादन पर विचार किया गया है। व्याकरणिक दृष्टि से मथुरा जिले की बोली के 'नाम' के अन्तर्गत संज्ञा, विशेषण, कृदन्त सम्मिलित किये जा सकते हैं। संज्ञा के स्थानापन्न सर्वनामों तथा क्रियार्थक संज्ञा पर भी यहाँ विचार किया गया है। अध्याय के अन्त में परसर्गों का विवरण प्रस्तुत किया गया है, क्योंकि इनका संयोग नाम के साथ ही होता है।

इस अध्याय में पदग्राम (Morpheme), तथा रूप ग्राम (Allomorph) दो नवीन पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग हुआ है। पद ग्रामात्मक लेख के लिए { } तथा मौन (Silence) के लिए # चिह्न का प्रयोग किया गया है। C=व्यञ्जन; V=स्वर। अन्य शब्द · स्थानापन्न (Substitute) स्वतन्त्र-वैविध्य (free variation)

२.१. नाम की प्रत्ययात्मक संरचना : नाम की संरचना में पूर्व-प्रत्यय तथा अन्त्य प्रत्ययों का प्रयोग होता है।

२.११. **पूर्व-प्रत्यय या उपसर्ग**—पूर्व प्रत्ययों का प्रयोग केवल संज्ञा के साथ होता है। संज्ञा के साथ प्रयुक्त होने वाले पूर्व-प्रत्यय अर्थ की दृष्टि से हीनार्थक, श्लाघार्थक, निषेधार्थक, स्वार्थक, परार्थक और संख्यार्थक हो सकते हैं।

२.११.१. **हीनार्थक पूर्व-प्रत्यय**—ये हैं —/अ-/, /कु-/, /औ-/, /ए-/, /दु-/ /गैर/ सामान्य संज्ञा शब्दों के साथ संयुक्त होकर ये प्रत्यय कुत्सा व्यक्त करते हैं। उदाहरण इस प्रकार हैं :—

/अकालु/	'दुर्भिक्ष'	/दुकालु/	'दुर्भिक्ष'
/कुमौखौ/	'कुअवसर'	/हैरि हालु/	'बुरा हाल'
/कुखनु/	'बुरा क्षण'	/असगुन/	'अपशकुन'
/कुबखतु/	'बुरा वक्त'	/कुसमौ/	'बुरा समय'
/कुटेब/	'बुरी आदत'	/कुटैमि/	'बुरा टाइम'
/औगुनु/	'अवगुण'	/कुठौरु/	'बुरा स्थान'
/खर दिमागु/	'बुरा दिमागु'	/कुसगुनु/	'बुरा शकुन'
	/औघटु/	'बुरा घाट'	

२.११.२. श्लाघार्थक पूर्व प्रत्यय—केवल एक मिलता है /स्-/, पर कभी यह -अ- से संयुक्त होकर और कभी -उ- से संयुक्त होकर यह प्रत्यय प्रयुक्त होता है। -अ- से संयुक्त रूप /स-/ दीर्घाक्षर से पूर्व तथा -उ- से संयुक्त रूप ह्रस्वाक्षर से पूर्व प्रयुक्त होता है। उदाहरण—

/सपूतु/	'सुपुत्र'	/सकालु[1]/	'सुन्दर समय'
/सुकरमु/	'सुकर्म'	/सुघरी/	'सुन्दर घड़ी'

२.११.३. निषेधार्थक पूर्व प्रत्यय—/अ-/ तथा /अप-/ का प्रयोग इस अर्थ में होता है। उदाहरण इस प्रकार हैं :—

/अधरमु/	'अधर्म'	/अन्याउ/	/अन्याबु/	'अन्याय'
/अपजसु/	'अपयश'	/अपमानु/		'अपमान'

२.११.४. स्वार्थक पूर्व प्रत्यय—/-अप्/—

/अपघातु/	'आत्महत्या'	/अपडरु/	'आत्मभय'
/अपकाजु/	'स्वकार्य'	/अपबसु/	'स्ववश'
	/अपरसु[2]/	'आत्मरस'	

२.११.५. परार्थक पूर्व प्रत्यय—/-पर्/, /-गैर/

/परदेसु/	'पराया देश'	/परघरु/	'दूसरे का घर'
/पन्नारी/	'पर नारी'	/परकाजु/	'पर कार्य'
/गैर घरु/	'दूसरे का घर'	/गैर बात/	'अन्य बात'

२.११.६. संख्यार्थक पूर्व प्रत्यय—ये प्रत्यय संख्यावाचक शब्दों के ही विकृत रूप हैं : /इक-/ 'एक', /दु-/ 'दो', /ति-/ 'तीन', /चौ-/ 'चार', /पँच-/ 'पाँच', /सत-/ 'सात'। इनके प्रयोग के उदाहरण नीचे दिए गए हैं :—

/इकलाई/	'एक प्रकार का दुपट्टा'		
/दुधारौ/	'दुधारा'	/दुराहौ/	'दुहारा'
/दुपटु/	'दो छत वाला'	/दुछत्ता/	'दो छत वाला'
/दुपट्टा/	'दुकूल'	/दुलरी/	'दो लड़ी वाला एक आभूषण'
/दुमुँहीं/	'दुमुँही'	/तिफंगौ/	'फूट'
/तिराहौ/	'तिराहा'		
/तिवारौ/	'तिवारा'	/तिबारी/	'तिबारी'

---

१. इसका रूढ़ि अर्थ 'प्रभात' हो गया है।

२. वल्लभ सम्प्रदाय में इसका अर्थ 'अस्पृश्य' हो गया है।

/तिदरी/ 'तीन दर वाला घर' /चौवारौ/ 'एक अट्टालिका'
/चौराहौ/ 'चौराहा' /चौतारौ/ 'चौथे दिन आने वाला ज्वर'
/सतनजा/ 'सात प्रकार के अनाजों का मिश्रित रूप'।

२.११.७. **विशेष दृष्टव्य**—पूर्व प्रत्ययों से युक्त संज्ञा शब्द अनिवार्यतः लिङ्ग-सूचक प्रत्ययों से युक्त रहते हैं। इन पर प्रत्ययों के साथ विचार किया गया है।

२.१२. **प्रत्यय**–यहाँ अन्त्य प्रत्ययों का विवरण प्रस्तुत किया गया है। इनमें सबसे प्रमुख लिङ्ग और वचन के प्रत्यय हैं। इनका प्रयोग समस्त 'नाम' (संज्ञा, विशेषण तथा कृदन्त) के साथ होता है। कुछ प्रत्यय शुद्ध लिङ्ग या जातिबोधक हैं तथा कुछ शुद्ध वचन। कुछ प्रत्यय उभयार्थबोधक हैं, जिनमें लिङ्ग और वचन दोनों की ही सूचना मिलती है। इनके अतिरिक्त अन्य प्रत्यय हैं, जिनसे विभिन्न अर्थों का द्योतन होता है। इस शीर्षक के अन्तर्गत इनका क्रमात् विवरण दिया गया है।

२.१२.१. केवल जातिसूचक समस्त स्त्रीलिङ्ग प्रत्यय हैं। संज्ञा और विशेषण के साथ प्रयुक्त होने पर ये लिङ्ग का ही बोध कराते हैं और कृदन्त के साथ प्रयुक्त होने पर यद्यपि ये स्त्रीलिङ्ग की ही सूचना देते हैं, तथापि वचन-द्योतक प्रत्यय भी इनके पश्चात् संयुक्त हो जाते हैं। ये स्त्रीलिङ्ग प्रत्यय तीन हैं : /-अ/, /-इ/, /-ई/। इन तीनों का प्रयोग संज्ञा तथा विशेषणों के साथ होता है : /बात/=(/बात्-/+/-अ/), /गति/=(/गत्-/+/-इ/), /कूँची/=(/कूँच्-/+/-ई/)। -ई का प्रयोग कभी-कभी -आ से युक्त होकर भी होता है[1] : (/-ई-/+/-आ-/=[-इय्अ॒ा])। इस प्रकार नामिक अंग+[-इय्अ॒ा]=जाति-युक्त संज्ञा। उदाहरण :—

नामिक अङ्ग /चमच्-/+/-ई-+-आ/=/चमचिआ/ 'चमची'
नामिक अङ्ग /चपट्-/+/-ई-+-आ/=/चपटिआ/ 'चपटिया'

इसका एक और रूपान्तर है। ऊपर /-ईआ/ का प्रयोग द्व्यक्षरात्मक नामिक अङ्ग के साथ होता है, जैसा कि ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट है। जब नामिक अङ्ग एकाक्षरात्मक होता है तो /-अईआ/ का प्रयोग होता है। जैसे—

---

१. -ईआ को अलग प्रत्यय भी माना जा सकता है। पर विवरण की सुविधा की दृष्टि से-ई का एक रूप ही इसे मानना उपयुक्त दीखता है। इससे पदग्राम की संख्या भी कम हो जाती है। /-आ/ को एक और स्त्री-प्रत्यय मानने में भी यही कठिनाई है। स्त्री० प्रत्यय के रूप में /-आ/ का प्रयोग अन्यत्र मिलता भी नहीं है।

नामिक अङ्ग /गध्-/+/-अई-+-आ/ =/गधईआ/ 'गधी'
" /मढ़-/+/-अई-+-आ/ =/मढ़ईआ/ 'मढ़ी'
" /ताल्-/+/-अई-+-आ/ =/तलईआ/ 'छोटा तालाब'

२.१२.१.१ **लिङ्ग-परिवर्तक**—कुछ पुलिङ्ग शब्दों को स्त्रीलिङ्ग में परिवर्तन करने के लिए -न्- प्रत्यय काम में लाया जाता है। पर यह प्रत्यय सदैव ही -ई स्त्रीलिङ्ग प्रत्यय से युक्त होकर आता है: /-नी/ ~ /-नि/। इसके उदाहरण इस प्रकार हैं—

पुल्लिङ्ग		स्त्रीलिङ्ग
/हाती/	'हाथी'	/हतिनी/
/माली/	'माली'	/मालिनी/
/साधू/	'साधु'	/साधुनी/
/मास्टर/	'मास्टर'	/मास्टन्नी/

-न- के पूर्व भी /-इ-/ स्त्री० प्रत्यय का प्रयोग मिलता है। इस प्रकार इस प्रत्यय का रूप /-इनी-/ हो जाता है। जैसे—

नामिक अङ्ग पुल्लिङ्ग /गरीब्-/ 'गरीब' से स्त्रीलिङ्ग /गरीबिनी/
" " /ग्वाल्-/ 'ग्वाला' से स्त्रीलिङ्ग /ग्वालिनी/
" " /नट्-/ 'नट' से स्त्रीलिङ्ग /नटिनी/
" " /जाट्-/ 'जाट' से स्त्रीलिङ्ग /जाटिनी/

इस प्रत्यय का विवरणात्मक विश्लेषण यों किया जा सकता है: {-न्-} स्त्रीलिङ्ग परिवर्तक है तथा इसके साथ /इ-/, अथवा /-ई/ अथवा /इ-—ई/ स्त्री० प्रत्यय सम्बद्ध होते हैं।

२.१२.१.२. **प्रयोग-स्थितियाँ**—उक्त स्त्रीलिङ्ग प्रत्ययों में से {-अ}, {-इ} तथा {-न-} वाले रूपों का प्रयोग संज्ञा तथा विशेषणों तक सीमित है। कृदन्तों के साथ केवल {-ई} का प्रयोग होता है। जो विशेषण या संज्ञाएँ इन स्त्रीलिङ्ग प्रत्ययों से रहित होने के कारण जाति का बोध नहीं कराते, उनकी जाति कृदन्त की स्थिति पर आने पर ही हो सकता है।

२.१२.१.३. **अर्थ-बोध**—उक्त स्त्रीलिङ्ग प्रत्यय जब किसी सजीव वस्तु के साथ प्रयुक्त होते हैं, तब जाति का द्योतन करते हैं। निर्जीव पदार्थों के साथ प्रयुक्त होकर आकृति की लघुता अथवा परिमाण की न्यूनता की सूचना देते हैं। जैसे—कोठरा /कोठरी, 'कोष्ठ'; थोरौ/ थोरी। ये दो तो मुख्य अर्थ हैं; इनके अतिरिक्त भी कई अर्थों का द्योतन होता है। इस प्रकार के अर्थों की सूची देना बोली के ढाँचे

के विवरण की दृष्टि से आवश्यक नहीं है। इन अन्य अर्थों को व्यक्त करने में बहुधा {-ई} का ही प्रयोग मिलता है।

२.१२.२. **लिङ्ग-वचन प्रत्यय**—पुल्लिङ्ग प्रत्यय सदैव ही वचन के द्योतक भी होते हैं। यही कारण है कि इन प्रत्ययों के कर्ता एकवचन तथा बहुवचन में पृथक् रूप मिलते हैं।

ये प्रत्यय इस प्रकार हैं—

/-उ/ पु० एक० /-अ/ पु० बहु० घरु/घर

/-औ/ पु० एक० /-ए/ पु० बहु० चीतौ/चीते

/-आ/ पु० एक० /ϕ/ पु० बहु० गधा/गधा+/ϕ/

/-आ/ से एकवचन का द्योतन होता है। अतः इसके बहुवचन का द्योतन शून्य पद-ग्राम द्वारा माना गया है। इससे रूप-रचना की सुषमा तथा विवरण की सुविधा रहती है।

२.१२.२.१. **प्रयोग-स्थिति**—उक्त पुल्लिङ्ग प्रत्ययों में से {-औ} तथा {-ए} का प्रयोग विशेषण, संज्ञा तथा कृदन्तों के साथ होता है। {-आ} का प्रयोग केवल संज्ञा तक सीमित है। {-उ} तथा {-अ} विशेषण तथा संज्ञा के साथ तो आ सकते हैं, पर कृदन्तों के साथ संलग्न नहीं हो सकते। इस प्रकार कृदन्तों के साथ केवल {-औ}, {-ए} का प्रयोग ही सम्भव है। जैसे /गयौ/ 'गया' /गए/ 'गये'।

२.१२.२.२. **अर्थ-द्योतन**—उक्त लिङ्ग-वचन प्रत्ययों से मुख्यतः तीन अर्थों का द्योतन होता है: जाति, अधिक परिमाण या बड़ी आकृति तथा वचन। परिमाण या आकृति वाले अर्थ के लिए इन युग्मों को उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है: /नाली/ 'छोटी नाली', /नालौ/ 'बड़ा नाला' /पाबरौ/ 'बड़ा फावड़ा', /पावरी/ या /पबरिया/ 'छोटा फावड़ा'। पर कृदन्त के साथ प्रयुक्त होकर ये केवल जाति या लिङ्ग का बोध कराते हैं।

२.१२.३. **वचन-प्रत्यय**—केवल वचन के द्योतक प्रत्यय दो हैं: /-अन/ तथा /ँ/। विशेषण के साथ शुद्ध वचन प्रत्ययों का संयोग नहीं होता। /-अन/ प्रत्यय का प्रयोग विशेषण के साथ उसी दशा में सम्भव है, जब वह संज्ञा-वत प्रयुक्त हो। जैसे—/छोटेन्नें कही/ 'छोटों ने कहा'। संज्ञाओं में /-न/ का प्रयोग तिर्यक बहुवचन के साथ होता है। /ँ/ का प्रयोग केवल कृदन्तों के स्त्रीलिङ्ग रूपों के साथ होता है। इस प्रकार विशेषणों और संज्ञाओं के स्तर पर या तो लिङ्ग-वचन-प्रत्ययों (पुल्लिङ्ग) का प्रयोग होता है, या केवल स्त्रीलिङ्ग प्रत्ययों का प्रयोग होता है। जिन संज्ञा या विशेषणों के साथ ये प्रत्यय प्रयुक्त नहीं होते, उनके लिङ्ग और वचन का बोध कृदन्तों पर पहुँच कर ही हो सकता है। कृदन्तों में सदैव ही पुल्लिङ्ग और वचन का द्योतन

ऊपर वर्णित लिङ्ग-वचन-प्रत्ययों (२.४२) के माध्यम से, अथवा स्त्रीलिङ्ग के वचन का द्योतन वचन-प्रत्यय /ँ/ के द्वारा होता है। वर्तमानकालिक सहायक क्रियाओं के साथ भी /ँ/ का प्रयोग मिलता है। इसका विवरण 'क्रिया-विचार' में दिया गया है। इन प्रत्ययों के प्रयोग के कुछ उदाहरण ये हैं: /सपनेन-/ 'सपनों', /गधन-~गधान-/ 'गधों', /हीतीन-/ 'हाथियों', /छोरीन-/ 'छोरियों', /गईं-/ 'गईं (बहु०)'। इस प्रकार वचन-प्रत्यय केवल दो ही हैं: {-न} तथा {-ँ}।

२.१२.४. **कारक**—केवल तीन मिलते हैं: मूलकारक, तिर्यक तथा कर्म-सम्प्रदान। इनकी रूप-तालिका इस प्रकार है:—

	एक०	बहु०	एक०	बहु०	एक०	बहु०
कर्ता —	घर्-उ	घर्-अ	चीत्-औ	चीत्-ए	पोथी	पोथी
तिर्यक —	घर्-अ$_1$	घर्-अन्	चीत्-ए[1]	चीत्-एन	पोथी	पोथीन
कर्म-सम्प्र०—	घर्-ऐ	घर्-अन्-ऐ	चीत्-ए-ऐ	चीत्-एन-नें	पोथी-ऐ	पोथीन्-ऐं

तिर्यक एकवचन तथा बहुवचन में प्राप्त वैसा दृश्य को देखते हुए, तिर्यक एकवचन के -अ तथा -ए और तिर्यक बहुवचन का -न प्रत्यय निश्चित किये जा सकते हैं। एकवचन में -ϕ शून्य प्रत्यय भी मानना होगा। कर्ता बहुवचन -अ, -ए से तिर्यक एकवचन -अ, -ए का ध्वन्यात्मक साम्य है। अतः तिर्यक एकवचन प्रत्ययों को विशेष रूप से चिह्नित करके ये पदग्राम निश्चित किये जा सकते हैं: {-अ$_1$}, {-ए$_1$}, {-ϕ}=तिर्यक एकवचन तथा {-न}=तिर्यक बहुवचन। कर्म-सम्प्रदान {-ऐ} 'को' संज्ञा और विशेषण के साथ संयुक्त होता है।

२.१२.४.१. **प्रयोग-स्थितियाँ**—तिर्यक प्रत्ययों का प्रयोग केवल विशेषण और संज्ञाओं तक सीमित है: कृदन्तों के साथ इनका प्रयोग नहीं होता। इन प्रत्ययों से युक्त संज्ञाएँ परसर्गों से पूर्व और तिर्यक विशेषणों का प्रयोग तिर्यक संज्ञाओं के पूर्व होता है। उदाहरण /घर में/ 'घर में', /अच्छे घर में/ 'अच्छे घर में।' {-न} का प्रयोग विशेषण के साथ नहीं होता: इसका प्रयोग केवल संज्ञा तक सीमित है। {-ऐ} का प्रयोग संज्ञा या विशेषण के तिर्यक एकवचन रूप के साथ होता है।

२.१२.४.२. **अर्थ-द्योतन**—{-अ$_1$} तथा {-ए$_1$} से पुल्लिङ्ग और एकवचन दोनों अर्थ सूचित होते हैं। {-ϕ} दोनों लिङ्गों में प्रयुक्त हो सकने के कारण केवल वचन का द्योतक माना जा सकता है। {-न} केवल वचन को व्यक्त करता है: दोनों लिङ्गों के साथ यह प्रयुक्त हो सकता है। {-ए} से लिङ्ग-वचन का बोध नहीं होता।[1] केवल कर्म-सम्प्रदान का बोध होता है।

---

१. {-ऐ} के स्थान पर -कूँ का प्रयोग भी स्थानीय बोली-भेद से मिलता है। -कूँ 'को' का विचार 'परसर्ग' के साथ किया गया है।

२.१३. **कृदन्त-पदग्राम**—वर्तमानकालिक कृदन्त की संरचना धातु के साथ {-त} तथा भूतकालिक कृदन्त की संरचना लिङ्ग-वचन प्रत्ययों के संयोग से होती है। इन पर विशेष विचार क्रिया-विचार के साथ आगे किया गया है। इन पदग्रामों का प्रयोग केवल कृदन्तों के लिए ही होता है। अर्थ की दृष्टि से ये क्रमशः वर्त० कृ० तथा भूत० कृ० के द्योतक हैं।

२.१४. उक्त पद-ग्रामों की दृष्टि से 'नाम' का विवरण प्रस्तुत किया जा सकता है। उक्त-लिङ्ग, लिङ्गवचन, वचन, तिर्यक और कर्म-सम्प्रदान पदग्रामों के साथ संज्ञा तथा विशेषण प्रयुक्त हो सकते हैं। इस प्रकार विशेषण संज्ञा का स्थान ग्रहण कर सकता है। पर मात्र विशेषण के रूप में विशेष्य के साथ प्रयुक्त होने पर विशेषण —अ/ए (तिर्यक एकवचन से पूर्व),—न (तिर्यक बहुवचन से पूर्व) तथा —ऐ (कर्म-सम्प्रदान से पूर्व) प्रयुक्त नहीं हो सकता। इस वैसादृश्य के आधार पर संज्ञा तथा विशेषण को पृथक् किया जा सकता है। कृदन्त केवल लिङ्ग-वचन, प्रत्ययों से युक्त हो सकता है; शेष प्रत्ययों से युक्त नहीं हो सकता। इस प्रयोग-सीमा के आधार पर कृदन्त को पृथक् किया जा सकता है। साथ ही संज्ञा तथा विशेषणों के प्रातिपदिकों के साथ प्रत्यय का संयोग प्रथम स्थान पर होता है और कृदन्तों में द्वितीय स्थान पर। केवल कर्म-सम्प्रदान प्रत्यय संज्ञा तथा विशेषणों में द्वितीय स्थान पर सम्बद्ध होता है। एक और अन्तर यह है कि विशेषण और संज्ञाओं में स्त्रीलिङ्ग के साथ वचन का द्योतन नहीं होता; कृदन्त के साथ स्त्रीलिङ्ग रूपों में वचन-प्रत्यय { ँ } प्रयुक्त हो जाता है। यह पहले (२·३) देखा जा चुका है कि पूर्व-प्रत्यय या उपसर्ग का प्रयोग केवल संज्ञा के साथ होता है।

२.१४.१. **परिभाषा**—उक्त सङ्गठन-विवरण के आधार पर तथा आन्तरिक प्रयोग-स्थितियों के आधार पर विवरणात्मक परिभाषाएँ निश्चित की जा सकती हैं।

२.१४.१.१. **संज्ञा**—जो इन स्थितियों में प्रयुक्त होती है:—

#———#(±)
#पूर्वप्रत्यय[१]—प्रत्यय[२]#(±)
#———-अ/-इ/-ई/(-न्-)[३]#(±)
#———-आ/ϕ; -उ/-अ; -औ/-ए#[४](±)
#———-$अ_१$/-$ए_१$/-ϕ; -न; -ऐ#[५] (+)

---

१. देखिए (२.३)
२. यहाँ लिङ्ग-वचन प्रत्ययों का प्रयोग होता है।
३. ये सभी स्त्रीलिङ्ग प्रत्यय हैं।
४. ये प्रत्यय लिङ्ग-वचन प्रत्यय हैं। ५. ये कारक-प्रत्यय हैं।

इस प्रकार रचनात्मक और स्थित्यात्मक परिभाषा देकर इनका वर्गीकरण भी किया जा सकता है। ऊपर की तालिका के विश्लेषण से स्पष्टतः दो वर्ग निश्चित किये जा सकते हैं—#(±) वाली संज्ञाएँ तथा -#(+) वाली संज्ञाएँ। पहले वर्ग के पश्चात् कोई पदग्राम प्रयुक्त हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है: (±) तथा दूसरे वर्ग की संज्ञाओं के पश्चात् पदग्राम आना अनिवार्य है: (+)। पहले वर्ग के भी दो उपवर्ग हो सकते हैं—#–#तथा अन्य। प्रथम उपवर्ग के साथ किसी प्रत्यय का योग नहीं होता, दूसरे उपवर्ग के साथ लिङ्ग-वचन-प्रत्यय युक्त होते हैं। इन दोनों उपवर्गों के विभाजन का आधार ध्वन्यात्मक है। #–# वाली संज्ञाएँ स्वरान्त होती हैं: /अंडा/, 'अंडा', /लता/ 'लता', /मोती/ 'मोती', /डाढ़ी/ 'दाढ़ी', /भालू/ 'रीछ', /बालू/ 'बालू'। इनके लिङ्ग तथा वचन का बोध विशेषण या कृदन्त के परिवेश से ही सम्भव है। #–प्रत्यय संरचना से युक्त संज्ञाएँ व्यञ्जनान्त होती हैं। तिर्यक-बहुवचन प्रत्यय ग्रहण करने से इसका रूप-गठन इस प्रकार हो जाता है: #—न।

इन व्यञ्जनान्त संज्ञाओं को भी दो उपविभागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम वर्ग ऐसी व्यञ्जनान्त संज्ञाओं का है जो केवल जातिबोधक प्रत्ययों से युक्त होती हैं -अ, -इ, -ई, (-न्-)। दूसरे वर्ग में वे व्यञ्जनान्त संज्ञाएँ आती हैं, जो लिङ्ग वचन द्योतक प्रत्ययों से युक्त होती हैं। इन दोनों का वैसादृश्य तिर्यक की स्थिति में भी स्पष्ट होता है। दूसरे वर्ग की व्यञ्जनान्त संज्ञाओं के साथ तिर्यक एकवचन प्रत्यय प्रातपदिक में संलग्न होकर उससे प्रथम स्थान की दूरी पर रहते हैं, तथा प्रथम वर्ग में जातिसूचक प्रत्ययों से युक्त संज्ञा प्रातपदिकों के साथ संलग्न होने से तिर्यक प्रत्यय मूल प्रातपदिकों से द्वितीय स्थान की दूरी पर रहते हैं।

इनका वैसादृश्य इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है:—

व्यञ्जनान्त प्रातपदिक	लिङ्ग प्रत्यय	लिङ्ग-वचन प्रत्यय		तिर्यक-प्रत्यय		अर्थ
		एक०	बहु०	एक०	बहु०	
प्रथम-वर्ग	{-ई}, {-इ} {-अ}	×	×	×	{-न}	स्त्रीलिङ्ग
द्वितीय वर्ग	× ×	{-उ} {-औ} {-आ}	{-अ} {-ए} {-ϕ}	{-अ$_1$} {-एं$_1$} {-ϕ}	{-न}	पुल्लिङ्ग

प्रथम वर्ग का एक उपविभाग ऐसी संज्ञाओं का हो सकता है, जो कोई प्रत्यय ग्रहण नहीं करता : अर्थ की दृष्टि से यह उपविभाग व्यक्तिवाचक संज्ञाओं का होगा।

द्वितीय वर्ग के भी दो उपविभाग हो सकते हैं। इनका स्पष्ट वैसादृश्य तिर्यक रूपों में स्पष्ट है : #—#, #—न। इनमें से प्रथम उपविभाग तिर्यक बहुवचन प्रत्यय ग्रहण नहीं करता। अर्थ की दृष्टि से यह व्यक्तिवाचक संज्ञाओं का वर्ग है। इन उपविभाग को भी दो रूपों में देखा जाता है। यह वैसादृश्य मूलकारक के एकवचन और तिर्यक एकवचन की स्थिति में स्पष्ट होता है :

व्यञ्जनान्त प्रातपदिक +{-उ} (पु० एक०) /रामु/ 'राम' /गोपालु/ 'गोपाल'
" " +{-अ,} (तिर्यक एक०) /राम-/ 'राम' /गोपाल/ 'गोपाल'

दूसरे रूप में किसी अवस्था में किसी प्रत्यय का संयोग नहीं होता। इस विभाजन का आधार ध्वन्यात्मक है। पहला रूप व्यंजनान्त व्यक्तिवाचक संज्ञा प्रातपदिकों का है, तथा दूसरा रूप स्वरान्त व्यक्तिवाचक संज्ञा प्रातपदिकों का।

२ १४.१.२. **विशेषण**—की प्रत्ययात्मक संरचना संज्ञा के ही समान है; केवल संज्ञाओं की भाँति तिर्यक बहुवचन प्रत्यय-न को ग्रहण नहीं कर सकता। दूसरा वैसादृश्य कर्म-सम्प्रदान-प्रत्यय -ऐं के आधार पर है; विशेषण इससे भी युक्त नहीं हो सकता। यद्यपि विशेषण पदग्राम संज्ञा के साथ सम्बद्ध रहता है, तथापि संज्ञा की रूप रचना से स्वतन्त्र रूप रचना भी रख सकता है। जब संज्ञा पदग्राम किसी लिङ्ग-वचन या केवल जाति प्रत्यय से युक्त नहीं होता, तब भी विशेषण उनसे युक्त हो सकता है। साथ ही संज्ञा उक्त प्रत्ययों से युक्त हो सकती है और विशेषण किन्हीं अन्य से। उदाहरण—

(१) /अच्छौ हाती/ 'अच्छा हाती'
(२) /अच्छे हाती/ 'अच्छे हाथी'
(३) /अच्छे हाती नें/ 'अच्छे हाथी ने'
(४) /अच्छे हातीन्नें/ 'अच्छे हाथियों ने'

इनमें से (१) तथा (२) में प्रयुक्त संज्ञा प्रत्यय-युक्त नहीं है, पर विशेषण क्रमशः एक० पु० -औ तथा बहु० पु० -ए से संयुक्त है। (३) में विशेषण {-ए,} तिर्यक एकवचन प्रत्यय से युक्त है, जबकि संज्ञा नहीं। (४) में संज्ञा {-न} तिर्यक बहुवचन प्रत्यय से युक्त है, पर विशेषण नहीं। इन अन्तरों के अतिरिक्त विशेषणों की आन्तरिक प्रयोग-स्थितियाँ संज्ञा के समान ही हैं (दे० २.१४.१.) वाह्य प्रयोग-स्थितियों में वैसादृश्य है।

संज्ञा और विशेषण के प्रयोग में वैसादृश्य यह है—छोरा ऐ की स्थिति मैं विशेषण प्रयुक्त हो सकता है, संज्ञा नहीं; छोरा—ऐ की स्थिति में भी केवल विशेषण

प्रयुक्त हो सकता है; -न की परिस्थिति में केवल संज्ञा प्रयुक्त हो सकती है, विशेषण नहीं।

२.१४.१३. **कृदन्त-संज्ञा** तथा विशेषण की अपेक्षा इसकी आन्तरिक संरचना सीमित है। इसकी आन्तरिक संरचना में दो प्रकार के प्रत्ययों का योग रहता है —लिङ्ग-वचन प्रत्यय तथा कृदन्त प्रत्यय {-त्-} तथा {-इ-} — {-य-}। ये दोनों क्रमशः वर्त० कृ० तथा भू० कृ० प्रत्यय हैं। संज्ञा तथा विशेषण के साथ कृदन्तों का वैसादृश्य (Contrast) आन्तरिक रचना में भी है। संज्ञा तथा विशेषण केवल वचन-प्रत्यय से युक्त नहीं होते। भूतकालिक कृदन्त के स्त्री० प्रत्यय के साथ, बहु० प्रत्यय {-ँ} का प्रयोग होता है। साथ ही स्वरान्त विशेषण तथा संज्ञाएँ किसी लिङ्ग वचन प्रत्यय से युक्त नहीं होतीं, जब कि कृदन्तों के साथ सदैव ही इनका प्रयोग होता है। आन्तरिक रूप से इनकी संरचना इस प्रकार है—

(१)	√+——+{-औ}	(पु० एक०)	/आयौ/	'आया'
	{-ए}	(पु० बहु०)	/आए/	'आये'
	{-ई}	(स्त्री० एक०)	/आई/	'आई'
	{-ई-}+{-ँ}	(स्त्री० बहु०)	/आईँ/	'आईं'
(२)	√+{-त्-}+{-औ}	(पु० एक०)	/चल्तौ/	'चलता'
	{-ए}	(पु० बहु०)	/चल्ते/	'चलते'
	{-ई}	(स्त्री०)	/चलती/	'चलती'

इनमें भी (१) तथा (२) में वैसादृश्य स्पष्ट हो जाता है। इस प्रकार आन्तरिक रूप-संरचना में संज्ञा और विशेषणों से इनके साथ वैसादृश्य भी है, तथा इनकी प्रत्ययात्मक संरचना सीमित भी है। वैसा दृश्य इससे भी स्पष्ट है कि कृदन्त के साथ केवल {-औ}, {-ए} प्र० एक० तथा बहु० तथा {-ई} स्त्री० प्रत्ययों का योग होता है।

वाह्य-प्रयोग-स्थितियों में कृदन्त विशेषण के समान है। वैसादृश्य पद-वैज्ञानिक भी है। क्रिया की काल रचना में कृदन्तों का उपयोग होता है, विशेषणों का नहीं। 'नाम' के क्षेत्र में विशेषण और कृदन्तों का प्रयोग समान परिस्थितियों में है।

२.१४.१४. **क्रियार्थक संज्ञा**—इसके सम्बन्ध में विशेष विचार 'क्रिया-विचार' के साथ संलग्न है। यह विशेषण और संज्ञाओं के स्थान पर प्रयुक्त हो सकती है। अतः इसकी रूप-रचना और उसके प्रयोग पर यहाँ भी विचार कर लेना आवश्यक है। इसकी रचना-क्रम इस प्रकार है—

√+-न-~-ब्-+-औ : √खा-+{-न्}{औ}=/खानौ/ 'खाना' एकवचन मूल०
+ : √ „ +{-ब्}{औ}=/खाइबौ/ 'खाना वहुबचन मूल०
+-ए₁ : √ „ +{-न्-}{ए₁}=/खाने/ 'खाने' एक० तिर्यक।
: √ „ +{-ब्-}+{ए₁}=/खाइबे/ 'खाने' एक० तिर्यक।
+न- : √ „ +{-न्-}+{ए₁}+{-न्-}=/खानेन्-/ 'खानों' बहु० तिर्यक।
+{-ब्-}+{ए₁}+{-न्-}=/खाइबेन्-/ 'खानों' बहु० तिर्यक।
√+न्- × +-ई : √ „ +{-न्-}+{-ई} * =/खानी/ 'खानेवाली'

बहुवचन मूल० में भी /खाने/ तथा /खाइबे/ जैसे प्रयोग मिलते हैं। जैसे /जिनके जे खाने ऐं/ 'इनके ये खाने हैं'। /जिनके जे करिबे ऐं/ 'इनके ये करने हैं'। पर ये प्रयोग अत्यन्त विरल और असामान्य हैं।

क्रियार्थक संज्ञा, संज्ञा तथा विशेषण दोनों की स्थानापन्न हो सकती हैं। -न- तथा -ब- के एक० मूल रूप संज्ञा के स्थानापन्न हो सकते हैं: —ऐं की स्थिति में दोनों का प्रयोग सम्भव है: /घरु ऐ/ 'घर है', /खाइबौ~खानौ ऐ/ 'खाना है'। पर -ब- वाले रूप विशेषण के रूप में प्रयुक्त नहीं हो सकते।—छोरा की स्थिति में विशेषण और क्रियार्थक संज्ञा दोनों ही प्रयुक्त हो सकते हैं: /अच्छौ अच्छे छोरा/ 'अच्छा। अच्छे छोरा', /खानौं। खाने छोरा/ 'खाने वाला या खाने वाले लड़के'। —छोरी की स्थिति में इन दोनों के स्त्रीलिङ्ग रूप प्रयुक्त होते हैं। जैसे—/अच्छी। खानी छोरी/ 'अच्छी। खानेवाली लड़की'। इस प्रकार वितरण में यह संज्ञा और विशेषण के समकक्ष है। तिर्यक रूपों का प्रयोग परिवर्गों के पूर्व होता है: /खाइबे। खाने नैं/ 'खाने ने', /खाइबे। खाने कूँ/ 'खाने को', /खाइबे। खाने पै/ 'खाने पर', /खाइबे। खाने ते/ 'खाने से' आदि।

२.१५. **सर्वनाम**—यह वर्ग 'नाम' के स्थानापन्न पद-ग्रामों का वर्ग है। 'नाम' लिङ्ग-द्योतक प्रत्ययों से युक्त होता है। सर्वनाम लिङ्ग-द्योतन में उदासीन रहता है। प्रयोग वितरण की दृष्टि से सर्वनाम दो भागों में विभक्त किये जा सकते हैं—संज्ञा के स्थानापन्न सर्वनाम तथा विशेषण के स्थानापन्न सर्वनाम।

२.१५.१. **संज्ञा के स्थानापन्न**—संज्ञा के स्थानापन्न सर्वनामों को रूप-रचना की दृष्टि से दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—एक: /cv/ तथा दो: /cvc/। एकवचन संज्ञा का स्थानापन्न है तथा द्वितीय वर्ग बहुवचन संज्ञा का। क-/cv/- के दो उपविभाग हो सकते हैं—म्-+स्वर तथा त्-+स्वर। इनमें से सार्वनामिक अङ्ग म्- उत्तम पुरुष, तथा त्- मध्यम पुरुष का द्योतन करता है। इनके साथ संयुक्त

स्वर ये हैं—म्-+/-ऐं/, /-ओ/, /-ए/ ; त्+/-ऊ/, /-ऐं/, /-ओ/, /-ए/। इस प्रकार म्- के साथ तीन तथा त्- के साथ चार स्वरों का संयोग होता है। अतः सुषमा के लिए म्- के साथ एक शून्य की कल्पना करना समीचीन होगा। इस प्रकार इनकी रूप-रचना इस प्रकार होगी—

{म्-}+/-ϕ/—/मैं/ {त्-}+ /-ऊ/—/तू-/
/-ऐं/—/मैं/ /-ऐं/—/तैं-/
/-ओ/—/मो-/ /-ओ/—/तों-/
/-ए/—/मे-/ /-ए/—/ते-/

{म्-}+/ϕ/ तथा {त्-}+/-ऊ/ संज्ञा के मूलकारक के एकवचन रूप के स्थानापन्न हैं। इनकी स्थिति यह हो सकती है -# —/+/ गयौ : जैसे /मैं गयौ/ 'मैं गया' /तू गयौ/ 'तू गया'। शेष रूप संज्ञाओं के तिर्यक रूपों के स्थानापन्न हैं। इनका प्रयोग-क्रम इस प्रकार है—

(१) {म्-}, {त्-}+-ऐं : —/+नें/ : /मैंनें/ 'मैंने', /तैंनें/ 'तूने'।
(२) {म्-}, {त्-}+-ओ : —/-इ/ : /तोइ/ 'तुझे', /मोइ/ 'मुझे'।
(३) {म्-}, {त्-}+-ओ : —/+कूँ/ : /मोकूँ/ 'मुझको', /तोकूँ/ 'तुझको'।
(४) {म्-}, {त्-}+-ओ : —/+-में, -पै/ : /मो में/ 'मुझमें', /मोपै/ 'मुझ पर', /तोमें/ 'तुझमें', /मोमें/ 'मुझमें'।
(५) {म्-}, {त्-}+-ओ : —/+-ते/ : /मोते/ 'मुझसे', /तोते/ 'तुझसे'।
(६) {म्-}, {त्-}+-ए : —/-र-/ : /मेरौ/ 'मेरा', /तेरौ/ 'तेरा'।

इनमें से (१) कर्ता-परसर्ग -ने, (२), (३), (४), (५) कर्म-सम्प्रदान -इ, ~-कूँ के पूर्व, अधिकरण -में, -पै परसर्ग से पहले, तथा करण-अपादान -ते से पूर्व, और (६) सम्बन्ध प्रत्यय -र्- के पूर्व प्रयुक्त होते हैं। सम्बन्धसूचक प्रत्यय 'नाम' के साथ प्रयुक्त होने वाले लिङ्ग-वचन-प्रत्यय -औ, -ए, तथा -ई से युक्त होते हैं। अतः इन -रौ, -रे, -री मिश्र विशेषणात्मक प्रत्ययों से युक्त, उक्त सार्वनामिक अङ्ग विशेषणों के स्थानापन्न हो जाते हैं।

ख—/cvc/—इस ढाँचे में प्रथम व्यञ्जन ह्- तथा त्- हैं। ह्- के साथ -अ, तथा त्- के साथ -उ स्वरों का प्रयोग होता है। अन्तिम व्यञ्जन उभयनिष्ट है : -म्। इस विश्लेषण के आधार पर ह्- वाला रूप उत्तम पुरुष तथा त्- वाला रूप मध्यम पुरुष का वाचक माना जा सकता है। -म् बहुवचन का प्रतीक हो सकता है। स्वर पुरुषवाचक अंश के अङ्ग माने जा सकते हैं। इन दोनों का अविकृत रूप से मूल तथा तिर्यक 'नाम' के स्थानापन्न के रूप में प्रयोग होता है। पर सम्बन्धसूचक -र- से पूर्व इनके साथ-आ का योग हो जाता है : /हमा-/, /तुमा-/ : जैसे /हमारौ/ 'हमारा',

/तुमारी/ 'तुम्हारी' आदि। इस रूप में यह वर्ग विशेषणों का स्थानापन्न हो जाता है। अन्य सभी रूपों में इनके प्रयोग के उदाहरण इस प्रकार हैं—/हमनैं/ 'हमने' /तुमनैं/ 'तुमने' /हमैं/~/हमकूँ/ 'हमको' /तुमैं/~/तुमकूँ/ 'तुमको' /तुमते/ 'तुमसे' /हमते/ 'हमसे' /तुम्में/ 'तुममें' /हम्में/ 'हममें' /तुम्पै/ 'तुम् पर' /हम्पै/ 'हम पर'।

आदरार्थक एकवचन में भी+'तुम' और 'हम' का प्रयोग होता है।

२.१५.२. **विशेषणों के स्थानापन्न**—इस वर्ग के अन्तर्गत दो प्रकार के सर्वनाम मिलते हैं : प्रथम वर्ग उनका है जो वचन प्रत्ययों से संयुक्त होता है और दूसरे वर्ग में वे हैं जो वचन-प्रत्ययों से मुक्त रहते हैं।

२.१५.२.१. **वचन-प्रत्यय-युक्त**—वचन-प्रत्यय-युक्त सर्वनामों की रूप-तालिका इस प्रकार है—

क—ज्-+-इ=/जि/	:	समीपवर्ती	एकवचन	(मूल)
ज्-+-ए=/जे/	:	"	बहुवचन	(मूल)
ज्-+ϕ+-आ=/जा/	:	"	एकवचन	(तिर्यक)
ज्-+-इ+-न=/जिन्-/	:	"	बहुवचन	(तिर्यक)
ख—ब्-+-उ=/बु/	:	दूरवर्ती	एकवचन	(मूल)
ब्-+-ए=/बे/	:	"	बहुवचन	(मूल)
ब्-+-उ+आ=/बुआ/=[ब्वा़]	:	"	एकवचन	(तिर्यक)
ब्-+-इ+न~उ-+ϕ+न=/बिन्-/,~/उन/	:	"	बहुवचन	(तिर्यक)

विवरणात्मक विश्लेषण की दृष्टि से {ज्-} समीपता और {ब्-} दूरत्वबोधक हैं। {ज्-} के साथ /-इ/ मूल एक० तथा /-ए/ मूल बहु० प्रत्ययों का योग होता है। {ब्-} के साथ इन्हीं अर्थों के द्योतक क्रमशः /-उ/ तथा /-ए/ प्रयुक्त होते हैं। ये प्रत्यय तिर्यक एक० प्रत्यय /-आ/ तथा बहु० /-न/ के योग के समय सार्वनामिक अङ्गों के साथ संयुक्त रहकर प्रातपदिक बनाते हैं। केवल /-आ/ से पूर्व शून्य और /-न/ से पूर्व -उ>-इ मिलता है। एक स्वतन्त्र वैविध्य /उ न/ मिलता है। इस स्वतन्त्र वैविध्य की व्याख्या दो प्रकार से की जा सकती है :—

ϕ+-उ+न् : (ब्->ϕ)
उ+ϕ+न् : (-उ>ϕ)

सुषमात्व की दृष्टि से यहाँ द्वितीय व्याख्या को ही अपनाया गया है।

प्रयोग की दृष्टि से उक्त रूप संज्ञा के स्थानापन्न होने पर अन्य पुरुष एक० तथा बहु० का बोध कराते हैं। अन्य पुरुष के लिए बोली में अलग सर्वनाम नहीं हैं। इस दृष्टि से इनका प्रयोग —गयौ की स्थिति में हो सकता है। विशेषणों के स्थानापन्न होने पर इनका प्रयोग संज्ञा से पूर्व विशेषण-वत हो सकता है : —छोरा गयौ।

इस स्थिति में 'अच्छौ' तथा /बु०/ आदि दोनों ही प्रयुक्त हो सकते हैं। विशेषणों के समान संज्ञावत भी ये प्रयुक्त हो सकते हैं। आदरार्थक रूप में बहुवचन रूप प्रयुक्त होकर एकवचन आदरार्थक का बोध कराते हैं। तिर्यक रूपों का प्रयोग परसर्गों तथा कर्म-सम्प्रदान प्रत्यय-इ से पूर्व होता है। जैसे—/ब्वाइ/ 'उसको' /जाइ/ 'इसको' /ब्वानैं/ 'उसने', /जानैं/ 'इसने' आदि।

२.१५.२.२. **वचन-प्रत्यय-युक्त**—इनके भी दो वर्ग हो सकते हैं : पूर्व प्रत्यय /क्-/ से युक्त तथा अन्य। /क्-/ से युक्त रूपों की तालिका इस प्रकार है—

(अ) /क्-/+/-ओ/=/को/ 'कौन'
/क्-/+-/औ-/+/-न्/=/कौन्-/ 'किस'

(आ) /क्-/+/-अहा/ /कहा/ 'क्या'
/क्-/+/आ-/+/ए/ /काए-/ 'किस'

उक्त दोनों रूप रूप-संरचना में समान हैं। दोनों का एक मूल रूप है तथा दूसरा तिर्यक। दोनों में एक वैसादृश्य है : (अ) के साथ /सौ~से~सी/=(/स्-/+/औ ~ए~ई/) संयुक्त होकर इस पदग्राम को विशेषण बना सकते हैं, पर इस प्रकार की रचना (आ) की सम्भव नहीं है। दूसरा अन्तर अर्थ की दृष्टि से है—(अ) का प्रयोग व्यक्ति या सजीव के लिए होता है; केवल /-स्-/ प्रत्यय से युक्त होकर सजीव तथा निर्जीव दोनों के लिए प्रयुक्त हो सकता है। (आ) का प्रयोग व्यक्ति या सजीव के लिए नहीं हो सकता : किसी वस्तु या निर्जीव तक इसका प्रयोग सीमित है।

अर्थ द्योतन की दृष्टि से {क्-} प्रश्नवाचक /-ओ/ 'व्यक्तिसूचक है जो /-न/ से पूर्व /-औ-/ हो जाता है। /-न/ तिर्यक विधायक पदांश है। (आ) में प्रश्नवाचक पदांश समान है। वस्तुवाचक /-अहा/ है जो तिर्यक विधायक /-ए/ से पूर्व /-आ/ हो जाता है। इसके साथ तिर्यक-विधायक /-ए/ प्रयुक्त होता है। तिर्यक रूपों का प्रयोग परसर्गों से पूर्व होता है। /कौन्नैं/ 'किसने' /कौनैं/~/कौनकूँ/ 'किसको', /कौन्ते/' किससे', /कौनप/ 'किस पर' आदि। इसी प्रकार /काए ने/ 'किसने', /काए ऐ/ 'किसको', /काए ते/ 'किससे', /काए में/ 'किसमें' आदि।

वचन-प्रत्यय-युक्त अन्य सर्वनामों को रूप-रचना की दृष्टि से दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—मूल तथा तिर्यक दो रूप ग्रहण करने वाले तथा अव्यय रहने वाले। अव्यय-सर्वनामों का प्रयोग इस स्थिति में होता है : जो—सो /बु—/ इस स्थिति में प्रथम वर्ग के सर्वनाम प्रयुक्त नहीं हो सकते। यह द्वितीय वर्ग सम्बन्धी या नित्य-सम्बन्धी रूप है। {जो} तथा {सो} का प्रयोग संज्ञा तथा विशेषण दोनों के स्थानापन्न के रूप में हो सकता है : जैसे—आदिमी की स्थिति में विशेषण और {-जो} एक दूसरे के स्थानापन्न हैं : /अच्छौ आदिमी/ 'अच्छा आदमी' /जो आदिमी-/

'जो आदिमी'। इसके अतिरिक्त —गयो की स्थिति में प्रयुक्त होकर संज्ञा का स्थानापन्न हो सकता है : /आदिमी गयो/ 'आदमी गया था' तथा /जो गयो/ 'जो गया था'। /सो/ तथा /बु/ में स्वतन्त्र वैविध्य मिलता है।

दो रूप ग्रहण करने वाले सर्वनाम ध्वन्यात्मक रूप से दो विभागों में विभक्त हो सकते हैं /क्-/ पर आधारित रूप और /स्-/ पर आधारित रूप। /क्-/ पर आधारित सर्वनामों का गठन दो प्रकार का है : (१) /cvv/ तथा (२) /cvcv/। /evv/ की रूप-तालिका इस प्रकार है—

/कोई/ मूलकारक रूप 'कोई'
/काऊ-/ तिर्यक रूप 'किसी'

तिर्यक रूप का प्रयोग परसर्ग से पूर्व होता है : /काऊ नैं/ 'किसी ने' /काऊ कूँ/ 'किसी को' /काऊ ऐ/ 'किसी को' /काऊ ते/ 'किसी से' /काऊ में/ 'किसी में', /काऊ पै/ किसी पर'।

प्रयोग-वितरण की दृष्टि से यह रूप व्यक्तिवाचक संज्ञा का स्थानापन्न हो सकता है :—बोल्यौ की स्थिति में /आदिमी/ तथा /कोई/ दोनों ही आ सकते हैं। /आदिमी बोल्यौ/ 'आदमी बोला'। /कोई बोल्यौ/ 'कोई बोला'। —आदिमी की स्थिति में प्रयुक्त होने से यह विशेषण का स्थानापन्न भी हो सकता है। जैसे— /अच्छौ आदिमी/ 'अच्छा आदमी', /कोई आदिमी/ 'कोई आदमी'। इसका तिर्यक रूप भी संज्ञा तथा विशेषण का स्थानापन्न हो सकता है। अर्थ की दृष्टि से ये सर्वनाम अनिश्चय के द्योतक हैं। अर्थ की दृष्टि से एक बात विशेष रूप से दृष्टव्य है : /कोई/ का प्रयोग जब संज्ञा के स्थान पर होता है, तो एक० तथा बहु० दोनों में हो सकता है : /कोई बोल्यौ/ 'कोई बोला' /कोई बोले/ 'कोई बोले'। विशेषण के स्थान पर यह सर्वनाम केवल एकवचन के रूप में प्रयुक्त हो सकता है : /कोई आदिमी बोल्यौ/ 'कोई आदमी बोल्यौ'। बहुवचन के द्योतन के लिए /कछू/ का प्रयोग किया जाता है, जिसका विवरण आगे दिया जा रहा है। तिर्यक रूप सदा ही एकवचन है। /कोई/ के स्थान पर /कोई से/ (बहु०), /कोई सौ/ (एक०) तथा /काऊ से-/ (तिर्यक बहु०) का प्रयोग भी हो सकता है। ये रूप व्यक्तिसूचक संज्ञा के एक० तथा बहु० दोनों रूपों में प्रयुक्त हो सकते हैं।

/cvcv/ की रूप-रचना एकवचन तथा बहुवचन की है। यह पदग्राम /कछू/ 'कुछ' है। इसका बहुवचन रूप /-न्/ बहुवचन प्रत्यय के योग से सम्पन्न होता है : /कछून्-/ 'कुछ लोग'। पदग्राम के मूलरूप का प्रयोग एकवचन रूप में भी हो सकता है और बहुवचन के रूप में भी। पर एकवचन में यह व्यक्तिवाचक संज्ञाओं का स्थानापन्न न होकर वस्तु या निर्जीव पदार्थ वाचक संज्ञाओं का ही स्थानापन्न

हो सकता है। बहुवचन रूप में यह व्यक्तिवाचक संज्ञा के बहुवचन रूप का ही स्थानापन्न हो सकता है। जैसे- /कछू बोले/ '(उनमें से) कुछ बोले'। तिर्यक बहुवचन रूप /कछून्-/ पदार्थवाची संज्ञाओं का स्थानापन्न होता है; कभी व्यक्ति-वाचक का बोध कराता है: /कछून्नै कही/ 'कुछ ने कहा'। /कछू/ के स्थान पर /कछू से-/ 'कुछ' तथा /कछूसेन्-/ 'कुछ' (तिर्यक बहुवचन) का प्रयोग भी होता है। इन बहुवचन मूल और तिर्यक रूपों का प्रयोग व्यक्तिवाचक बहुवचन तथा वस्तुवाचक बहुवचन दोनों के लिए सम्भव है: /कछू से बोले/ 'कुछ बोले' /कछू से जा बकस में धरे ऐं/ 'कुछ इस बक्स में रक्खे हैं।' पर /-सौ/ से युक्त एकवचन रूप /कछू सौ/ 'कुछ' केवल वस्तुवाची संज्ञा का स्थानापन्न हो सकता है। अर्थ की दृष्टि से यह भी अनिश्चयार्थक ही है। इन अनिश्चयार्थक सर्वनामों की रूपरचना की संक्षिप्ति नीचे दी जा रही है।

{कोई}—व्यक्ति० एक० मूल०।
{काऊ-}—व्यक्ति० वस्तु० एक० तिर्यक०।
{कोई-}+/-स्-/+/-औ/=/कोई सौ/ व्यक्ति० वस्तु० एक० पु० मूल०
+/-ए/=/कोई से/ व्यक्ति० वस्तु० बहु० पु० मूल०
+/-ई/=/कोई सी/ व्यक्ति० वस्तु० × स्त्री० मूल०
{काऊ-}+/-स्-/+/-ए/=/काऊ से-/ व्यक्ति० वस्तु० एक० पु० तिर्यक
+/-ई/=/काऊ सी/ व्यक्ति० वस्तु० एक० स्त्री० तिर्यक
{कछू}—वस्तु० मूल० (वचन का द्योतन नहीं)
{कछू}—व्यक्ति० बहु० मूल०।
{कछू-}+/-न्-/=/कछून्-/- वस्तु० व्यक्ति० बहु० तिर्यक।
{कछू-}+/-स्-/+/-औ/=/कछू सौ/- वस्तु० एक० पु० मूल०।
+/-ए/=/कछू से/- वस्तु० व्यक्ति० बहु० पु० मूल।
+/-ई/=/कछू सी/- वस्तु० व्यक्ति० स्त्री० मूल।
{कछू-}+/-स्-/+/-ए-/+/-न्-/=/कछूसेन्/-व्यक्ति० वस्तु० बहु० पु० तिर्यक०
+/-ई-/+/-न्-/=/कछूसीन्-/-व्यक्ति० वस्तु० बहु० स्त्री० तिर्यक०

/स्/ पर आधारित सर्वनाम /सबु/ है। इसके केवल दो रूप प्रयुक्त होते हैं: मूल रूप एक० बहु० /सबु/ मूल० तथा /सब-/ तिर्यक०। तिर्यक का एक स्वतन्त्र-वैविध्य बहुवचन प्रत्यय /-न्-/ से युक्त होकर (/सबन्-/) भी तिर्यक रूप में प्रयुक्त होता है। प्रयोग-वितरण की दृष्टि से यह संज्ञा तथा विशेषण दोनों का स्थानापन्न हो सकता है। यह अपने मूल एकवचन रूप में केवल वस्तुवाची संज्ञा तथा वस्तुवाची विशेष्य के विशेषण के स्थान पर प्रयुक्त हो सकता है: /सबु गयौ/ 'सारा गया' /सबु

धनु गयौ/ 'सारा धन गया'। बहुवचन रूप में यह व्यक्तिवाची तथा वस्तुवाची संज्ञाओं के बहुवचन रूपों का स्थानापन्न हो सकता है : /सबु गए/ 'सब गये' /सबु आदिमी गए/ 'सब आदमी गये' /सबु रुप्या गए/ 'सब रुपये गये'। इसका प्रयोग अविकृत रूप से दोनों लिङ्गों के साथ हो सकता है।

तिर्यक रूप /सब्-/ ~ /सबन्-/ का प्रयोग केवल बहुवचन में होता है। इस सर्वनाम का तिर्यक एकवचन प्राप्त नहीं होता। तिर्यक बहुवचन रूप व्यक्ति तथा वस्तु दोनों के लिए प्रयुक्त हो सकता है : /सबनैं/ 'सबने' /सबन्नैं/ 'सबने' /सब मैं/ 'सब में' आदि।

अर्थ की दृष्टि से यह सर्ववाची (Inclusive) है।

२.१६. परसर्ग—मथुरा जिले की बोली के परसर्ग दो भागों में विभाजित किए जा सकते हैं—एक रूप वाले तथा एक से अधिक रूप वाला। एक रूप वाले परसर्ग ये हैं—कर्तृवाचक परसर्ग /नैं/ 'ने' कर्म सम्प्रदान /-कूँ/, अधिकरण /-मैं/, /-पै/, /तर/, /तक/, /जूँ/, करण-अपादान /-ते/ 'से'। इन सबका प्रयोग संज्ञा अथवा उसके स्थानापन्नों के तिर्यक रूपों के साथ होता है। सम्बन्धवाचक परसर्ग रूपान्तरित होता है।

२.१६.१. /नैं/ इसका प्रयोग सकर्मक भूतकालिक कृदन्तों के कर्ताओं के साथ होता है। उदाहरण ये हैं :—

/ब्वानैं बात कही/	'उसने बात कही।
/मैंनैं रोटी खाई/	'मैंने रोटी खाई'।
/रामनैं काम् बिगार्यौ/	'राम ने काम बिगाड़ा'।
/छोरन्नैं किताप्पढ़ी/	'लड़कों ने किताब पढ़ी'।
/कुत्तन्नैं रोटी खाई/	'कुत्तों ने रोटी खाई'।

इस परसर्ग का प्रयोग इस स्थिति में निरपवाद रूप से होता है। /-नैं/ के स्थान पर बहुवचन सर्वनामों तथा बहुवचन संज्ञाओं के साथ /-उँ/ या /-नुँ/ का भी प्रयोग मिलता है। जैसे /छोरनुँ कही/ 'लड़कों ने कहा', /हमनुँ चित्तरु देख्यौ/ 'हमने चित्र देखा', /तुमनुँ बुरौ कर्यौ/ 'तुमने बुरा किया', /उननुँ जि कहा कर्यौ/ 'उन्होंने यह क्या किया'। पर यह रूप अब सीमित होता जा रहा है : कुछ पुरानी पीढ़ी के लोगों तथा निम्न वर्गों तक ही यह सीमित रह गया है।

२.१६.२. /-कूँ/ कर्म और सम्प्रदान दोनों के लिए इस चिह्न का प्रयोग होता है। इस अर्थ में कर्म-सम्प्रदान-प्रत्यय (२.१२.४. का स्थानापन्न : /रामैं बुलाऔ/ 'राम को बुलाओ' के स्थान पर /राम कूँ बुलाऔ/ भी हो सकता है। ये दोनों रूप ही

चल रहे हैं; पर प्रमुखता प्रत्यय-युक्त संरचना की है। कर्म-सम्प्रदान अर्थ में इसके प्रयोग के उदाहरण इस प्रकार हैं:—

कर्म —	/राम कूँ बुलाऔ/	'राम को बुलाओ' (एक०)।
	/छोरन कूँ बुलाऔ/	'लड़कों को बुलाओ' (बहु०)।
	/ब्वानैं छोरन कूँ बुलायौ/	'उसने लड़कों को बुलाया'।
	/बु छोरन कूँ बुलाबैगौ/	'वह लड़कों को बुलावेगा'।
सम्प्रदान—	/आदमीं कूँ परसाद्देउ/	'आदमी को प्रसाद दो'।
	/आदिमींन कूँ एकु-एकु रुप्या दै दै/	'आदमियों को एक-एक रुपया दे दें'।

स्थानवाचक कर्म के साथ भी इसका प्रयोग होता है : /बु घर कूँ गयौ/ 'वह घर को गया' पर इस स्थान पर बिना परसर्ग का रूप भी चलता है : /बु घर गयौ/ इस स्थिति में कर्म रूप संज्ञा तिर्यक रूप में ही रहती है। बहुवचन कर्म के साथ /कूँ/ का प्रयोग अनिवार्य है। स्थानवाचक कर्म के साथ भी इसका प्रयोग होता है। /राति कूँ गयौ / 'रात को गया' इस स्थिति में एकवचन रूप बिना परसर्ग प्रयुक्त हो सकता है : /राति गयौ/ 'रात को गया'। उद्देश्यसूचक सम्प्रदान के अर्थ में यह क्रियार्थक संज्ञाओं के तिर्यक रूप के साथ प्रयुक्त होता है : /बु खाइबे कूँ गयौ/ 'वह खाने के लिए गया'। इस स्थिति में भी परसर्ग-रहित रूप प्रचलित है /बु खाइबे गयौ/ 'वह खाने गया' इसके अतिरिक्त कुछ विशेष अर्थों का द्योतन इस चिह्न से और होता है। उनके उदाहरण इस प्रकार हैं : /मोकूँ~मोइ जानौं चहींएं/ 'मुझे जाना चाहिए' (कर्त्तव्य) /मोइ बरसाने जानौं ऐ~मोकूँ बरसाने जानौं एं/ 'मुझे बरसाने जाना है' (अनिवार्यता), /आमु खाइबे कूँ मनु कर्तुऐ/ 'आम खाने को मन करता है' /राम कूँ~रामैं गुस्सा आइ गई/ 'राम को गुस्सा आ गया', /तोइ~तोकूँ कहा परबा ऐ/ 'तुम्हें क्या चिन्ता है।'

२.१६.३. /मैं, पै, तर, तक, जूँ/—संज्ञाओं के साथ इन सभी का प्रयोग हो सकता है। संज्ञा के अतिरिक्त स्थानवाचक क्रियाविशेषणों के साथ /तक/, /जूँ/ का तथा कालवाचकों के साथ /में/, /तक/ का प्रयोग सामान्यतः पाया जाता है। इनके उदाहरण इस प्रकार हैं—

संज्ञाओं के पश्चात्—	/घरम् बैठ्यौ ऐ/	'घर में बैठा है'।
	/बाग में डोल्लौऐ/	'बाग में घूम रहा है'।
	/पेड़ तर बैठियो/	'पेड़ के नीचे बैठना'।
	/घर्तक जा/	'घर तक जा'।
	/घर जँ जा/	'घर तक जा'।

स्थानवाचक क्रिया-विशेषणों के पश्चात्—केवल /-तक/, /-जूँ/ का प्रयोग होता है। जैसे—

/म्वाँ तग्गयौ/ 'वहाँ तक गया'।
/न्याँ तक आयौ/ 'यहाँ तक आया'।
/ऊपर जूँ सुपैदी करि/ 'ऊपर तक सफ़ेदी कर'।
/नीचे जूँ मज्जाइ/ 'नीचे तक मत जा'।

कालवाचक क्रियाविशेषणों के साथ—केवल /-में/ तथा /-तक/ /जूँ/ का प्रयोग होता है। जैसे—

/देर में जांगो/ 'देर से जाऊँगा'।
/कल्लि तक-/~/कल्लि जूँ आइ जांगो/ 'कल तक आ जाऊँगा'।
/आजु-कल्लि में तुमारे रुप्या दै दुंगो/ 'आजकल में तुम्हारे रुपये दे दूँगा'।

कुछ विशिष्ट अर्थों में भी ये चिह्न प्रयुक्त होते हैं: /घरमैं/ 'घर के भीतर' /तालन मैं भूपाल तालु/ 'तालाबों में भूपाल ताल' (Among) /भैय्या-भैय्यन में पिरेमु ऐ/ 'भाई-भाई में प्रेम है (between) /एक आना में द्वै केला/ 'एक आने में दो केले' (for), /द्वै घण्टा मैं लौटि आंगो/ 'दो घण्टे में लौट आऊँगा' (within)। इसी प्रकार /पै/ के भी कुछ विशिष्टार्थक प्रयोग मिलते हैं। जैसे—/छत्ति पै/ 'छत पर' (above); /कबरा पै/ 'कमरे पर' (in); /जा बात पै/ 'इस बात पर'; /प्याजु के छिलुकन पै मुसलमान/ 'प्याज के छिलकों पर मुसल्मान' (for); /मेरे जाइबे पै रिस हैगौ/ 'मेरे जाने पर वह रिस हो गया' (के कारण); /तेरी अम्मा पै जांगो/ 'तेरी मा पर जाऊँगा' (के पास); /इतनौ कामु करबे पै ऊ लड़त्यै/ 'इतना काम करने पर भी लड़ती है' (inspite of); /तक्/ का एक रूप /तलक/ भी मिलता है। इन दोनों में स्वतन्त्र वैविध्य है। यह भी कुछ विशिष्ट अर्थों में प्रयुक्त हो सकते हैं। कुछ उदाहरण ये हैं—/घर तक गयो/ 'घर तक गया था' (upto); /बालक ते बूढ़े तक/ 'बालक से बुड्ढे तक' (to); /मैंने दूधु देख्यौ तक नाँएं/ 'मैंने दूध देखा तक नहीं है' (at all); /तो पै पढ़िबौ तक नाँइँ आमतु/ 'तो पै पढ़ना भी नहीं आता' (even)। अर्थ की दृष्टि से यह क्रियाविशेषणात्मक परसर्ग है।

२.१६.४. /-ते/ 'से' का प्रयोग करण के रूप में संज्ञाओं के साथ तथा अपादान के रूप में संज्ञा तथा क्रिया विशेषण के साथ होता है। उदाहरण:—

/मैंनें जिकामु अपने हात्ते करयौ/ 'मैंने यह कार्य अपने हाथ से किया'।
/अपने हात्ते अपने लत्ता धोऔ/ 'अपने हाथ से अपने कपड़े धोऔ'।
/मैं घर ते निकर्‌यो/ 'मैं घर से निकला'।
/तू अपने गामते अइयो/ 'तू अपने गाँव से आना'।

/तू ऊपर ते नीचें आ/ 'तू ऊपर से नीचे आ'।
/बु नीचें ते ऊपर गयौ/ 'वह नीचे से ऊपर गया'।
/म्वाँते न्याँ तक चलि/ 'वहाँ से यहाँ तक चल' (दूरी)।
/न्याँते म्वाँ तक जा/ 'यहाँ से वहाँ तक जा' (दूरी)।

अर्थ की दृष्टि से यह क्रियाविशेषणात्मक परसर्ग है। इसके कुछ विशिष्टार्थक प्रयोग भी हैं : /मैंनें जि कामु मन्ते कर्‌यौ/ 'मैंने यह कार्य मन से किया' (-by); /बु ऊपर ते अच्छौ ऐ परि भीतर ते कारौ ऐ/ 'वह ऊपर से अच्छा है, पर भीतर से काला है' (outwardly); /बु दिल ते दयालू ऐ/ 'वह हृदय से दयालु है' (by); /जि छोरा ब्वाते अच्छौ ऐ/ 'यह लड़का उससे अच्छा है' (than- तुलनात्मक विशेषणों के साथ प्रयुक्त); /मोते पूछौ/ 'मुझसे पूछो'; /सबते मेलु राखौ/ 'सबसे मेल रक्खो' (साथ); /भौद्दिना ते/ 'बहुत दिनों से' (Since); /तुमारे दर्सनन्ते आनन्दु आयौ/ 'तुम्हारे दर्शनों से आनन्द आया' (on account of); /मोइ बुलाइबे ते कहा फाइदा/ 'मुझे बुलाने से क्या फ़ायदा'। कुछ क्रियाओं के कर्म के साथ यह कर्मवाचक रूप में भी प्रयुक्त होता है /तैंनें मोते कही, मैंनैं समझी/ 'तू ने मुझसे कही, मैंने समझी'। संज्ञा अथवा सर्वनाम के बीच में प्रयुक्त होकर यह तुलनात्मक विशेषण घटित करता है :/बु मोते अच्छौ ऐ/ 'वह मुझसे अच्छा है'। /-सब/ तथा विशेषण के बीच आकर तमवन्त विशेषण बनाता है /सबते अच्छौ/

२.१६.५. /-क्-/ सम्बन्धवाचक परसर्ग का चिह्न है। यह लिङ्ग-वचन प्रत्ययों से युक्त होता है। इसकी रूप-रचना इस प्रकार है :—

{-क्-}+/-औ/=/कौ/ 'प्र० एक०।
+/-ए/ =/के/ पु० बहु०; तिर्यक एक०।
+/-ई/ =/की/ स्त्री० एक० बहु०।

उदाहरण :—

/राम कौ घोड़ा/ 'राम का घोड़ा' /राम के घोड़ा/ 'राम के घोड़े'।
/सीता की किताब/ 'सीता की किताब' /जाकौ घरु/ 'इसका घर'।
/ब्वा के घर/ 'उसके घर' (बहु०); /कौन कौ परसादु/ 'किसका प्रसाद'।

इसका लिङ्ग भेद सम्बन्धित वस्तु के लिङ्ग पर निर्भर करता है। अर्थ की दृष्टि से यह विशेषणात्मक परसर्ग है। यह विशेषण के स्थानापन्नों की संरचना कर सकता है :—छोरा इस स्थिति में विशेषण तथा सम्बन्धवाचक परसर्ग से विरचित संज्ञा रूप आ सकते हैं। जैसे /अच्छौ छोरा/ तथा /राम कौ छोरा/ 'अच्छा लड़का तथा राम का लड़का'।

सम्बन्धवाचक परसर्ग से अनेक अर्थों का द्योतन होता है। कतिपय उदाहरणों से

यह बात स्पष्ट हो जायगी : /लकड़िया कौ घोड़ा/ 'लकड़ी का घोड़ा' (विशेषणात्मक) /मथुरा कौ आदिमी/ 'मथुरा का आदमी' (निवास का द्योतक)। सजीव वस्तुओं के साथ प्रयुक्त होकर यह 'अधिकार' का द्योतन करता है : /छोरा कौ छोरा/ 'लड़के का लड़का'। सम्बन्ध का द्योतन भी करता है : /गाइ कौ बछरा/ 'गाय का बछड़ा'। मूल्यात्मक सम्बन्ध की अभिव्यक्ति भी होती है : /द्वै टका कौ आदिमी/ 'दो टके का आदमी'। कालात्मक सम्बन्ध /द्वै दिना कौ मैहमानु/ 'दो दिन का मेहमान'। इसका अलङ्कृत प्रयोग भी है : /मट्टी कौ सेरु/ 'मिट्टी का शेर' /खसम की ढोलक/ 'पति की ढोलक' (गाली) /उल्लू कौ फटेरौ/ 'उल्लू का फटेरा' (मूर्ख)। करणार्थक प्रयोग भी मिलता है : /आफति कौ मार्‍यौ/ 'आफ़त का मारा' (by)। -से- के अर्थ में भी प्रयुक्त : /घर कौ चल्यौ/ 'घर से चला'। अवस्था का द्योतन : /चार साल का/ 'चार वर्ष का'। पूर्णार्थिक प्रयोग : /सबु कौ सबु/ 'सब का सब' /अबा कौ अबाई खराबु ऐं/ 'अवा का अवा ही खराब है'।

२.२. **व्युत्पत्ति**—इस शीर्षक के अन्तर्गत ध्वनि-परिवर्तन, लिङ्ग वचन प्रत्यय-संयोग, पूर्व-प्रत्यय-संयोग, तथा अन्त्य प्रत्ययों के संयोग से संज्ञा, विशेषण और परसर्गों की विभिन्न रूपों में व्युत्पत्ति के क्रम पर विचार किया गया है।

२.२१. **ध्वनि-परिवर्तन**—कुछ रूप ध्वनि-परिवर्तन से व्युत्पन्न होते हैं। व्युत्पत्ति-प्रक्रिया स्वर-परिवर्तन तथा व्यञ्जन-परिवर्तन दोनों पर निर्भर रहती हैं।

२.२१.१. **स्वर-परिवर्तन**—इसके अन्तर्गत संज्ञा, विशेषण का स्वर-परिवर्तन देखा गया है। कृदन्तों तथा क्रिया-विशेषण का स्वर-परिवर्तन धातु-स्वर परिवर्तन है, जिस पर क्रिया के साथ विचार किया गया है। संज्ञा के साथ अधिक है और विशेषण के साथ अत्यन्त विरल।

क—संज्ञा—संज्ञा की स्वर-परिवर्तनजन्य व्युत्पत्ति में मध्य स्वर-परिवर्तन तथा अन्त में होने वाले उन स्वर-परिवर्तनों को लिया गया है जो लिङ्ग-वचन प्रत्ययों से सम्बन्धित नहीं हैं। साथ ही एक ही लिङ्ग-वचन के द्योतक स्वरों का परस्पर परिवर्तन भी इसमें सम्मिलित कर लिया गया है। इस प्रकार के मध्य-स्वर-परिवर्तन मथुरा की बोली में ये हैं :—

{-आ-←अ-} /थल/थाल/ 'स्थल/थाल' नली/नाली 'नली/नाली'।
{-उ-←अ-} /भस/भुस/ 'भस/भूसा'।
{ऐ←-अ-} /गली/गैल/ 'गली/रास्ता'।
{औं←अँ} /ढँगु/ढौंगु/ 'ढंग/ढोंग'।
{ए←ई} /लीप/लेप/ 'लीपना/लेप'।
{ए←इ} /सिरु/सेरौ/ 'सिर/खाट का सेरा'।

{ऊ←औं} /गौंदु/गूदु/ 'गोंद/गूदा'।

अन्त्य स्वर-परिवर्तन इस प्रकार हैं :—

{आ←उ} /कुंडु/कुंडा/ 'तालाब/कुंडा' /डंडु/ 'दण्ड' /डंडा/ 'डंडा'।

{ई←अ} /जड़/जड़ी/ 'जड़/जड़ी' /छड़/छड़ी/ 'सलाख/छड़ी'।

{ई←इ} /नारि/नारी/ 'गर्दन/नाड़ी'।

{औ←उ} /थानु/थानौ/ 'थान/थाना'।

कुछ स्वर-परिवर्तन व्यञ्जन-परिवर्तन से भी संलग्न रहता है। जैसे /भीटा/ 'ढेर', /भुट्टा/। इस प्रक्रिया से समान अर्थ में स्वर-परिवर्तन कुछ भेद उत्पन्न हो जाता है। कुछ स्वर-परिवर्तन ऐसा भी होता है जिससे धातु-गत अर्थ तो एक ही रहता है, पर व्युत्पन्न अर्थ बहुत भिन्न हो जाता है। जैसे /बाटी/ 'बाटी' से /बोटी/ 'बोटी' /छत्ति/ 'छत' से /छाती/ 'छाती' /मनी/ 'मुनि' से /मौनु/ 'मौन'।

ख—विशेषण—विशेषणों में स्वर-परिवर्तन अत्यन्त विरल मिलता है। एक उदाहरण अन्त्य स्वर-परिवर्तन का यह है : /नीचौ/ 'नीचा' /नीचु/ 'नीच' पहले का प्रयोग गहराई के अर्थ में होता है और दूसरे का प्रयोग नीचता से युक्त (मनुष्य) के अर्थ में होता है। इसमें {उ←औ} मिलता है। पर यह अन्त्य लिङ्ग-वचन प्रत्यय का परिवर्तन है; ऐसे उदाहरणों पर आगे विचार किया गया है।

२.२१.२. **व्यञ्जन-परिवर्तन**—व्यञ्जन-परिवर्तन से भी कुछ संज्ञा-रूप व्युत्पन्न होते हैं। इनके रूप इस प्रकार हैं :—

{ग←क}	/कंकालु/	'हड्डियों का ढाँचा'	/कंगालु/	'ग़रीब'।
{ग←ज}	/भोजु/	'(एक प्रकार की) दावत'	/भोगु/	'(भगवान का) भोग'।
{ड़←ट}	/जूट/	'जटाओं का समूह'	/जूड़ा/	'स्त्रियों का जूड़ा'।
	/लट्/	'बालों की लटकती लट'	/लड़/	'एक लटकनेवाला गहना'
	/झाँट/	'बाल'	/झाड़/	'काँटेदार झाड़ियाँ'।
{ड्ड←ट्ठ}	/गट्ठा/	'गट्ठा'	/गड्डा/	'चारे का गट्ठा'।
{थ←ठ}	/मौंठ/	'एक प्रकार की दाल'	/मौंथा/	'एक घास'।
{त्र←त्त}	/पत्ता/	'पत्ता'	/पत्रा/	'पञ्चाङ्ग'।
{ड़←र}	/पैरु/	'पैर'	/पैंड़ु/	'पैर की रस्सी'।
	/बरी/	'दाल की गोली'	/बड़ी/	'बड़ी'।
{र←ल}	/नली/	'नली'	/नरी/	'गेहूँ की नली'।
{ड़←ल}	/आलू/	'आलू'	/आड/	'एक फल'।
{ϕ←र}	/नारी/	'नाली, नाड़ी'	/नाई/	'खेत बोने की नली'।
{ϕ←स}	**/अस्थान/**	'स्थान'	/थानु/	'मृतक का स्मारक'।

कुछ व्यञ्जन-परिवर्तनों के साथ स्वर-परिवर्तन भी संलग्न रहता है। जैसे /लेंड़/ 'लेंड़' तथा /लीद/ 'घोड़े की लीद' /डंडा/ 'सामान्य डंडा' /डाँड़ु/ 'नाव खेने का पतवार'।

२.२२. **प्रत्यय-संयोगजन्य व्युत्पत्ति**—संज्ञा, विशेषणों तथा क्रियाओं आदि के साथ विविध प्रत्ययों के योग से कुछ भिन्नार्थक संज्ञा, विशेषण, क्रिया विशेषण तथा क्रिया रूप व्युत्पन्न होते हैं। प्रस्तुत शीर्षक के अन्तर्गत संज्ञा से संज्ञा, विशेषण से संज्ञा, तथा क्रियाओं से संज्ञा की तथा विशेषण से विशेषण, संज्ञा से विशेषण, क्रियाओं से विशेषण के प्रत्ययात्मक व्युत्पत्ति-क्रम पर विचार किया गया है।

यह व्युत्पत्ति-प्रक्रिया दो प्रकार की है—केवल लिङ्ग-वचन प्रत्ययों के योग या परिवर्तन से तथा अन्य प्रत्ययों के योग के साथ लिङ्ग-वचन प्रत्ययों के योग से रूप व्युत्पत्ति होती है। इसी क्रम से यहाँ विचार किया गया है।

२.२२.१. **लिङ्ग-वचन-प्रत्ययात्मक व्युत्पत्ति**—यहाँ उन रूपों पर विचार नहीं किया है, जिनमें इन परिवर्तनों से केवल लिङ्ग-वचन भेद ही उत्पन्न होता है। इस भेद के अतिरिक्त कुछ अन्य भेद भी उत्पन्न होने वाले रूपों पर विचार किया गया है। इनमें वे रूप भी सम्मिलित नहीं किये गये हैं जिनमें लि ङ्ग-वचन प्रत्यय से आकार का बोध होता है। कभी-कभी लिङ्ग-भेद से कुछ अन्य अर्थ वाले पद ही व्युत्पन्न हो जाते हैं।

क. संज्ञा से संज्ञा की व्युत्पत्ति—(अ) {-आ}>{-ई} के उदाहरण दिए जा रहे हैं। संज्ञाओं में इस परिवर्तन से विभिन्न अर्थ वाले संज्ञा पद व्युत्पन्न हो जाते हैं। जैसे /अँगूठा/ '(हाथ का) अँगूठा' /अँगूठी/ 'अँगूठी' /अंडा/ 'अंडा' /अंडी/ 'तेल का बीज अथवा एक प्रकार का कपड़ा' /अंटा/ 'बच्चों के खेलने की काँच की गोलियों का एक प्रकार' /आँटी~अंटी/ 'कमर पर धोती का लपेट' /कुलफा/ 'एक हरे पत्तों की सब्जी' /कुलफ़ी/ 'कुलफी की बरफ़' /कुंडा/ 'एक गड्ढा' /कुंडी/ 'किवाड़ों की कुंडी' /गद्दा/ 'खाट पर बिछाने या घोड़े का गद्दा' /गद्दी/ 'राजगद्दी या सेठ की गद्दी' /पट्टा/ 'बैठने का पट्टा' /पट्टी/ 'बच्चों के लिखने की पट्टी' /पूँजा/ 'रस्सी बटते समय जूट के रेशों का समूह' /पूँजी/ 'सम्पत्ति' /पत्ता/ 'पत्ता' /पत्ती/ 'भाग' /छींटा/ 'छींटा' /छींट/ 'एक प्रकार का कपड़ा, जिस पर छींटे होते हैं' /टोपा/ 'एक पुराने समय का बच्चों के पहनने का शिरोवस्त्र' /टोपी/ 'टोपी' /धेला/ 'एक पुराने पैसे का आधा भाग' /धेली/ 'रुपये का आधा भाग' /पीढ़/ 'बैठने का पीठ' /पीढ़ी/ 'पीढ़ी' /चेंटा/ 'चींटा' /चेंटी/ 'चींटी' /चोला/ 'शरीर' /चोली/ 'स्त्रियों की छाती का वस्त्र' /सीसा/ 'शीशा' /सीसी/ 'शीशी'। इस सूची को और भी बढ़ाया जा सकता है। यहाँ कुछ उदाहरण-स्वरूप शब्द दिये गये हैं।

(आ) {-आ}>{-अ}—इस परिवर्तन के कुछ उदाहरण ये हैं : /गोटा/ 'ज़री का बना गोटा' (पुं०) /गोट/ 'कपड़े की लगी हुई किनारी' (स्त्री०) /धौंसा/ 'एक प्रकार का रण-वाद्य' /धौंस/ 'रौब' /चीला/ 'एक खाद्य पदार्थ' (पु०), /चील/ 'एक चिड़िया (स्त्री०)।

(इ) {-उ}>{-ई}—/घाटु/ 'घाट' (पु०), /घाटी/ 'घाटी' (स्त्री०) /चाकु/ 'कुम्हार का चाक' /चाकी/ 'आटे की चक्की' /कुंडु/ 'गड्ढा' /कुँड़ी/ 'एक पत्थर का पात्र' /पिण्डु/ 'आटे का पिण्ड' /पिण्डी/ 'रस्सी या धागे की पिण्डी' /झाड़ु/ 'झाड़-फानूस' /झाड़ी/ 'एक बर्तन या जंगल'। अधिकारार्थक व्यक्त करने के लिए भी इस परिवर्तन से काम लिया जाता है, जैसे /रोजु/ 'दिन' /रोजी/ 'मज़दूरी' /मजूरु/ 'श्रमिक' /मजूरी/ 'पारिश्रमिक' /गवाहु/ 'साक्षी' /गवाही/ 'साक्षी' /सलामु/ 'सलाम' /सलामी/ 'सलामी' /रेतु/ 'धूल' /रेती/ 'लोहे का रगड़ने का एक यन्त्र' /लाड़ु/ 'प्रेम' /लाड़ी/ 'दुलहिन'।

(ई) {-औ} पु० एक०>{-ई} स्त्री०। इस परिवर्तन के उदाहरण ये हैं : /टाँकौ/ 'टाँका' /टाँकी/ 'पत्थर काटने का यन्त्र' /कूँड़ौ/ 'दही जमाने का बड़ा मिट्टी का पात्र' /कूँड़ी/ 'पत्थर का प्याला' /तारौ/ 'ताला' /तारी/ 'ताली' /जालौ/ 'मकड़ी का जाला' /जाली/ 'एक प्रकार का कपड़ा' /पैटौ/ 'पेटा' /पेटी/ 'बक्स'।

ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं जिनमें एक लिङ्ग-वचन प्रत्यय के स्थान पर उसी लिङ्ग का अन्य प्रत्यय रख कर भिन्नार्थक पद व्युत्पन्न किये जाते हैं। इस प्रकार के उदाहरण पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग दोनों प्रत्ययों में मिलते हैं।

(A) **संज्ञा**

(i) **स्त्रीलिङ्ग**—/छत्त्-/+{-इ}=/छत्ति/ 'छत्त' /छत्त्-/+{-इ}=/छाति/[1] 'विवाहों में नाई कपड़ा दूल्हे के सिर पर तानता है, उसको छाति कहते हैं' /छड़्-/+{-अ}=/छड़/ 'लोहे की सलाख'; /छड़्-/+{-ई}=/छड़ी/ 'छड़ी'; /छूट्-/+{-अ}=/छूट/ 'अदायगी में कुछ रियायत'; /छुट्ट-/+{-ई}=/छुट्टी/ 'छुट्टी'; /जड़्-/+{-अ}=/जड़/ 'जड़' तथा /जड़्-/+{-ई}=/जड़ी/ 'जड़ी बूटी'; /ढोलक्-/+{-अ}=/ढोलक/ 'ढोलक' तथा /ढोलक्-/+{-ई}=/ढोलकी/ 'छोटी ढोलक'। इस प्रकार {-अ} स्त्री० के स्थान पर {-ई} रख कर कुछ नवीन संज्ञाओं की व्युत्पत्ति की गयी है।

(ii) **पुल्लिङ्ग**—/नार्-/+{-उ}=/नारु/ 'बच्चे का नार' /नार्-/+{-औ}=/नारौ/ 'पाजामे का नाड़ा'; /तार्-/+{-उ}=/तारु/ 'तार'; /तार्-/+

---

१. सरलीकरण से -त>-त् तथा पूर्व स्वर का दीर्घीकरण।

{-औ}=/तारौ/ 'ताला'; {घेर्-}+{-उ}=/घेरु/ 'घेरा'; /घेर्-/+{-औ}= /घैरौ/ 'नोहरा या कोई घिरा हुआ स्थान'; /बजाज्-/+{-उ}=/बजाजु/ 'बजाज' /बजाज्-/+{-औ}=/बजाजौ/ 'बजाजों का बाज़ार'।

B. **विशेषण**—इस प्रकार के उदाहरण विशेषणों में कम मिलते हैं। केवल पुल्लिङ्ग के कुछ उदाहरण उपलब्ध हैं। जैसे- /लाल्-/+{-उ}=/लालु/ 'लाल'; /लाल्-/+{-औ}=/लालौ/ 'चिन्ता'; /ऊजर्-/+{-औ}=/ऊजरौ/ 'उजला' तथा /ऊजर्-/+{-उ}=/ऊजरु/ 'ऊज़ड़'।

२.२२.२. **अन्य प्रत्ययों से व्युत्पत्ति**—इस शीर्षक में संज्ञा तथा विशेषणों की अन्य प्रत्ययों के संयोग से व्युत्पत्ति पर विचार किया गया है।

व्युत्पादक प्रत्ययों से एक से अधिक अर्थों की व्यञ्जना हो सकती है। यदि अर्थ की दृष्टि से उनको वर्गीकृत करके प्रस्तुत किया जाय तो आवृत्तियों से विवरण बोझिल हो जायगा। साथ ही एक ही प्रत्यय संज्ञा, विशेषण, क्रिया आदि पदों के साथ संलग्न होकर व्युत्पत्ति सम्पन्न कर सकता है। उक्त कठिनाइयों को देखकर यह उचित प्रतीत होता है कि प्रत्यय को देकर, उसके विवरण तथा अर्थ-द्योतन का विवरण दिया जाय। इसी विवरण-प्रकार को अपनाया गया है। विशेषणों की संरचना में कुछ पूर्व प्रत्ययों का योग भी होता है।

२.२२.२१. **पूर्व प्रत्यय**—संज्ञाओं के साथ पूर्व प्रत्ययों का योग करके भी विशेषणों की रचना की जाती है। इस प्रकार संज्ञाओं से संयुक्त होकर विशेषण बनाने वाले पूर्व प्रत्यय ये हैं : /अ-/, /अन्-/, /अप्-/, /कु-/, /खर्-/, /नि-/, /दु-/, /नन-/, /पर-/, /बे-/, /बद-/, /ला-/, /स-/, /सैं-/। इनमें से अधिकांश आदि-प्रयुक्त होने के कारण अपरिवर्तित रहते हैं।

(१) {अ-}+संज्ञा+लि०-वच० प्रत्यय=विशेषण। उदाहरण :

{अ-}+/भाग्-/+{-ई}=/अभागी/ 'अभाग्यशीला' (स्त्री०)।
{अ-}+/भाग्-/+{-औ}=/अभागौ/ 'अभागा' (पु०)।
{अ-}+/बोध्-/+{अ-}=/अबोध/ 'अबोध' (स्त्री०)।
{अ-}+/बोध्-/+{-उ}=/अबोधु/ 'अबोध' (पु०)।

कुछ रूपों में {-ई} का प्रयोग मिलता है, जो अधिकारार्थक है। इससे यह दोनों लिङ्गों के विशेष्यों के साथ प्रयुक्त हो सकता है :—

{अ-}+/धरम्-/+{-ई}=/अधरमी/ 'अधर्मवाला'।
+/न्याइ-/+{-ई}=/अन्याई/ 'अन्यायशील'।

इस पूर्व प्रत्यय का अर्थ निषेधात्मक है।

(२) {अन्-}+संज्ञा+लि०-वच० प्रत्यय=विशेषण। जैसे :—

{अन्-}+/मोल्-/+{-उ}=/अनमोलु/ 'अमूल्य' (पु०)।

{अन्-}+/मोलु-/+{-अ}=/अनमोल/ 'अमूल्य' (स्त्री०)।

यह पूर्व प्रत्यय भी निषेधार्थक है।

(३) {अप-}+संज्ञा+{-ई}=विशेषण। जैसे :—

{अप-}+/काज/+{-ई}=/अपकाजी/ 'अपने कार्यवाला, स्वार्थी'।

यह पूर्व प्रत्यय स्वार्थक है।

(४) {कु-}+संज्ञा+अधिकारार्थक प्रत्यय=विशेषण :—

{कु-}+/बुद्धि-/+{-ई}=/कुबुद्धी/ 'बुरी बुद्धिवाला/वाली'।

+/करम्-/+{-ई}=/कुकरमी/ 'बुरे काम करनेवाला वाली'।

{कु-}+संज्ञा+लिङ्ग-वच० प्रत्यय=विशेषण+जैसे :—

{कु-}+/चैल्-/+{-औ}=/कुचैलौ/ 'मैले वस्त्र वाला' (पु०)।

+/चैल्-/+{-ई}=/कुचैली/ 'मैले वस्त्रवाली' (स्त्री०)।

+/रंग्-/+{-आ}=/कुरंगा/ 'बुरे रंग वाला' (पु०)।

+/रंग्-/+{-ई}=/कुरंगी/ 'बुरे रंग वाली' (स्त्री०)।

यह पूर्व प्रत्यय कुत्सार्थक है।

(५) {खर्-}+संज्ञा+लि०-वच० प्रत्यय=विशेषण। जैसे :—

{खर्-}+/दिमाग-/+{-उ}=/खरदिमागु/ 'बुरे मस्तिष्कवाला' (पु०)

{खर्-}+/दिमाग-/+{-अ}=/खरदिमाग/ 'बुरे मस्तिष्कवाली' (स्त्री०)

यह पूर्व प्रत्यय भी कुत्सार्थक है।

(६) {नि-}+संज्ञा+अधिकारार्थक प्रत्यय=विशेषण। ये रूप दोनों लिङ्गों में प्रयुक्त हो सकते हैं। जैसे :—

{नि-}+/-पुत्र-/+{-ई}=/निपुत्री/ 'जिसके संतान न हो' (स्त्री० पु०)।

+/-दइआ-/+{-ई}=/निर्दई/ 'निर्दय' (स्त्री० पु०)।

+/-पानी-/+{-आँ}=/निपनिआँ/ 'निर्जल' (स्त्री० पु०)।

+/दोष-/+{-इल}=/निर्दोखिल/ 'निर्दोष' (स्त्री० पु०)।

अधिकारार्थक प्रत्यय के स्थान पर लिङ्ग-वचन प्रत्ययों के योग से भी पु०-स्त्री० रूप सम्पन्न होते हैं। जैसे :—

{नि-}+/गुर्-/+{-औ}=/निगुरौ/ 'निगुरा' पु०।

{नि-}+/गुर्-/+{-ई}=/निगुरी/ 'निगुरी' स्त्री०।

{नि-}+/काम्-/+{-औ}=/निकम्मौ/ 'निकम्मा' पु०

{नि-}+/काम्-/+{-ई}=/निकम्मी/ 'निकम्मी' स्त्री०।

{नि-}+/धड़क्-/+{-उ}=/निधड़कु/ 'निर्भय' पु०।

{नि-}+/धड़क्-/+{-अ}=/निधड़क/ 'निर्भय' स्त्री०।

(७) {दु-}+संज्ञा+लि०-वच० प्रत्यय=विशेषण। जैसे :—

{दु-}+/बल्-/+{-औ}=/दुबलौ/ 'दुबला' (पु०)।

{दु-}+/बल्-/+{-ई}=/दुबली/ 'दुबली' (स्त्री०)।

यह पूर्व प्रत्यय निषेधार्थक है।

(८) {ना-}+संज्ञा=विशेषण। इस प्रकार के रूप दोनों लिङ्गों के साथ प्रयुक्त हो सकते हैं। जैसे :—

{ना-}+/चीज/=/नाचीज/ 'तुच्छ' स्त्री० पु०।

{ना-}+/समझ/=/नासमझ/ 'मूर्ख' स्त्री० पु०।

यह पूर्व प्रत्यय भी कुत्सासूचक है।

(९) {पर-}+संज्ञा+अधिकारार्थक प्रत्यय=विशेषण। जैसे :—

{पर-}+/काज्/+{-ई}=/परकाजी/ 'परमार्थी' स्त्री० पु०।

+/देस्-/+{-ई}=/परदेसी/ 'परदेशी' स्त्री० पु०।

+/बस्-/+{-अ}=/परबस/ 'परवश' स्त्री० पु०।

उक्त पर प्रत्यय परार्थक है।

(१०) {-बे}+संज्ञा+परार्थक प्रत्यय=विशेषण। जैसे :—

{बे-}+/अकल्-/+{-इ}=/बेअकलि/ 'मूर्ख' स्त्री० पु०।

{बे-}+/कल्-/+{-अ}=/बेकल/ 'विकल' स्त्री० पु०।

{बे-}+/होस्-/+{-अ}=/बेहोस/ 'बेहोश' स्त्री० पु०।

{बे-}+/खबर-/+{-इ}=/बेखबरि/ 'बेख़बर' स्त्री० पु०।

{बे-}+/परब-/+ × =/बेपरबा/ 'बेपरवाह' स्त्री० पु०।

इसी प्रकार {बे-}+संज्ञा+लिङ्ग वच० प्रत्यय की रूप रचना भी होती है। जैसे :—

{बे-}+/सरम्-/+{-उ}=/बेसरमु/ 'बेशर्म' पु०।

{बे-}+/सरम्-/+{-अ}=/बेसरम/ 'बेशर्म' स्त्री०।

{बे-}+/चार्-/+{-औ}=/बिचारौ/ 'बेचारा' पु०।

{बे-}+/चार्-/+{-ई}=/बिचारी/ 'बेचारी' स्त्री०।

यह प्रत्यय निषेधार्थक है।

(११) {बद्-}+संज्ञा+लि०-वच० प्रत्यय=विशेषण। जैसे :—

{बद्-}+/नाम्-/+{-उ}=/बदनामु/ 'बदनाम' पु०।

{बद्-}+/नाम्-/+{-अ}=/बदनाम/ 'बदनाम' स्त्री०।

{बद्-}+/नसीब्-/+{-उ}=/बदनसीबु/ 'बदनसीब' पु०।

{बद्-}+/नसीब्-/+{-अ}=/बदनसीब/ 'बदनसीब' स्त्री०।
यह कुत्सार्थक है।

(१२) {ला-}+संज्ञा+लि०-वच० प्रत्यय=विशेषण। जैसे :—

{ला-}+/जबाब्-/+{-उ}=/लाजबाबु/ 'अद्वितीय' पु०।
{ला-}+/जबाब्-/+{-अ}=/लाजबाब/ 'अद्वितीय' स्त्री०।
+/चार्-/+{-उ}=/लाचारु/ 'लाचार' पु०।
+/चार्-/+{-अ}=/लाचार/ 'लाचार' स्त्री०।

/लापता/ जैसे रूप भी मिलते हैं, जो दोनों लिङ्गों के विशेष्यों के साथ प्रयुक्त हो सकते हैं। यह पूर्व प्रत्यय निषेधार्थक है।

(१३) {स-}+संज्ञा+प्रत्यय=विशेषण। इस प्रत्यय का प्रयोग दो रूपों में होता है : श्लाघार्थक तथा सहार्थक। जैसे :—

{स्-}+/पूत्-/+{-उ}=/सपूतु/ 'सुपुत्र'।
{स्-}+/पूत्-/+{-ई}=/सपूती/ 'पुत्रवती'।

(१४) {सैं-}+संज्ञा+प्रत्यय=विशेषण। जैसे :—

{सैं-}+/जोर्-/+{-उ}=/सैंजोरु/ 'पूर्ण ज़ोर के साथ'।

यह भी सहार्थक है।

कुछ संख्यावाचक विशेषणों के साथ भी पूर्व प्रत्ययों का योग होता है। ये इस प्रकार हैं—

(१) एक संरचना में (विशेषण+{-ए}+विशेषण क्रम) प्राप्त होता है। इसका प्रयोग पूर्ण संख्यावाचक शब्दों के साथ होता है : /पौन्-/+{-ए}=/पौने/ +/चार/=/पौने चार/ '३$\frac{3}{4}$'। इसी प्रकार अन्य रूप।

(२) {स-}+/बा-/=/सबा/ : संयुक्त पूर्व प्रत्यय से युक्त रूप घटित होते हैं : /सवा आठ/ '८$\frac{1}{4}$'। अन्य रूप इसी प्रकार हैं।

(३) {स-}+/-आढ़-/+{-ए}=/साढ़े/ : इस संयुक्त पूर्व प्रत्यय का प्रयोग भी संख्यावाचक विशेषणों के साथ होता है। जैसे /साढ़े तीनि/ '३$\frac{1}{2}$', /साढ़े दस/ '१०$\frac{1}{2}$'।

२.२२.२२. **अन्त्य प्रत्यय**—पूर्व प्रत्ययों के अतिरिक्त अन्त्य प्रत्यय प्रातपदिक के पश्चात् प्रयुक्त होकर संज्ञा तथा विशेषण रूपों की व्युत्पत्ति सिद्ध करते हैं। इन व्युत्पादक प्रत्ययों के पश्चात् भी प्रत्ययों का योग होता है। ये अन्त्य प्रत्यय प्रायः लिङ्ग-वच० द्योतक अथवा अधिकारार्थक होते हैं। इस प्रकार इन व्युत्पन्न रूपों की रचना का क्रम इस प्रकार रहता है : प्रातपदिक+व्युत्पादक प्रत्यय+अन्त्य प्रत्यय (क. अधिकारार्थक अथवा ख. लि०-वच० प्रत्यय)। व्युत्पादक प्रत्यय इन गठनों

के हो सकते हैं : एक स्वरात्मक, एक से अधिक स्वर वाले, एक व्यञ्जन पर आधारित तथा दो व्यञ्जनों वाले। इसी क्रम से विचार किया गया है।

क—एक स्वरात्मक प्रत्यय—एक स्वरात्मक प्रत्यय {-अ}, {-आ}, {-इ}, {-ई}, {-उ}, {-ऊ}, {-ऐं} तथा {-औ} हैं। इनके वितरण और अर्थ-द्योतन का विवरण नीचे प्रस्तुत किया गया है।

(१) {-अ}—यह स्त्री० प्रत्यय है। इसका प्रयोग विशेषण से संज्ञा तथा क्रिया से संज्ञा की व्युत्पत्ति के लिए किया जाता है।

(i) विशेषण+{-अ}=संज्ञा। इस गठन में विशेषण के लि०-वच० प्रत्ययों से रहित प्रातपदिकों के साथ, उत्पादक प्रत्यय संलग्न किया जाता है। जैसे :—

/तीत्-/+{-अ}=/तीत/ 'नमी'
/सीर्-/+{-अ}=/सील/ 'सील'

ये रूप स्त्रीलिङ्ग हैं। स्त्रीलिङ्ग विशेषण बनाने में इनके साथ {-ई} प्रत्यय का संयोग किया जाता है। {-अ} के संयोग से उक्त रूप स्त्रीलिंग भाववाचक संज्ञा बन गये हैं।

(ii) √+{-अ}=संज्ञा। इस संरचना में क्रि० धातु के साथ इस प्रत्यय का संयोग किया जाता है। इससे कार्य करने की क्रिया के स्त्रीलिङ्ग रूप का बोध होता है। उदाहरण इस प्रकार हैं :—

√तोर्- से /तोर/ 'तोड़ने का कार्य' √कतर- से /कतर/ 'कतरने का कार्य', √झपट-से /झपट/ 'झपट' √मार-से /मार/ 'मारना' √उपज्-से /उपज/ 'उत्पादन' √काट- से /काट/ 'काटने का कार्य' √कूद्- से /कूद/ 'कूद' √घूम- से /घूम/ 'घुमाव' आदि इस प्रत्यय को ग्रहण करने से पूर्व धातुओं में कुछ स्वर-परिवर्तन भी हो जाता है। इसकी संरचना इस प्रकार होती है : √दब्-+{आ←अ}+{-अ}=/दाब्/ 'दबाव'; √तुल्+{औ←उ}+{-अ}=/तौल/ 'तोल'; √चुक्-+{अ←उ}+{-अ}=/चूक/ 'चूक'; √फिक्-+{ऐं←इ}+{-अ}=/फैंक/ 'चालाकी'।

(iii) विशेषण+क्रमार्थक प्रत्यय+{-अ}=संज्ञा। इस प्रकार कुछ तिथि-दिनों के द्योतक संज्ञा शब्दों की रचना की जाती है : जैसे /द्यौज/ 'दूज' /तीज/ 'तृतीया'।

(२) {-आ}—इस प्रत्यय के संयोग से संज्ञा से संज्ञा, क्रिया धातु से संज्ञा तथा क्रिया धातु से विशेषण रूप व्युत्पन्न होते हैं।

(i) संज्ञा+{-आ}=संज्ञा। इस रचनावाले पद बोली में अत्यन्त विरल हैं। जैसे /म-छ्-/ 'मछली'+{-आ}=/मछुआ/ 'मछली पकड़ने वाला'। इससे व्यवसाय का बोध होता है।

(ii) √+{-आ}=संज्ञा। इस संरचना वाले रूप स्त्री० तथा पु० दोनों होते हैं। जैसे :—

क—स्त्रीलिङ्ग रूप—√कट- से /कटा/ 'हत्याकाण्ड' √तप- से /तपा/ 'तपन' √पूज्- से /पूजा/ 'पूजा' √बर्स- से /बर्सा/ 'वर्षा'।

ख—पुल्लिग रूप—√गोच्- से /गोचा/ 'गोचना' √घिस्-से /घिस्सा/ 'धोखा' √तौल- से /तौला/ 'तोल का पात्र' √देख्- से /देखा/ 'भेंट' √परोस्- से /परोसा/ 'एक बार की परोसाई का सामान' फट्- से /फट्टा/ 'फटा हुआ टुकड़ा' √छन्- से /छन्ना/ 'छानने का कपड़ा' √बुझ्- से /बूझा/ 'पूछना' √रो- से /रोआ/ 'रोना-पीटना' √लग्- से /लग्गा/ √लिख् से /लेखा/ √झूल्- से /झूला/ 'झूलने की रस्सी' √ठेल्- से /ठेला/ 'ठेलने वाली गाड़ी'।

इस प्रत्यय से युक्त रूपों का अर्थ किसी कार्य ही क्रिया ही होता है। किन्तु कभी-कभी अर्थ वाच्यार्थ से भिन्न भी हो जाता है। जैसे /घिस्सा/ 'धोखा'। कभी-कभी उस क्रिया से सम्बन्धित पदार्थ का भी बोध होता है, जैसे तोलने की क्रिया में सहायक पात्र /तौला/; इसी प्रकार परोसा जाने वाला पदार्थ /परोसा/ आदि। ये रूप प्रायः एकाक्षरात्मक धातुओं से व्युत्पन्न होते हैं। इसके संयोग से कार्य के करने वाले का भी बोध होता है : /जोता/ 'जोतने वाला' /उचक्का/ 'धोखेबाज़' (उचकने वाले) आदि।

(iii) √+{-आ}=विशेषण। इस संरचना में प्रायः द्व्यक्षरात्मक धातुओं के साथ प्रत्यय का संयोग होता है। अर्थ की दृष्टि से, कर्ता का बोध होता है। उदाहरण इस प्रकार हैं :—

√बिगार्-/+/-आ/=/बिगारा/ 'बिगाड़ने वाला'।
√सुधार्-/+/-आ/=/सुधारा/ 'सुधारक'।
√सोच्-/+/-आ/=/सोचा/ 'सोचने वाला'।
√समझ्-/+/-आ/=/समझा/ 'समझने वाला'।
√गिर्-/+/-आ/=/गिर्रा/ 'गिरने वाला'।

अन्तिम उदाहरण से स्पष्ट होता है कि एकाक्षरात्मक धातु से भी ये रूप सम्पन्न हो सकते हैं। पर ऐसे रूप अत्यन्त विरल हैं। ये विशेषण रूप दोनों लिङ्गों के विशेष्यों के साथ प्रयुक्त हो सकते हैं।

(iv) /परिवा/ 'प्रतिपदा' में भी इसी प्रत्यय का योग है। यह स्त्री० तिथि-वाचक संज्ञा है।

(v) वर्त० कृ०+/-आ/=विशेषण। जैसे /करता/ 'कर्ता' करनेवाला, /मर्ता/ 'मरनेवाला'।

(३) {-इ}—इस प्रत्यय का संयोग क्रिया से संज्ञा-संरचना के लिए ही होता है। क्रिया धातु तथा वर्त० कृ० के साथ इसका संयोग होता है। जैसे :—

(i) √+{-इ}=संज्ञा। उदाहरण इस प्रकार हैं—√रुच्- से /रुचि/ 'इच्छा' √समझ्- से /समझि/ 'समझ, ज्ञान'। ये रूप स्त्रीलिङ्ग हैं।

(ii) √+वर्त० कृद० प्रत्यय+{-इ}=संज्ञा। उदाहरण—√गढ़- 'बनाना' से /गढ़ति/ 'बनावट' √खप्- से /खपति/ 'खपने की क्रिया'; √गा- से /गम्मति/ 'गाने की क्रिया'। ये रूप भी स्त्रीलिङ्ग हैं। एक वर्त० कृद० प्रत्यय /-अन्त-/ भी मिलता है। इस रूप के साथ भी {-इ} का संयोग हो सकता है। जैसे /रटन्ति/ 'रटना' /भिड़न्ति/ 'भिड़ना'।

(iii) विशेषण+क्रमार्थक प्रत्यय+{-इ}=संज्ञा। इस प्रकार की संरचना से कुछ तिथि-दिनों की द्योतक संज्ञाओं की रचना की जाती है। जैसे /चौथि/=(/चौ-/+{-थ्-}+{-इ}) 'चतुर्थी'; /छटि/=(/छ-/+{-ट्-}+{-इ}) 'षष्ठी'। ये रूप स्त्रीलिङ्ग हैं।

(iv) विशेषण+{-इ}=तिथिवाचक स्त्री० संज्ञा। जैसे /तेरसि/=(/तेरस्-/+{-इ}) 'त्रयोदशी' /चौदसि/=(/चौदस्-/+{-इ}) 'चतुर्दशी'।

(४) {-ई}—संज्ञा, विशेषण, सर्वनाम, धातु तथा वर्त० कृदन्त के साथ प्रयुक्त होकर यह संज्ञा की तथा संज्ञा और वर्त० कृद० के साथ प्रयुक्त होकर विशेषण की व्युत्पत्ति करता है।

(i) संज्ञा+{-ई}=संज्ञा। इस संरचना को अर्थ की दृष्टि से दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। पहला अर्थ तदीयार्थक है तथा दूसरा अर्थ लघ्वर्थक या हीनार्थक है।

/अँगूठा/=(/अँगूठ/+{-आ}) से /अँगूठी/ (/अँगूठ्-/+{-ई}) 'उँगली का आभूषण'

/पौंहौंचौ/ (/पौंहौंच्/+{-औ}) से /पौंहौंची/ (/पौंहौंच-/+{-ई}) 'कलाई का आभूषण'

/गवाहु/ (/गवाह-/+{-उ}) से /गवाही/ (/गवाह-/+{-ई}) 'गवाह का कार्य, साक्षी'

/ढोलक/ (/ढोलक्-/+{-अ}) से /ढोलकी/ (/ढोलक्-/+{-ई}) 'छोटी ढोलक'

संबंधवाचक पु० संज्ञाओं के स्त्री० रूपों की रचना होती है। इससे पति-पत्नी संबंध भी व्यक्त होता है। जैसे चाचा/चाची, दादा/दादी, काका/काकी जैसे रूप।

(ii) विशेषण+{-ई}=संज्ञा। इस संरचना से स्त्रीलिङ्ग तथा भाववाचकता का बोध होता है। इसके उदाहरण इस प्रकार हैं:—

१. विशेषण+[-ई]=संज्ञा—जैसे :—

/ज्वान्-/	से /ज्वानी/	'जवानी'	(/ज्वान्-/+{-ई})
/हुस्यार-/	से /हुस्यारी/	'होशियारी'	(/हुस्यार्-/+{-ई})
/तैय्यार-/	से /तैयारी/	'तैयारी'	(/तैयार्-/+{-ई})
/चौकस्-/	से /चौकसी/	'सावधानी'	(/चौकस्-/+{-ई})
/गरम्-/	से /गरिमी/	'गर्मी'	(/गरम्-/+{-ई})
/सुपेद्-/	से /सुपेदी/	'सफ़ेदी'	(/सुपेद्-/+{-ई})
/गरीब्-/	से /गरीबी/	'ग़रीबी'	(/गरीब्-/+{-ई})
/बत्तीस्-/	से /बत्तीसी/	'बत्तीस दांतों का समूह'	(/बत्तीस्-/+{-ई})
/बीस/	से /बीसी/	'एक कोड़ी'	(/बीस्-/+{-ई})

इनमें से अन्तिम दो उदाहरणों में {ई-} समूहार्थक भी हो जाता है। इसी प्रकार के शब्द /पच्चीसी/ 'पच्चीस का समूह' /बत्तीसी/ '३२ का समूह' आदि हैं।

(iii) विशेषण+क्रमार्थक प्रत्यय+{-ई}=तिथि-दिन-सूचक स्त्री० संज्ञा। जैसे /नौमीं/=(/नौ/+{-म्-}+{-ई}) 'नवमी' /दसमीं/=(/दस्-/+{-म्-}+{-ई}) 'दशमी'। इसी प्रकार की वे तिथिवाचक संज्ञाएँ भी हैं, जिनमें क्रमार्थक प्रत्यय नहीं होते। जैसे /एकास्सी/=(/एकास्स्-/+{-ई}) 'एकादशी' /द्वास्सी/=(/द्वास्स्-/+{-ई})='द्वादशी' /पून्नमासी/=(/पूरन्-/+/मास्-/+{-ई}) में भी {-ई} प्रत्यय है।

(iv) सर्वनाम+{-ई}=स्त्री० भाववाचक संज्ञा। इस प्रकार का केवल एक उदाहरण मिलता है : /आपुसई/=(/आपुस्-/+{-ई}) 'परस्पर सौहार्द्र'।

(v) √+{-ई}=संज्ञा। ये समस्त रूप स्त्री० होते हैं। इससे क्रिया, या कर्तृत्व का बोध होता है। नीचे कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं :—

√औट्- से /औट्/ 'पशुओं की एक औटी हुई दवा' √खाँस्- से /खाँसी/ 'खाँसी' √चर- से /चरी/ 'पशुओं का हरा चारा' √बुहार- से /बुहारी/ 'बुहारी' √भर-से /भरी/ 'भरी' √चोर- से /चोरी/। √घट्- से /घटी/ 'विश्वासघात'। √छूट्- से /छुट्टी/ 'छुट्टी' √कूट्- से /कुटी/ 'कटा हुआ चारा' √रेत्- 'रेतना से /रेती/ 'रेतने का यन्त्र' √हँस्- से /हँसी/ 'हँसी'।

(vi) वर्त० कृ०+{-ई}=संज्ञा। ये रूप सभी स्त्रीलिङ्ग होते हैं। इसके उदाहरण इस प्रकार हैं :—

√बोल्- से /बोल्ती/ 'बोलना' √बस्- से /बस्ती/ 'बस्ती' √गिन्- से /गिन्ती/ 'गिनती' इस प्रकार के रूप भी विरल हैं। √बन्- से /बन्ती/ 'ताशों के खेल में बनने वाले ताशों का समूह'। इसी प्रकार /बढ़ती/ 'उन्नति' /गिरती{ 'अवनति'

(vii) संज्ञा+{-ई}=विशेषण। इस प्रत्यय के साथ संयुक्त होकर कुछ संज्ञा शब्द, उस वस्तु जैसे रङ्ग की वस्तु का बोध कराते हैं। स्थानवाचक शब्दों के साथ प्रयुक्त होकर {-ई} स्थानार्थक विशेषणों की व्युत्पत्ति करता है। जैसे :—

/सुरमा/ 'अंजन' से /सुरमई/ /पिस्ता/ 'पिस्ता' से /पिस्तई/ /चंपा/ से /चम्पई/, /पिरोजा/ से /पिरोजई/, /घीआ/ से /घी अई/, /फाल्सौ/ से /फाल्सई/, /केला/ से /केलई/, /कत्था/ से /कत्थई/, /तोता/ से /तोतई/, 'तोते का रंगवाला' /देस/ से /देसी/ 'देशवाला' /परदेसी/ 'परदेश गया हुआ' इनका प्रयोग (अन्तिम दो उदाहरणों को छोड़कर) दोनों लिङ्गों के विशेष्यों के साथ हो सकता है।

(viii) वर्त० कृदन्त+{-ई}=विशेषण। इसके योग से कर्तृत्ववाची स्त्रीलिङ्ग विशेषण व्युत्पन्न होते हैं। जैसे : /चढ़न्ती/=(√चढ़्+{-अन्त्-}+{-ई}) 'चढ़नेवाली', /उड़न्ती/=(√उड़्-+{-अन्त्-}+{-ई}) 'उड़नेवाली' आदि।

(५) {-उ} इस प्रत्यय का प्रयोग केवल धातु से संज्ञा की रचना करने के लिए होता है। ये समस्त रूप पुल्लिङ्ग होते हैं। इससे क्रिया के भाव का बोध होता है। इसका प्रयोग प्रथम प्रेरणार्थक क्रिया धातुओं के साथ होता है। जैसे :—

√उठा- से /उठाउ/ 'उठान'; √उड़ा- से /उड़ाउ/ 'उड़ने की क्रिया'; √कसा- से /कसाउ/ 'कसने की क्रिया'; √घिस्- से /घिसाउ/ 'घिसने का क्रम'; √गला- से /गराउ/ 'गलाव'; √घुमा- से /घुमाउ/ 'घुमाव'; √उतार- से /उतारु/ 'उतार'।

(६) {-ऊ}—(i) इस प्रत्यय को संज्ञा के पश्चात् प्रयुक्त करके 'वाला' अर्थ वाले विशेषणों की व्युत्पत्ति होती है, जो दोनों लिंङ्गों के विशेष्यों के साथ प्रयुक्त हो सकते हैं। किसी रङ्गीन पदार्थवाची संज्ञा के साथ प्रयुक्त होकर उस रङ्ग से युक्त होने के भाव का द्योतन होता है। जैसे :—

/चाल्-/	से /चालू/	'चाल वाला'	(/चाल्-/+{-ऊ})
/घर-/	से /घरू/	'घर वाला'	(/घर्-/+{-ऊ})
/प्याज्-/	से /प्याजू/	'प्याज का सा'	(/प्याज्-/+{-ऊ})
/बज़ार्-/	से /बजारू/	'बाज़ारू'	(/बज़ार्-/+{-ऊ})
/पेट्-/	से /पेटू/	'अधिक खाने वाला'	(/पेट्-/+{-ऊ})

(ii) क्रिया के साथ प्रयुक्त होकर यन्त्रार्थक संज्ञा का द्योतन करता है। क्रिया +{-ऊ}=संज्ञा। जैसे :—

√झाड़्-+{-ऊ}=/झाड़ू/ 'झाड़ू'।

(iii) क्रिया धातु के साथ प्रयुक्त होकर 'वाला' अर्थयुक्त विशेषण की व्युत्पत्ति भी इससे होती हैं। जैसे :—

√कर- +{-ऊ} = /करू/ 'चालाक'
√उतार-+{-ऊ} = /उतारू/ 'उतारू'
√खा- +{-ऊ} = /खाऊ/ 'खाने वाला'
√भींच्- +{-ऊ} = /भींचू/ 'भींचने वाला, लोभी'
√मार- +{-ऊ} = /मारू/ 'मारने वाला'

ये विशेषण दोनों लिङ्गों के विशेषणों के साथ प्रयुक्त हो सकते हैं।

इस प्रत्यय का एक विशेष लाड़-प्यार-द्योतक प्रयोग भी है। व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के साथ इसका प्रयोग इसी अर्थ में होता है। जैसे /जग्गो/ 'नाम' से /जग्गू/ 'प्यार का सम्बोधन'।

(iv) संख्यावाचक विशेषण /दो/ 'दो' के साथ संयुक्त होकर यह समेतार्थक (inclusive) विशेषण की संरचना करता है : /दोऊ/ 'दोनों'।

(v) संज्ञा तथा सर्वनाम के साथ प्रयुक्त होकर भी यह समेतार्थक (inclusive) 'भी' के अर्थ से युक्त संज्ञा सर्वनाम रूप व्युत्पन्न कर सकता है। जैसे /मैंऊँ/ (/मैं/+{-ऊँ}) 'मैं भी' /राम्-/+{-ऊ}=/रामू/ 'राम भी'।

(vi) प्रश्नवाचक सर्वनाम /कै/ (How many) के साथ प्रयुक्त होकर अनेकार्थक सर्वनाम व्युत्पन्न कर सकता है : /कैऊ/ 'कई'।

(७) {-ऐं} का प्रयोग बहुत सीमित है। संख्यावाचक कुछ विशेषणों के साथ प्रयुक्त होकर इससे तिथिवाचक दिन का द्योतन किया जाता है। जैसे :—

/पाँच्-/ +{-ऐं}=/पाँचैं/ 'पंचमी'
/सात्-/ +{-ऐं}=/सातैं/ 'सप्तमी'
/आठ्-/ +{-ऐं}=/आठैं/ 'अष्टमी'

(८) {-औ}—इसके प्रयोग की स्थितियाँ इस प्रकार हैं :—

(i) संज्ञा+{-औ}=स्थानवाचक संज्ञा। ये रूप सदैव पुल्लिङ्ग होते हैं। जैसे :—

/बजाज्-/ 'बजाज़'+{-औ}=/बजाजौ/ 'वह बाज़ार जहाँ बजाजों की दूकानें हों'।
/सराफ़-/ 'सर्राफ़'+{-औ}=/सराफ़ौ/ 'वह बाज़ार जहाँ सर्राफ़ों की दूकानें हों'।

(ii) संज्ञा+{-औ}=विशेषण। जैसे :—

/उल्याइत्-/ 'जल्दी' {-औ}=/उल्याइतौ/ 'जल्दबाज़'।

(iii) क्रिया√+-{औ}=संज्ञा। ये रूप सदैव पुल्लिङ्ग होते हैं। इनके उदाहरण इस प्रकार हैं :—

√झार- से /झारौ/ 'बीमारी हटाने का झारा' √टाँक- से /टाँकौ/ 'टाँका'

√फांस- से /फाँसौ/ √बह्- से /बाहौ/ 'बहाव' √तान्- से /तानौ/ 'ताना' √बज्- से /बाजौ/ 'बाजा'।

(iv) क्रिया विशेषण+{-औ}=विशेषण। जैसे /भीतर्-/ से /भीतरौ/ 'कपटी या रहस्यपूर्ण' /बाहिर-/ से /बाहिरौ/ 'बाहरवाला'। ये सभी रूप पुल्लिङ्ग हैं। {-औ} के स्थान पर स्त्री० प्रत्यय का संयोग करके स्त्री० रूप भी बनाए जाते हैं : /भीतरी/, /बाहिरी/।

ख—एक से अधिक स्वरों वाले प्रत्यय—इन प्रत्ययों को अन्त्य स्वरों के अनुसार चार भागों में विभाजित किया जा सकता है : (१)—आ, (२)—ई, (३)—ऊ; तथा (४)—औं। अर्थ की दृष्टि से, इनमें से (१) तथा (४) पुल्लिङ्ग-एकवचन प्रत्यय हैं तथा (२) स्त्रीलिङ्ग।—ऊ वाले रूप से लिङ्ग आदि का भेद व्यक्त नहीं होता : इसके आधार पर घटित रूप दोनों लिङ्गों में आ सकते हैं। इनका वितरण, अर्थ द्योतन तथा इनके उदाहरण नीचे प्रस्तुत किए गए हैं।

(१)—{आ} : इस प्रत्यय के साथ /-इ-/, /-ई-/, /-अई-/ /-उ-/, /-ऊ-/ तथा /-अऊ/ स्वर संलग्न रहते हैं। सुविधा की दृष्टि से इनको दो भागों में विभक्त किया जा सकता है :—ईआ गठन वाले रूप तथा—ऊआ गठन वाले रूप।

(a)—**इआ गठन वाले रूप**—ध्वन्यात्मक दृष्टि से {इ^य}+/आ/ वाले रूप हैं। इनका वितरण इस प्रकार है—

(i) संज्ञा+{-इआ}=[इ^यआ]=लघ्वर्थक स्त्री० संज्ञा। इनके उदाहरण इस प्रकार हैं :—

/लोट/ से (/लोट्-/+{-इआ}) /लुटिया/ 'छोटा लोटा'।
/लँगोट/ से (/लँगोट्-/+{-इआ}) /लँगोटिया/ 'छोटा लँगोटा'।
/रेत/ से (/रेत्-/+{-इआ}) /रेतिया/ 'रेतिया, बालू'।

(ii) संज्ञा+{-इआ}=किसी स्थान से सूचक वस्तु या वहाँ के निवासी का बोध होता है। उदाहरण इस प्रकार हैं :—

/मथुरा/	से	/मथुरिया/	'मथुरावासी'
/लोहबन/	से	/लोहबनियाँ/	'लोहबन निवासी'
/जाँघ/	से	/जाँघिया/	'जाँघ का वस्त्र'।
/अंग/	से	/अँगिया[1]/	'अंग का वस्त्र'।
/मुख/	से	/मुखिया/	'मुख्य'।
/गाँठ/	से	/गठिया/	'गाँठों का रोग'।

---

१. अंग का रूढ़ार्थ 'छाती' हो गया है।

(iii) संज्ञा+{-इआ}=अधिकारार्थक संज्ञा। इससे उल्लिखित वस्तु के अधिकारी का बोध होता है। जैसे :—

/आढ़त/ से /आढ़तिया/ 'आढ़त का मालिक'।

यह रूप पुल्लिङ्ग है।

(iv) संज्ञा+{-इआ}=संबंधसूचक तथा लघ्वर्थक संज्ञा। जैसे /बंदर-/ से /बँदरिया/ 'बंदरी' /कुत्त-/ से /कुतिया/ 'कुतिया'। इससे लाड़-प्यार की सूचना भी मिलती है। जैसे /मोती/ 'नाम' से /मुतिया/; /हरी/ 'व्यक्तिगत नाम' /हरिआ/ 'हरिया' /भाई/ 'भाई' से /भइया/ 'भाई' प्यारार्थक रूपों से पुल्लिङ्ग है तथा लघ्वर्थकों में स्त्रीलिङ्ग।

(v) विशेषण+{-इआ}=संज्ञा। इस प्रकार का एक उदाहरण। /पीरिया/ 'पीलिया' मिलता है। पीले रंग को लिए हुए यह एक रोग है।

(vi) क्रिया विशेषण+{-इआ}=संज्ञा। जैसे /भीतर-/ से /भीतरिआ/ 'वैष्णव सम्प्रदाय के मन्दिरों में एक पद, अन्दर रहनेवाला'।

(b)--**{-ईआ} वाले रूप**--इसका वितरण इस प्रकार है—

(i) संज्ञा+{-ई आ}=संज्ञा। इससे भी अधिकारार्थ का द्योतन होता है। जैसे--

/रसीआ/ 'रसिया, रसवाला' /ऊँट/ से /ऊँटीआ/ 'ऊँटवाला' /लहर-/ से /लहरीआ/ 'लहरवाला कपड़ा।' इसी प्रकार /मोती/ से /मोतिआ/ 'एक रङ्ग' /मूँग/ से /मूँगिआ/ 'एक रङ्ग' आदि।

(ii) क्रिया+{-ई आ}=क्रिया में सहायक वस्तु-सूचक संज्ञा। जैसे—

/उढ़ईआ/ 'उढ़ैया' 'ओढ़ने का वस्त्र' (√ओढ़ा+{-ईआ}=/उढ़ैया/) √बिछा- से /बिछईआ/=(√बिछा-+{-ईआ} 'बिछाने का वस्त्र'। ये रूप प्रथम प्रेरणार्थक क्रिया-धातुओं से सम्पन्न होते हैं।

(iii) क्रिया+{-ईआ}=परंपरागत व्यवसायी-सूचक पुल्लिङ्ग संज्ञा। जैसे— /जड़ीआ/=(√जड़-+{-ईआ}) 'जड़नेवाला, एक जाति; /लिखीआ/=(√लिख्-+{-ईआ}) 'लिखने वाला,'।

(iv) क्रिया+{-ई आ}=संज्ञा तथा विशेषण। संज्ञा के रूप में सामान्य कार्य के करने वाले का बोध होता है और विशेषण रूप में, उस कार्य में उसकी दक्षता का। नीचे इसके उदाहरण दिए गए हैं। ये रूप भी प्रथम-प्रेरणार्थक धातु पर आधारित रहते हैं। सूचना इनसे पुल्लिङ्ग की मिलती है।

√कट- से /कटईआ/ 'कटैया, काटने वाला, (खेत) काटने में दक्ष'

√चढ़- से /चढ़ईआ/ 'चढ़ैया, चढ़ने वाला, चढ़ने में दक्ष'

√गा- से /गवईआ/ 'गवैया, गाने वाला, गाने में दक्ष'

(v) क्रिया धातु+{-ईआ}=विशेषण, संज्ञा। जैसे—

√गर्- से /गरीआ/=(√गर्-+{-ईआ}) 'गरिया (अकाल)'। √दर्- से /दरीआ/=(√दर्-+{-ईआ}) 'दलिया'; √भर्- से /भरीआ/=(√भर्-+{-ईआ}) 'भरिया' (घोड़े का विशेषण)

क्रिया विशेषण+{-ईआ}=संज्ञा /विशेषण/ जैसे—/ऊँच्-/ 'ऊँचा' से /उचैआ/ 'उचाने वाला'। ये रूप विरल हैं।

(vi) स्त्रीलिङ्ग कुछ संज्ञाओं के साथ यह प्रत्यय प्रयुक्त होकर लघुता की या अनादर की सूचना देता है। जैसे—/धोबिन्-/+{-ईआ}=/धोबिनिआँ/ 'धोबिन' /नाहिन्-/ 'नाई की पत्नी' से /नैनीआँ/ 'नाइन' /कोरिन्-/ से /कोन्निआँ/ 'कोली' आदि रूप भी इसी प्रकार के हैं। जातिसूचक पुल्लिङ्ग ईकारान्त पदों के साथ भी इस अर्थ में इस प्रत्यय का प्रयोग होता है। /तेली/ 'तेली' से /तेलिआ/, /धोबी/ 'धोबी' से /धोबीआ/ आदि। इनका उच्चारण {-इआ} जैसा भी होता है।

(c) {-ऊआ}—इससे भी अधिकाँश 'वाला' अर्थ ही व्यक्त होता है।

(i) क्रिया+{-ऊआ}=संज्ञा। जैसे √बन्- से /बनऊआ/ 'एक जटिल समस्या'; √ले- से /लिबऊआ/ 'लेने वाला' √बोल्- से /बुलऊआ/ 'बुलावा' √टहल्- से /टहलुआ/ 'सेवा करनेवाला'।

(ii) क्रिया+{-ऊआ}=विशेषण। जैसे—√आ- से /आऊआ/ 'आनेवाला' √जा- से /जाऊआ/ 'जानेवाला'।

(२)—{-ई}—**गठन वाले रूप**—इनसे स्त्रीलिङ्ग अथवा कर्ता का बोध होता है।

(a)—{-आई}-इसके वितरण और अर्थ द्योतन का विवरण इस प्रकार है:—

(i) संज्ञा+{-आई}=स्त्री० संज्ञा। अर्थ की दृष्टि से इससे उस संज्ञा में निहितगुण के देने वाले पदार्थ का बोध होता है। जैसे—/ठंड/ 'सरदी' /ठंडाई/ 'ठंडा पेय'। यह रूप स्त्रीलिङ्ग है।

(ii) संज्ञा+{-आई}=संज्ञा। जैसे /गुड़/ 'गुड़' से /गुड़िआई/[1] 'गुड़ का बाजार' /घी/ 'घी' से /घिआई/ 'घी का बाज़ार या घी का व्यवसाय'। अर्थ की दृष्टि से यहाँ स्थान का बोध होता है। ये रूप स्त्रीलिङ्ग होते हैं।

(iii) विशेषण+{-आई}=भाववाचक स्त्री० संज्ञा।

/छोट्-/ से /छोटाई {'छुटपन' /बड़-/ से /बड़ाई/ /मलूक्-/ से /मलूकाई/

---

१. इसका एक उच्चारण। गुड़िहाई। भी मिलता है।

'सुन्दरता' /नरम्-/ से /नरमाई/ 'कोमलता' /कर्र-/ से /कराई/ 'कड़ाई' /अच्छ्-/ से /अच्छाई/ 'अच्छाई' /बुर्-/ से /बुराई/ 'बुराई' /ऊँच-/ से /ऊँचाई/ 'ऊँचाई' /नींच्-/ से /नींचाई/ /गहर-/ से /गहराई/ 'गहराई' /मोंट्-/ से /मुटाई/ 'मुटाई' /साफ-/ से /सफ़ाई/ 'सफ़ाई' /ठंड-/ से /ठंडाई/ 'ठंडाई' /गरम्-/ से /गरमाई/ 'गरमी' /चतुर-/ से /चतुराई/ 'चतुरता'।

(iv) क्रिया√+{-आई}=संज्ञा। अर्थ की दृष्टि से इस संगठन के दो रूप हो सकते हैं—एक तो किसी कार्य का बोधन, जैसे—/लड़ाई/=(√लड़-+{-आई}) 'लड़ाई' /चढ़ाई/=(√चढ़-+{-आई}) 'चढ़ाई' /पढ़ाई/=(√पढ़-+{-आई}) ='पढ़ाई' /मिलाई/=(√मिल-+{-आई}) 'जेल में कैदी से मिलना'। दूसरा उस कार्य के पारिश्रमिक का द्योतन। नीचे इसके उदाहरण दिए गए हैं:—

/उतर-/ से /उतराई/ 'पार उतारना' /कट-/ से /कटाई/ 'कटवाने का पारिश्रमिक /खुद-/ से /खुदाई/ 'खुदाई' /गढ़-/ से /गढ़ाई/ 'बनाने का पारिश्रमिक, /चिन्-/ से /चिनाई/ 'मकान चिनने का पारिश्रमिक'।

ये सभी रूप स्त्रीलिङ्ग हैं।

(b) इसका एक रूप {-अई} भी मिलता है, जो संज्ञा के साथ संयुक्त होकर कर्तार्थिक पुल्लिङ्ग संज्ञा की व्युत्पत्ति करता है। इस प्रकार का एक ही उदाहरण प्राप्त है—/मातई/=(/भात्-/+{-अई}) 'भात देने वाला'।

(३) {ऊ} गठन वाले रूप। यह -आ अथवा -अ- से संलग्न हो सकता है।

{-ऊ} के साथ /-आ-/ अथवा /-अ/ का मेल होने से {-अऊ} अथवा {-आऊ} दो स्वरों वाला प्रत्यय बन जाता है। इसके प्रयोग और अर्थ के द्योतन का विवरण नीचे दिया गया है।

(a) {-आऊ}—

(i) संज्ञा+{-आऊ}=संज्ञा। इस गठन से अधिकार (Possession) का ही बोध होता है 'वाला' जैसा—अर्थ व्यञ्जित होता है। जैसे /गैल्-/+{-आऊ}= /गैलाऊ/ 'रास्तगीर'।

(ii) क्रिया√+{-आऊ}=विशेषण। इससे करने वाला या 'होने वाला' जैसा अर्थ द्योतित होता है। इसके उदाहरण इस प्रकार हैं:—

√उठ्-	+/-आऊ/	=/उठाऊ/	'अस्थिर'
√उड़	+/-आऊ/	=/उड़ाऊ/	'उड़ानेवाला'
√उपज्-	+/-आऊ/	=/उपजाऊ/	'उपजाऊ'
√जड़-	+/-आऊ/	=/जड़ाऊ/	'जड़ाऊ'

√बिक्- +/-आऊ/ =/बिकाऊ/ 'बिकनेवाला'
√बन्- +/-आऊ/ =/बनाऊ/ 'बनानेवाला'

इनका प्रयोग दोनों लिङ्गों में हो सकता है।

(iii) वर्त० कृ०+{-आऊ}=विशेषण। इससे भी 'वाला' अर्थ व्यक्त होता है। जैसे /खिल्ताऊ/=(√खिल्-+{-त्-}+{-आऊ}) 'खिलने वाला'। /मिल्ताऊ/=(√मिल्-+{-त्-}+{-आऊ}) 'मिलने वाला, मिलनसार'।

(b) {-अऊ} क्रिया√+{-अऊ}=विशेषण। इसके उदाहरण ये हैं— √धर- 'रखना' से /धरऊ/ 'उन कपड़ों का विशेषण है, जो किसी विशेष अवसर के लिए सुरक्षित रख दिये जाते हैं'। √कट्- 'कटना' से /कटऊ/ 'उस खेत का विशेषण है, जिसमें सिंचाई आसानी से होती है' अथवा दही का जो काटा जा सकता है'। ये रूप दोनों लिङ्गों के साथ प्रयुक्त हो सकते हैं।

४. {-औ-} वाले रूप। इसके पूर्व /आ-/ अथवा /औ-/ स्वर संलग्न हो सकते हैं। /औ/ के संयोग से {-औ}, [-औ] अथवा [यौं] अथवा [ह्यौं] ध्वन्यात्मक रूप बन जाते हैं।[1] उनके वितरण और अर्थ-द्योतन का विवरण नीचे दिया गया है।

(a) {-औऔ}=[औयौ]- का संयोग क्रिया के साथ होता है। इन दोनों स्वरों में से अन्तिम स्वर पु० एक० प्रत्यय है, क्योंकि इसके स्थान पर पु० बहु० तथा स्त्री० प्रत्यय प्रयुक्त हो सकते हैं। इसलिए इस रूप-रचना के सभी पद पुल्लिङ्ग होते हैं। क्रिया से विशेषण बनाने के लिए इस प्रत्यय का प्रयोग होता है। इससे उस क्रिया से जन्य विशेषता से युक्त होने का भाव व्यक्त होता है। नीचे एक उदाहरण दिया गया है :

√ढरक्+[-औंयौं] ~ [औंह्-यौं]=[ढरकौं-यौं] ~ [ढरकौंह्-यौं] 'ढालू' पु० एक०
+[-औंए] ~ [औंहे] =[ढरकौं-ए] ~ [ढरकौं-हे] 'ढालू' पु० बहु०
√कतर+[-औंई] ~ [औंही] =[कतरौंई] ~ [कतरौंही] 'कटती हुई' स्त्री० एक० बहु०

(b) {-औऔ}=[औयौ] का प्रयोग क्रिया विशेषण से विशेषण की उत्पत्ति के लिए भी होता है। इसमें भी अन्तिम स्वर पु० एक० प्रत्यय ही है। इसके स्थान पर पु० बहु० तथा स्त्री० प्रत्यय आ सकते हैं। जैसे—/भीतर्-/ से /भितरौऔं/=[भितरौंयौं] 'भीतर की ओर'।

(c) {-आऔ}=[आयौ] का प्रयोग भी क्रिया-विशेषण से विशेषण बनाने के लिए होता है। इससे 'वाला' का अर्थ निकलता है। इसके उदाहरण ये हैं।

---

१. इस पर विचार 'सन्धि-विचार' के साथ है।

/आगे-/ से /अगाऔ/=[अगायौ] 'आगे बोया जाने वाला (खेत)' /पिछायौ/=[पिछायौ] 'पीछे बोया हुआ (खेत)'। अन्तिम स्वर पु० एक० प्रत्यय है।

(d) संख्यावाचक विशेषणों के साथ प्रयुक्त होकर इस प्रत्यय से समेतार्थक (inclusive) विशेषण व्युत्पन्न होते हैं। /तीनौं/ [तीन्यौं]=(/तीनि-/+{-औ}) 'तीनों'। इस प्रकार /चारयौ/ 'चारों' /पाँचौ/ 'पाँचों' आदि।

(e) इस प्रत्यय के सानुनासिक रूप {-औं} का प्रयोग कुछ दहाई संख्या तक विशेषणों के साथ होता है। इससे 'अनेकता' का बोध होता है : /लाखौं/ आदि। पर बहुधा बहुवचन प्रत्यय /-अन्/ का ही प्रयोग ऐसे अवसरों पर होता है।

ग—एक व्यञ्जन पर आधारित प्रत्यय—इस शीर्षक में उन प्रत्ययों पर विचार किया गया है, जो व्यञ्जनों पर आधारित हैं। व्युत्पादक प्रत्ययों के आधार भूत व्यञ्जन ये हैं : /क्/, /च्/, /ज्/, /ट्/, /ड़्/, /त्/, /द्/, /न्/, /प्/, /म्/, /र्/, /ल्/, /स्/ तथा /ह/। रचनाक्रम में इनके पूर्व कोई स्वर स्थित रहता है। वह स्वर कभी प्रातपदिक का अंश और कभी प्रत्यय का अंश होता है। व्यञ्जन के पश्चात् लि०वच० स्वरात्मक प्रत्यय रहता है। इस प्रकार इन प्रत्ययों का गठन /vcv/ हो जाता है। नीचे व्यञ्जन क्रम से इन प्रत्ययों के वितरण और अर्थ द्योतन का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

(i) **/-क-/ पर आधारित**—पूर्व स्वर के आधार पर इसके दो रूप होते हैं, {-अक्-} तथा {-आक्-}। इनके प्रयोग की स्थितियाँ इस प्रकार हैं :—

(१) संज्ञा+{-अक्-}=संज्ञा। अर्थ की दृष्टि से इस गठन के ये भाग हो सकते हैं : {-अक्-}+{-अ} (स्त्री०), =लघ्वर्थक। जैसे /ढोलु/ 'बड़ा ढोल' /ढोलक/=(/ढोल्-/+{-अक्-}+{-अ-}) 'छोटा ढोल'। इसका दूसरा अर्थ भाववाचकता भी होता है, जैसे—/ठंड/ 'जाड़ा' से /ठंडक/=(/ठंड्-/+{-अक्-}+{-अ}) 'शीतलता'। यदि अन्त्य लि० वच० प्रत्यय {-आ} (पु०) हो जाय तो उससे उस वस्तु की विशालता प्रकट होगी। जैसे /बूंद/ से /बुँदका/=(/बूँद्-/+{-अक्-}+{-आ}) 'बड़ी बूँद'। इसी {-आ} से संयुक्त रूप सम्बन्धवाची संज्ञा के साथ मिल कर स्थानसूचक भी होता है। जैसे /माइका/=(/मा-/+{-इक-}+{-आ}) 'मा का स्थान'।

(b) विशेषण+{-अक्-}=संज्ञा। इस स्वरूप के साथ {-आ} के संयोग से भाववाचक संज्ञा व्युत्पन्न होती है। जैसे—/पीर्-/ 'पीला' से /पिरका/=(/पीर्-/+{-अक्-}+{-आ}) 'पीलापन'। इसके पश्चात् {-ई} का संयोग करके भी रूप खड़ा होता है। जैसे—/पिरकाई/। /चौकु/ 'चार कोने वाला स्थान' तथा /चौकी/ 'बैठने की चौकी, या स्थान' जैसे स्थानवाचक संज्ञा भी बनती हैं।

(c) क्रिया√+{-अक्-}=संज्ञा। इस गठन के साथ स्त्री० प्रत्यय {-अ} का संयोग करके स्थान-सूचक संज्ञा व्युत्पन्न की जाती है। जैसे—/बैठक/=(√बैठ्-+{-अक्-}+{-अ}) 'बैठने का स्थान'। इससे बैठने की क्रिया का या अभ्यास का भी बोध होता है /ब्वाकी म्वाँ बैठक है/ 'वह वहाँ बैठता-उठता है'। /बैठक/ एक प्रकार का व्यायाम भी है, जिसमें बैठने की क्रिया रहती है। इसी प्रकार /उठक-बैठक/ भी एक व्यायाम है। /सड़क/=(√सरक्-+{-अक्-}+{-अ}) में भी वह स्थान जहाँ चला जाता है, द्योतित होता है।

पुल्लिङ्ग प्रत्यय से युक्त होकर भी स्थान का बोध करा सकता है। जैसे √फ़ाट्-(फ़ाड़-) से /फाँटिकु/=(√फाँट-+{-इक-}+{-उ}) 'फाटक का स्थान' (Kine-house)।

इससे बनने या संकट के घटित होने का भी बोध हो सकता है: जैसे /बनकु/=(√बन्-+{-अक्-}+{-उ}) 'संकट-अवसर'; /बनका/=(√बन्-+{-अक्-}+{-आ}) 'काम'। दोनों पुल्लिङ्ग हैं।

(d) क्रिया√+{-आक्-}=विशेषण। इस गठन के साथ लिङ्ग-वचन प्रत्यय का संयोग करके सलिङ्ग विशेषण की रचना होती है। जैसे /तैराकु/,/तैराक/=(√तैर्-+{-आक्-}+{-उ}~{-अ}) 'तैरने में दक्ष' (पु० स्त्री०)।

(ii) /-च-/ **पर आधारित**—इसके साथ {-ई} प्रत्यय का योग होता है, जो अधिकारार्थक है। इसका संयोग संज्ञा के साथ होता है। इससे अधिकारार्थक संज्ञा व्युत्पन्न होती है—/मसालची/ 'मशालवाला' /चिलमची/ 'चिलमवाला'। लघ्वर्थक संज्ञा भी व्युत्पन्न हो सकती हैं—/संदूकची/ /संदूकचा/ 'छोटी सन्दूक'।

(iii) **/-ज-/ पर आधारित रूप**—इससे किसी सम्बन्धी के पुत्र या उसकी पुत्री का बोध होता है। जैसे—/भतीजौ/ 'भतीजा' /भतीजी/ 'भतीजी' /भानजौ/ 'भानजा' /भानजी/ 'बहन की लड़की'।

(iv) /-छ-/ **पर आधारित रूप**—विशेषण के साथ संयुक्त {-औछ}+{-इ} वाला केवल एक ही शब्द मिलता है—/कार्-/+{-औछ्-}+{-इ}= 'कालिमा'। यह स्त्री० भाववाचक संज्ञा है।

(v) /-ट-/ **पर आधारित**—इसके प्रयोग की स्थितियाँ इस प्रकार हैं:—

(a) **संज्ञा+{-औट्-}**=संज्ञा। इसके साथ लिङ्ग वचन प्रत्यय संयुक्त होते हैं। प्रस्तुत रूप तिरस्कारार्थक, लघ्वर्थक या स्नेहार्थक होता है। छोटे के अर्थ के उदाहरण ये हैं—/बिलौटा/ 'बिल्ली का बच्चा, या बिल्ला' /हिरनौटा/=(/हिरन/+{-औट्-}+{-आ}) 'हिरन का बच्चा' /झौंटा/ 'भैंस का बच्चा'। -ट से पूर्व -अ- का भी योग हो सकता है—जैसे /रौंगटा/ 'छोटे बाल' /रेंगटा/ 'गधे का बच्चा'।

इस रूप का प्रयोग स्थान के अर्थ में भी होता है। जैसे—/कजरौटा/=(/काजर्-/ +{-औट्-}+{-आ}) 'काजल रखने का डब्बा या स्थान' /कठौता/=(/काठ्-/+{-औट्-}+{-आ}~{-ई}) 'कठौता या कठौती, काष्ठ का पात्र'। इसका एक और प्रयोग मिलता है। /गुबरौटी/ 'गोबर और मिट्टी का लीपने के लिए मिश्रण'।

{-ट-} से पूर्व अ- भी आ सकता है। जैसे /पसरट्टौ/=(/पंसारी-/+{-अट्ट}+{-औ}) 'वह स्थान जहाँ पंसारियों की दूकानें हों'; /कसेरट/=(/कसेर्-/+{-अट्-}+{-अ}) 'वह स्थान जहाँ कसेरों की दूकानें हों'।

{-ई} के संयोग से दक्षता या हस्तकला का बोध होता है। जैसे—/हतौटी/=(/हत-/+{-औट-}+{-ई}) 'हस्त कौशल'।

(b) **विशेषण**+{-औट्-}=भाववाचक स्त्री० संज्ञा। जैसे /सीरौटि/=(/सीर्-/+{औट}+{-इ}) 'ठंड से संबंधित एक बीमारी'।

इस रूप गठन से विशेषण भी व्युत्पन्न हो सकते हैं। इससे पूर्णता का भाव व्यक्त होता है। उदाहरण—/कचौट/=(/कच्च्-/+{-औट्-}+{-अ}) 'पूर्ण कच्ची' तथा /पकौट/=(/पक्-/+{-औट-}+{-अ}) 'पकी हुई'। इसी प्रकार /चिकनौट/ 'चिकनी'। ये रूप स्त्री० हैं।

(c) क्रिया√+{-अट-}~{-अट्ट-}=विशेषण। -ट के द्वित्व करने से यह कुछ व्यंग्यार्थक हो जाता है। जैसे—/खिलट्टा/=(√खेल-।+{-अट-}+{आ}) 'खिलाड़ी'।

(d) क्रियार्थक संज्ञा+{-औट-}=विशेषण। जैसे /दिखनौट/ या /दिखनौंटू/=(√देख-+{-न-}+{-औट-}+{-अ}~{-ऊ}) 'देखने योग्य'।

(vi) **/-ड़-/ पर आधारित**—इसके प्रयोग की स्थितियाँ इस प्रकार हैं:—

(a) संज्ञा+{-ड़-} : इसके पूर्व अ- तथा पीछे स्त्री० प्रत्यय {-ई} अथवा {-आ} के योग से इसके दो रूप हो जाते हैं—/-अड़ी/ तथा /अड़ा/। प्रथम रूप स्त्री० तथा द्वितीय पु० है। अर्थ की दृष्टि से इससे युक्त संज्ञा रूप (१) लघ्वर्थक हो सकते हैं : /आँत/ से /अँतड़ी/ 'आँत'। यह रूप स्त्रीलिङ्ग। (२) दूसरे अर्थ में {-ई} प्रत्यय सम्बन्ध या किसी वस्तु की आदत का बोध कराता है। ऐसे रूप बहुधा पुल्लिङ्ग होते हैं : /भाँग/ 'भाँग' से /भँगड़ी/=(/भंग/+{-अड़-}+{ई}) 'भँगड़ी'; /गाँजा/ 'एक मादक पदार्थ' से /गंजड़ी/=(/गांजा/+{-अड़-}+{-ई}) 'गाँजा पीने वाला'। (३) तीसरा रूप {-अड़-}+{-आ} से व्युत्पन्न होते हैं। यहाँ {-आ} पुल्लिङ्ग प्रत्यय है। अतः इस संयुक्त प्रत्यय से व्युत्पन्न रूप पुल्लिङ्ग ही होता है। अर्थ की दृष्टि से स्नेह या व्यंग्य या बड़प्पन का बोध होता है। उदाहरण—

/दुख-/+{-अड़-}+{-आ}=/दुखड़ा/ 'दुःख'; /मुख-/+{-अड़-}+{-आ})= /मुखड़ा/ 'मुख'; /चाम-/+{-अड़-}+{-आ})=/चमड़ा/ 'चमड़ा'।

(b) **क्रिया√+{-ड़-}**—इस गठन में इसके पूर्व /-आ-/ तथा अन्त में {-ई}=(दक्षता अथवा अधिकार का बोधक) आते हैं। इस प्रकार /-आड़ी/ रूप हो जाता है। उदाहरण : /खिलाड़ी/=(√खेल-+{-आड़-}+{-ई}) 'खेलने में दक्ष या खेलने वाला'। /-ओ-/ से युक्त होकर भी अधिकारार्थक संज्ञा की व्युत्पत्ति यह करता है। इससे तिरस्कार का भाव भी व्यक्त होता है। /भगोड़ा/=(√भाग-+{-ओड़-}+{-आ}) 'भाग कर जाने वाला'।

(vii) **/-त्-/ पर आधारित रूप**—इसका प्रयोग संज्ञा, विशेषण, तथा क्रिया से संज्ञा या विशेषण की संरचनात्मक व्युत्पत्ति के लिए किया जाता है।

(a) संज्ञा+{-त्-}=संज्ञा। /औ-/ से युक्त होकर और {-ई} स्त्री० प्रत्यय ग्रहण करके यह प्रत्यय सम्बन्ध-सूचक संज्ञा की व्युत्पत्ति करता है : /बपौती/= (/बाप-/ {-औत-}+{-ई}) 'पैतृक या पैतृक संपत्ति'। यह रूप स्त्रीलिङ्ग है। {-अत-} रूप में {-इ} से सम्बद्ध होकर भी यह भाववाचक संज्ञा की व्युत्पत्ति करता है : /रंगति/=(/रंग-/+{-अत्-}+{-इ}) 'रागरंग' आदि। यहाँ {-इ} स्त्री० प्रत्यय है। एक और रूप मिलता है : {-इत्-}+{-उ} पु० प्रत्यय। इससे व्युत्पन्न संज्ञा-पद स्थानार्थक होते हैं : /पाँइतु/=(/पाँउ-/+{-इत्-}+{-उ}) 'खाट का पैरों की ओर रहनेवाला भाग'।

(b) संज्ञा+{-त्-}=विशेषण। एक रूप {-इत्-}+{-उ} से घटित होता है : /रंगितु/=(/रंग-/+{-इत्-}+{-उ}) 'रंगीन'। इसका स्त्री० रूप /रंगित/ होगा। एक रूप {-ऐत-}+{-उ} के आधार पर भी घटित मिलता है। इसके उदाहरण ये हैं—/लैठैतु/=(/लठ-/+{-ऐत्-}+{-उ}) 'लाठी वाला, या लाठी चलाने में दक्ष', /थमैतु-/=(/थम-/+{-ऐत्-}+{-उ}) 'थामे वाला, गाँवों की दावतों में जो किसी मुहल्ले का प्रतिनिधि समझा जाता है।' /गामैतू/=(/गाम-/+{-ऐत-}+{-ऊ}) 'गाँववाला'।

(c) विशेषण+{-त्-}=अधिकारार्थक संज्ञा तथा विशेषण। ये रूप अत्यन्त विरल हैं : /अधैतु/=(/आध्-/+{-ऐत-}+{-उ}) 'आधे का मालिक', {-आइत्-} वाले रूप भी मिलते हैं जो भाववाचक या समूहवाचक हैं। /भौताइति/ =(/भौत-/+{-आइत-}+{-इ} 'बहुतायत' स्त्री० तथा /पंचाइति/=(/पंच-/+{-आइत्-}+{-इ}) 'पंचायत'।

(d) क्रिया+{-त्-}=संज्ञा या विशेषण। इस प्रत्यय के दो रूप मिलते हैं—{-औत्-}+{-ई}=/औती/ तथा {-ऐत्-}+{-उ ~ अ}=/ऐतु ~ ऐत/। प्रथम का

अर्थ होता है उस क्रिया से सम्बन्धित भाग। जैसे—/कटौती/=(√कट-+{-औत-}+{-ई}) 'कटने वाला भाग' तथा दूसरे का अर्थ 'वाला' होता है। उदाहरण—/बटैतु/=(√बट्-+{-ऐत्-}+{-उ}) 'बाँटने वाला, भागीदार'; /फिकैतु/=(√फेंक-+{-ऐत्-}+{-उ}) 'फेंकनेवाला, चालाक'। इसका स्त्री० रूप /फ़िकैत/ तथा भाववाचक रूप /फिकैती/ 'चालाकी' होती है। अन्य रूप ये हैं: /कर्ता/ 'करता' करनेवाला'; /चल्ता/ 'रिवाज' /चल्तौ/ 'चालाक'।

(viii) **/-द्-/ पर आधारित रूप**—यह प्रत्यय /-औं-/ से संयुक्त होकर तथा लिङ्ग-वचन प्रत्ययों को ग्रहण करके 'वाला' अर्थ से युक्त विशेषण की व्युत्पत्ति करता है। उदाहरण—/किचौंदौ/=(/कीच्/+{-औंद्-}+{-औ}) 'कीचवाला' पु०, /किचौंदी/ (स्त्री०)। /-द-/ के पश्चात् {-इ} का योग करके और इसके पूर्व -आँइ- का योग कर भाववाचक संज्ञाएँ बनती हैं—√सड़- से /सड़ाँइदि/ 'सड़ाँद' /चीर/ से /चिराँइदि/ 'कपड़े जलने की बदबू' (संज्ञा से व्युत्पन्न); /खट्याँइदि/ 'खट्टापन' (वि० से व्युत्पन्न)। {-औ} के संयोग से ये विशेषण हो जाते हैं—/घिनिआँइदौ/=(/घिनि-/+{आँइद्-}+{-औ}) 'घृणास्पद'।

(ix) **/-न्-/ पर आधारित रूप**—इस प्रत्यय की सहायता से संज्ञा से, तथा क्रिया से संज्ञा या विशेषणों के रूप व्युत्पन्न होते हैं। इसके प्रयोग की स्थितियाँ इस प्रकार हैं।

(a) संज्ञा+/-न्-/=संज्ञा। इसके पूर्व इ-, तथा आ- स्वर आ सकते हैं, जिससे प्रत्यय रूप {-इन्-} तथा {-आन्-} बन सकते हैं। इनके साथ {-ई} स्त्री० प्रत्यय युक्त होता है और सम्बन्धसूचक संज्ञाओं की व्युत्पत्ति होती है। अर्थ की दृष्टि से {-इन्-} वाले रूप पशुओं या निम्नवर्गीय स्त्रीवाचक रूपों की सृष्टि करते हैं—/तेलिनि/=(/तेली/+{-इन्-}+{-इ}) 'तेली की पत्नी'। इसी प्रकार /धोबिनि/ 'धोबी की पत्नी' /हतिनी/ 'हथिनी' आदि। {-आन्-}+{-ई} वाले रूप ये हैं—/पंडितानी/=(/पंडित्-/+{-आन्-}+{-ई}) 'पंडित की पत्नी'; /द्यौरानी/=(/देवर-/+{-आन्-}+{-ई}) 'देवर की पत्नी'; /जिठानी/=(/जेठ्-/+{-आन्-}+{-ई}) 'ज्येष्ठ की पत्नी'।

/-आ-/ से युक्त होकर और अन्त में पु० प्रत्यय {-आ} अथवा {-औ} ग्रहण करके यह प्रत्यय स्थानार्थक संज्ञा की संरचना करता है। जैसे /चमरानौ/=(/चमार-/+{-आन्-}+{-औ}) 'चमारों का स्थान'। इसी प्रकार /कुमरानौ/ 'कुम्हारों का स्थान' /राजपूताना/ 'राजपूतों का स्थान'। ये रूप पुल्लिङ्ग हैं।

एक रूप 'प्रति या प्रत्येक' के अर्थ से युक्त भी मिलता है। जैसे—/सालाना/=

(/साल्-/+{-आन्-}+{-आ}) 'प्रतिवर्ष'। इसी प्रकार /माहाना/ 'प्रतिमास' /रोजाना/ 'प्रति दिन'। आदि।

{-अन्-}+{-आ} से युक्त रूप लघ्वर्थक भी होते हैं। जैसे /ओटना/ 'छोटी दीवार' /भूतना/ 'छोटा भूत' /भेंटना/ 'छोटी भेंड़'।

(b) (१) क्रिया√+{-अन्-}+{-इ}=रीतिवाचक स्त्री० संज्ञाएँ। ये रूप स्त्री० हैं।

√कट से /कटनि/ 'कटने का ढंग' √हँस- से /हँसनि/ 'हंसने का ढंग', √बोल से /बोलनि/ 'बोलने का ढंग' √लग्- से /लगनि/ 'लगन' √भाज- से /भाजनि/ 'भागने का ढंग' √बँट- से /बँटनि/ 'बँटने का ढंग'।

(२) क्रिया√+{-अन्-}+लिङ्ग वचन प्रत्यय=संज्ञा। इस प्रकार के रूपों का अर्थ उस क्रिया के साधक-यन्त्र का बोध होता है। ये रूप पु०-स्त्री० होते हैं। उदाहरण—

√ओढ़्- +{-अन्-}+{-ई} =/ओढ़नी/ 'ओढ़ने का वस्त्र' (स्त्री०)
√ओढ़्- +{-अन्-}+{-आ} =/ओढ़ना/ 'ओढ़ने का वस्त्र' (पु०)
√दुह्- +{-अन्-}+{-ई} =/धौनी/ 'दूध दुहने का पात्र' (स्त्री०)
√औट्- +{-अन्-}+{-ई} =/औटनी/ 'दूध गरम करने का पात्र' (स्त्री०)
√फूँक्- +{-अन्-}+{-ई} =/फूँकनी/ 'फूँक मारने की वस्तु' (स्त्री० छोटी)
√फूँक्- +{-अन्-}+{-आ} =/फूँकना/ 'फूँक मारने की वस्तु' (पु० बड़ा)
√धौंक्- +{-अन्-}+{-ई} =/धौंकनी/ 'धौंकने का यन्त्र' (स्त्री०)
√झाड़्- +{-अन्-}+{-उ} =/झाड़नु/ 'झाड़ने का कपड़ा' (पु०)
√बेल्- +{-अन्-}+{-उ} =/बेलनु/ 'पूड़ी आदि बेलने का यन्त्र' (पु०)

(३) क्रि०+{-अन्-}+{-उ}=संज्ञा। इससे किसी कार्य या रीति का बोध होता है। जैसे:—

√चल्- +{-अन्-}+{-उ} =/चलनु/ 'रीति'
√पूज्- +{-अन्-}+{-उ} =/पूजनु/ 'पूजन'
√मूँड्- +{-अन्-}+{-उ} =/मूँड़नु/ 'मुण्डन'

(४) क्रि०+{-अन्-}+लिङ्ग वचन प्रत्यय=संज्ञा। इससे क्रिया के स्थान का बोध होता है। जैसे:—

√झर्- +{-अन्-}+{-आ} =/झरना/ 'झरने का स्थान'
√पाल्- +{-अन्-}+{-औ} =/पालनौ/ 'पालने का स्थान'
√उझक्-+{-अन्-}+{-आ} =/उझकना/ 'उझकने का स्थान'

(x) **/-प्-/ पर आधारित रूप**—इस पर आधारित प्रत्यय के योग से विशेषण

से तथा क्रिया से संज्ञाओं की संरचना की जाती है। यह आ- से संयुक्त होकर तथा पुल्लिङ्ग प्रत्यय से युक्त होकर क्रिया के भाव का द्योतन करने वाले भाववाचक संज्ञा रूप व्युत्पन्न करता है।

(a) विशेषण+{-आप्-}+{-औ}=पु० भाववाचक संज्ञा। उदाहरण— /रँड़ापौ/=(/राँड़-/+{-आप्-}+{-औ}) 'विधवापन' /बुढ़ापौ/=(/बूढ़-/+{-आप्-}+{-औ})='बुढ़ापा' /मुटापौ/=(/मोट्-/+{आप्-}+{-औ}) 'मोटापन'

(b) क्रि०√+{-आप्-}+{-उ}=भाववाचक पु० संज्ञा। जैसे—/मिलापु/ =(√मिल्- {-आप्-}+{-उ}) 'मिलना'।

(xi) **/-म्-/ पर आधारित रूप**—इसके साथ ऐ- स्वर संलग्न होता है तथा यह पु० प्रत्यय {-आ} को ग्रहण करता है। इस प्रत्यय के योग से क्रिया धातुओं से, 'उस क्रिया से उत्पन्न'—इस अर्थ को देने वाले विशेषण रूपों की व्युत्पत्ति होती है। इस प्रकार धातु+{-ऐंम्-}+{-आ}=संज्ञा। उदाहरण :—

√कतर-	+	{-ऐंमां}=	/कतरैंमा/	'कटे हुए'
√ढर-	+	{-ऐंमां}=	/ढरैंमां/	'ढला हुआ'
√कढ़-	+	{-ऐंमां}=	/कढ़ैंमां/	'कढ़ा हुआ'
√मुरक्-	+	{-ऐंमां}=	/मुरकैंमां/	'मुड़ा हुआ'
√चढ़-	+	{-ऐंमां}=	/चढ़ैंमा/	'चढ़े हुआ'

इन विशेषणों का प्रयोग दोनों लिङ्गों के विशेष्यों के साथ हो सकता है।

(xii) **/-र-/ पर आधारित प्रत्यय**—इस प्रत्यय के आधार पर संज्ञा से, विशेषण से, तथा क्रिया से संज्ञा तथा विशेषण की व्युत्पत्ति की जाती है। इसके रूपों, प्रयोगों और अर्थ-द्योतन का विवरण नीचे प्रस्तुत किया गया है।

(a) **संज्ञा+/-र-/ पर आधारित प्रत्यय**—=संज्ञा। इससे कई अर्थों की व्यञ्जना होती है। गठन की दृष्टि से अ- के साथ आकर {-अर-} आ- के साथ आकर {-आर-}, ए- के साथ आकर {-एर-}, ऐ- के साथ आकर {-ऐर-}। इनका प्रयोग और अर्थ-द्योतन इस प्रकार है :—

(१) संज्ञा+{-अर्-}+{-आ}~{-ई}=तिरस्कारार्थक या लघ्वर्थक पु० या स्त्री० संज्ञा। उदाहरण :—

/लौंड़ा/+{-अर्-}+{-आ}=/लौंड़रा/ 'लड़का' (पु०) (तिरस्कार)
/कोठ्-/+{-अर्-}+-{-ई}=/कोठरी/ 'कोठरी' (स्त्री० छोटी)
/पोंट-/ +{-अर्-}+{-ई} =/पोटरी/ 'पोटली' (स्त्री० छोटी)

अन्तिम दो उदाहरणों के साथ {-आ} जोड़ कर बड़ा अर्थ देने वाले संज्ञा रूपों की व्युत्पत्ति की जा सकती है—/कोटरा/, /पोटरा/।

(२) क्रिया+{-अर्-}+{-इ}=क्रियार्थक स्त्री० संज्ञा। जैसे—/भीजरि/=(√भीज्-+{-अर्-}+{-इ} 'भीगने का कार्य' /भीजरि/=(√माज्-+{-अर्-}+{-इ}) 'मागना'।

(३) संज्ञा+{-आर्-}+{-उ}~{-औ}~{-ई}=व्यवसायार्थक, या 'वाला' अर्थ देने वाली पुल्लिङ्ग संज्ञाएँ। इनके उदाहरण इस प्रकार हैं:—

/सौन्-/	+{-आर्-}+{-उ}	=/सुनारु/	'स्वर्णकार'	(पु० व्यवसाय)
/लोह-/	+{-आर्-}+{-उ}	=/लुहारु/	'लोहार'	(पु० व्यवसाय)
/कुम्ह-/	+{-आर्-}+{-उ}	=/कुम्हारु/	'कुम्हार'	(पु० व्यवसाय)
/बन्ज-/	+{-आर्-}+{-औ}	=/बनजारौ/	'बनजारा'	(पु० व्यवसाय)
/भीक्-/	+{-आर्-}+{-ई}	=/भिकारी/	'भिखारी'	(पु० 'वाला')

इन रूपों के अन्त्य प्रत्यय-परिवर्तन से स्त्री० रूप भी घटित हो सकते हैं। इसी गठन से स्थानार्थक संज्ञा रूप भी सिद्ध हो सकते हैं—/धमारौ/=(/धूँआ/+{-आर-}+{-औ}) 'धुँआ निकलने का स्थान'। इनके साथ {-इ} या {-अ} स्त्री० प्रत्यय संलग्न करके भी स्थानार्थक स्त्री० संज्ञा रूप सम्पन्न किए जा सकते हैं। जैसे—/सुरारि/=(/सुसर-/+{-आर्-}+{-इ}) 'श्वसुरालय' /नन्सार/=(/नाना-/+{-आर्-}+{-अ}) 'ननसाल'।

(४) संज्ञा+{-एर्-}+{-ई}~{-औ}=सम्बन्धसूचक या 'वाला' अर्थ वाली संज्ञाएँ। जैसे—/हतेरी/=(/हात्-/+{-एर्-}+{-ई}) 'हथेली (हाथ से सम्बन्धित) /कमेरौ/=(/काम्-/+{-एर्-}+{-औ}) 'कमेरा, कामवाला', /सँपेरौ/=(/साँप्-/+{-एर्-}+{-औ}) 'साँपवाला'।

(५) क्रिया√+{-एर्-}+{-औ}=कार्यार्थक या स्थानार्थक संज्ञा (पु०)। जैसे—√बास्-+{-एर्-}+{-औ}=/बसेरौ/ 'निवास, या निवासस्थान'।

(६) संज्ञा+{-ऐर्-}+{-आ}=स्थानार्थक पु० संज्ञा। जैसे—/भुसैरा/=(/भूस्-/+{-ऐर्-}+{-आ}) 'भूसा रखने का स्थान' /कठैरा/=(/काठ्-/+{-ऐर्-}+{-आ}) 'कठघरा'।

(७) संज्ञा+{-आर-}+लिङ्ग वचन प्रत्यय='वाला / वाली' अर्थ देने वाला विशेषण। इसके उदाहरण ये हैं:—

/गीत्-/	+{-आर्-}+{-अ}	=/गितार/	'गीत गाने वाली, या दक्ष'	(स्त्री०)
/घी-/	+{-आर्-}+{-ई}	=/घ्यारी/	'अधिक घी करने वाली'	(स्त्री०)
/दूध्-/	+{-आर्-}+{-अ}	=/दुधार/	'अधिक दूधवाली'	(स्त्री०)

(८) संज्ञा+{-एर्-}+{-औ}~{-ई}=सम्बन्धसूचक विशेषण—/चचेरा/=

(/चाचा/+{-एर्-}+{-औ}~{-ई}='चचेरा। चचेरी'; /ममेरा/=(/मामा/+{-एर्-}+{-औ}~{-ई} 'ममेरौ। ममेरी'।

(९) विशेषण+{-अर्-}+{-औ}=क्रमार्थक विशेषण। जैसे—/दूसरौ/~/दूसरी/ 'दूसरा/दूसरी' /तीसरौ/~/तीसरी/ 'तीसरा/तीसरी'।

(१०) क्रि० विशेषण+{-आर्-}+{-ई}='वाला' अर्थ देने वाली संज्ञा। जैसे—/अगारी/=(/आग्-/+{-आर्-}+{-ई}) 'आगेवाला स्थान' /पिछारी/=(/पीछ्-/+{-आर्-}+{-ई}) 'पीछेवाला स्थान'।

(xiii) /-ल्-/ **पर आधारित रूप**—इसके पूर्व /अ-/, /आ-/, /इ-/, /ई-/, /उ-/, /ऊ-/, /ओ-/ के आने से प्रत्यय के रूप {-अल्-}, {-आल्-}, {-इल-}, {-ईल्-}, {-उल्-}, {-ऊल्-}, तथा {-ओल्-} हो जाते हैं। इनके पश्चात् लिङ्ग वचन प्रत्ययों का योग होने से ढाँचा /vcv/ हो जाता है। इनके वितरण, अर्थ-द्योतन आदि का विवरण नीचे प्रस्तुत किया गया है। कुछ रूपों में {-इअल्} मिलता है। इस प्रकार ढाँचा /vvcv/ हो जाता है।

(a) {-अल-} के संयोग से संज्ञा तथा विशेषण से भिन्नार्थक संज्ञा तथा विशेषण रूप व्युत्पन्न होते हैं। जैसे :—

(१) संज्ञा+{-अल्-}+लिङ्ग वचन प्रत्यय='वाला' अर्थवाली संज्ञाएँ। जैसे—

/धूंध्-/ +{-अल्-}+{-औ}=/धुँधलौ/ 'धुँधला, (अँधेरेवाला)' (पु०)
/धुंध्-/ +{-अल्-}+{-ई} =/धुँधली/ 'धुँधली' (स्त्री०)
/डाढ़ी-/ +{-अल्-}+{-उ} =/डढ़िअलु/ 'डाढ़ीवाला' (पु०)

(२) विशेषण+{-अल्-}+{-औ}=क्रमार्थक विशेषण। जैसे—/पैहैलौ/=(/पह्-/+{-अल्-}+{-औ}) 'प्रथम'। इसी प्रकार 'वाला' अर्थ वाले स्त्री०-पु० विशेषण व्युत्पन्न हो सकते हैं—/गँदलौ/=(/गंद्-/+{-अल्-}+{-औ}) 'गंदगीवाला' /गँदली/ (स्त्री०)।

(३) क्रि० वि० के साथ प्रयुक्त होकर यह विशेषणों की व्युत्पत्ति करता है। जैसे—/उपल्लौ/ (पु०) /ऊपल्ली/ (स्त्री०) 'ऊपरवाला/वाली' /नीचिल्लौ/ 'नीचेवाला'।

(b) {-आल्-}+लिङ्ग वचन प्रत्यय से संज्ञा विशेषण तथा क्रिया से अन्यार्थक संज्ञा तथा विशेषण व्युत्पन्न होते हैं। उदाहरण :—

(१) संज्ञा+{-आल्-}+{-आ}='वाला' अर्थवाली पु० संज्ञा। जैसे : /ग्वाला/=(/गौ-/+{-आल्-}+{-आ}) 'ग्वाला'। ये रूप विरल हैं।

(२) संज्ञा+{-आल्-}+{-ऊ}='वाला' अर्थवाला विशेषण। जैसे : /दयालू/

=(/दइ-/+{-आल्-}+{-ऊ}) 'दयालु' /कृपालू/=(/कृपा-/+{-आल्-}+{-ऊ}) 'कृपालू'।

(३) क्रिया+{-आल्-}+{-ऊ}='वाला' अर्थवाला विशेषण। उदाहरण-- /झगड़ालू/=(/√झगड़्-+{-आल्-}+{-ऊ}) 'झगड़ा करनेवाला/वाली'।

(४) विशेषण+{-आल्-}+{-ई}='वाला अर्थवाली संज्ञा'। जैसे /हरिआली/ =(/हरी-/+{-आल्-}+{-ई}) 'हरियाली'।

(c) {-इल्-}+लिङ्ग प्रत्यय के संयोग से संज्ञा से संज्ञा तथा विशेषण के रूप व्युत्पन्न होते हैं। और क्रि० वि० से विशेषण व्युत्पन्न होते हैं। उदाहरण :—

(१) संज्ञा+{-इल्-}+{-आ}=लघ्वर्थक पु० संज्ञा। जैसे : /घुड़िला/= (/घोड़्-/+{-इल्-}+{-आ} 'छोटा घोड़ा'/उटिला/=(/ऊँट्-/+{-इल्-}+{-आ}) 'छोटा ऊँट'।

(२) संज्ञा+{-इल्-}+{-उ} या {-औ}='वाला' या सम्बन्धसूचक पु० विशेषण। स्त्री० रूप के लिए {-अ} प्रत्यय का योग होता है। उदाहरण—/घाइलु/ =(/घाउ-/+{-इल्-}+{-उ}) 'घावों से युक्त', /पाइलु/=(/पाउ-/+{-इल्-} +{-उ}) 'पैरों का गहना'; /लाड़िलौ/=(/लाड़्-/+{-इल्-}+{-औ}~{-ई}) 'लाड़ला/लाड़ली'। इनके स्त्रीलिङ्ग रूप /घाइला/, /लाड़िली/ आदि होंगे।

(३) क्रि० वि०+{-इल्-}+{-औ}~{-ई}=स्त्री० पु० स्थानवाचक विशेषण। जैसे—/अगिलौ/=(/अग्-/+{-इल्-}+{-औ}) 'अगला', /पिछिलौ/ =(/पीछ्-/+{-इल्-}+{-औ}) 'पिछला'। इनके स्त्री० रूप /अगिली/, /पिछली/ होंगे।

(d) {-ईल्-}+लिङ्ग वचन प्रत्यय के संयोग से संज्ञाओं से विशेषण व्युत्पन्न होते हैं। इनके उदाहरण नीचे दिए गए हैं—इनमें /ईलौ/=({-ईल-}+{-औ}) वाले रूप पुल्लिङ्ग और /ईली/=({-ईल्-}+{-ई}) वाले रूप स्त्री० हैं।

/रस्/ से /रसीलौ/ (पु०) /रसीली/ (स्त्री०) 'रस युक्त'
/काँट/ से /कंटीलौ/ (पु०) /कंटीली/ (स्त्री०) 'काँटों से युक्त'
/लाज्/ से /लजीलौ/ (पु०) /लजीली/ (स्त्री०) 'लज्जाशील'
/जात्/ से /जतीलौ/ (पु०) /जतीली/ (स्त्री०) 'अच्छी जाति वाला'
/सुर/ से /सुरीलौ/ (पु०) /सुरीली/ (स्त्री०) 'स्वरयुक्त'
/गाँठ/ से /गठीलौ/ (पु०) /गठीली/ (स्त्री०) 'गाँठों से युक्त'

अर्थ की दृष्टि से 'वाला' या 'युक्त' अर्थ इन रूपों से द्योतित होता है।

(e) {-उल्-}+लिङ्ग वचन प्रत्यय का योग संज्ञा के साथ विशेषण रूप व्युत्पन्न करने के लिए होता है। यह युक्तार्थक अथवा सम्बन्धार्थक होता है। उदाहरण—

/दाँत्-/ +{-उल्-}+{-आ}~{-ई}=/दँतुला/ पु० /दँतुली/ स्त्री० 'बड़े दाँतों से युक्त'

/खाज्-/ +{-उल्-}+{-आ}~{-ई}=/खजुला/ पु० /खजुली/ स्त्री० 'खाज से युक्त'

/कंठ्-/ +{-उल्-}+{-आ}~{-ई}=/कठुला/ पु० /कठुली/ स्त्री० 'कंठ का आभूषण'

इनमें स्त्रीलिङ्ग रूप 'छोटी' अर्थ भी व्यक्त करते हैं।

(f) {-ऊल्-}+लिङ्ग वचन प्रत्यय। इस गठन वाले रूप अत्यन्त विरल हैं। /जरूला/ 'जन्म के बालों वाला' यह रूप संज्ञा से व्युत्पन्न विशेषण का है। /ऊला/ के योग से लघ्वर्थक या व्यंग्यार्थक संज्ञा शब्द भी व्युत्पन्न होते हैं : /अँसुला/ 'आँसू' /हँसुली/ 'कंठ को परिवेष्ठित करनेवाला आभूषण'।

(g) {-एल्-}+लिङ्ग वचन प्रत्यय। इसके योग से संज्ञा से संज्ञा अथवा विशेषणों की व्युत्पत्ति होती है। क्रिया से संज्ञा भी व्युत्पन्न होती है।

(१) संज्ञा+{-एल्-}+{-अ}। इससे सम्बन्धसूचक अर्थ व्यक्त होता है। जैसे—/फुलेल/=(/फूल-/+{-एल्-}+{-अ}) 'फूल से निकला तेल'; /नकेल/=(/नाक्-/+{-एल्-}+{-अ}) 'नकेल'। ये दोनों स्त्री० रूप हैं। ये संज्ञाएँ हैं।

(२) क्रिया+{-एल्-}+{-अ}। ये रूप क्रिया से सम्बन्धित वस्तु का अर्थ देते हैं। जैसे—/ढकेल्-/=(√ढकेल-+{-एल्-}+{-अ}) 'ढकेल'। ऐसे रूप विरल हैं। ये भी संज्ञाएँ हैं।

(३) संज्ञा+{-एल्-}+{-औ}~{-आ}~{-ई}~{-ऊ}। ये रूप सम्बन्धवाचक होते हैं। जैसे : /सौतेलौ/~/सौतेला/~/सौतेली/=(/सोत्-/+{-एल्-}+{औ~आ~ई} 'सौत का'; /घरेलू/=(/घर्-/+{-एल्-}+{-ऊ}) 'घर से सम्बन्धित'। यह दोनों लिङ्गों के साथ प्रयुक्त होता है। /बरहेल्/=(/बरह-/+{-एल्-}+{-ऊ}) 'खेत में पाया जाने या रहने वाला'। ये सब विशेषण हैं।

(h) {-ऐल्-}+ लिङ्ग वचन प्रत्यय से भी रूपों की संरचना होती है। इसके संयोग से संज्ञा, तथा क्रिया से संज्ञा तथा विशेषण की व्युत्पत्ति होती है।

(१) संज्ञा+{-ऐल्-}+लिङ्ग वचन प्रत्यय='वाला' अर्थ वाली संज्ञा। जैसे—/खपरैल/=(/खपर्-/+{-ऐल्-}+{-अ}) 'खपरे से पटा हुआ घर,' यह स्त्री० है।

(२) संज्ञा+{-ऐल्-}+लिङ्ग वचन प्रत्यय=विशेषण। पुल्लिङ्ग रूप में {-आ} तथा स्त्री० में {-इआ} ग्रहण करता है। उदाहरण :—

/रिस्/ से /रिसैला/ (पु०) /रिसैलिया/ (स्त्री०) 'क्रोधवान्'

/बन्/ से /बनैला/ (पु०) /बनैलिया/ (स्त्री०) 'बन का, जंगली'

(३) संज्ञा+{-ऐल्-}+लिङ्ग वचन प्रत्यय=उस क्रिया के प्रभाव से युक्त होने के भाव को प्रकट करनेवाला विशेषण। उदाहरण:—

√फट्- +{-ऐल्-}+{-आ}=/फैटैला/ पु० 'फटे कपड़ों वाला' /फटैलिआ/ (स्त्री०)
√मर्- +{-ऐल्-}+{-आ}=/मरैला/ पु० 'मरा सा, दुर्बल' /मैरैलिआ/ (स्त्री०)
√सड़्- +{-ऐल्-}+{-आ}=/सड़ैला/ पु० 'सड़ा हुआ सा' /सड़ैलिआ/ (स्त्री०)

(i) क्रिया+{-इअल्-}+लिङ्ग वचन प्रत्यय=उस क्रिया के प्रभाव से युक्त विशेषण। इसके साथ {-उ} पु० एक० तथा {-अ} स्त्री० प्रत्ययों का योग होता है। बहुवचन पु० {-अ} से युक्त होते हैं। उदाहरण:—

/मरिअलु/ =(√मर्+{-इअल्-}+{-उ}) 'कमज़ोर' /मरिअल/ (स्त्री०)
/सड़िअलु/ =(√सड़+{-इअल्-}+{-उ}) 'सड़ा सा'
/अड़िअलु/ =(√अड़-+{-इअल्-}+{-उ}) 'अड़नेवाला'

(j) /-ल-/ के साथ /ओ-/ के संयोग से {-ओल्-} रूप होता है। इसके साथ लिङ्ग वचन प्रत्यय संयुक्त होते हैं। प्रत्यय के इस रूप के योग से लघुता का बोध होता है: /खटोला/=(/खट्-/+{-ओल्-}+{-आ}) 'छोटी खाट' /स्याँपोला/=(/स्याँप्-/+{-ओल्-}+{-आ}) 'साँप का बच्चा,' /झटोला/ 'ढीली ढाली खाट।' संज्ञा के साथ प्रयुक्त होकर यह विशेषण की भी संरचना करता है। जैसे—/मझोला/=(/मझ्-/+{-ओल्-}+{-आ}) 'बीच का।'

(xiv) **/-स्-/ पर आधारित रूप**—ये अपने साथ /आ-/, अथवा /आइ-/स्वर संयुक्त होते हैं। इससे इसका रूप {-आस्-} अथवा {-आइस्-} हो जाते हैं। इनके वितरण का विवरण नीचे दिया गया है:—

(a) संज्ञा+{-आस्-}+{-औ}=संज्ञा से द्योतित अङ्ग या वस्तु से सम्बन्धित वस्तु। यह रूप पुल्लिङ्ग है। /मुड़ासौ/=(/मूँड़-/+{-आस्-}+{-औ}) 'सिर का साफा।'

(b) संज्ञा+{-आइस्-}+{-इ}=भाववाचक संज्ञा। यह रूप स्त्री० है। /घराइसि/=(/घर्-/+{-आइस्-}+{-इ}) 'घर का सा भाव, प्रेम' /ठकुराइसि/=(/ठाकुर्-/+{-आइस्-}+{-इ-}) 'ठाकुरों का सा भाव'।

(c) विशे०+{-आस्-}+{-उ} पु० {-अ} स्त्री०=भाववाचक संज्ञा जैसे:—
/मीठ्-/ +{-आस्-}+{-उ}=/मिठासु/ (पु०) /मिठास/ (स्त्री०) 'मिठास'
/कड़व्-/ +{-आस्-}+{-उ}=/कड़वासु/ (पु०) /कड़वास/ (स्त्री०) 'कड़वास'

(d) विशे०+{-आइस-}+{-इ}=भाववाचकसंज्ञा। जैसे /मौताइसि /'प्रचुरता' /कमताइसि/ 'कमी'।

(d) क्रिया+{-आस्-}+{-अ}=भाववाचक स्त्री० संज्ञा। उदाहरण :—
√मूँत्- 'मूँतना' +{-आस्-}+{-अ}=/मुँतास/ 'मूँतने की हाजत' (स्त्री०)
√हँग्- 'शौच होना' +{-आस्-}+{-अ}=/हँगास/ 'हँगने की हाजत' (स्त्री०)
√पी- 'पीना' +{-आस्-}+{-अ}=/पिआस/ 'प्यास'

(e) क्रि०+{-आस्-}+{-औ} (पु०) {-ई} (स्त्री०)=पु० स्त्री० (d) की हाजत से युक्त होने के भाव वाला विशेषण। उदाहरण :—
/मुँतासौ/=(√मूँत्-+{-आस्-}+{-औ}) 'मूँतने की हाजत से युक्त' /मुतासी/ (स्त्री०)
/हँगासौ/=(√हँग्-+{-आस्-}+{-औ}) 'हँगने की हाजत से युक्त' /हँगासी/ (स्त्री०)
इसी प्रकार /पिआसौ/ तथा /पिआसी/ पु० तथा स्त्री० रूप हैं।

(f) क्रि०+{-आस्-}+{-ऊ}='वाला' अर्थ से युक्त विशेषण। जैसे— /गिरासू/ 'गिरनेवाला' /मरासू/ 'मरने वाला'।

(g) क्रि०+{-आइस्-}+{-इ}=भाववाचक संज्ञा (स्त्री०)। जैसे :— √निठ्- से /निठाइसि/ 'प्रतीक्षा करने का धैर्य'। यह स्त्री० है। ऐसे रूप बोली में विरल हैं।

(h) सर्व०+{-आइस्-}+{-इ}=भाववाचक स्त्री० संज्ञा। जैसे : /अपन्-/ से /अपनाइसि/ 'निजीपन'।

(xv) **/-ह-/ पर आधारित रूप**—इस पर आधारित रूप अत्यन्त विरल हैं। /गरिहा/ 'गाली देने वाला'। यह संज्ञा से विशेषण बना है। इसी प्रकार /मटिहा/ 'मिट्टी वाला (साँप)'।

घ. दो व्यञ्जनों पर आधारित प्रत्यय—कुछ व्युत्पादक प्रत्यय दो व्यंजनों से युक्त हैं। इनके भी दो वर्ग हो सकते हैं—दो व्यञ्जन एक स्वर के साथ आने से एकाक्षरात्मक, तथा दो स्वर ग्रहण करने से द्वयक्षरात्मक। इन दोनों के वितरण और अर्थ-द्योतन पर नीचे विचार किया गया है।

A. **एकाक्षरात्मक**—एकाक्षरात्मक व्युत्पादक प्रत्ययों का रूप-गठन इस प्रकार का है : /cvc/। इस गठन वाले ये प्रत्ययांश मिलते हैं : -कड़-, -खान्-, -खोर्-, -गुन्-, -दान्-, -दार्-, -पन्-, -बार्-, -बाज्-, -बोर्-, -बाज्-, -मन्-, -मान्-, -सार्-, -हर्-, -हार्-, -हान्- एक /cc/ गठन का भी है : -क्क्-, एक और /cvcc/ गठन का है : -गड़ड्-। इनको अकारित क्रम से नीचे दिया गया है। इनके साथ लिङ्ग वचन प्रत्यय संयुक्त होते हैं। इनका विवरण इस प्रकार है :—

(१) {-कड़-}—प्रत्यय के साथ {-आ} का संयोग होता है। इस रूप से

सम्बन्धित एक ही शब्द मिलता है—/सैकड़ा/=(/सै-/+{-कड़-}+{-आ}) 'सौ का समूह'। इस प्रकार शत संख्यावाची विशेषण से समूहार्थक संज्ञा व्युत्पन्न हो गई है।

(२) {-क्क्-}—इस प्रत्यय के साथ {-आ} पु० एक० का योग होता है। कुछ संख्यावाची विशेषण शब्दों के साथ प्रयुक्त होकर यह प्रत्यय समूहवाची संज्ञा-पद व्युत्पन्न करता है। जैसे : /दुक्का/=(/दो-/+{-क्क-}+{-आ}) 'दो का समूह'; /तिक्का/=(/ति-/+{-क्क-}+{-आ}) ये रूप पुल्लिङ्ग होते हैं।

(३) {-खान्-}—इस प्रत्यय के साथ {-औं} पु० एक० प्रत्यय संयुक्त होता है। इससे व्युत्पन्न रूप स्थानार्थक संज्ञा-पद होते हैं। ये अन्य पदार्थवाची संज्ञा पदों से ही व्युत्पन्न होते हैं—/दवाखानौं/=(/दवा-/+{-खान्-}+{-औं}) /दवाखाना/। ये रूप पुल्लिङ्ग होते हैं।

(४) {-खोर्-}—इसके साथ {-उ} पु० एक० {-अ} पु० बहु० तथा {-अ} स्त्री० प्रत्ययों का योग होता है। संज्ञाओं के साथ संयुक्त होकर कुछ विशेषण शब्दों को व्युत्पन्न करता है, जिनका अर्थ 'खानेवाला' हो जाता है। उदाहरण :—

/हराम्-/+{-खोर्-}+{-उ} =/हरामखोरु/ 'हरामख़ोर' (पु० एक०)
/हराम्-/+{-खोर्-}+{-अ} =/हरामखोर/ 'हरामख़ोर' (पु० बहु० या स्त्री०)
/गम/ +{-खोर्-}+{-उ} =/गमखोरु/ 'ग़मख़ोर' (पु० एक०)
/गम/ +{-खोर्-}+{-अ} =/गमखोर/ 'गमख़ोर' (पु० बहु० या स्त्री०)

(५) {-गुन-}—इसके साथ लिङ्ग वचन प्रत्ययों का योग होता है। इस रूप को योग संख्यावाचक विशेषण पदों के साथ करके गुणात्मक विशेषण पद व्युत्पन्न किए जाते हैं। जैसे—

/दो/+{-गुन्-}	+{-औं}=/दुगुनौ/	'दूना'	(पु० एक०)
	+{-ई} =/दुगुनी/	'दूनी'	(स्त्री०)
	+{-ए} =/दुगुने/	'दूने'	(पु० बहु०)
/ति/+{-गुन्-}	+{-औं}=/तिगुनौं/	'तिगुना'	(पु० एक०)
	+{-ए} =/तिगुने/	'तिगुने'	(पु० बहु०)
	+{-ई} =/तिगुनी/	'तिगुनी'	(स्त्री०)
/चौ/+{-गुन्-}	+{-औं} =/चौगुनौं/	'चौगुनौं'	(पु० एक०)
	+{-ए} =/चौगुने/	'चौगुने'	(पु० बहु०)
	+{-ई} =/चौगुनी/	'चौगुनी'	(स्त्री०)

इसी प्रकार /पँचगुनौ/, /छैगुनौं/, /सतगुनौं/, /अठगुनौं/, /नौगुनौं/, /सौगुनौं/ तथा इनके बहु० तथा स्त्री० रूप।

(६) {-गड्ड-}—इसके साथ {-आ} पु० एक० प्रत्यय संयुक्त होता है। इसके संयोग से संख्यावाची विशेषण पद मिश्रण वाचक संज्ञा शब्दों के रूप से व्युत्पन्न होते हैं। इसके उदाहरण ये हैं—/दुगड्डा/=(/दो/+{-गड्ड-}+{-आ}) 'दो का मिश्रित रूप'। इसी प्रकार /तिगड्डा/ 'तीन का मिश्रित रूप'; /चौगड्डा/ 'चार का मिश्रित रूप' आदि।

(७) {-दान्-}—इसके साथ {-उ} पु० एक० तथा {-ई} स्त्री० प्रत्ययों का संयोग होता है। संयुक्त प्रत्यय के योग से पदार्थवाची संज्ञा पद उनसे सम्बन्धित स्थानों का बोध कराने वाले संज्ञा पद व्युत्पन्न होते हैं। जैसे—/पान्/ 'पान'+{-दान्-}+{-उ}=/पानदानु/ 'पान रखने की पेटी', /सिंगार-/ 'श्रृंगार' {-दान्-}+{-उ}=/सिंगारदानु/ 'श्रृंगार के उपकरणों के रखने की पेटी' /सुरमा/ 'अंजन'={-दान्-}+{-ई}=/सुरमादानी/ 'सुरमा रखने का पात्र'।

(८) {-दार्-}—इसके साथ {-अ} स्त्री० प्रत्यय तथा {-उ} पु० एक० प्रत्यय का संयोग होता है। पदार्थवाची संज्ञाओं के साथ संलग्न होकर यह संयुक्त प्रत्यय 'युक्तता' का भाव व्यक्त करने वाले विशेषण पदों को व्युत्पन्न करता है। जैसे—/माल्/ 'धन'+{-दार्-}+{-उ}=/माल्दारु/ 'मालदार', /धारी/ 'धारियाँ'+{-दार्-}+{-अ}=/धारीदार/ 'धारी वाला (कपड़ा)', /हिम्मत्/ 'साहस'+{-दार्-}+{-अ}=/हिम्मद्दार/ 'हिम्मतवाली'।

(९) {-पन्-}—के साथ {-उ} पु० एक० प्रत्यय संलग्न होता है। इस संयुक्त प्रत्यय का योग करके विशेषण पदों से पु० भाववाचक संज्ञाएँ व्युत्पन्न की जाती हैं। जैसे—/अच्छा-/+{-पन्-}+{-उ}=/अच्छापनु/ 'अच्छाई', /कारा-/+{-पन्-}+{-उ}=/कारापनु/ 'कालिमा'। इसी प्रकार /सीरापनु/ 'शीतलता', /छुटपन/ 'छोटाई' /बचपनु/ 'बचपन' आदि।

(१०) {-बार्-} के प्रयोग का क्षेत्र कुछ विस्तृत है। इसके साथ {-औ} पु० एक० {-ए} पु० बहु० {-ई} स्त्री० का संयोग होता है। इस संयुक्त प्रत्यय के प्रयोग की दशाएँ निम्नलिखित हैं:—

(अ) संज्ञा+{-बार्-}=चालकार्थक संज्ञा। जैसे:—

/गाड़ी/+{-बार्-}+{-औ}=/गाड़ीबारौ/ 'गाड़ी हाँकने वाला'
/रथ/ +{-बार्-}+{-औ}=/रथबारौ/ 'रथ चलाने वाला'

/गाड़ीबारौ/ का एक अर्थ वह घर भी है, जिसमें गाड़ी रक्खी जाती है।

(आ) संज्ञा+{-बार्-}+{-औ}~{-ई}='वाला' अर्थ से युक्त विशेषण या संज्ञा। जैसे—/गाम्-/+{-बार्-}+{-औ}=/गाम्बारौ/ 'गाँववाला' /घर्-/+{-बार्-}

+{-औ}=/घरबारौ/ 'घरवाला, रूढ़ार्थ पति' /घर-/+{-बार्-}+{-ई}=/घरबारी/ 'घरवाली, रूढ़ार्थ पत्नी'।

(इ) संज्ञा+{-बार्-}+{-ई}=विशेषण अथवा संज्ञा। /माह-/ 'महीना'+{-बार्-}+{-ई}=/माहबारी/ 'प्रतिमाह, अथवा स्त्रियों का मासिक धर्म'।

(उ) विशेषण+{-बार्-}+{-औ}=अवधि या दिन समूह। जैसे—/आठ्-/+-{बार्-}+{-औ}=/अठबारौ/ 'आठ दिन की अवधि' /पख्-/+{-बार्-}+{-औ}=/पखबारौ/ 'एक पक्ष, १५ दिन की अवधि'।

(ऊ) क्रिया+{-बार्-}+{-ई}=भाववाचक स्त्री० संज्ञा। जैसे—/दब्बारी/=(√दब्-+{-बार्-}+{-ई}) 'धोंस, रौब'।

(ए) क्रिया+{-बार्-}+{-उ}~{-अ}=पु० या स्त्री० 'वाला' अर्थ वाले विशेषण। जैसे—√दै- 'देना'+{-बार्-}+{-उ}=/देबारु/ 'देने वाला'; √लै-+{-बार्-}+{-उ}=/लैबारु/ 'लेनेवाला'। /देबार/, /लेबार/ इनके स्त्री० हैं।

(ऐ) क्रियार्थक संज्ञा या तुमन्त के साथ भी इस प्रत्यय का योग करके 'वाला' अर्थ वाले विशेषण व्युत्पन्न किये जाते हैं। जैसे तुमन्त=(√जा-{-इब्-}+{-ए१}+{-बार्-}+{-औ}=/जाइबे बारौ/ 'जाने वाला'; /करिबे-/ (√कर्+{-इब्-}+{-ए१})+{-बार्-}+{-ई}=/करिबे बारी/ 'करने वाली'।

(ओ) क्रिया विशेषण+{-बार्-}+लिङ्ग वचन प्रत्यय='वाला' अर्थ वाला विशेषण। जैसे—/आगे बारौ/ 'आगे वाला' /ऊपर बारी/ 'ऊपर वाली' /बाहिरबारी/ 'बाहर वाली रूढ़ार्थ महतरानी' /भीतरबारी/ 'भीतर के घर में रहने वाली'।

(औ) क्रि० वि०+{-बार्-}+{-उ}=स्थानार्थक संज्ञा। /पिछबारु/ 'घर के पीछे का भाग'।

(११) {-बोर्-} के साथ {-उ} या {-अ} पु० एक० या स्त्री० प्रत्यय का योग होता है। इस संयुक्त प्रत्यय के योग से क्रिया से तिरस्कार के भाव के साथ अधिकारार्थक संज्ञा की व्युत्पत्ति होती है। जैसे : /खाइबोरु/=(√खाइ-+{-बोर्-}+{-उ}='खाने पर मरने वाला'।

(१२) {-बाज्-}+{-उ} या {-अ}=संयुक्त प्रत्यय (पु० या स्त्री०): इसका प्रयोग संज्ञा के साथ होता है और विशेषण व्युत्पन्न होते हैं। इसके उदाहरण ये हैं—/धोकेबाजु/ 'धोखा देने वाला' (पु०कुत्सार्थक) /दगाबाज/ 'दगा देनेवाली' (कुत्सार्थक); /कलाबाज/ 'कला में दक्ष'।

(१३) {-मन्-}+{-अ}=संयुक्त प्रत्यय। यह संयुक्त प्रत्यय दोनों लिङ्गों के साथ प्रयुक्त हो सकता है। इसका संयोग विशेषण के साथ होता है। इसका अर्थ 'कुछ-कुछ' होता है। जैसे—/कारेमन/=(/कार्-/+{-ए१-}+{-मन्-}+{-अ})

'कुछ-कुछ काला/काली' /गोरेमन्-/=(/गोर्-/+{-ए,}+{-मन्-}+{-अ}) 'कुछ-कुछ गोरी'। इनमें {-ए,} तिर्यक प्रत्यय है।

{-मन्-}+{-औं}=/मनौं/ प्रत्यय का प्रत्यय क्रिया विशेषणों के साथ होता है। इससे विशेषणों की व्युत्पत्ति होती है। जैसे––/अगिमनौं/=(/आग्-/+{-मन्-}+{-औं}) 'आगे वाला, या आगे की ओर' /पिछमनौं/=(/पीछ्-/+{-मन्-}+{-औं}) 'पीछे वाला या पीछे की ओर'। इनके स्त्री० रूप /पिछमनी/, /अगिमनी/ होंगे।

(१४) {-मान्-} के साथ लिङ्ग वचन प्रत्ययों का योग करके संयुक्त प्रत्यय प्राप्त किया जाता है। इसके संयोग से संज्ञा से विशेषण और क्रिया-विशेषण संज्ञा के रूप में व्युत्पन्न होते हैं।

(a) संज्ञा+{-मान्-}+{-उ} या {-अ}=पु० या स्त्री० विशेषण। जैसे–– /दया-/+{-मान्-}+{-उ}=/दयामानु/ 'दयावान' /धन्-/+{-मान्-}+{-उ}= /धनमानु/ 'धनवान' /भागि/+{-मान्-}+{-उ}=/भागिमानु/ 'भाग्यवान'। ये सभी रूप पुल्लिङ्ग हैं। इनके स्त्री० रूप क्रमशः ये होंगे––/दयामान/, /धनमान/, /भागिमान/। इनके साथ {-ई} का संयोग करके भाववाचक संज्ञा रूप व्युत्पन्न होते हैं—/भागिमानी/ 'भाग्यवान होने की स्थिति'। पर सब के ये रूप सम्भव नहीं हैं।

(b) क्रिया विशेषण+{-मान्-}+{-ई}=संज्ञा। ये रूप अत्यन्त विरल हैं। /अगमानी/=(/आगे-/+{-मान्-}+{-ई})='अगवानी या आगे बढ़ कर स्वागत करने की क्रिया'। यह रूप स्त्री० है।

(१५क) {-सार्-} के साथ {-अ} का योग होता है। इस प्रत्यय का योग क्रियार्थक संज्ञा के साथ होता है। इससे उस क्रिया में व्याप्त गुण से किसी वस्तु की युक्तता का बोध कराने वाले विशेषण व्युत्पन्न होते हैं––/मिलनसार/ 'मिलनसार' (Social)।

(१५ख) {-हर्-} के साथ {-औं} या {-उ} या {-ई} लिङ्ग वचन प्रत्यय प्रयुक्त हो कर इसे संयुक्त प्रत्यय बनाते हैं। इस प्रत्यय के प्रयोग की स्थितियाँ इस प्रकार हैं :—

(a) संज्ञा+{-हर्-}+{-औं}~{-ई}=पु० या स्त्री० विशेषण। इसके उदाहरण ये हैं :—

/सौन्-/ +{-हर्-}+{-औं}=/सुन्हैरौ/ 'सुनहला'
/सौन्-/ +{-हर्-}+{-ई} =/सुन्हैरी/ 'सुनहली'
/रूप्-/ +{-हर्-}+{-औं}=/रुपैहरौ/ 'रुपहला', 'चाँदी जैसा'
/रूप्-/ +{-हर्-}+{-ई} =/रुपैहरी/ 'रुपहली'

(b) संज्ञा+{-हर्-}+{-उ}=पु० स्थानवाचक या ग्रहवाचक संज्ञा। जैसे—/पीहरु/=(/पी-/+{-हर्-}+{-उ}) 'पिता का घर' /नैहरु/=(/नै-/+{-हर्-}+{-उ}) 'सम्बन्धी का घर।' ये रूप भी अत्यन्त विरल हैं।

(c) संख्यावाचक विशेषण+{-हर्-}+{-औ}~{-ई}=तहों को व्यक्त करने वाले (Denoting folds) विशेषण। जैसे—

/एक-/ +{-हर्-}+{-औ}=/इकहरौ/ 'इकहरा' (पु० एक०)
/एक-/ +{-हर्-}+{-ए} =/इकहरे/ 'इकहरे' (पु० बहु०)
/एक-/ +{-हर्-}+{-ई} =/इकहरी/ 'इकहरी' (स्त्री०)

इसी प्रकार /दुहरौ/, 'दुहरा' /तिहरी/ 'तीन तह वाली' /चौहरौ/ 'चार तह वाला'।

(१६) {-हार्-} के साथ लिङ्ग वचन प्रत्यय संयुक्त होकर इसे संयुक्त प्रत्यय बनाते हैं। इसके प्रयोग की स्थितियाँ इस प्रकार हैं:—

(a) संज्ञा+{-हार्-}+{-औ}~{-ई}=पु० या स्त्री० विशेषण या संज्ञा। इससे 'वाला/वाली' जैसे अर्थ व्यक्त होते हैं। वैसे उस पदार्थ का व्यापार या उससे सम्बन्धी कार्य का द्योतन होता है। इसके उदाहरण ये हैं—/हरहारौ/=(/हर्-/+{-हार्-}+{-औ}) 'हल चलाने वाला'। अन्य उदाहरण:—

/पानी/ +{-हार्-}+{-औ}=/पनिहारौ/ 'पानी भरने वाला' (पु० एक०)
/पानी/ +{-हार्-}+{-ऐ} =/पनिहारे/ 'पानी भरने वाले' (पु० बहु०)
/पानी/ +{-हार्-}+{-ई} =/पनिहारी/ 'पानी भरने वाली' (स्त्री०)
/लकड़-/ +{-हार्-}+{-औ}=/लकड़हारौ/ 'लकड़हारा'
/लकड़-/ +{-हार्-}+{-ए} =/लकड़हारे/ 'लकड़हारे'
/लकड़-/ +{-हार्-}+{-ई} =/लकड़हारी/ 'लकड़हारी'

(b) क्रियार्थक संज्ञा+{-हार्-}+{-अ}=विशेषण। इसमें यह भाव रहता है कि किसी दैवी विधान से ऐसा होना था; उससे सम्बन्धित वस्तु। जैसे—/हौनहार/ (/हौन्-/(√हो-+{-न्-})+{-हार्-}+{-अ}) 'होनहार'। इस प्रकार /जानहार/ 'जिसका जाना निश्चित था' /मन्नहार/ 'जिसका मरना निश्चित था'। ये रूप स्त्री० हैं।

(c) क्रियार्थक संज्ञा+{-हार्-}+{-औ}~{-ई}=पु० या स्त्री० कर्त्तार्थक विशेषण या संज्ञा। उदाहरण—/आमन्-/=(√आ-{-न्-})+{-हार्-}+{-औ}) =/आमनहारौ/ 'आनेवाला'। इस प्रकार /जानहारी/ 'जानेवाली' /जननहारी/ 'जनने वाली' /बिननहारी/ 'बीनने या चुनने वाली'।

(१७) {-हान-} के साथ बहुधा {-औं} पु० एक० प्रत्यय का संयोग होता है। संज्ञा के साथ इस प्रत्यय का प्रयोग होकर उस पदार्थ के स्थान का अर्थ प्रकट करने वाले संज्ञा रूपों की व्युत्पत्ति होती है। जैसे—/सिरहानौं/ 'खाट में सिर की ओर का स्थान' /चमरिहानौं/ 'चमारों का स्थान' /अगिहानौं/ 'आग का स्थान'। ये रूप पुल्लिङ्ग हैं।

B. **द्वयाक्षरात्मक**—इन प्रत्ययों की सूची इस प्रकार है—इनका गठन /vcvc/ या /vccvc/ है। इनके साथ लिङ्ग वचन प्रत्यय संयुक्त होने से इनकी स्थिति संयुक्त प्रत्यय की हो जाती है।

/vcvc/—

-अगत्- +{-इ} (स्त्री०) =/-अगति/
-आपट्- +{-उ} (पु०) =/-आपटु/
-आबट्- +{-इ} (स्त्री०) =/-आबटि/
-आबत्- +{-इ} (स्त्री०) =/-आबति/ /-आबति/
-आमन्- +{-ई} (स्त्री०) =/-आमनी/
-आहट्- +{-उ} (पु०) =/-आहटु/

/vccvc/

-अक्कड़-+{-उ}~{-अ} (पु० स्त्री०)=/-अक्कडु/ पु० /अक्कड़/ स्त्री०
-अप्पन्- +{-उ} (पु०) =/-अप्पनु/ पु०

इस तालिका से यह स्पष्ट होता है कि /अक्कड़/ को छोड़ कर सभी प्रत्यय संज्ञा की संरचना करते हैं। इनके अर्थ-द्योतन और प्रयोग का विवरण नीचे प्रस्तुत किया गया है।

(१) {-अगति}=({-अगत्-}+{-इ})। इसका प्रयोग धातु के साथ होता है। इससे भाववाचक संज्ञा व्युत्पन्न होती है। इसके साथ एक विशेष अर्थ 'रीति' या 'ढंग' भी युक्त हो जाता है। उदाहरण :—

√चल्- +{-अगत्-}+{-इ}=/चलगति/ 'चलने का ढंग'
√बन्- +{-अगत्-}+{-इ}=/बनगति/ 'बनावट'
ये रूप स्त्रीलिङ्ग हैं।

(२) {-आपट्-}+{-उ} : क्रिया-धातु के साथ इस प्रत्यय का संयोग करके भाववाचक संज्ञा व्युत्पन्न की जाती है। ये रूप अत्यन्त विरल हैं। केवल एक उदाहरण मिला है :—

√जर्- +{-आपट्-}+{-उ}=/जरापटु/ 'ईर्ष्या, जलन'
यह रूप पुल्लिङ्ग है।

(३) {-आबट्-}+{-इ} : इस प्रत्यय का योग भी क्रिया-धातु के साथ होता है। व्युत्पन्न रूप भाववाचक संज्ञा (स्त्री०) होते हैं। उदाहरण :—

√कस्- से /कसाबटि/ 'कसावट' √कढ़- से /कढ़ावटि/ 'कढ़ावट' √खिल्- से /खिलाबटि/ 'खिलावट' √खुल्- से /खुलाबटि/ 'सुन्दरता' √गिर- से /गिराबटि/ 'गिरावट'।

(४) {-आबत्-}+{-ई} : इस प्रत्यय का योग क्रिया-धातु के साथ होता है। इससे भी स्त्री० भाववाचक संज्ञा रूप व्युत्पन्न होता है। ये रूप अत्यन्त विरल हैं।

√कह्-+{-आबत्-}~{-नाबत्-}+{-इ}=/कहाबति/~/कहनाबति/ 'कहना या कहावत'।

(५) {-आमन्-} के अर्थ की दृष्टि से दो भेद हो जाते हैं—एक स्थानवाचक संज्ञा, तथा वह क्रिया विशेष।

(i) {-आमन्-}+{-इ}—स्थानार्थक—√रह्-+{-आमन्-}+{-इ}=/रहामनि/ 'वह स्थान जहाँ रहा जाता है, पर रूढ़ार्थ में वह स्थान जहाँ पशु बैठते हैं'।

(ii) {-आमन्-}+{-ई}—विशेष क्रियार्थक। जैसे /पैहैरामनी/=(√पैहर्-+{-आमन्-}+{-ई}) 'पहनाने की क्रिया। रूढ़ार्थ में भाई बहन को 'भात' देते समय जो कपड़े मान्य-पक्ष को पहनाता है वह कार्य; अथवा तीर्थ से लौटने पर तीर्थयात्री को कपड़े पहनाने की क्रिया'। इसी प्रकार √उठा-+{-आमन्-}+{-ई}=/उठामनी/ 'सामान्य रूप से उठाने की क्रिया, रूढ़ार्थ में मुर्दे को उठाने की क्रिया।'

(६) {-आहट्}+{-उ}—इसके प्रयोग की स्थितियाँ इस प्रकार हैं :—

(a) विशेषण+{-आहट्-}+{-उ}=भाववाचक पुल्लिङ्ग संज्ञा। जैसे—/करब्-/+{-आहट्-}+{-उ}=/करवाहटु/ 'कड़वाहट' /किसकिस्-/+{-आहट्-}+{-उ}=/किसकिसाहटु/ 'किसकिसाहट'।

(b) क्रिया+{-आहट्-}+{-उ}=भाववाचक पुल्लिङ्ग संज्ञा। जैसे √घबरा-+{-आहट्-}+{-उ}=/घटराहटु/ 'घबराहट'।

(७) {-अक्कड़-}+{-उ}~{-अ} : इसके संयोग क्रिया धातु से आदत का अर्थ देने वाले स्त्री० या पु० विशेषण पदों की व्युत्पत्ति होती है। इसके उदाहरण ये हैं—√पी-+{-अक्कड़-}+{-उ}=/पिअक्कड़ु/~/पिबक्कड़ु/ 'पीने वाला, रूढ़ार्थ में वह व्यक्ति जिसे शराब पीने की आदत हो गई है'। इसी प्रकार /घुमक्कड़ु/=(√घूम्-+{-अक्कड़-}+{-उ}) 'घूमने की आदत वाला'।

(८) {-अप्पन्-}+{-उ} : इसका संयोग केवल विशेषण के साथ होता है। इसके संयोग से भाववाचक संज्ञा व्युत्पन्न होती है। जैसे—/बड़प्पनु/=(/बड़-/+{-अप्पन्-}+{-उ}) 'बड़प्पन'।

२.२३. **आवृत्ति पर आधारित रूप**—कुछ रूप आवृत्ति के आधार पर ही व्युत्पन्न होते हैं। इस प्रकार आवृति भी एक पदग्राम माना जा सकता है। इस शीर्षक के अन्तर्गत आवृति के रूप और प्रयोगों का विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसके उपविभाग 'आवृति से संज्ञा की व्युत्पत्ति' तथा 'आवृति से विशेषण की व्युत्पत्ति' के रूप में किये गये हैं। इस आवृति पदग्राम के लिए {R} चिह्न का प्रयोग किया गया है।

२.२३.१. संज्ञा की व्युत्पत्ति

क १—संज्ञापदों की आवृति—इस क्रम में पहला पद विशेषण बनकर दूसरे को संज्ञा पद के रूप में छोड़ देता है। /घर-घर/ 'प्रत्येक घर' /फूल-फूल/ 'केवल फूल'। {√+आ+√+ई} के क्रम में भी व्युत्पत्ति होती है : /सरमा-सरमी/ 'शर्म' /झेंपा-झेंपी/ 'झेंप'।

क २—ध्वन्यात्मक शब्दों की आवृति—लड़ाई या हर समय कुछ न कुछ कहते रहने की आवृत्ति, जिसका सुनने वाले के लिए कोई विशेष अर्थ न हो, के अर्थ-द्योतन के लिए कुछ ध्वन्यात्मक शब्दों की आवृति से संज्ञा शब्द व्युत्पन्न होते हैं।

/काँइ-काँइँ/ 'लड़ाई' /खाँइ-खाँइ/ 'किसी बुड्ढे आदमी या स्त्री का कुछ न कुछ कहते रहना' /चाँइ-चाँइँ/, /झाँइ-झाँइँ/, /टाँइँ-टाँइँ/, /फाँइ-फाँइ/ 'वृद्धावस्था में विशेष तृष्णा के कारण अधिक सरगर्मी, /भाँइ-भाँइ/ 'भयंकरता द्योतक शब्द', /साँइ-साँइँ/ 'निर्जनता द्योतक शब्द'। इन शब्दों का प्रयोग संज्ञा के स्थानापन्न रूप में होता है।—मति करौ। की स्थिति में /काम/ 'कार्य' या अन्य कोई शब्द आ सकता है और उक्त सूची में से कोई भी शब्द प्रयुक्त हो सकता है। परसर्गों के पूर्व भी इनका प्रयोग संज्ञावत होता है :—ते की स्थिति में संज्ञा शब्द और उक्त शब्द आ सकते हैं : /घरते/ 'घर से' /काँइँ-काँइँ ते/ 'लड़ाई से'। इसी प्रकार के अन्य शब्द /रें-रें/ 'बच्चे का धीरे-धीरे रोते रहना' /रें-रें खें-खें/ 'अशान्ति' /घिचिर-पिचिर/ 'भीड़', इसी अर्थ में /घिचि-पिचि/। काना-फूसी के अर्थ में /खुसुर-पुसुर/ शब्द चलता है।

ख—सर्वनामों की आवृति से संज्ञा—इस प्रकार का एक प्रयोग मिलता है। /तू-तू मैं-मैं/ 'लड़ाई'—मति करै। की स्थिति में /लड़ाई/ तथा उक्त शब्द आ सकते हैं। पर लड़ाई की भाँति इस गठन के अन्य रूप नहीं चलते।

ग—विशेषणों की आवृति से संज्ञा—विशेषण द्वित्व संज्ञावत् प्रयुक्त हो सकते हैं। जैसे /अच्छे-अच्छे/, /बड़े-बड़े/, /छोटे-छोटे/ आदि। ये रूप बहुवचन होते हैं।

दोनों बार बहुवचन {-ए} का संयोग रहता है। विशेष्य के प्रतिनिधि के रूप में सम्भवतः द्वितीय पद रहता है—/अच्छे आदिमी देखिलए/ 'अच्छे आदमी देख लिए' तथा /अच्छे अच्छे देखिलए/ दोनों समान हैं। उदाहरण ये हैं:—

/हमनें अच्छे-अच्छे देखि लए/ 'हमने अच्छे-अच्छों को देख लिया।'

/अच्छे-अच्छेन्नै जि कामु करिकैं देखि लीयौ/ 'अच्छे अच्छों ने यह काम करके देख लिया।'

/बड़े-बड़े ऊपर बैठिंगे और छोटे-छोटे नीचैं/ 'बड़े-बड़े ऊपर बैठेंगे और छोटे-छोटे नीचे।

विशेषणों की व्युत्पत्ति {√+आ+ √+ई} क्रम में भी हो सकती है : /गरमागरमी/ 'क्रोध, उत्तेजना' /नबादसी/ 'गुंजाइश'।

घ—क्रियाओं की आवृति—इसके निम्नलिखित रूप मिलते हैं:—

(a) **क्रियार्थक संज्ञाओं की आवृति**—यह आवृति एक ही क्रिया की नहीं होती, दो भिन्न क्रियाओं की होती है—/लैन-दैन/+{-उ}=संज्ञा; /खान-पान्-/+{-उ}= संज्ञा 'खाना-पीना'। एक क्रम यह भी है : /√+औ+√+औ/ : /आनौं-जानौं/— 'आना-जाना'। {-व-} पर आधारित क्रियार्थक संज्ञाओं की भी इस प्रकार की आवृति मिलती है : /खाइबौ-पीबौ/ 'खाना-पीना' /हँसिबौ-बोलिबौ/ 'हँसना-बोलना'। ये सभी रूप संज्ञा की स्थितियों में प्रयुक्त हो सकते हैं।

(b) **क्रिया धातुओं की आवृति**—दो समान अर्थवाली या भिन्न अर्थ वाली धातुओं की आवृति से संज्ञा-पद व्युत्पन्न हो सकते हैं। इस रूप रचना का क्रम इस प्रकार रहता है : {√+-अ-+√+-अ-} : उदाहरण:—

/फार-तोर/ 'फैसला' /काट-छाँट/ 'काट-छाँट' /कूद-फाँद/ 'कूदना-फाँदना' /उछर-कूद/ 'उछल-कूद' /घेर-बाँध/ 'घेरना-बाँधना' /उखार-पछार/ 'उखाड़-पछाड़' /ताक-झाँक/ 'ताक-झाँक' ये रूप स्त्रीलिङ्ग हैं।

धातु रूपों की आवृति का एक दूसरा क्रम यह है : {√+आ+√ई} ये रूप भी स्त्रीलिङ्ग हैं और संज्ञावत् प्रयुक्त होते हैं। उदाहरण:—

/उठा-बैठी/ 'उठना-बैठना' /बैठा-उठी/ 'बैठा-उठी' /लिखा-पढ़ी/ 'लेख' /पढ़ा-लिखी/ 'पढ़ना-लिखना' /लेबा-देई/ 'लैन दैन' /धरा-उठाई/ 'प्रयत्न' /सोआ-बैठी/ 'सोना-बैठना' /आबा-जाई/ 'आना-जाना' /कहा-सुनी/ 'कहना-सुनना' /कटा-छनी/ 'झगड़ा' /कूदा-फाँदी/ 'कूदा-फाँदी' /उछरा-कूदी/ 'उछल-कूद' /खाबा-पीई/ 'खाना-पीना'।

ये उदाहरण दो भिन्न धातुओं के हैं। इसी गठन में एक ही धातु में दोनों बात आ सकती है। उदाहरण:—

/उखरा-उखरी/ 'क्रोधपूर्ण वार्तालाप' /उड़ा-उड़ी/ 'उड़ा-उड़ी' /उतरा-उतरी/ 'उतरना' /गिना-गिनी/ 'गिनना' /घटा-घटी/ 'घटना'।

(c) **वर्त० कृद० की आवृति**—इसकी आवृति के रूप अत्यन्त विरल हैं। इसका क्रम इस प्रकार मिलता है—{√+त्+इ~अ+√+त्+इ~अ}। उदाहरण /लिखति-पढ़ति/ 'लिखना-पढ़ना, रूढ़ार्थ में कर्ज़ा लेते समय की लिखा-पढ़ी'। /घटती-बढ़ती/ 'अवनति-उन्नति'।

(d) **भूत कृद० की आवृति**—इनकी आवृति से भी संज्ञावत् पद व्युत्पन्न होते हैं। उदाहरण :—

/कर्यौ-धर्यौ मट्टी है गौ/ 'करा-धरा मिट्टी हो गया'।

/सबु खायौ-पीयौ निकरि आयौ/ 'सब खाना-पीना निकल आया'।

अन्य रूप /आए-गए/ 'मेहमान' जैसे हैं। इनका अर्थ भिन्न हो जाता है।

(e) **सामान्य तथा प्रेरणार्थक भूत० कृदन्तों की आवृति**—इस प्रक्रिया से भी ऊपर के रूपों के समान संज्ञावत् प्रयुक्त होने वाले पदों की व्युत्पत्ति होती है। जैसे : /कर्यौ-करायौ/ 'किया-कराया' /पढ़िऔ-पढ़ायौ/ 'पढ़ा-पढ़ाया' आदि।

(f) कुछ आवृति क्रमों में धातु भी कुछ परिवर्तित हो जाती है। जैसे : /खेंच-खाँच/ 'खींच-खाँच' /सींच-साँच/ 'संचित करना' /होंत-हाँमत/ 'होते होते'।

२.२३.२. **विशेषणों की व्युत्पत्ति**—आवृति से विशेषणों की व्युत्पत्ति निम्नलिखित रूपों में होती है:—

क—ध्वन्यात्मक आवृति—इसका गठन इस प्रकार है : {√+अ+√+औ} पु० तथा {√+अ+√+ई} स्त्री०। उदाहरण—/कटकटौ/ 'उस वृद्ध के लिए विशेषण जो बुड्ढा होते हुए भी शिथिल नहीं हुआ' /गिलगिलौ/ 'उस वस्तु का विशेषण जो छूने में अत्यन्त कोमल है' /गुदगुदौ/ 'गुदगुदा' /किरकिरौ/ 'उस वस्तु का विशेषण जो मिट्टी से युक्त है' /झिरझिरौ/ 'झीना' /चिड़चिड़ौ/ 'चिड़चिड़ा' /दरदरौ/ 'मोटे आटे का विशेषण' /चहचहौ/ 'गहरे रंग का विशेषण'।

ख—संज्ञा पदों की आवृति—इस प्रकार की आवृति में पहले पद के अर्थ में विशेषत्व समाविष्ट हो जाता है, तथा दूसरे संज्ञा पद का विशेषण बन जाता है। उदाहरण :—

/फूल-फूल लै लेउ/	'केवल फूल ले लो'	{√+√}
/आदिमी-आदिमी बाहिर ऐं/	'केवल आदमी बाहर हैं'	{√+√}
/बच्चा-बच्चा खेलौ/	'केवल बच्चे खेलें'	{√+√}

ग—विशेषणों की आवृति—इस क्रम से भी पहला विशेषण 'केवल' का अर्थ व्यक्त करता है, दूसरा संज्ञा पद का प्रतिनिधित्व करता है :—

/अच्छे-अच्छे लै लेउ/ 'केवल अच्छे ले लो' {√+√}
/बुरे-बुरे छोड़ि दै/ 'केवल बुरे छोड़ दो' {√−√}

एक और अर्थ इस आवृति से व्यक्त होता है : /हरे-हरे पत्ता/ 'विशेष हरे पत्ते' /लाल् लाल कौंपल/ 'विशेष या सुन्दर कोंपलें'। इससे विशेषता व्यक्त होती है। इस आवृति में कुछ सन्देह का भाव भी उत्पन्न होता है : पूर्ण निश्चय का अभाव— /लाल-लाल/ 'कुछ-कुछ लाल' /गोरौ-गोरौ/ 'प्राय: गोरा'।

२.२४. इस शीर्षक के अन्तर्गत उन रूपों पर विचार किया गया है जिनकी रचना जटिल है। इस रचना में एक से अधिक पद-ग्राम आ सकते हैं और अन्त में प्रत्यय ग्रहण करके संज्ञा या विशेषण के रूप में ढल जाते हैं। ये एक प्रकार से संज्ञा अथवा विशेषणों के स्थानापन्न पद-ग्राम गुच्छ हैं।

२.२४.१. संज्ञाओं की जटिल रचना

क. कुछ ऐसे गुच्छ हैं जहाँ संयोजक -औरु- का प्रयोग होता है : {√+औरु+√} /मैं औरु तू/ 'मैं और तू' /घोड़ा औरु घोड़ी/ 'घोड़े और घोड़ी'। ये गुच्छ रूप बहुवचन संज्ञाओं के स्थानापन्न हैं। -औरु- तथा विभाजक /+/ के बिना भी संज्ञा गुच्छ घटित होते हैं। ऐसे प्रयोग प्रचुर मात्रा में बोली में मिलते हैं : /मा-बाप/ 'मा-बाप' /घर-कुटमु/ 'घर-कुटुम्ब' /पौहे-जेंगरे/ 'पशु-वत्स' /घर-बारु/ 'घरबार' /घर-गामु/ 'घर-गाँव'। यह प्रवृत्ति प्रबल है। अन्त के प्रत्यय के रूप वचन का द्योतन निर्भर करता है। ये गुच्छ भिन्नार्थक शब्दों के हैं। कुछ समानार्थक पद भी गुच्छ के रूप में मिलते हैं : /किस्सा-कहानी/ 'क़िस्सा-कहानी' /साग-सब्जी/ 'शाक-भाजी' /कपड़ा-लत्ता/ 'कपड़े' /बाल-बच्चे/ 'बाल-बच्चे' /दिन-दहाड़ौ/ 'दिन' /चीज-बत्त/ 'चीज़-वस्तु' /गामु घोसु/ 'गाँव-घोष'। ये अनुवाद या सहचर शब्दों के गुच्छ हैं।

ख—विशेषणवत्—कुछ ऐसे संज्ञा-गुच्छ हैं जिनमें पहला संज्ञा पद विशेषणवत प्रयुक्त होता है : /रेलगाड़ी/ 'रेल पर चलने वाली गाड़ी' /रसोईघरु/ 'रसोई का घर' /पनचक्की/ 'पानी से चलने वाली चक्की' /सूर्जमुखी/ 'सूरज के समान मुखवाली (एक फूल)' /रसगुल्ला/ 'रस का गोला' /मोरपंख/ 'मोर का पंखा' /गुरभाई/ 'गुरुभाई'।

ग १—भिन्न अर्थ—कुछ ऐसे गुच्छ हैं, जिनमें दोनों ही पद किसी अव्यक्त विशेष्य के विशेषण के समान प्रयुक्त होते हैं और व्यञ्जित अर्थ संज्ञा होती है। जैसे : /गऊधूरि/ 'गायों के लौटने का समय' /गुरचनी/ 'गेहूँ और चने का मिश्रित रूप' /मोतियाबिंदु/ 'आँखों का एक रोग' /रामराज/ 'सुख' /फीलपाव/ 'एक रोग' (वैसे हाथी का पाँव), /हतकड़ी/ 'हाथ की कड़ी, वैसे पुलिस के द्वारा प्रयुक्त हथकड़ी' /दही-बड़ा/ 'एक प्रकार की चाट'।

ग २—विशेषण+संज्ञा—इस प्रकार का पूरा गुच्छ संज्ञा पदों का स्थानापन्न होता है। उदाहरण—/महाजन/ 'ब्याज पर रुपया देनेवाला' /भलौमान्सु/ 'भला आदमी' /पीतंबरु/ 'पीला अम्बर, वस्त्र' /लीलकंठु/ 'नीले कण्ठ वाला पक्षी' /ममिया सुसुरु/ 'पत्नी का मामा'। संज्ञावाची विशेषणों से ऐसे गुच्छ विशेष रूप से घटित होते हैं— /पैंहैंसेरी/ 'पाँच सेर का बाट' /दस्सेरा/ 'दस सेर का बाट' /अस्सेरा/ 'आध सेर का बाट' /पौसेरा/ 'पाव सेर का बाट' /चौखानौं/ 'चार खाने वाला कपड़ा' /दुसूता/ 'एक प्रकार का कपड़ा' /तिमँजिला/ 'तीन मंजिल का मकान' /तिरकोन/ 'तीन कोनेवाला खाद्य पदार्थ' /बारैहसींगा/ 'बारह सींग वाला हरिण' /तिपाई/ 'तीन पैर वाली' /चारपाई/ 'खाट' /इक्अन्नी/ 'एक आना, सिक्का' /दुअन्नी/ 'दो आने वाला सिक्का' /चौन्नी/ 'चार आने वाला सिक्का' /अठन्नी/ 'आठ आने वाला सिक्का'।

घ—विशेषण+संज्ञा+प्रत्यय—कुछ भाववाचक संज्ञा भी {-अई} के योग से व्युत्पन्न होती हैं—/बुरमनई/=विशे०+संज्ञा+{-अई}='दुश्मनी' आदि। पर ऐसे रूप अत्यन्त विरल हैं। /भलमन्सई/ 'भला मानसपन' /भलमन्साहत/ 'भलमनसाहत'।

ङ—संज्ञा+क्रिया=संज्ञा—/पतझरु/ 'पतछड़' /दिस निकारौ/ 'देश से निकाला' /जेबकटु/ 'जेब काटने वाला' /कनकटा/ 'कान काटने वाला' /नकटा/ 'जिसकी नाक कटी हो' /कनफटा/ 'वह योगी जिसके कान फटे हों' /फुलझड़ी/ 'आतिशबाज़ी'।

२.२.४२. विशेषणों की जटिल रचना—

क—विशेषण+सहचर विशेषण=विशेषार्थक विशेषण—/कारौ-स्याहु/ या /कारौ-किस्टि/ 'बहुत काला' /लीलौ-झक्क/ 'बहुत नीला' /लाल-सुरक/ 'बहुत लाल' /पीरौ-जर्द/ 'बहुत पीला' /सुपेदु-चिट्टान/ 'बहुत सफ़ेद' /हर्यौ-कच्च/ 'बहुत हरा' आदि।

ख. संज्ञा+{-क-}+{-औ}~{-ए}~{-ई}=विशेषण। जैसे :—

/घर कौ/ 'घर का' /घर के/ 'घर के' /घर की/ 'घर की'। ये रूप प्रायः सभी संज्ञाओं के साथ घटित हो सकते हैं।

ग. क्रि० वि०+{-क-}+{-औ}~{-ए}~{-ई}=विशेषण। जैसे :—

/म्वां कौ/ 'वहाँ का' /यांके/ 'यहाँ के' /कहां की/ 'कहाँ की' आदि।

घ. विशेषण+संज्ञा+{लि० वच०}=विशेषण :—

/करमुँहाँ/ 'काले मुँह वाला' /करमुँही/ 'काले मुँह वाली' /ललमुँहाँ/ 'लाल मुँह वाला' /बड़दन्ता/ 'बड़े दाँतों वाला' /लँबचेंचा/ 'लंबी चौंच वाला' /बड़कन्ना/ 'बड़े कान वाला' /दुहतो/ 'दो हाथ का' /चौहतो/ 'चार हाथ का' /तिकौनौं/ 'तीन कोनों वाला' /तिकौनीं/ 'तीन कोनों वाली'।

ङ. विशेषण+क्रिया+{-आ}=विशेषण। जैसे—

/बुर-बोला/ 'बुरा बोलने वाला' /हँसि-बोला/ 'हँसकर बोलने वाला' /मिठ-बोला/ 'मीठा बोलने वाला'। इस प्रकार के रूप कुछ विरल हैं।

च. विशेषण+मू० कृ०+{-औ} {-ए} {-ई}=विशेषण। जैसे—

/अधमर्‍यौ/ 'आधा मरा हुआ' /अधजैंयौ/ 'आधा खाया हुआ' /अधपक्यौ/ 'आधा पका हुआ' /अधमरे/ 'आधे मरे हुए' /अधमरी/ 'आधा मरी हुई' /सुखमँज/ 'सूखा मँजा हुआ'।

छ. संज्ञा+विशेषण+{-औ}~{-ए}~{-ई}=विशेषण। जैसे—

/मटमैलौ/ 'मिट्टी के समान मैला' /धूमघुमारौ/ 'धुएँ के समान रंगवाला' /मटमैले/ 'मिट्टी के समान मैले' /मटमैली/ स्त्री० एक० बहु०।

ज. संज्ञा+क्रिया+मू० क्रि०+{लिङ्ग वचन}=विशेषण। जैसे—

/मुँड़खुल्लो/ 'सिर खोलने वाली' /करमफूट/ 'जिसका भाग्य फूटा हुआ हो' /खटमुँतना/ 'खाट में मूँतने वाला' /घरघुसना/ 'घर में घुसा रहने वाला' /मुँड़चिरा/ 'सिर को चीरने वाला, हठी' /म्हौफट्ट/ 'जो मुँह में आये सो कहने वाला' /बतबनाँ/ 'बात बनाने वाला'।

झ. क्रिया—/कपड़ छनु/ 'कपड़े में छना हुआ' संज्ञा+प्रत्यय=विशेषण। जैसे—

/छुई छींट/ 'साफ़' /हँस-मुखु/ 'हँसमुख'।

ञ. मू० क्रि०+तुमन्त+{लि० वच०}=विशेषण। जैसे—

/कटखनौ/, /कटखने/, /कटखनी/ 'काट खाने वाले'

/मरखनौ/, /मरखने/, /मरखनी/ 'मार खाने वाले'

/फारिखानी/ 'फाड़ कर खा जाने वाली'।

२.२.४३. **परसर्गों की जटिल रचना**—परसर्गों के स्थानापन्न कुछ जटिल गुच्छ प्रयुक्त हो सकते हैं। इन जटिल रूपों पर नीचे विचार किया गया है। ये संयुक्त रूप परसर्गों के साथ संज्ञाओं या संज्ञावत प्रयुक्त विशेषणों तथा क्रियाओं के संयोग से व्युत्पन्न होते हैं। इनका संगठन बहुधा /के/ तथा /ति/~/सि/ के आधार पर होता है।

१. /के/ ({क्-}+{-ए१})+/संग/, /हात/, /पास्-/, /बल/, /जगै/, /भीतर/, /बाहिर/, /ओर/, /खातिर/, और /तरै/ के संयोग से संयुक्त परसर्गों की व्युत्पत्ति होती है। सम्बन्धसूचक विभक्ति /रे/=({-र-}+{-ए१}) के साथ भी इनका प्रयोग सम्भव है। इनके उदाहरण ये हैं : /राम के संग/ 'राम के साथ' (along with), /छोरा के हात/ 'लड़के के द्वारा' (through), /खेत के पास/ 'खेत के पास' (near), /मूँड़ के बल/ 'सिर के बल' (downwards), /पटबारी की जगै/

'पटवारी की जगह' /घर के भीतर/ 'घर में' (in), /गाम के बाहिर/ 'गाँव के बाहर' (out), /ताल की ओर/ 'तालाब की तरफ़' (towards), /जाकी खातिर/ 'इसके लिए) (for the sake of), /कल्लि की तरैं/ 'कल की तरह' (like)।

इनमें से दो उदाहरण में /-के/ का लोप भी स्वतन्त्र वैविध्य के रूप में हो जाता है। जैसे—/घर के भीतर/=/घर भीतर/ 'घर के भीतर' /गाम के बाहिर/=/गाम बाहिर/ 'गाँव के बाहर'। एक शब्द /माऊँ/ का भी प्रयोग बिना /के/ के मिलता है। जैसे—/घर माऊँ/ 'घर की ओर'। एक विरल रूप /के ताँईं/ भी मिलता है : /छोरा के ताँईं/ 'छोरा के लिए'।

२. /के/+**क्रिया**—इस प्रकार के भी रूप मिलते हैं। इस तरह को रूपों के अन्त में {-ऐं} का प्रयोग होता है। ये रूप इस प्रकार हैं—/के/ ({-क-}+{-ए}+/काज-/+{-ऐं}=/के काजैं/ 'के लिए' /के/+/लैं/ (√लै-+{-ऐं}) /केलैं/ 'के लिए' /के/+/मारैं/ (√मार-+{-ऐं})=/कि मारैं/ 'के कारण' (on account of)।

३. /के/ के साथ कुछ संज्ञा अथवा क्रिया के रूप {-ऐं} प्रत्यय के साथ भी आते हैं। ऊपर के उदाहरणों में इस प्रत्यय से रहित रूप प्रयुक्त हुए हैं। जैसे : /के/+/भरोस्-/ 'भरोसा'+{-ऐं}=/के भरोसैं/ '(उस) पर भरोसा करके' यह रूप संज्ञा से व्युत्पन्न है। इसी प्रकार धातु में इस प्रत्यय को जोड़ कर रूप घटित किए जाते हैं—/कि-/+√बदल-+{-ए}=/के बदले/ '(उस) के बदले में' /के/+√जान-+{-ऐं}=/के जानें/ 'के लिए का अर्थ' जैसे—/ब्वाके जानें तौ मैं मरिगौ/ 'उसके लेखे तो मैं मर गया'। एक संज्ञा पद ऐसा भी है जिसके साथ न /के/ का प्रयोग होता है और न {-ऐं} का : /तर/ 'तल' /मूँड़तर/ 'सिर के नीचे'।

४. /के/ के साथ क्रि० विशेषणों का प्रयोग भी होता है। इनमें भी {-ऐं} प्रत्यय का संयोग होता है। उदाहरण—/के/+/नीच्-/+{-ऐं}=/के नीचें/ '(उस) के नीचें' /के/+/आग्-/+{-ऐं}=/के आगैं/ 'के आगे' /के/+/पीछ-/+{-ऐं}=/कि पीछैं/ 'के पीछें' /कि/+/पैहैल्-/+{-ऐं}=/के पैहैलैं/ 'के पहले'। वस्तुतः ये रूप क्रिया विशेषण के हैं, पर /के/ के साथ प्रयुक्त होकर ये परसर्गवत् प्रयुक्त होते हैं।

कुछ रूपों में /के/ नहीं रहता : /पींठि पीछें/ 'पीठ के पीछे' /आँखिन आगैं/ 'आँखों के आगे'।

५. /ति/ के साथ भी उक्त रूप घटित हो सकते हैं। /ति आगें/=(/ति/+/-आग्-/+{-ऐं}=/ति पीछे/=(/ति/+/पीछ्-/+{-ऐं}) 'से पीछे' /आइबे ते पैहैलैं/ 'आने से पहले' /घर ते बाहिर/ 'घर से बाहर'।

६. कुछ परसर्ग दूसरे परसर्गों से मिल कर प्रयुक्त होते हैं। इसके उदाहरण इस प्रकार हैं :—

१. /मैं/+/ति/=/मैंते/ 'में से'

/घर में ते निकर्यौ/ 'घर में से निकला'।

/बाग मैंते बोल्तु ऐ/ 'बाग में से बोलता है'।

२. /पै/+/ति/=/पैते/ 'पर से'।

/बु छत्ति पैते बोल्यौ/ 'वह छत पर से बोला'।

/बु घर पैते अवाछैं त्वै/ 'वह घर पर से आवाज़ देता है'।

३

क्रिया-विचार

३.०. **प्रस्तुत** अध्याय में क्रिया की धातुओं, उनके साथ प्रत्ययों के संयोग के क्रम, इस क्रम से विभिन्न रूपों की संरचना, संयुक्त क्रिया-रूपों, तथा अन्य पदग्रामों से क्रिया की व्युत्पत्ति पर विचार किया गया है। अन्त में क्रिया विशेषणों के रूप, उनकी रचना और व्युत्पत्ति का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

३.१. धातु:—

क्रिया की धातु का प्रयोग वर्त० कृ० पदरुपांश {-त} से अथवा क्रियार्थक संज्ञा प्रत्यय {-इअ} अथवा {-न-} से पूर्व होता है। रूप-गठन के अनुसार मथुरा ज़िले की मूल क्रिया-धातुओं का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है।

३.११. एकाक्षरात्मक धातुएँ :—

अऽ √आ–'आना'

ह अऽ √खा–'आना' √पी–'पीना' √चू–'चूना' लै 'लेना'
√खो–'खोना'

अ/ह √अट्–'भरना' √उठ्–'उठना'

अऽह √ऊक्–'टोकना' √ओढ़–'ओढ़ना' √ओट्–'ओटना'
√औंध्–'औंधना'

ह अ / ह √तक्–'तकना' √लिख–'लिखना' √खुल–'खुलना'

ह अऽह √खाँस्–'खाँसना' √सील्–'सीलना' √भूल–'भूलना'
√साल्–'सालना' √पैर–'तैरना' √लोट्–'लेटना'

३.१२. द्वयक्षरात्मक धातुएँ :—

ह अ/अ/ √तुइ–'पशुओं का समय से पूर्व व्याजाना'
√पइ–'रोटपअना'

अ/ह अ/ह √अखर–'अखरना' √उखर–'उखड़ना'

ह अ/ह अ/ह√पसर–'पसरना' √पिघिल–'पिघलना'।

√पसुर्–'पशुओं का दूध देने की स्थिति में आना'

√मुकर–'मुकरना'

३.१३. धातुओं के रूपगठन में परिवर्तन:—मूलतः मथुरा ज़िले की धातुएँ द्वयक्षरात्मक से अधिक नहीं होतीं। इनमें तीन प्रकार के विकार किए जा सकते हैं—

क—स्वर परिवर्तन

ख—व्यञ्जन-परिवर्तन

ग—प्रेरणार्थक प्रत्यय {-आ}। अथवा द्वितीय प्रेरणार्थक प्रत्यय {-अव्वा}। को योग। इससे एकाक्षरात्मक मूल धातुएँ क्रमशः द्वयक्षरात्मक और तीन अक्षर वाली तथा द्वयक्षरात्मक मूल धातुएँ क्रमशः तीन अक्षर वाली तथा चार अक्षर वाली हो जाती हैं। जैसे—

मूल	प्रथम प्रेरणा प्रत्यय से युक्त	द्वि० प्रे० प्रत्यय से युक्त
अ/ह √उठ्–	आ\ह अऽ √उठा–	अ/ह अ/ह अऽ √उठबा–
अ/ह अ/ह √पिघिल्–	अ/ ह अ/ह अऽ √पिघिला–	आ। ह आ\ह आ\ह अऽ √पिघिलबा–

३.१३.१. स्वर-परिवर्तन—कुछ मूल एकाक्षरात्मक धातुओं के मूल ह्रस्व स्वर को दीर्घ कर के तथा द्वयक्षरात्मक धातुओं के द्वितीय ह्रस्व स्वर को दीर्घ करके नवीन धातु-रूप प्राप्त किये जाते हैं। अर्थ की दृष्टि से इस परिवर्तन के फलस्वरूप दो अन्तर उपस्थित हो जाते हैं—एक—मूल कर्मवाच्य धातु भाववाच्य हो जाती है और –दो–मूल अकर्मक धातु सकर्मक हो जाती है।

क—एकाक्षरात्मक धातुओं का स्वर-परिवर्तन

अ7आ	√गढ़–'गढ़ना'	√गाढ़–'गाढ़ना'
	√थम्–'रुकना'	√थाम्–'रोकना'
	√दब्–'दबना'	√दाब्–'दबाना'
	√पर–'पलना'	√पार्–'पालना'
	√फट्–'फटना'	√फार–'फाड़ना'
	√मँज्–'मँजना'	√माँज–'माँजना'
	√सल्–'खाट का पलना'	√साल्–'सालना'
	√रह–'रहना'	√राख–'रखना'

उ7ओ	√खुल्–'खुलना'	√खोल्–'खोलना'
	√घुर्–'घुलना'	√घोर्–'घोलना'
	√जुर्–'जुड़ना'	√जोर–'जोड़ना'
	√तुल्–'तुलना'	√तोल्–'तोलना'
	√गुद्–'गुदना'	√गोद्–'गोदना'
उ7ऊ	√पुर–'पुरना'	√पूर–'पूरना'
	√उक्–चूकजाना'	√ऊक्–'चुका देना'
	√फुँक्–'फुँकना'	√फूँक्–'फूँकना'
	√भुन्–'भुनना'	√भून्–'भूनना'
उँ7ओं	√रुँद्–'कुचल जाना'	√रौंद्–'कुचल देना'
इ7ए	√सिक्–'सिकना'	√सेक्–'सेकना'
	√गिर–'गिरना'	√गेर्–'गिराना'
	√फिँक्–'फिकना'	√फेंक्–'फेंकना'
	√घिर–'घिरना'	√घेर्–'घेरना'
	√फिर–'फिरना'	√फेर्–'फेरना'
	√बिक्–'बिकरा'	√बेच्–'बेचना'
इ7ई	√लिप्–'लिपना'	√लीप्–'लीपना'
	√चिर्–'चिरना'	√चीर्–'चीरना'
	√पिट्–'पिटना'	√पीट्–'पीटना'
	√पिस्–'पिसना'	√पीस्–'पीसना'

ह्रस्व स्वर के दीर्घीकरण के अतिरिक्त एक और परिवर्तन मिलता है। उच्च स्वर /ई/ निम्नतर स्वर /ए/ में परिवर्तित हो जाता है और उच्च /ऊ/ निम्नतर /ओ/ में परिवर्तित हो जाता है। जैसे—

ई7ए	√दीख्–'दीखना'	√देख्–'देखना'
ऊ7ओ	√छूट्–'छूटना'	√छोड़्–'छोड़ना'
	√फूट्–'फूटना'	√फोरें–'फोड़ना'

ऊपर /फूट-/7/फोर-/, /छूट्-/7/छोड़/, /बिक्-/7/बेच्/, और /रह-/7/राख्-/ रूप आये हैं। इस व्यञ्जन परिवर्तन के उदाहरण अत्यन्त विरल हैं। इसमें से।बेक्–। रूप तो कहीं-कहीं प्रचलित भी है।

ख—द्वयक्षरात्मक धातुओं का स्वर-परिवर्तन

मथुरा जिले में मूलतः द्वयक्षरात्मक धातुओं में दोनों स्वर ह्रस्व ही होते हैं।

इनमें से प्रथम स्वर सुरक्षित रहता है। केवल द्वितीय स्वर दीर्घ कर दिया जाता है। द्वितीय स्वर सदा ही -अ- होता है। प्रथम स्वर कोई ह्रस्व स्वर हो सकता है। -अ-7-आ- के उदाहरण ये हैं—

√सँम्हर्–'सँभलना'	√सँम्हार–'सँभालना'
√निकर्–'निकलना'	√निकार्–'निकालना'
√निखर्–'निखरना'	√निखार्–'निखारना'
√नितर्–'नितरना'	√नितार्–'नितारना'
√पसर्–'पसरना'	√पसार्–'पसारना'
√बिगर्–'बिगड़ना'	√बिगार्–'बिगाड़ना'
√बिड़र्–'बिड़रना'	√बिड़ार–'बिड़ारना'
√बुहर्–'बुहरना'	√बुहार्–'बुहारना'

३.१३.२. व्यञ्जन परिवर्तन—व्यञ्जन परिवर्तन में केवल एक प्रवृत्ति मिलती है—ट->-ड़~र। इस परिवर्तन के साथ-ऊ->-ओ-संलग्न रहता है। उदाहरण—

√टूट्—'टूटना'+{-ओ←ऊ-}+{-ड़←-ट}=√तोड्—'तोड़ना'
{-र←-ट}=√तोर्—'तोड़ना'
√छूट्—'छूटना'+{-ओ←ऊ}+{-ड़←ट}=√छोड़—'छोड़ना'
√फूट्—'फूटना'+{-ओ←ऊ}+{-ड़←ट}=√फोड़—'फोड़ना'
{-र्←ट}=√फोर्—'पोड़ना'

इस प्रकार स्वर-परिवर्तन के साथ व्यञ्जन परिवर्तन भी उक्त धातुओं की रूप-रचना में सहायक होता है।

एक व्यञ्जन-परिवर्तन और मिलता है, जिसका कारण पदवैज्ञानिक वितरण की परिस्थितियाँ हैं। √जा—'जाना'√ग्—'जाना'। इनमें से द्वितीय का प्रयोग भूतकालिक कृदन्त प्रत्यय के साथ होता है और प्रथम का अन्यत्र होता है।

३.१४. धातुओं के साथ प्रत्ययों का योग—धातुओं के साथ प्रत्ययों का योग करके प्रेरणार्थकों, क्रियार्थक संज्ञाओं, वर्त० कृदन्तों, भूतकालिक कृदन्तों, पूर्व-कालिक कृदन्तों, आज्ञार्थक तथा मूलकालों की संरचना होती है। इन संरचनात्मक प्रत्ययों पर नीचे विचार किया गया है।

३.१४.१. प्रेरणार्थक रूपों की संरचना—मथुरा जिले की बोली में दो प्रेरणार्थक प्रत्यय मिलता है: प्रथम प्रेरणार्थक: {-आ} तथा द्वितीय प्रेरणार्थक {-बा}। इन प्रत्ययों का संयोग धातुओं के साथ होता है: √+{-आ}=प्रथम प्रेरणार्थक, √+{-बा}=द्वितीय प्रेरणार्थक। इनसे रचित रूपों के उदाहरण—

क—एकाक्षरात्मक धातुएँ

√बन्—'बनना' √बन्+{-आ}=√बना—'बनाना' √बन+{-बा}=√बनबा—'बनवाना

√फैल्—'फैलना' √फैल+{-आ}=√फैला—'फैलाना' √फैल+{-बा}=√फैलबा—'फलवाना'

ख—द्वयक्षरात्मक धातुएँ

√लटक्—'लटकना' √लटक्+{-आ}=√लटका—'लटकाना' √लटक+{-बा}=√लटकबा-।

√पिघिल्—'पिघलना' √पिघिल्+{-आ}=√पिघिला—'पिघलाना' √पिघिल+{-बा}=√पिघलबा-।

एकाक्षरात्मक धातुएँ व्यञ्जनान्त होने पर ऊपर वाले रूप ग्रहण करती हैं। द्वयक्षरात्मक रूपों में द्वितीय प्रेरणार्थक प्रत्यय के साथ प्रथम प्रेरणार्थक का संकुचित रूप चिपका रहता है। जैसे√पिघलबा-=√+{अ}+{-बा}।

कुछ क्रियाओं की धातुओं के चार रूप भी प्राप्त होते हैं। जैसे—

विशेष—

√लद्—	+ /-आ-←-अ-/	=√लाद्—	'लादना'
	+ {-आ}	=√लदा—	'लदाना'
	+ /-अ/+{-बा}	=√लदबा—	'लदवाना'
√दीख्—	+ /-ए-←ई-/	=√देख्—	'देखना'
	+ {-आ-}	=√दिखा—	'दिखाना'
	+ /-अ/+{-बा}	=√दिखबा—	'दिखवाना'

एक तीसरा रूप और मिलता है। दीर्घस्वरान्त एकाक्षरात्मक धातुओं के प्रथम प्रेरणार्थक रूप नहीं मिलते, केवल द्वितीय प्रेरणार्थक रूप ही प्राप्त होते हैं। जैसे—

√गा—'गाना'+/-अ-←-आ-/+{-बा}=√गबा—'गवाना'

√खे—'खेना'+/-इ-←-ए-/+{-बा}=√खिबा—'खिवाना'

कुछ अन्य एकाक्षरात्मक धातुएँ भी हैं, जिनके द्वितीय प्रेरणार्थक रूप बनते तो हैं, पर विशेष प्रचलित नहीं हैं। इनके उदाहरण—

√रह्—+{-बा}=√रहब्बा—'रहवाना'

√पर—+{-बा}=√परबा—'पड़वाना'

एक रूप ऐसा मिलता है जिसमें अर्थ का भेद भी उत्पन्न हो जाता है। √बोल्- उसमें 'बोलना' (to speak) +/उ←ओ/+{-आ}=√बुला—'बुलाना' (to call)। अर्थ में भेद उत्पन्न हो गया है। पर ऐसे रूप अत्यन्त विरल हैं।

व्याकरण की दृष्टि से अकर्मक क्रिया-धातु के तीन रूप विकसित होते हैं—इसमें प्रथम रूप उसे सकर्मक बनाने के लिए, द्वितीय रूप प्रथम प्रेरणार्थ तथा तृतीय रूप द्वितीय प्रेरणार्थक बनाने के लिए होता है। प्रथम रूप की रचना स्वर परिवर्तन के आधार पर होती है (३.१३.१क)। दूसरे की रचना {-आ} के संयोग से होती है। और तीसरा रूप द्वितीय प्रेरणार्थक प्रत्यय से युक्त। सकर्मक धातुएँ केवल प्रथम तथा द्वितीय प्रेरणार्थक रूप में विकसित हो सकती हैं। तृतीय रूप, जो प्रथम प्रेर रूप ग्रहण नहीं करता, ऐसी अकर्मक एकाक्षर धातुओं का है, जिनके सकर्मक रूप आकारान्त हो जाते हैं: √बन्-(अकर्मक) √बना-(सकर्मक), √उठ्-(अकर्मक) √उठा-(सकर्मक)। इनके केवल द्वितीय प्रेरणार्थक रूप ही हो सकते हैं।

३.१४.२. क्रियार्थक संज्ञा—मूल धातुओं अथवा उनके परिवर्तित प्रेर रूपों के साथ क्रियार्थक संज्ञा-प्रत्यय संलग्न करके क्रियार्थक संज्ञा की रचना की जाती है। ये प्रत्यय मथुरा ज़िले की बोली में दो हैं: {-इ ब-} तथा {-न्-}। इनके साथ लिङ्ग वचन प्रत्ययों का योग होता है। इन दोनों प्रत्ययों से घटित रूपों में वैसादृश्य (contrast) है। इनमें {-न्-} वाला रूप विशेषणों का स्थानापन्न हो सकता है। अतः पु० एक {-औ} पु० बहु० {-ए} तथा स्त्री० {-ई} प्रत्ययों से युक्त हो सकता है। पर {-इ ब्-} वाला रूप केवल पु० संज्ञा का स्थानापन्न हो सकता है। अतः केवल पु० एक {-औ} तथा पु० बहु० {-ए} से संयुक्त होता है। इसके साथ स्त्री० प्रत्यय का योग असम्भव है। इस प्रकार इनके वितरण की परिस्थितियों में वैसादृश्य है। {-न्-} के विशेषणवत् प्रयोग ये हैं—/अच्छौ ऐ/ में अच्छा है' में /अच्छौ—/ के स्थान पर /खानौ—/ 'खानेवाला' /खाने—/ 'खानेवाले' तथा /खानी—/ का प्रयोग हो सकता है। इस परिस्थिति में {-इ ब-} वाले रूपों का प्रयोग नहीं हो सकता। इस रूप के पु० बहु० रूपों का प्रयोग भी अत्यन्त विरल है। वैसादृश्य का एक और स्थल है। {-इब-} प्रत्यय वाले रूप तिर्यक प्रत्यय {-ए₁} ग्रहण करते हैं; पर {-न-} के साथ तिर्यक प्रत्यय {-ए₁} का प्रयोग नहीं होता, केवल {-अ} का प्रयोग होता है—जैसे /जाइबे बारौ/ 'जाने वाल' /जान हारौ/ 'जाने वाला'। तीसरा वैसादृश्य परसर्गों के साथ प्रयोग का है: {-इब-} वाली क्रियार्थक संज्ञाओं के तिर्यक रूपों का प्रयोग परसर्गों से पहले हो सकता है, पर {-न} वाले रूपों का नहीं—जैसे /जाइबे कूँ/ 'जाने को' सम्भव है, पर /*जाने कूँ/ सम्भव नहीं है। इस प्रकार संज्ञा रूप में प्रयुक्त होने पर {-न्-} वाले रूप का न

बहु० वच० में प्रयोग हो सकता है और ने {-ए,}=तिर्यक प्रत्यय के साथ परसर्गों के पूर्व। संज्ञा के रूप में इसका प्रयोग केवल एक वचन (-औ) के साथ सम्भव है।

३.१४.३. वर्तमानकालिक कृदन्त—

क्रि० धा०+{-त-}=व० कृ०। इसके पश्चात् {-लि० वच०}: प्रत्ययों का योग किया जाता है: {-औ}=पु० एक०; {-ए}=पु० बहु०; {-ई}=स्त्री एक० {ई}=स्त्री० बहु० इस प्रकार—

क्रि० धा०+{-त्-}+{-औ}=पु० एक०
{-ए}=पु० बहु०
{-ई}=स्त्री० एक०
{-ई}=स्त्री० बहु०

उदाहरण—/देखतौ/ (√देख्+{-त्-}+{-औ} 'देखता' /देखते/=(√देख+{-त-}+{-ए} 'देखते' /देखती/+(√देख+{-त-}+{-ई}) 'देखती' /बहु० वचन स्त्रीलिङ्ग का प्रयोग सामान्यतः नहीं होता। इसी प्रकार अन्य क्रियाओं के रूप घटित हो सकते हैं।

इस घटित रूप के वितरण की परिस्थितियाँ इस प्रकार हैं—

१. यह विशेषण का स्थानापन्न हो सकता है (२.१४.१३)।

२. सम्भावनार्थक प्रयोग भी इसका हो सकता है। इस रूप में इससे बात की समाप्ति नहीं हो सकती। जैसे—/मैं जाँतौ ↑ परि..../ 'मैं जाता, पर..' यदि इस प्रकार के वाक्य से पहले कोई उपवाक्य संकेतार्थक हो तो, इस वर्तमान कृ० से घटित सम्भावना के रूप से वाक्य समाप्त भी हो सकता है: /जौ...तौ मैं जाँतौ ↓/ 'यदि...तो मैं जाता। पु० बहु० में {-ए} तथा स्त्री० में {-ई} प्रयोगों का योग होता है।

३. भूतकालिक अभ्यासजन्य कार्य की सूचना भी देता है:—

/बुआमतौ/ 'वह आया करता था'
/मैं खांतौ/ 'मैं खाया करता था'

किन्तु ये प्रयोग पूर्व पीढ़ियों के वक्ताओं की बोली में मिलते हैं। वर्तमान पीढ़ी इस अर्थ का द्योतन {-औ} के साथ नहीं करती {-ओ} के साथ करती है। /बुआमतौ/ 'वह आया करता था' पर इन दोनों रूपों में अन्तर है। {-औ} वाले रूप से बात का अन्त नहीं होता था। उसके साथ उपवाक्यान्तक /↑/ संयुक्त होता था, पीछे कोई वाक्य संयुक्त रहता था। पर {-ओ} वाले रूप से वाक्य का अन्त सम्भव है। पु० बहु० में {-ए} तथा स्त्री० में {-ए} का प्रयोग होता है।

३.१४.४. भूत० कृदन्त—इसकी संरचना धातु के साथ लिङ्गवचन प्रत्ययों के योग से होती है। {-औ} प्रत्यय ग्रहण करने से पूर्व धातु प्रातपदिक-इ से युक्त हो जाता है।[१] अन्यों के साथ धातु अविकृत रहती है। रचना-क्रम इस प्रकार है—

√+/-इ/+{-औ}={-यौ}=पु० एक० /चल्यौ/ 'चला'

√+ +{-ए} =पु० बहु० /चले/ 'चले'

√+ +{-ई} =स्त्री० एक० /चली/ 'चली'

√+ +{-ई}+(ँ) =स्त्री० बहु० /चलीं/ 'चलीं'।

प्रयोग—वितरण की दृष्टि से ये रूप विशेषण के स्थानापन्न हो सकते हैं। (२.१४.१३) संज्ञा के स्थान पर बहुधा इनके द्वित्व आते हैं/कर्‌यौ-धर्‌यौ/ 'कराधरा'।

३.१४.५. पूर्वकालिक कृदन्त—√+पू० कालिक कृद० {-इ}=पूर्व० कृदन्त। जैसे-/करि/ =(√कर्-+{-इ} 'करके' /जाइ-/=(√जा-+{-इ}) 'जाकर'। यह रूप परसर्ग-सहित और परसर्ग-रहित, दोनों प्रकार से प्रयुक्त हो सकता है। इसके साथ प्रयुक्त होने वाला परसर्ग {-कैं}~{-कै} है। उदाहरण—

/ज्यांते जाइकैं मैं सोइ गौ/ 'यहां से जाकर मैं सो गया'

/रोटी खाइके तू जाइयो/ 'रोटी खाकर तू जाना'

परसर्ग-रहित प्रयोग के उदाहरण ये हैं—

/न्यां थोरी देर बैठि, सबरी बात कैहै, बु चल्योगो/ 'यहाँ थोड़ी देर बैठकर, सारी बात कहकर, वह चला गया'

/बुपानी पी, सैहैर कूं चल्यौ गौ/ 'वह पानी पीकर शहर चला गया'

इस परसर्ग का एक रूप /कैं नैंयां/ भी मिलता है। जैसे—

/घर ते आइकैं नैंयां बु मोते कैहैबे लग्यौ/ 'घर से जाकर वह मुझसे कहने लगा'

/जाइ कै नैंयां, वाह बुलाइ ला/ 'जाकर उसको बुला ला'

पर/-कै नैयां/ का प्रयोग पूर्व पीढ़ियों के वक्ताओं के साथ समाप्त होता जा रहा है। /कैं/ का प्रयोग अधिकांश में लोहबन और सादाबाद की बोली में मिलता है। /के/ का प्रयोग नगर-निवासियों और बरसाना बोली में मिलता है।

३.१४.६. आज्ञार्थक-धातुओं के साथ आज्ञार्थक प्रत्ययों का योग करके आज्ञार्थक रूपों की रचना की जाती है। मध्यम पुरुष और अन्य पुरुष के आज्ञार्थक रूप ही मिलते हैं।—

---

१. इस पर 'संधि-विचार' में विचार किया गया है।

क्रि० धा०+{आज्ञा०}=आज्ञार्थक

क्रि० धा०+{-इ} =मध्य० एक०

+{-औ} =मध्य० बहु०

+{-ऐ} =अन्य० एक०

+{-एँ} =अन्य० बहु०

इस प्रकार ये प्रत्यय पुरुष और वचन (पुरु० वच०) के द्योतक हैं। उत्तम पुरुष का आज्ञार्थक रूप नहीं, अभिप्राय भाव होता है। इसका प्रत्यय {-ऊं} है। इनमें {-ऐ} तथा {-एँ} पुरुष के द्योतक नहीं हैं; केवल वचन के द्योतक हैं।

३.१४.७. भविष्य आज्ञार्थक रूप—मध्यम पुरुष एक० बहु० के भविष्य आज्ञार्थक रूप अतिरिक्त प्रत्ययों से संयुक्त होते हैं। अन्य पुरुष में वर्त० और भवि० आज्ञार्थक रूप समान हैं। क्रम इस प्रकार है—

√+{-इ}+{-ओ}=[इ य ओ]=एक वचन

+{-ओ}+{ ँ}=बहु० वच०

उदाहरण: /तू कल्लि करिओ/ 'तू कल करना' /तुम कल्लि अई औं/ 'तुम कल आना' वर्तमान पीढ़ी और पूर्व पीढ़ी के वक्ताओं में कुछ अन्तर प्राप्त होता है। इस अन्तर को निम्नलिखित उदाहरणों से व्यक्त किया जा सकता है :—

धातु	**वर्तमान पीढ़ी**	**पूर्व पीढ़ी**	
√दे—	/दीजो/~/दीयो/	/दीजियो/~/दीजियो/	'देना'
√लै—	/लीजो/~/लीयो/	/लीजियो/~/लीजियो/	'लेना'
√रहै—	/रहीओ/~/रहीयो/	/रहीजियो/~/रहीजियो/	'रहना'

२.१४.८. अभिप्रायार्थ-रूप (Subjunctive)—उत्तमपुरुष एक०, बहु० के अभिप्रायार्थक रूप क्रमशः /ऊँ/ तथा /ऐं/ के संयोग से सम्पादित किए जाते हैं। इनमें से {-ऊँ} उत्तमपुरुष एक० प्रत्यय है तथा {-ऐं} केवल बहुवचन प्रत्यय है। क्योंकि इसका प्रयोग अन्यपुरुष बहुवचन में भी होता है। उदाहरण—

√आ—	/आँऊँ/	'आंऊं'	√लै—	/लूं/	'लूं'
√जा—	/जाँऊँ/	'जाऊं'	√दे—	/दूं/	'दूं'
√बैठ्—	/बैठूं/	'बैठूं'		/बैठैं/	'बैठें'
√लिख—	/लिखूं/	'लिखूं'		/लिखैं/	'लिखें'

इनमें /-ऊँ/ वर्त० उत्तम० एक० तथा /ऐं/ वर्त० बहु० सहायक क्रियाएँ हैं।

२.१५. कालरचना—मथुरा ज़िले की बोली में कुछ कालों की संरचना धातु के साथ प्रत्ययों के योग से होती है तथा कुछ की रचना कृदन्तों के आधार पर

होती है। धातु के साथ प्रयुक्त प्रत्यय आज्ञार्थक रूपों में ही हैं। केवल मध्यम पुरुष एकवचन आज्ञा रूप के स्थान पर {-ऐ} एक० प्रत्यय का योग होता है। इन प्रत्ययों में से उत्तम० एक० तथा मध्यम० बहु० के रूप पुरुष की भावना से युक्त हैं तथा शेष केवल वचन का द्योतन करते हैं। इस दृष्टि से, वर्तमान निश्चयार्थ तथा आज्ञार्थ-अभिप्रायार्थ रूप समान होते हैं।

२.१५.१. वर्त० निश्चयार्थ रूप इस प्रकार घटित होता है—

(क) √+पुरुष वच० प्रत्यय=वर्तमान निश्चयार्थ, जैसे—

√चल्+{-ऊँ} =/चलूँ/ 'चलूँ' (उत्तम० एक०)

{-औ} =/चलौ/ 'चलौ' (मध्यम० बहु०)

(ख) √+वचन प्रत्यय=वर्तमान निश्चयार्थ, जैसे

√चल्+{-ऐ} =/चलै/ (तू, वह) 'चले' (मध्यम० अन्य० एक०)

{-ऐं}+{ँ}=/चलें/ (हम, वे) 'चलें' (मध्यम० अन्य० बहु०)

यह प्रत्ययों के आधार पर घटित मूलकाल है।

२.१५.२. भविष्य निश्चयार्थ—भविष्य निश्चयार्थ की रचना वर्त० निश्चयार्थ रूपों में भविष्य-द्योतक प्रत्यय तथा उसके पश्चात् {-ओ} उत्तम० एक०, {-ए} पु० बहु० {-औ} पु० एक० तथा {-ई} स्त्री० प्रत्ययों के प्रयोग से सम्पन्न होता है। √+वर्त० निश्चयार्थ+भविष्य+पुरुष अथवा लिङ्ग वच० प्रत्यय =भविष्य निश्चयार्थ। उदाहरण—

√चल-+{-ऊं-}+{-ग-}+{-ओ}=/चलुंगो/ उत्तम० एक० पु०

+{-ई} =/चलुंगी/ उत्तम० एक० स्त्री०

+{-ऐ} +{-ग-}+{-औ}=/चलैगौ/ (मध्यम० अन्य०) एक० पु०

+{-ई} =/चलैगी/ (मध्यम० अन्य०) एक० स्त्री०

+{-ओ}+{-ग्-}+{-ए} =/चलौगे/ (मध्यम०) बहु० पु०

+{-ई} =/चलौगी/ (मध्यम०) बहु० स्त्री०

+{-ऐं} +{-ग्-}+{-ए} =/चलिगें/ (उत्तम० अन्य०) बहु० पु०

+{-ई} =/चलिंगी/ (उत्तम० अन्य०) बहु० स्त्री०

इस प्रकार धातु के साथ तीन प्रत्ययों के योग से भविष्य निश्चयार्थ की संरचना होती है। अन्त में प्रयुक्त होने वाले प्रत्यय {-ओ} को छोड़ कर संज्ञा तथा विशेषण के क्षेत्र के लिङ्ग वच० प्रत्यय हैं।

२.१६. कृदन्त+सहायक क्रियाएँ—इस क्रम से कुछ कालों के रूप सिद्ध होते हैं। सहायक क्रियाएँ काल के अनुसार वर्त० तथा भूत० हैं। वर्त० सहा० क्रियाएँ ये हैं—/ऊँ/ उत्तम० एक० /औ/ मध्यम० बहु० /ऐ/ एक० तथा /ऐं/ बहु० इनमें से

प्रथम दो में पुरुष का द्योतन भी होता है। भूत० सहा० क्रिया० ये हैं—/ओ/ पु० एक० /ए/ पु० बहु० /ई/ स्त्री० एक० /ई/ पु० बहु०।

२.१६.१. वर्त० कृद०+भूत० सहा० क्रि०=भूत सम्भावनार्थ तथा भूत अभ्यासार्थक। इनकी कुछ चर्चा पीछे हो चुकी है (३.१४.३)। वर्त० कृ० के साथ {-औ} पु० एक० /-ए/ पु० बहु० /ई/ स्त्री० एक० /ई/ स्त्री० बहु० ({-ई-}+{ँ}) के योग से भूत सम्भावनार्थ की रचना होती है। अभ्यासार्थक रूपों की रूप-रचना में /-ओ/ पु० एक० का प्रयोग होता है। अन्य रूप दोनों में समान हैं। इन सहायक क्रियाओं से पूर्व बहुवचन में /-अ-/ तथा एक० वच० में /ϕ/ रहते हैं।

वर्त० कृद० (√+{-त-})+लिङ्गवच० प्रत्यय+{-ओ}~{-ए}~{-ई}~{-ईँ}

√चल्+{-त-}+ ϕ +{-ओ} =/चलतो/ 'चलता था'।
+{-अ-} +{-ए} =/चल्तए/ 'चला करते थे'
+ ϕ +{-ई} =/चल्ती/ 'चलती थी'
+ ϕ +{-ईँ} =({ई}+{ँ})=/चलतीं/ 'चलती थीं'।

धातु के पश्चात् आने वाले लिङ्ग-वच० प्रत्यय ही भूत सम्भावनार्थ से भूत-अभ्यासार्थ का वैसादृश्य प्रस्तुत करते हैं। दूसरा वैसादृश्य {-ओ} तथा {-औ} के आधार पर है।

२.१६.१२. **वर्तमान अपूर्ण निश्चयार्थ** का रचना-क्रम यों है—: वर्तमान कृद० के साथ पहले लिङ्ग-वचन-प्रत्ययों का योग होता है; इसके पश्चात् वर्त० आज्ञार्थ तथा अभिप्रायार्थ के साथ प्रयुक्त होने वाली सहायक क्रियाओं का योग किया जाता है। इस प्रक्रिया से वर्तमान अपूर्ण निश्चयार्थ की व्युत्पत्ति होती है—

√चल्—+{-त-}+{-उ-}+{-ऊँ}=/चल्तूं/ उत्तम० पु० एक०
+{-इ-}+{-ऊँ}=/चल्त्यूं/ उत्तम० स्त्री० एक०
+{-उ-}+{-ऐ}=/चल्त्वै/ (मध्यम० अन्य०) पु० एक०
+{-इ-} +{-ऐ}=/चल्त्यै/ (मध्यम० अन्य०) स्त्री० एक०
+{-अ-}+{-ऐं}=/चल्तऐं/ (उत्तम० अन्य०) पु० बहु०
+{-अ-}+{-औ}=/चल्तौ/ मध्यम० पु० बहु०
+{-इ-}+{-औ}=/चल्त्यौ/ मध्यम० स्त्री० बहु०
+{-इ-}+{-ऐं}=/चल्त्यैं/ (उत्तम० अन्य०) स्त्री० बहु०

इस प्रकार वर्त० कृद० के साथ प्रत्ययों के योग से भूत सम्भावनार्थ, भूत अभ्यासार्थ, या भूत अपूर्ण निश्चयार्थ, तथा वर्तमान अपूर्ण निश्चयार्थ रूपों की रचना होती है।

२.१६.२. भूतकालिक कृदन्त+सहायक क्रिया—इसके दो रचना-क्रम मिलते हैं। भूत० कृ०+वर्त० सहायक क्रि०=वर्तमान पूर्ण निश्चयार्थ; तथा भूत० कृ०+/ओ/, /ए/, /ई/ तथा {-ई}=भूत पूर्णनिश्चयार्थ।

२.१६.२१. वर्तमान पूर्णनिश्चयार्थ—रचनाक्रम के साथ उदाहरण इस प्रकार हैं—

√चल्+/-इ/+{-औ}+{-ऊँ}=/चल्यौ ऊँ/ उत्तम० एक०
+/——/+{-ई-} + {-ऊँ} = /चलीऊं/ उत्तम० स्त्री० एक०
+/——/+{-ए-} + {-ऐं} = /चलेऐं/ उत्तम० अन्य० पु० बहु०
+/——/+{-ई-} + {-ऐं} = /चलीऐं/ उत्तम० अन्य० स्त्री० बहु०
+/——/+{-ए-} + {-औ} = /चलेऔ/ मध्य० पु० बहु०
+/——/+{-ई-} + {-औ} = /चलीऔ/ मध्य० स्त्री० बहु०
+/-इ-/+{-औ-} + {-ऐ} = /चल्योऐ/ मध्य० अन्य० एक० पु०
+/——/+{-ई-} + {-ऐ} = /चलीऐ/ मध्य० अन्य० एक० स्त्री०

२.१६.२२. भूत पूर्णनिश्चयार्थ—रचना-क्रम के साथ उदाहरण इस प्रकार है—

क्रि० धा०+{भूत० कृ०}+{लि० वच०}+{सहा० क्रि०}=भूत /पूर्ण/ निश्चयार्थ
√चल्+/-इ-/ +{-औ-}+{-औ}=/चल्यौ ओ/ पु० एक०
+/——/ +{-ई-} +{-ई} =/चलीई/ स्त्री० एक०
+/——/ +{-ए-} +{-ए} =/चले ए/ पु० बहु०
+/——/ +{-ई-} +{-ई} =/चलीं ई/ स्त्री० बहु०

२.१६.३. क्रियार्थक संज्ञा+सहायक क्रिया—इस गठन में वर्त० सहायक क्रियाओं के योग से वर्तमान तथा भूतकाल की सहायक क्रियाओं से भूतकालिक रूपों की रचना होती है।

२.१६.३१. क्रियार्थक संज्ञा+/ऐ/=वर्तमान रूप। जैसे /मोइ जातौं ऐ/ 'मुझे जाना है' /हमैं जानौं ऐ/ 'हमको जाना है'। कर्मवाच्य रूपों में कर्म के लिङ्ग के अनुसार क्रियार्थक संज्ञा का लिङ्ग-वचन होता है: /मोइ रोटी खानी ऐ/ 'मुझे रोटी खानी है'। ये रूप एकवचन में ही होते हैं।

२.१६.३२. क्रियार्थक संज्ञा+/ओ/=भूत० रूप। इसके उदाहरण ये हैं।

/मोइ जानों ओ/ 'मुझे जाना था' /व्वाइ जानौ ओ/ 'उसको जाना था' /वे आमने ए/ 'वे आने चाहिए थे' अथवा 'उनको आना चाहिये था' /उनैं आमनौ ओ/ 'उनको आना था'।

३.१७. संयुक्त क्रिया—प्रस्तुत बोली में वर्त० कृद०, भूत० कृ०, पूर्वकालिक कृद०, तथा क्रियार्थक संज्ञाओं के साथ किसी सहायक क्रिया अथवा प्रधान क्रिया का संयोग करके विभिन्नार्थक क्रियापदों की संरचना की जाती है।

३.१७.१. प्रधान क्रिया रूप के साथ सहायक क्रिया का संयोग—

क—वर्तमानकालिक कृदन्त के साथ √हो- का संयोग

३.१७.११. वर्तमानकालिक कृदन्त के साथ सहायक क्रिया√हो-के साथ पुरुषवचन, या वचन प्रत्ययों के योग से वर्तमान (अपूर्ण) सम्भावनार्थक रूपों की रचना की जाती है। वर्त० कृ० भी {-उ} पु० एक० तथा {-अ} पु० बहु० तथा {-इ} स्त्री० प्रत्ययों से युक्त रहता है। √हो-के साथ प्रत्ययों के संयोग का क्रम इस प्रकार रहता है—

अ—पुरुषवचन प्रत्ययों का योग—

√हो+/ϕ←ओ/+{-ऊँ}=/हूँ/ 'हूँ' (उत्तम० एक०)

√हो- +{-उ}~{ϕ}=/होउ/,~/हो/ 'हो' (मध्यम० बहु०)

आ—आज्ञावाचक प्रत्ययों का योग—

√हो—+{-इ}=/हाइ/ 'हो' (मध्यम० अन्य० एक०)

इ—वचन प्रत्यय तथा आज्ञावाचक प्रत्ययों से युक्त—

√हो—+{ँ}+{-इ}=/हौंइँ/ 'हौं' (उत्तम० अन्य० बहु०)

उक्त तीन रूप रचनाओं में√हो—का प्रयोग होता है। √हो—के ये रूप आज्ञार्थक और अभिप्रायार्थक रूप भी हैं। पर वर्त० कृद० के साथ प्रयुक्त होकर यह क्रिया वर्तमान (अपूर्ण) सम्भावनार्थ रूपों की रचना सम्पन्न करती है। यह /जौ मैं——/ 'यदि मैं———' की स्थिति में ये संयुक्त रूप आ सकता है। पर बिना /जौ/ 'यदि' के भी इन रूपों का प्रयोग सम्भव है। नीचे कुछ वाक्य इसके प्रयुक्त रूप दिखाने को दिए गए हैं—

/जो मैं झूंट बोल्तु हूँ तो चोर कौ करौ सो मेरौ करौ/

'यदि मैं झूठ बोलता हूँ तो चोर का करो सो मेरा करो'

/जौ तू जा बातैं न मान्तु होइ तो बताइ दै/

'यदि तू इस बात को न मानता हो तो बता दे'

/जौ तुम न जान्त हो तो मोते कहौ/

'यदि तुम नहीं जानते हो तो मुझसे कहो'

३.१७.१२. वर्त० कृ० के साथ √हो-के भविष्य रूप के संयोग से, भविष्य (अपूर्ण) सम्भावनार्थ रूपों की रचना की जाती है। √हो-के आज्ञावाचक रूपों

के साथ भविष्य-प्रत्यय तथा {-ओ} उत्तम० एक० {-ए} पु० बहु० तथा {-ई} स्त्री० का संयोग होता है। जैसे—

√हो—+{-ऊँ}+{-ग्-}+{-ओ} =/हुंगो/ 'हूँगा' (उत्तम० एक०)
+{-उ}+{-ग्-}+{-ए} =/हो उगे/~/होगे/ 'होगे' (मध्य० बहु०)
+{-ओ}+{-ग्-}+{-औ}=/होगौ/ 'होगा' (मध्य० अन्य एक०)
+{ ँ}+{-ग्-}+{-ए} =/हुंगे/ 'होंगे' (उत्तम० अन्य० बहु०)

इनके प्रयोग की स्थिति नीचे के कुछ वाक्यों से स्पष्ट हो जायगी—

/जौ मैं झूंटु कँहँतु हुंगो, तो भगवान् देखैगो/
'यदि मैं झूठ कहता हूँगा तो भगवान देखेगा'
/जौ तू गारी देंतु होगौ तो पिटैगो/
'यदि तू गाली देता होगा तो पिटेगा'
/जौ बु नाजु बेचतु होगौ तो तोऊऐ दै देगौ/
'यदि वह अनाज बेचता होगा तो तुझे भी दे देगा'

ख—भूतकालिक क्रियाओं के साथ सहायक क्रियाओं का संयोग।

३.१७.१३. भूतकालिक कृदन्त+√हो-के आज्ञा या अभिप्रायार्थक रूप= वर्तमान (पूर्ण) सम्भावनार्थ। इसके उदाहरण ये हैं—

/जौ मैं बोल्यौ हूँ.../	'यदि मैं बोला हूँ...'
/जौ तुम बोले हो.../	'यदि तुम बोले हो...'
/जौ हम बोले हौंइँ.../	'यदि हम बोले हौं..'
/जौ बे बोले हौंइँ.../	'यदि वे बोले हों...'
/जौ तू बोल्यौ होइ.../	'यदि तू बोला हो...'
/जौ बु बोल्यौ होइ.../	'यदि वह बोला हो...'

३.१८. दो प्रधान क्रियाओं का संयोग—एक प्रधान क्रिया के पूर्वकालिक कृदन्तों वर्तमानकालिक कृदन्तों, भूतकालिक कृदन्तों, तथा क्रियार्थक संज्ञाओं के साथ अन्य क्रियाओं का संयोग करके विभिन्न अर्थों को व्यक्त किया जाता है। क्रिया धातु के साथ अन्य क्रिया का संयोग नहीं होता। सन्धि नियम के अनुसार किसी प्रत्यय के लुप्त होने पर ही धातु और संयुक्त क्रिया निकट आ सकती है। सहायक क्रियाओं का अन्त में योग हो सकता है।

३.१८.१. पूर्वकालिक कृदन्तों के साथ अन्य क्रियाओं का संयोग—पूर्वकालिक कृदन्त प्रत्यय {-इ} है।[1] यह कुछ परिस्थितियों में शून्य /-ϕ-/ भी होता है।[2] उस स्थिति में धातु+संयुक्त क्रिया मिलता है।

---

१. इसके विविध रूपों के लिए देखिये (२.११.१)
२. वही।

१—पूर्वकालिक कृदन्त+√आ—पूर्णता-द्योतन। इसमें √आ-के वर्त० भूत० तथा भविष्य तीनों रूपों का संयोग हो सकता है।

/देख्या/ 'देख आ' /लिख्या/ 'लिख आ' /खाया/ 'खाआ' /पीआ/ 'पीआ' /दे आ/~/दै आ/ 'दे आ' /ले आ/~/ले आ/ 'ले आ' /छी आँभतूं/ '(मैं) छू आता हूँ' /बु लै आयौ/ 'वह ले आया' /तू कर्‌या बैगो/ 'तू कर आवेगा'।

२—पूर्वकालिक कृदन्त+√उठ 'उठना'=अचानक आरम्भ-वाचन।

/बु अब माँसु खाइ उठ्यौ/ 'वह अब माँस खाने लगा है' /बु बुआइ गारी दै उठ्यौ/ 'वह उसको गाली दे उठा' /मैं हाती माँऊं देखि उठतूँ/ 'मैं हाथी की ओर देख उठता हूँ' /मैं जा कामें करि उठुंगो/ 'मैं इस काम को कर उठूँगा'। /खाँसि उठि/ 'खाँस उठ।'

३—पूर्व० कृद०+√उतर—'उतरना'। कठिनाई के साथ कार्य की पूर्णता।

/बु कैहै उतर्‌यौ/ 'वह कह उतरा' /तू अपने कामें करि उतरि/ 'तू अपने काम को कर उतर।'

इसके प्रयोग अत्यन्त विरल हैं।

४—पूर्व० कृद०+√खा—'खाना'। खाने की पूर्णता का भान होता है। जैसे—

/बुआनैं अपनी छोरी की हमेल धरि खाई/ 'उसने अपनी लड़की की हमेल धर खाई' /कुत्ता नैं छोरी फारि खाई/ 'कुत्ते ने लड़की फाड़ खाई' / मेला में ते बु कछ लै खाबैगी/ 'मेले में से वह कुछ ले खावेगी' /बुआनैं सबरे गेहूँ पीसिखाए / 'उसने सारे गेहूँ पीस खाए' /कछु बुआ पै ते लै खा/ 'उससे कुछ ले खा'।

५—पूर्व० कृद०+√चढ़—ऊपर आकर सवार हो जाने का भाव इस रूप से व्यक्त होता है—

/बु मेरे ऊपर आइ चढ़यौ/ 'वह मेरे ऊपर आ चढ़ा' /जम्मैं रोटी खाइबे बैठतूँ तौ जि छोरा मेरे ऊपर आइ चढ़तुऐ/ 'जब मैं रोटी खाने बैठता हूँ तो यह लड़का मेरे ऊपर आ चढ़ता है' /बु बुखार सौ मेरे ऊपर आइ चढ़यौ/ 'वह बुखार सा मेरे ऊपर चढ़ आया'।

६—पूर्व० कृद०+√चल्—पूर्णता-वाचन—जैसे—

/रोटी खाइ चलि/ 'रोटी खा चल' /पानी पी चलिऔ/ 'पानी पी चला' /दूधै ढकि चलि/ 'दूध को ढक चल' /रोटी खाइ चल्लूँ/ 'रोटी खा चलता हूँ' /खेतै गोच्चलिऔ/ 'खेत को गोद चला' /मोइ कहाँ छोड़ि चलियै/ 'मुझे कहाँ छोड़ चला' /मर चलिऔ/ 'मर चला'।

७—पूर्व० कृद०+√चला—'चलाना'। बलपूर्वक कार्य-सम्पन्नता व्यक्त होती है। जैसे—

/बुआनैं रिस के मारें रुपिआ फेकि चलायौ/ 'उसने रिस के मारे रुपया फेंक चलाया'।

इसका प्रयोग केवल /फैंकनो/ के साथ ही होता है।

८—पूर्व० कृद०+√चुक=पूर्णता-वाचन। जैसे—

/मैं अपनौ कामु कर्चुकिऔ/ 'मैं अपना काम कर चुका' /तू एक घंटा में किताबै पढ़ि चुकैगौ/ 'तू एक घंटे में किताब को पढ़ चुकेगा' /बे एक घंटा में रोटी खाइ चुकतएँ/ 'वे एक घंटे में रोटी खा चुकते हैं'।

इसका आज्ञार्थक या अभिप्रायार्थक रूप नहीं होता।

९—पूर्व० कृद०+√छूट्—एक दम कह उठने का भाव व्यक्त होता है। जैसे—

/बुम्वाँते एकदम चर्छूटिऔ/ 'वह वहाँ से एकदम चल पड़ा' /पंचाइति में बु जा बातै कैह् छूटतुऐ/ 'पंचायत में वह इस बात को कह छूटता है'।

इसका प्रयोग विरल मिलता है।

१०—पूर्व० कृद०+√जा=पूर्णता-वाचन—

/रोटी खाइ जा/ 'रोटी खा जा' /मोइ एकु लड्डू दै जा/ 'मुझे एक लड्डू दे जा' /तमासौ देखि जा/ 'तमाशा देख जा' /चोट्टा छत्ति पै ते कूज्जाँ तुऐ/ 'चोर छत पर से कूद जाता है' /बुकूआ में कूदि गौ/ 'वह कुंआ में कूद गया' /बु बीच में ई बोल्जाँतुऐ/ 'वह बीच में ही बोल जाता है'।

११—पूर्व० कृद०+√डार—'डालना'=पूर्णता-वाचन—

/काड्डारि/ 'काट डाल' /लै डारि/ 'ले डाल' /बुआनैं जुलमु कड्डारिऔ/ 'उसने जुल्म कर डाला' /जौ बु सुन लेगौ तो तोइ माड्डारैगौ/ 'यदि वह सुन लेगा तो तुझे मार डालेगा' /जो मन में आँभतिऐं सो बु कैह् डार्तुऐ/ 'जो मन में आता है, वह कह डालता है" /जाइ एकु रुपिआ दै डारि/ 'इसको एक रुपया दे डाल'।

१२—पूर्व० कृद०+√दै=पूर्णता-वाचन। जैसे—

/मोकूं अमर फलु लाइ दै/ 'मेरे लिये अमर-फल ला दे' /मे काजैं एक कुर्त्ता सीं दै/ 'मेरे लिये एक कुर्त्ता सीं दे' /मोइ एकु आमु दै दे/ 'मुझे एक आम दे दे' /मैं जा बाबाजी ऐ रोजु एक रोटी दै दैतूँ/ 'मैं इस बाबाजी को रोजाना एक रोटी दे देता हूँ' /बुआनैं मेरी धोबती पै एक मोरु छापि दीयौ/ उसने मेरी धोती पर एक मोर छाप दिया' /मैं तोइ सबरे रुपिअन्नैं दै दुंगो/ 'मैं तुझे सारे रुपयों को दे दूँगा' /तू एकु अच्छौ सौ गानों गाइदै/ 'तू एक अच्छा सा गाना गा दे'।

१३—**पूर्व० कृद०+√पक्**—'पकना' : पूर्णता व्यक्त होती है।

/बुआके रुपिया झरि पके/ 'उसके रुपये समाप्त हो गये। इसका एक ही उदाहरण मिला है।

१४—**पूर्व० कृद०+√पर्**—'पड़ना'=पूर्णता-वाचन तथा अचानक घटना।

/घोड़ा पै तै उतरि परि/ 'घोड़े से उतर पड़' /बु कूआ में उतरि पर्तुऐ/ 'वह कुँए में उतर पड़ता है' /लिरिया ऐ देक्कैं बु डरप्परयौ/ 'भेड़िये को देख कर वह डर गया' /छोरा ऐ रोकि, नईं तो छत्ति ते गिरि परैगौ/ 'लड़के को रोक, नहीं तो छत पर से गिर पड़ेगा' /बु बाबाजी ऐ देक्कैं हँसि परयौ/ 'वह बाबाजी को देखकर हँस पड़ा' /चोट्टा मेरे घर में धँसि परयौ/ 'चोर मेरे घर में घुस पड़ा' /बु अपने काम्पै लगि परयौ/ 'वह अपने काम पर लग पड़ा'।

१५—**पू० कृद०+√पा**—'पाना' : क्षमता-सूचन। जैसे—

/में जा कामैं नँ करि पांगौ/ 'मैं इस काम को नहीं कर पाऊँगा। /बुआनैं दिल्लगी जानि पाई ऐ/ 'उसने दिल्लगी जान पाई है' /मैं कछू कामु नाँऊँ करि पामतु/ 'मैं कुछ काम नहीं कर पाता' /जि झारि नाँएँ पामत्ति/ 'यह झाड़ नहीं पाती।

१६—**पू० कृद०+√पार**—'पाड़ना'=पूर्णता-वाचन।

/मैं जा कामैं करि पारुंगौ/ 'मैं इस काम को पूरा करूँगा' /बु जो कैंहँ तु सोकरियार्तु ऐ/ 'जो वह कहता है सो कर पाड़ता है' /तू जा कामें करि पारि/ 'तू इस काम को कर पाड़ा'।

√पार—का संयोग केवल√कर-के साथ हो सकता है।

१७—**पूर्व० कृद०+√पी**—इसका प्रयोग क्रिया विशेषणात्मक होता है।

/अपने आप्पानी भरि पी/ 'अपने आप पानी भर कर पी' /बुआ के पाँइनुँ धोइ पी/ 'उसके पैरों को धोकर पी'।

इस रूप का प्रयोग भी विरल है।

१८—**पूर्व० कृद०+√पोंहँच**—'पहुँचना' किसी बात पर बल देने के लिए इसका प्रयोग होता है। प्रयोग क्रिया विशेषणात्मक है।

/कै तो मैं घर गयौ, सोई बु जाइ पौंहच्यौ/ 'जैसे ही मैं घर गया, सोई वह आ पहुँचा' /बु रोजु पाँति जैं में जाइ पौंहँचुतुए/ 'वह रोजाना पाँति खाने जा पहुँचता है।'

प्रायः इन्हीं दो क्रियाओं के साथ इसका प्रयोग होता है।

१९—**पूर्व० कृद०+√फँस**—क्रिया विशेषणात्मक प्रयोग।

/निआँ कहाँ आइ फँसे/ 'यहाँ कहाँ आ फसे' /बुभुआँ बुरौ जाइ फँसिऔ/ 'वह वहाँ बुरा जा फंसा।'

इसका प्रयोग भी विरल है।

२०—पूर्व० कृद०+√फार—'फाड़ना' : इसका प्रयोग क्रिया विशेषणात्मक होता है।

/बुआनैं अपनौ कुर्ता पैंहैरि फारिऔ/ 'उसने अपना कुर्ता पहन फाड़ा' केवल यही एक उदाहरण इसका मिला है।

२१—पूर्व० कृद०+√बगद् 'लौटना' : पूर्णता व्यक्त होती है।

/मूरिखु नाऊ कौ सबै निऔंते दे बगदिऔ/ 'मूर्ख नाई सबको निमंत्रण दे बगदा।' /बुसप्पैते रुपया ले बगदिऔ/ 'वह सबसे रुपया ले बगदा'।

प्रयोग अत्यन्त विरल है।

२२—पू० कृद०+√बैठ्—अप्रत्याशित कार्य-पूर्णता। जैसे—

/तू भाई बुरौ कामु करि बैठिऔ/ 'तू भाई बुरा काम कर बैठा' /मैं तोइ मारि बैठुंगो/ 'मैं तुझे मार बैठूँगा' /बु तोइ मारि बैठेगी/ 'वह तुझे मार बैठेगी' /छोरा बुआइ गारी दै बैठिऔ/ 'लड़का उसको **गाली** दे बैठा' /छोरी की रकमन्नै बु धरि बैठिऔ/ 'लड़की के ज़ेवरों को वह **धर** बैठा'।

२३—पूर्व० कृद०+√मर्—क्रिया विशेषणात्मक प्रयोग। घृणा का भाव इसमें सन्निहित रहता है। जैसे—

/कहूँ अन्त जाइ मरि/ 'कहीं और जा मर।' /निआँ कहाँ आइ मरयौ/ 'यहाँ कहाँ आ मरा' /बु जादा खाइ मर्तु ऐ/ 'वह ज्यादा खा मरता है' /तू जादा कामु करि मरियौ/ 'तू ज्यादा काम कर मरा' /करि मरि/ 'कर मर' /तेरी भैनि रोइ मरैगी/ 'तेरी बहन रो मरेगी'।

२४—पूर्व० कृद०+√मार्—इसमें बलपूर्वक कार्य समाप्ति का भाव निहित रहता है। जैसे—

/बुआनें पन्ना के पन्ना लिखिमारे/ 'उसने पन्ने के पन्ने लिख मारे' /मैं निऔंई किताबन्नैं बाँचि मारुंगौ/ 'मैं यों ही किताबों को पढ़ मारूँगा'

२५—पूर्व० कृद०+√रहै—'रहना'। इसका प्रयोग पूर्णतावाचक होता है। जैसे—

/हारिऔ नीरिऔ बु खाट में परहयौ/ 'हारा नीरा वह खाट में पड़ रहा' /रोटी खाइ कें जाई टूटी सी घाट पै परहैं तूँ/ 'रोटी खाकर इसी टूटी सी घाट पर पड़ रहता हूँ' /हारि कें अपने घर बैठि रहै/ 'हार कर अपने घर बैठ रहा'।

२६—पूर्व० कृद०+√राख्—'रखना' पूर्णता का वाचन होता है।

/मैं आँऊँ जब तक कामै कर्राखिओ/ 'मैं आऊँ जबतक काम को कर रखना' /बु घरे झार्राखैगी/ 'वह घर को झाड़ रखेगी' /मैंन्तोते पैहले ई कैह राखी/ 'मैंने तुझसे पहले ही कह रखी थी'।

२७—पूर्व० कृद०+√ला 'लाना'। इसमें भी कार्य की पूर्णता का भाव निहित रहता है। जैसे—

/जा कामैं कल्ला/ 'इस काम को कर ला' /बु झट्ट पानी भल्लाभतिऐ/ 'वह झट पानी भर लाता है' /नैंक छोरा ऐ देखिला/ 'थोड़ा लड़के को देखला' /भीक माँगि लाभतुऐ/ 'भीख माँग लाता है।'

२८—पूर्व० कृद०+√लै—=पूर्णता-वाचन तथा क्षमता-वाचन।

/मैंने रोटी खाइ लई/ 'मैंने रोटी खाली' /मैं चना चबाइ लैं तूं/ 'मैं चना चबा लेता हूँ /तू गाँठि बाँधि लेगी/ 'तू गाँठ बाँध लेगी' /मैं कितप्पढ़ि लुंगो/ 'मैं किताब पढ़ लूगा।' /तू न्हाइ लै/ 'तू नहाले'

२९—पू० कृद०+√सक्—'सकना' क्षमता-वाचक।

/मैं जाइ सकुंगो/ 'मैं जा सकूँगा' /तू आइ सकतुऐ/ 'तू आ सकता है' /तू बुआ पै ते रुपिआ नँ ले सकिऔ/ 'तू उससे रुपये नहीं ले सका'।

उक्त सभी उदाहरणों में मूल क्रिया पहले आती है और विशेषता-द्योतक क्रिया पीछे। पर कुछ रूप ऐसे भी मिलते हैं, जिनमें विशेषता द्योतक क्रिया पहले और मूल क्रिया पीछे आती है। ऐसी दो क्रियाएँ हैं—√दै-और √धरि, जैसे—

३०—/बुआनैं चोट्टा दै मारिऔ/ 'उसने चोर दे मारा'।

३१—/बु एकदम धरि भाजिऔ/ 'वह एक दम धर भागा' /बुआनैं बुआकी नारि धरि पकरी/ 'उसने उसकी गर्दन धर पकड़ी' /राति में मेरौ फोरा धरि पक्यौ/ 'रात में मेरा फोड़ा धर पका' /जा बाते सुनि कैं बु म्वाँते धर्छूट्यौ/ 'इस बात को सुनकर वह वहाँ से चल पड़ा।'

३.१८.२. वर्त० कृद० के साथ अन्य मुख्य क्रियाओं का संयोग—वर्त० कृद० के साथ मुख्य क्रिया तथा किसी सहायक क्रिया का योग होता है।

१—वर्त० कृद०+√आ—'आना'। इसमें निरन्तरता का भाव निहित रहता है। जैसे—

/हँसतु आ/ 'हँसता आ' /छोरा घर्ते रोमतु आमतुऐ/ 'लड़का घर से रोता आता है' /छोरी घर में ते रोटी खामति आई/ 'लड़की घर से रोटी खाती हुई निकली /कामैं कुर्तु आ/ 'काम को करता आ' (इसमें पूर्णता का भाव है) /हमारे न्याँ जिही रिवाज चल्ति आई ऐ/ 'हमारे यहाँ यही रिवाज चलती आई है' (निरंतरता)।

२—वर्त० कृद०+√खा। इसका प्रयोग क्रिया विशेषणात्मक है। जैसे—

/बु तौ ऐसैंई मार्तु खाँतु ऐ/ 'वह तो ऐसे ही मारता खाता है'। इसके आज्ञार्थक और भूतकालिक रूप नहीं बनते।

३—वर्त० कृद०+√चल्—इसमें निरंतरता और पूर्णता का भाव निहित रहता है। क्रिया विशेषणात्मक रूप में भी इसका प्रयोग होता है। जैसे—

/जा कामैं कर्तु चलि/ 'इस काम को करताचल' (पूर्णता)। /बु रस्ता में रोटी खाँच्चल्तु ऐ/ 'वह रास्ते में रोटी खाता चलता है' (क्रिया विशेषणात्मक) /तू रोटी खाँच्चल्तिए औरु बात कर्ति चल्तिए/ 'तू रोटी खाती चलती है और बात करती चलती हैं' (निरंतरता)

४—वर्त० कृद०+√जा—पूर्णता, निरंतरता का भाव निहित रहता है। क्रिया विशेषणात्मक प्रयोग भी होता है। जैसे—

/आमज्जाँतूँ तौऊ हल्ला करौं ऐ/ 'आता जाता हूँ फिर भी हल्ला कर रहा है' /रोटी रस्ताई में खाँज्जा/ 'रोटी रास्ते में ही खाता जा' /तू जा किताबैं बुआ के घर दैंज्जइयो/ 'तू इस किताब को उसके घर देते जाना' /बु इत-बित में देखतु गयौ/ 'वह इधर-उधर देखता गया' /तू तौ बोल्तु जा/ 'तू तो बोलता जा' /तू अपने कामैं कर्तू जा/ 'तू अपने काम को कर्ता जा'।

५—वर्त० कृद०+√फिर्—इसमें निरंतरता का भाव निहित रहता है।

/तू कैहँतु फिरि, तेर कहैं ते कहा हौंतु ऐ/ 'तू कहता फिर तेरे कहने से क्या होता है' /कामुँ कछू कर्तुँ नांएं, इत-बित में डोल्तु फिर्तु ऐ/ 'काम कुछ करता नहीं है, इधर-उधर घूमता फिरता है' /एक थप्पड़ के मारें रोमतु फिरेगौ/ 'एक थप्पड़ के मारे रोता फिरेगा' /रोमतु फिरि, देखैं कहा कल्लैं/ 'रोता फिर, देखें क्या करले'

६—वर्त० कृद०+√बन्—इसमें क्षमता का भाव निहित रहता है।

/नँ कछू कैहँत बनै न सुन्तू बनै/ 'न कुछ कहते बनता है, न सुनते बनता है' /तो पै कैसे जि बात कैहैंतें बन्तिऐ/ 'तुझ पर कैसे यह बात कहते बनती है' /बुआ पै कछू कैहँत न बनैगी/ 'उस पर कुछ कहते नहीं बनेगी।'

ये रूप स्त्रीलिङ्ग ही रहते हैं। निषेधात्मक भाव ही मुख्यतः रहता है।

७—वर्त० कृद०+√रैह्—इसमें निरन्तरता का भाव निहित रहता है।

/तू अपनौ कामुँ कर्तू रहै/ 'तू अपना काम करता रहे' /बु अपनी बात कैह तुं रैहँतुऐ/ 'वह अपनी बात कहता रहता है' /बु जाँतु रहिऔ/ 'वह मर गया' /जाँतु रैहै/ 'चला जा' /बु हमेस जाँतु रहिऔ ऐ/ 'वह हमेशा जाता रहा है'।

३.१८.३. भूतकालिक कृदन्तों के साथ क्रियाओं का संयोग :—

१. निम्नलिखित धातुओं के भूतकालिक कृदन्तों के साथ√आ-क्रिया का संयोग हो सकता है।

√भज्—'भागना' /बु भजिऔ आयौ/ 'वह भगा आया'।

/तू खरबूज़े की सुनि कैं भजिऔ आमँतुऐ/ 'तू खरबूज़ की सुनकर भगा आता है'

/तुम तौ भजी आऔगी/ 'तुम तो भगी आओगी'।

/मैं भजिऔ आँमँतूँ/ 'मैं भगा आता हूँ'।

यह प्रयोग क्रियाविशेषणात्मक है।

√चल्—'चलना' /मैं सुन्त खैंम चलिऔ आयौ/ 'मैं सुनते ही चला आया'।

/तू रोज़ु मेरे जौरैं चलिऔ आंमत्वै/ 'तू रोज़ाना मेरे पास चला आता है'।

/तुम मेरे पास चौं चले आए/ 'तुम मेरे पास क्यों चले आये ?'

/बु तो रोन्तेरे औरें चली आवैगी/ 'वह तो रोज़ाना तेरे पास चली आवैगी।'

यह प्रयोग भी क्रिया-विशेषणात्मक है।

√लग्—'लगना' /मेरे संगई लगिऔ आमतुऐ/ 'मेरे साथ ही लगा आता है'।

/छोरा तेरे संगई लगिओ आयौ/ 'छोरा तेरे संग ही लगा आया'।

/बु अपने मालिक्के संगई लगी आमतिऐ/ 'वह अपने पति के साथ लगी आती है।'

√दौड़~दौर 'दौड़ना'/बु तौ तेरौ नाँमुँ सुनिकैं दौरिऔ आवैगा/ 'वह तो तेरा नाम सुनकर दौड़ा आवेगा'।

/परसादु लैनौ होइ तौ दौरिऔ आ/ 'परशाद लेना हो तो दौड़ा आ।'

प्रयोग क्रिया-विशेषणात्मक है।

√चढ़्— /बु घोड़ा पै चढ़औ आयौ/ 'वह घोड़ा पर चढ़ा आया'।

/बै रथ पै चढ़े आए/ 'वे रथ पर चढ़े आये'।

/मेरे ऊपर ई चढ़ी आंमतिऐ/ 'मेरे ऊपर ही चढ़ी आती है'।

प्रयोग क्रिया विशेषणात्मक है।

√जुत्—'जुतना, जुड़ना'

/बर्धु हर में जुतिऔ आयौ/ 'बैल हल में जुता आया'।

/बधिया जूआ में जूती आँमतिऐ/ 'बधिया जुए में जुती आती है'।

प्रयोग क्रिया विशेषणात्मक है।

√बँध्—'बँधना' /चोट्टा रस्सा में बँधिऔ आइऔ/ 'चोर रस्से में बँधा आया' ।
/भगमानु प्रेम की डोरि में बँधिऔ आँमतुऐ/ 'भगवान प्रेम की डोर में बँधा आता है'
/बु मेरे प्रेम में बँधी आई ऐ/ 'वह मेरे प्रेम में बँधी आई है।'

√दब्—'दबना' /जि हिर्नुँ कहूँ ते दबिऔ आइऔ ऐ/ 'यह हिरण कहीं से दबा आया है।'
/जि छोरी बोझ से दबी आई ऐ/ 'यह लड़की बोझ से दबी आई है।'

यह प्रयोग विरल है।

√नब्—'झुकना' /बु बोझ के मारें नबिऔ आयौ ऐ/ 'वह बोझ के मारे झुका आया है।'

यह प्रयोग अत्यन्त विरल है।

२—प्रत्येक क्रिया के भूतकालिक कृदन्त के साथ√कर्- का संयोग किया जा सकता है। इस संयुक्त रूप में निरन्तरता का भाव निहित रहता है। जैसे—

/बु रोज्जाई बातै कहिऔ करिऔ/ 'वह रोज़ाना इसी बात को कहा किया'।
/मैं रोजुबाजरे की रोटी खाऔ कर्तूँ/ 'मैं रोज़ाना बाजरे की रोटी खाया करता हूँ'।
/तू हमेसा बुरी बातई कहिऔ कर्तूऐ/ 'तू हमेशा बुरी बात ही कहा करता है'।
/बु आन्ते रोजु पढ़ि बे जाऔ करैगौ/ 'वह आज से रोज़ पढ़ने जाया करेगा'।

३. भूतकालिक कृदन्त के साथ √जा-का संयोग करके क्षमतासूचक कर्म-वाच्य रूप बनाए जाते हैं। जैसे—

/बुआपें नँ आयौ गयौ/ 'उस पर नहीं आया गया'।
/बुआपै रोटी नँ खाई जाइगी/ 'उस पर रोटी नहीं खाई जायगी'।
/बुआपै एक गीतु नँ गायौ गयौ/ 'उस पर एक भी गीत नहीं गाया गया'।
/बुआके काजैं रोटी बनाई गईं/ 'उसके लिये रोटी बनाई गईं'।
/मैं काजैं एकु घरु बनवायौ गयौ/ 'मेरे लिए एक घर बनवाया गया'।
/कल्लि बु आदिमी मार्‌यौ गयौ/ 'कल वह आदमी मारा गया'।

४. भूतकालिक कृदन्त+√रैह्—'रहना' : इसमें भी निरन्तरता का भाव निहित रहता है। जैसे—

/तू निआँई बैठिऔ रहै/ 'तू यहीं बैठा रह।' /तू घर में बनिऔ रहैं तुएँ/ 'तू घर में बना रहता है' /तू भाँग सी पीयौ रेहेंत्वै/ 'तू भंग सी पिये रहता है' /अपने काम्में लगिऔ रहै/ 'अपने काम में लगा रह'।

३.१८.४ क्रियार्थक संज्ञाओं के साथ क्रियाओं का संयोग :—

१—क्रियार्थक संज्ञा+√चाह्[1]:—इन रूपों में क्रियार्थक संज्ञा कर्म के रूप में रहती है। अर्थ में इच्छावाचकता रहती है। जैसे—

/मैं आइबौ चाँहँ तूं/ 'मैं आना चाहता हूँ' /चिरैया चुगिबौ चाँहँतिऐ/ 'चिड़िया चुगना चाहती है' /बु कल्लि जाइबो चाँहँतुऐ/ 'वह कल जाना चाहता है' /हम रोटी खाइबो चाँहत ऐं/ 'हम रोटी खाना चाहते हैं'।

२—क्रियार्थक संज्ञा+√दै; ये रूप अनुमत्यर्थक होते हैं। (Permissive) जैसे—

/मोइ जान्दै/ 'मुझे जाने दे' /बुआइ चलन्दै/ 'उसको चलने दे' /मैं बुआइ नँ जान्दुंगो/ 'मैं उसे नहीं जाने दूँगा' /चौजान्देगौ/ 'क्यों नहीं जाने देगा ?' /मैं बुआइ खान्दैंतूं/ 'मैं उसको खाने देता हूं' /मैंने बु जान्दीयौ/ 'मैंने वह जाने दिया'।

३—क्रियार्थक संज्ञा+√पर्—'पड़ना'। इसमें बलात् या अनिवार्य का भाव निहित रहता है। जैसे—

/मोइ जि कामु कन्नौ परिऔ/ 'मुझे यह काम करना पड़ा' /तोइ व्याह में आमनौं परैगौ/ 'तुझे व्याह में आना पड़ेगा' /जानों ई पर्तुऐ/ 'जाना ही पड़ता है' /तोइ रोटी खानी परैगी/ 'तुझे रोटी खानी पड़ेगी'।

४—क्रियार्थक संज्ञा+√पा—'पाना'—इसमें क्षमता का भाव पाया जाता है। जैसे—

/मैं कल्लि नँ जान पायौ/ 'मैं कल नहीं जाने पाया' /तू कल्लि न आमन पावैगौ/ 'तू कल नहीं आने पावेगा' /बु कामु करन्न पावैगौ/ 'वह कार्य कर नहीं पावेगा'।

अधिकांश इस रूप का प्रयोग निषेधात्मक रूप में होता है।

५—क्रियार्थक संज्ञा+√बन्—'बनान'—इसमें क्षमता का भाव निहित रहता है। जैसे—

/कछू कैहैबौ नाँइँ बन्तु/ 'कुछ कहना नहीं बनता' /नकछू करिबौ बनै, न धरिबौ बनै/ 'न कुछ करना बने, न धरना बने' /काम के मारैं आइबौ नाँइँ बन्तु/ 'काम के

---

१. ब्रज में। √चाहि का अर्थ देखना भी है। पर यहां 'चाहना' ही अर्थ है।

कारण आना नहीं बनता' /भौतु कोसिस करी परि आइबो न बनियौ/ 'बहुत कोशिश की पर आना नहीं बना'

६—क्रियार्थक संज्ञा का तिर्यक रूप+√**लग्**[१]—इसमें आरम्भ करने का भाव निहित रहता है।

/बु कामु करन् लगिऔ/~/बु कामु करिबे लगिऔ/ 'वह काम करने लगा' /मेहु बर्सन् लगिऔ/~/मेहु बर्सिबे लगिऔ/ 'मेह बरसने लगा' /किसान अपने खेत काटन् लगे/~/किसान अपने खेत काटिबे लगे/ 'किसान अपने खेत काटने लगे' /मैं जान् लगिऔ/~/मैं जाइबे लगिऔ/ 'मैं जाने लगा'।

७—क्रियार्थक संज्ञा+√**आ—'आना'**—इसमें क्षमता का भाव निहित रहता है। जैसे—

/मोपै लिखिबौ आमँतुऐ/ 'मुझ पर लिखना आता है' /मो पै पढ़िबौ आइगौ/ 'मुझ पर पढ़ना आगया' /तो पै गाढ़ी चलाइबौ आबैगौ/ 'तुझ पर गाड़ी चलाना आवेगा'।

८—क्रियार्थक संज्ञा+चँहिऐं 'चाहिए': इसमें औचित्य का भाव निहित रहता है।

/मोइ लिखनौं चँहिऐं/ 'मुझे लिखना चाहिए' /तोइ जानां चाँहिऐं/ 'तुझे जाना चाहिये' /बुआइ खुदि आमनौं चाँहिऐं/ 'उसे खुद जाना चाहिए'।

३.१८.५. तीन प्रधान क्रियाओं के संयुक्त रूप—

दो प्रधान क्रियाओं के साथ एक सहायक क्रिया के योग के उदाहरण पीछे आ चुके हैं—(३.१८)। यहाँ तीन प्रधान क्रियाओं के संयुक्त रूप तथा उनके साथ सहायक क्रिया संयुक्त करके जो रूप प्राप्त होते हैं, उनको दिया जाता है।

दो प्रधान क्रियाएँ√कर्-अथवा √दै—से संयुक्त हो सकती हैं। रचना-क्रम इस प्रकार रहता है—

१—वर्त० कृद०+भूत० कृद०+√कर्-+सहा० क्रि०। इससे निरन्तरता और अभ्यास का द्योतन होता है।

/जाँतु रहिऔ करि/ 'जाता रहा कर' /आँमतु रहिऔ कर्तुऐ/ 'आता रहा करता है' /खाँतु रहिऔ करैगौ/ 'खाता रहा करेगा' /कामु कर्तु रहिऔ करि/ 'काम करता रहा कर' /कामु कर्तु चलौ करि/ 'काम करता चला कर' /अब मैं आमतु

---

१. √लाग् रूप आजकल नहीं मिलता। पहले मिलता था। जैसे—आमन् लागे। 'आने लगे'।

रहिऔ करूँगौ/ 'अब मैं आता रहा करूँगा' /तू खेल्तु डोलौ करि/ 'तू खेलता डोला कर' /तू रोमतु फिरिऔ करि/ 'तू रोता फिराकर'

२—पूर्व० कृद०+भूत० कृ०+√कर+सहा० क्रि०। इससे अभ्यास का द्योतन होता है।

/बु लौटि आयौ कर्तुऐ/ 'वह लौट जाया करता है' /तू मुआँ कामु करिआऔ करि/ 'तू वहाँ काम कर आया कर'/ निआँ रोजु मेहु बसि जाऔ कर्तुऐ/ 'यहाँ रोज़ाना मेह बरस जाया करता है' /तू घर में घुसि परिऔ करि/ 'तू घर में घुस पड़ा कर' /तोइ मुआँ, रोजु जानौं परौ करैगौ/ 'तुझे वहाँ रोज़ाना जाना पड़ा करेगा' /बु आवतौ रोटी खाइ लौ करैगौ/ 'वह अब तो रोटी खा लिया करेगा' /मैं बुआइ रोजु अपने जौरैं बुलाइ लौं कर्तो/ 'मैं उसे रोज़ाना अपने पास बुला लिया करता था' /तू बीच में मति बोलि उठौ करै/ 'तू बीच में मत बोल उठा करै' /मोइ कबरा ई मैं रोटी दै जाऔ करि/ 'मुझे कमरे में ही रोटी दे जाया कर' /छोरा ते नेंक् किल्लाइ दौ करि/ 'छोरा से नेंक चिल्ला दिया कर।'

३—पूर्व० कृद०+क्रियार्थक संज्ञा+√दे-+सहा० क्रि०। ये रूप अनुमत्यर्थक होते हैं।

/बुआइ रुपिआ लै जान दै/ 'उसको रुपया ले जाने दे' /मोइ आदिमीं गिन् लिन्दै/ 'मुझे आदमीं गिन लेने दे' /मैं बुआइ एग्गीत गाइ लिन्दैं तूँ/ 'मैं उसको एक गीत गा लेने देता हूँ' /मैं बुआइ रोटी खाइ लिन्दै तो/ 'मैं उसे रोटी खा लेने देता था' /मोइ उठि जान् दै/ 'मुझे उठ जाने दे' /मोइ उठि चलन्दै/ 'मुझे उठ चलने दे'।

४—भूत० कृद०+भूत० कृद०+√कर्-+सहा० क्रिया। अभ्यास का द्योतन होता है।

/बुकबऊ कबऊ चलिऔ आऔ कर्तुऐ/ 'वह कभी-कभी चला आया करता है' /तू अपने काम्मैं लगिऔ रहिऔ करि/ 'तू अपने काम में लगा रहा कर' /बु सबेरैं आठ बजे तक सोयै 'रहिऔ कर्तो/ वह सबेरे आठ बजे तक सोया रहा करता था' /तू अपने घर बैठिऔ रहिऔ करि/ 'तू अपने घर बैठा रहा कर' /मैं आँऊं जबतक टिकिऔ रहिऔ करि/ 'मैं आँऊँ तब तक टिका रहा कर'।

५—भूत० कृद०+क्रियार्थक संज्ञा+√दै-+सहा० क्रि०। ये रूप अनुमत्यर्थक होते हैं।

/बुआइ चलिऔ जान् दै/ 'उसको चला जाने दे' /तोइ मैं चलिऔ जान्दैं तूं/ 'तुझे मैं चला जाने देता हूँ'।

इसके उदाहरण अत्यन्त ही विरल हैं। सर्वेक्षण में लेखक को यही एक उदाहरण मिला।

३.१८.६. **चार प्रधान क्रियाओं के संयुक्त रूप**—ये रूप बहुत थोड़े हैं। रचनाक्रम इस प्रकार है—

१—पूर्व० कृद०+क्रियार्थक संज्ञा+√दै–का भूत० कृद०+√कर्-+सहा० क्रिया०—

/लै लिन्दिऔ करि/ 'ले लेने दिया कर' /बुआइ गारी दै लिन्दौ करि/ 'उसको गाली दे लेने लिया कर' /तोइ मैं रोटी खाइ लिन्दौ करुंगौ/ 'तुझे मैं रोटी खा लेने दिया करूँगा' /ब्रुआइ मैं गीतु गाइ लिन्दौ कर्तौं/ 'उसे मैं गीत गा लेने दिया करता था' /बा छोरा ऐ पानी पर्सि दिन्दौ करि/ 'इस लड़के को पानी परस देने दिया कर'।

२—भूत० कृद०+क्रियार्थक संज्ञा+√दै-का भूत० कृ०+√कर्-+सहा० क्रि०—

/तोइ मैं रोच्चलिऔ जान्दौ करुंगो/ 'तुझे मैं रोज़ाना चला जाने दिया करूँगा' /बुआइ मैं रोच्चलिऔ जाँन्दो कर्तूँ/ 'उसको मैं रोज़ाना चला जाने देता हूँ' /हमैं बु रोच्चलिऔ जान्दौ कर्तौं/ 'हमें वह रोज़ाना चला जाने दिया करता था'।

३.२. **क्रियाओं की व्युत्पत्ति**—संज्ञा, विशेषण तथा क्रिया-विशेषणों के साथ प्रत्यय का संयोग करके कुछ क्रियापदों की व्युत्पत्ति की जाती है। केवल एक ही प्रत्यय से ये रूप व्युत्पन्न होते हैं। वह प्रत्यय है: {-आ इ-}~{-इ आ इ}। इस प्रत्यय के प्रयोग की स्थितियाँ इस प्रकार हैं—

३.२.१. {-आ इ-} का प्रयोग संज्ञा, विशेषण तथा क्रिया-विशेषण तीनों के साथ हो सकता है।

(क) संज्ञा+{-आ इ-}=क्रिया। उदाहरण—

/लीतर्-(औ)/ 'लीतरा, फटा जूता' +{-आ इ-}=√लितराइ-'लीतरे से पीटना'
/लकड़-/ 'लकड़ी' +{-आ इ-}=√लकड़ाइ-'लकड़ी के समान होना'
/सकुच/ 'संकोच' +{-आ इ-}=√सकुचाइ-'सकुचाना'

(ख) विशेषण+{-आ इ-}=क्रि० धा०। उदाहरण—

/ऊँच-/ 'ऊँचा' +{-आ इ-}=√उँचाइ-'उचाना, उठवाना'
/चौर्/ 'चौड़ा' +{-आ इ-}=√चौराइ-'चौड़ाना'
/लंब्-/ 'लंबा' +{-आ इ-}=√लंबाइ-'लंबाना'
/कर्र-/ 'कठिन' +{-आ इ-}=√कर्राइ-'कड़ा होना'
/नरम्-/ 'नर्म' +{-आ इ-}=√नरमाइ-'नर्म होना'

(ग) क्रिया विशेषण+{-आ इ-}=क्रि० धातु। उदाहरण——

/भीतर-/ 'भीतर्' +{-आ इ-}=√भितराइ-'भीतर करना'

ये रूप विरल हैं।

३.२.२. {-आ इ-}——इस प्रत्यय का प्रयोग केवल संज्ञा तथा विशेषण पदों के साथ हो सकता है। जैसे——

(क) संज्ञा +{-इ आ इ-}=क्रि० धातु। उदाहरण——

/सुख्-/ 'सुख' +{-इ आ इ-}=√सुखिआइ-'सुखी होना'
/दुख्-/ 'दुख' +{-इ आ इ-}=√दुखिआइ-'दुखी होना'
/लात्-/ 'लात' +{-इ आ इ-}=√लतिआइ-'लतिआना'
/टाँग-/ 'पैर' +{-इ आ इ-}=√टँगिआइ-'टँगिआना'
/झाग-/ 'झाग' +{-इ आ इ-}=√झगिआइ-'झाग देना'
/पानी-/ 'पानी' +{-इ आ इ-}=√पनिआइ-'पनियाना'
/गारी-/ 'गाली' +{-इ आ इ-}=√गरिआ-'गाली देना'
/लट्ठ-/ 'लाठी' +{-इ आ इ-}=√लठिआइ-'लाठी से पीटना'
/काठ्-/ 'काठ' +{-इ आ इ-}=√कठिआइ-'कठिआना'
/खात्-/ 'खाता' +{-इ आ इ-}=√खतिआइ-'खतिआना'

(ख) विशेषण+{-इ आ इ-}=क्रि० धातु।

/साठ्-/ 'छ०' +{-इ आ इ-}=√सठिआइ-'बुड्ढा होना'
/बूड़-/ 'बुड्ढा' +{-इ आ इ-}=√बुढ़िआइ-'बुड्ढा होना'
/कच्च-/ 'कच्चा' +{-इ आ इ-}=√कच्चाइ-'कचाना'
/मीठ्-/ 'मीठा' +{-इ आ इ-}=√मिठिआइ-'मिठाना'

इन व्युत्पन्न क्रियापादों के साथ क्रियार्थक संज्ञा बनाने के लिए {-इ ब-} प्रत्यय का ही योग हो सकता है। जैसे /कर्राइबौ/ 'कड़ा होना'।

३.३. अव्यय

प्रयोग की दृष्टि से अव्ययों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है : क्रिया विशेषण तथा अन्य अव्यय।

३.३.१. **क्रिया विशेषण**——रूप रचना के अनुसार चार प्रकार के क्रिया विशेषण मथुरा ज़िले की बोली में मिलते हैं——मूल क्रि० विशेषण शब्द, प्रत्ययों के आधार पर अन्य पदों से व्युत्पन्न तथा संयुक्त। अन्त में क्रिया विशेषण के स्थानापन्न शब्दों की सूची दी गई है।

३.३.११. मूल क्रिया विशेषण—अर्थ की दृष्टि से इनके चार वर्ग हो सकते हैं—स्थानवाचक, कालवाचक, रीतिवाचक तथा परिमाणवाचक।

१. स्थानवाचक मूल क्रि० वि०—इसमें भी समीपताद्योतक, दूरत्वसूचक, तथा अन्य अव्यय हो सकते हैं।

(अ) समीपता द्योतक क्रि० वि०—/नजीक/ 'नज़दीक' /पास/ जैसे—/मेए घर के नजीक एकु बागु ऐ/ 'मेरे घर के पास एक बाग है' /तू मेए पास आ/ 'तू मेरे पास आ'।

(आ) दूरत्वसूचक क्रि० वि०—/अन्त/ 'अन्यत्र' /दूरि/ 'दूर' जैसे—/तू अन्त जाइ बैठि/ 'तू अन्यत्र जा बैठ' /घरते दूरि मति जइयो/ 'घर से दूर मत जाना'।

(इ) अन्य स्थानवाचक क्रि० वि०—/भीतर/ /बाहिर/, /ऊपर/, /तर/, 'सामने' /संग/ 'साथ' जैसे—/भीतर चलि/ 'भीतर चल' /छोरा बाहिर बैठिऔ ऐ/ 'छोरा बाहर बैठा है' /चोट्टा ऊपर चढ़िगौ/ 'चोर ऊपर चढ़ गया' /पेड़ तर एकु स्यांपु परिऔऐ/ 'पेड़ के नीचे एक सांप पड़ा है' /छोरा तेए सांमुई बैठिऔ ऐ/ 'छोरा तेरे सामने बैठा है' /मेए संग चलि/ 'मेरे साथ चल'।

२. कालवाचक मूल क्रि० वि०—इसके भी अतीतकालबोधक, वर्तमान-कालबोधक, भविष्यकालबोधक तथा पूर्णकालबोधक रूप हो सकते हैं। जैसे—

(अ) अतीतकालबोधक—/परु/ 'पारसाल' 'तीसरे साल' /कल्लि/ 'कल' /पर्सौं/ 'परसौं' /अतर्सौं/ आदि। जैसे—/परु गयो/ 'पारसाल गया था' /कल्लि मैंने एकु सिआँपु देखिओ/ 'कल मैंने एक साँप देखा था' /तू पर्सौं अपने गाम कूँ गइऔ/ 'तू परसों अपने गाँव को गया था' /छोरा नैं अतर्सौं एकु सेरु देख्यो/ 'छोरा ने अतरसों एक शेर देखा था'। तीसरे साल के लिए /तिऔर्सु/ का प्रयोग होता है। /तिऔर्सु फसलि अच्छीई/ 'तीसरे साल फसल अच्छी थी'।

(आ) वर्तमान काल बोधक—/हाल/, /एसौं/ 'इस वर्ष' /आजु/ 'आज' /तुर्त/ 'तुरन्त' /मैं हाल चलिजौ जाँतूँ/ 'मैं हाल चला जाता हूँ' /एसौं फसलि अच्छी ऐ/ 'इस वर्ष फसल अच्छी है' /आजु बड़े जोर कौ मेहु बरसिऔ/ 'आज बड़े ज़ोर का मेह बरसा' /जा कामैं तुर्त कर्तूं/ 'इस काम को तुरन्त करता हूँ'।

(इ) भविष्यबोधक—इसके ये प्रकार हो सकते हैं—

/अंगार/ 'आगे' /जो होगी सो अगार आवैगी/ 'जो होगी सो आगे आवेगी' /अगाड़ी देखि कहा हौंतु ऐ/ 'आगे देख क्या होता है।' /कल्लि/, /पर्सौं/, /अतर्सौं/ का प्रयोग भी भविष्य के अर्थ में हो सकता है।

अ—पूर्णकालवाचक—/हमेस~हमेसाँ/, /सदा/ 'सदैव' /मैंनें हमेस तेरी मदति करी/ 'मैंने हमेशा तेरी मदद की' /तैंनें सदां मोईऐ दोसु लगाइऔ/ 'तूने सदा मुझे दोष लगाया'।

३. रीतिवाचक—/जल्दी/ 'जल्दी' /बिरकुल्लि/ 'बिल्कुल' /अवांचक्का/ 'अचानक' /जरुल/ 'ज़रूर' /स्याहति/ 'शायद' /फौरन/ 'फौरन' /अलबत्ता/ 'अवश्य' /हाँ/~/आँहाँ/ 'हां हां' /नां/ 'नाँ'~/नाँ/, /मति/ 'मत' आदि। जैसे—/बु भौज्जल्दी चल्तुऐ/ 'वह बहुत जल्दी चलता है' /मेरे पास रुपिआ बिरकुल्लि नाँ ऐ/ 'मेरे पास रुपये बिल्कुल नहीं हैं' /फौरन चलिऔ जा/ 'फौरन चला जा' /जि बात अलबत्ता ऐ/ 'यह बात अवश्य है'।

४. परिमाणवाचक—/खूबु/, /बु खूबु रोयौ/ 'वह खूब रोया'।

३.३.१२. व्युत्पन्नरूप—संज्ञापदों, विशेषणों, सार्वनामिक अङ्गों, तथा **अव्ययों में प्रत्ययों का योग करके क्रिया विशेषणों की व्युत्पति की जाती है।** उक्त पदों में युक्त होने वाले पर प्रत्यय ये हैं: /-बस/ 'वश' /-ऐं/ 'ए' /-कूँ/ 'को' /-ते/ 'से' /मैं/ 'में' /-कौ/~/के/~/की/ 'का, के की' /-तक/ 'तक' /कैं/ 'कर' /भरि/ 'भर' /-अन/ 'अन' /पूर्व प्रत्यय ये हैं: /निर/ 'निः' /स्यौं/ 'स-' /बि/ 'वि-' /अन्/ 'अन' /नि/, /हर-/, /दर-/। सार्वनामिक अङ्गों के साथ जुड़ने वाले पूर्व प्रत्यय ये हैं: /क्-/, /ज्-/, /व्-/, /त्-/।

क—संज्ञाओं के आधार पर बने क्रिया विशेषण—

अ—संज्ञा+परप्रत्यय=क्रिया विशेषण।

संज्ञा+/-बस/ : /भागिबस/ 'भाग्यवश' /भागिबस बु राँड़ है गई/ 'भाग्यवश वह विधवा हो गई' /होनी बस ऐसो है गौ/ 'होनहारवश ऐसा हो गया'।

संज्ञा+/-कूँ/ : /राति कूं/ 'रात को' /राति कूँ रोटी खांगो/ 'रात को रोटी खाऊँगा' यदि भूतकालिक क्रिया रूप के साथ इसका प्रयोग होता है तो /कूँ-/ का प्रयोग ऐच्छिक रहता है। जैसे—/हम राति ड़िड़ोले देखिबे गए/~/हम राति कूं हिड़ोले देखिबै गए/ 'हम रात को हिडोरे देखने गये थे।

संज्ञा+/-ऐं/ : /सबेरें मैंने रोटी खाई/ 'सबेरे मैंने रोटी खाई थी' /मैं तेए भरोसैं बैठिऔं ऊँ/ 'मैं तेरे भरोसे बैठा हूँ।'

संज्ञा+/-ते/ : /मैं धरमते कैंहैं तूँ/ 'मैं धर्म से कहता हूँ' /तू मन्ते कामु करि/ 'तू मन से काम कर' /इत्ते काटि/ 'इधर से काट' /बु जोर्ते बोल्तु ऐ/ 'वह ज़ोर से बोलता है।'

संज्ञा+/-मैं/ : /अखीर मैं मेए जोरैं आभनौ पर्यौ/ 'आखिर में मेरे पास आना पड़ा'।

संज्ञा+/कौ/~/के/~/की/ : /डोकरा सई साँझ कौ मरिगौ/ 'डोकरा शाम को मर गया' /छोरा सबेरे के गए ऐं/ 'लड़के सबेरे के गए हैं' /डोकरी धौपर की आई ऐ/ 'डोकरी दुपहर की आई है'।

संज्ञा+/तक/ : संजा तक आइ जांगो। 'शाम तक आजाऊँगा'। घर तक जाइ रहौ ऊं। 'घर तक जा रहा हूँ'।

संज्ञा+/भरि/ : /मैं नें राति भरि तेरौ पैंड़ो देखिऔ/ 'मैंने रात भर तेरी प्रतीक्षा की' /दिन भरि ऐसेंई डोल्तु रहिऔ/ 'दिन भर ऐसे ही डोलता रहा'।

इनमें से कुछ परसर्ग हैं। अन्तिम प्रत्यय क्रिया के आधार पर बना है : √भर- 'भरना, पूर्ण'।

आ—संज्ञा+पूर्व प्रत्यय=क्रि० वि०

/-निर~-नि-/+संज्ञा : /बु निधड़क कामु कर्तु ऐ/ 'वह निधड़क काम करता है' /राति में मैं निडर चल्यौ जाँतूं/ 'रात में मैं निर्भय चला जाता हूँ' /छोरा निरभै लिखतु रैं हेंतु ऐं/ 'छोरा निर्भय लिखा करता है'।

/सिऔं/+संज्ञा : /बु सिऔं देही सुरग कूँ चल्यौ गौ/ 'वह सदेह स्वर्ग चला गया' /गंगा जी मैं न्हाईबेते सिऔं कुटम तिरि जाइगौ/ 'गंगा में नहाने से सकुटुम्ब तर जायगा'।

/वि/+संज्ञा : /बिर्था बात मतिकरै/ 'व्यर्थ बात मत करें' इसका प्रयोग अत्यन्त विरल है।

/हरि/~/हर/ +संज्ञा : /हर्साल अकालु पर्तु ऐ/ 'प्रति वर्ष अकाल पड़ता है' /हरि महीना सौ रुप्या व्याकूं भेजने पर्त ऐ/ 'सौ रुपये उसको हर महीने भेजने पड़ते हैं'।

/दर/+संज्ञा : /दर हकीकति मौपै जि कामु नाँइँ आमतु/ 'सत्यतः मुझसे यह कार्य नहीं आता है। इसका प्रयोग विरल है।

/ब/+संज्ञा : /बुआकौ कामु बदस्तूर चलिऔ गौ/ 'उसका काम बदस्तूर चला गया'।

/बे/+संज्ञा : /बु बेकार बोल्तु ऐ/ 'वह बेकार बोलता है' /जि वे तरह मार्तु ऐ/ 'यह बुरी तरह मारता है'।

२—विशेषण के आधार पर बने क्रिया विशेषण—

विशेषण+/ऐं/ : /धीरैं बोलि/ 'धीरे बोल' /अच्छैं कामु करि/ 'अच्छी तरह काम कर' /काऊते बुरैं मति बोलै/ 'किसी से बुरी तरह मत बोले।' /पैहलें कामुकरि पीछैं रोटी खईयो/ 'पहले काम करले पीछे रोटी खाना' /ऐसें मति कहै/ 'इस प्रकार मत कहे।'

विशेषण+/जन/ : /बुआनें जबरन बुआते बिहाहु कल्लौ/ 'उसने ज़बरदस्ती उससे विवाह कर लिया'।

विशेषण+/मैं/ : /इतने मैं बु आइगौ/ 'इतने में वह आगया' /जि कामु सहज मैं है जाइगौ/ 'यह काम सरलता से हो जायगा'।

संख्या क्रम विशेषण+/आँ/ : /दूसराँ/ 'दूसरी बार' /तीसराँ/ 'तीसरी बार' /चौथाँ/ 'चौथी बार' /पांचा/ 'पाँचवीं बार'

विशेषण यदि वाक्य में विशेष्य के पूर्व प्रयुक्त न होकर क्रिया के पूर्व प्रयुक्त होता है तो वह क्रिया विशेषण होता है। किन्तु /ऐ/~/ऐं/~/ऊँ/~/औ/ क्रियाओं वाले वाक्यों में यह नहीं होता। जैसे—/छोरा अच्छौ गयौ/ 'लड़का अच्छा गया' /छोरा बु गयौ/ 'छोरा वह गया' /अच्छा/~/अच्छौ/, /भला/~/भलौ/ पद अनुमोदनार्थक रूप में भी प्रयुक्त होते हैं।

३—सार्वनामिक अङ्गों के आधार पर रचित क्रिया विशेषण

(१) **सार्वनामिक अङ्ग**+/-**ब**/=कालवाचक क्रिया विशेषण

/अ–/+{–ब}=/अब/=(घटमान वर्तमान)

/ज–/+{–अब}=/जब/=(दूरवर्ती अतीत; सम्बन्धवाचक)।

/त्–/+{–अब}=/तब/=(दूरवर्ती अतीत; नित्यसम्बन्धी)।

/क्–/+{–अब}=/कब/=(प्रश्नवाचक)।

/–ब/ का प्रयोग स्वर के पश्चात् होता है। तथा /अब्/ का प्रयोग व्यञ्जनों के पश्चात्।

(२) **सार्वनामिक अङ्ग**+/–आँ/~/अँहाँ/[1]

/इ/+/–आँ/=* /इँ आँ/~[न्याँ]~[ज्याँ] 'यहाँ'

/उ/+/–आँ/=* /उँ आँ/~[म्वाँ]~[माँ] 'वहाँ'

/ज्/+/अँहाँ/= /जँ हाँ/ 'जहाँ'

---

१. आँ का प्रयोग स्वर के पश्चात् होता है और –अँ हाँ का प्रयोग व्यञ्जन के पश्चात्

/त्/ + /अँ हाँ/ = /तँ हाँ/ 'तहाँ'

/क्/ + /अँ हाँ/ = /कँ हाँ/ 'कहाँ'

(३) सार्वनामिक अङ्ग + {–त ~ इत} = दिशावाचक अव्यय—

/इ-/ +{-त} = /इत/ 'इधर' : समीपतासूचक।

/उ-/ +{-त} = /उत/ 'उधर : दूरत्वसूचक।

/ब्-/ +{-इत} = /बित/ 'उधर' : दूरत्वसूचक।

/ज्-/ +{-इत} = /जित/ 'जिधर' : सम्बन्धसूचक।

/त्-/ +{-इत} = /तित/ 'उधर' : दूरत्वसूचक : सम्बन्धसूचक।

/क्-/ +{-इत} = /कित/ 'किधर' : प्रश्नसूचक।

उक्त रूपों का प्रयोग /कूँ/ अथवा /मैं/ परसर्ग के साथ होता है। इस प्रकार /इतकूँ/ ~ /इतमें/, /उतकूँ/ ~ /उतमैं/, /बितकूँ/ ~ /बितमैं/, /जितकूँ/ ~ /जितमैं/, /तितकूँ/ ~ /तितमैं/, /कितकूँ/ ~ /कितमैं/ रूप प्राप्त होते हैं।

(४) सार्वनामिक अङ्ग + {-इतन्} = परिमाणवाचक रूप के साथ तिर्यक {-ए१} तथा {-/में/ का योग करके कालवाचक क्रि० वि० घटित किया जाता है। /इतने में बुआइगौ/ 'इतने में वह आ गया'।

{-त} = /-त/, /-इत/

= /-त/ का प्रयोग स्वर के पश्चात् होता है। जैसे—/इत/, /उत/

= /-इत/ का प्रयोग व्यञ्जनों के पश्चात् होता है। जैसे—/बित/, /जित/, /कित/ आदि।

(५) सार्वनामिक अङ्ग + {–यौं} = रीतिवाचक अव्यय

/इ-/ +{-औं} = */इँयों/, /ज्यौं/ ~ /ज्यों/ 'यौं' : समीपतासूचक।

/ज्-/ +{-औं} = [ज्यों] 'ज्यों' : सम्बन्धसूचक।

/त्-/ +{-औं} = [त्यौं] 'त्यों' : सम्बन्धसूचक।

/क्-/ +{-औं} = [क्यौं] /वौं/ 'क्यों' प्रश्नवाचक

(६) सार्वनामिक अङ्ग + {-स् ~ ऐस्} + {-ऐं} = रीतिवाचक

{-ऐस्-} = समानताद्योतक

{ऐं-} = प्रकार द्योतक

/ऐ-/ +{- स्-}+{-ऐं} = /ऐसें/ 'इस प्रकार समीपतासूचक

/ब-/ +{-ऐस्-}+{-ऐं} = /बैसें/ 'उस प्रकार' }

/त्-/ +{-ऐस-}+{-ऐं} = /तैसें/ 'तिस प्रकार' } दूरत्वसूचक

/ज्-/ +{-ऐस्-}+{-ऐं} = /जैसे/ 'जिस प्रकार' }

/क्-/ +{-ऐस्-}+{-ऐं} = /कैसैं/ 'किस प्रकार : प्रश्नसूचक

(७) **सार्वनामिक अङ्ग+{-औ}** = उद्देश्य-सम्बन्धसूचक
/ज्-/ +{औ} = /जौ/ 'यदि'
/त्-/ +{औ} = /तौ/ 'तो'

(८) **सार्वनामिक अङ्ग+{-आ~अहा}**=प्रश्नसूचक अव्यय
/क्-/+{-आ~अहा}=/का/~/कहा/ 'क्या' ?

४—क्रिया पदों से रचित क्रिया विशेषण

१. **क्रि० धा०+{-ऐं}**=क्रि० वि० /ऐं/ का अर्थ 'हुए' होता है। जैसे—
√चढैं+/ऐं/=/चढ़/ : /बुआइ घोड़ा पै चढैं भौह्दिना है गए/ 'उसको घोड़े पर चढ़े हुए बहुत दिन हो गए'।
√आ +/ऐं/=/आंऐं/ : छोरा ऐ गाम्मैं आँऐं हुऐ बर्स है गए/ 'छोरा को गाँव में आये हुए दो वर्ष हो गये'।
√बिक्+/ऐं/=/बिकैं/ : /घोड़ा ऐ बिकैं एकु अठबारौ है गौ/ 'घोड़े को बिके हुए आठ दिन हो गये'।

२. **क्रि० धा०+{इ}**=क्रि० वि०। जैसे—
√फिर्+{इ}=/फिरि/ 'फिर' /सच्ची बात मैं तोइ फिरि बतांगो/ 'सच्ची बात मैं तुझे फिर बताऊँगा'।

यह कालवाचक है। इस प्रकार का केवल यही रूप मिलता है।

३. **पूर्व० कृ०+{कैं}** 'कर'=क्रि० वि०। जैसे—
/कसि/+/कैं/=/कसिकैं/ : /मालिक नौंकर पै ते कसि कैं कामु लैंतु ऐ/ 'मालिक नौंकर से कस कर काम लेता है'।
/खैंचि/+/कैं/=/खैंचि कैं/ : /मेरे फोरा पै खैंचिकैं पट्टी बान्दै/ 'मेरे फोड़ा पर खैंच कर पट्टी बाँध दे।'

५. **अव्ययों से रचित क्रिया विशेषण** : जैसे—/न्याँ तक/ 'यहाँ तक' /बुन्याँ तक रिस भयौ कै ब्वानैं बु घर ते निकार्दी यौ/ 'वह यहाँ तक रिस हुआ कि उसने वह घर से निकाल दिया' /कब कौ/ 'कब का'। बु कब कौ चल्यौ गौ। 'वह कब का चला गया'

६. **क्रिया विशेषण से रचित**—क्रि० वि० के साथ /-ई/ जोड़कर निश्चयार्थक रूप बनाया जाता है। जैसे—/अब/+/ई/=अबई। /बु अबई जाइगौ/ 'वह अभी जायगा' /न्यां/+/ई/=/न्यँई/ 'यहीं' /बु न्यंई जाइगौ/ 'वह यहीं जायगा'। यह केवलार्थक है /ऊ/ जोड़कर समेतार्थक रूप बनाए जाते हैं। जैसे /बुन्यां ऊं जाइगौ/ 'वह यहाँ भी जायगा'।

३ ३.१३. संयुक्त अव्यय

१. द्विरुक्ति—क—संज्ञाओं की द्विरुक्ति—/घर-घर/ 'प्रत्येक घर पर' /द्वार-द्वार/ 'प्रत्येक द्वार पर' /घड़ी-घड़ी/ 'प्रत्येक घड़ी पर' /बीचाबीच/ 'बीचों बीच' /हातों-हात/ 'हात-हात में' /राम-राम/ 'घृणासूचक'

इसमें दो रूप गठन मिलते है—(√+√) तथा (√+औं+√+अ)

ख—विशेषणों की द्विरुक्ति—/एका-एक/ 'अचानक' /एकुएकु/ 'एक-एक' इसमें गठन के दो प्रकार हैं:—√+√तथा √+आ+√+अ।

ग—क्रिया विशेषणों की द्विरुक्ति—/धीरैं-धीरैं/ 'धीरे-धीरे' /जहाँ-जहाँ/ 'जहाँ-जहाँ' /कहाँ-कहाँ/, /तँहाँ-तहाँ/ 'तहाँ-तहाँ' /कब-कब/ 'कब-कब' /पैहलैं-पैहलैं/ 'पहले-पहल' /ज्यौं-ज्यौं/, /त्यौं-त्यौं/, /जैसें-जैसैं/, /तैसैं-तैसैं/ /जब-जब/, /तब-तब/

घ—क्रियाओं की द्विरुक्ति—/सोमत-सोमत/, /बैठें-बैठैं/

ङ—अनुकरणात्मक शब्दों की द्विरुक्ति—/सटा-सट/, /धड़ा-धड़/, /धैड़-धैड़/, /चटा-चट/, /तैड़-तैड़/, /गटा-गट/ आदि इसमें गठन के दो रूप हैं √+√तथा √+आ+√अ।

उदाहरण

/बु घर-घर डोलिऔ परि काउ नैं कछू नँ दीयौ/ 'वह घर-घर डोला पर किसी ने कुछ नहीं दिया' /द्वार-द्वार डोलिबे ते कछू फाइदा नाँऐं/ 'प्रत्येक द्वार पर डोलने से कोई लाभ नहीं' /बु मेए जौरैं घड़ी-घड़ी आमंतु ऐ/ 'वह मेरे पास घड़ी-घड़ी आता है' /ताल के बीचाबीच एकु खम्भु ओ/ 'तालाब के बीचोंबीच एक खम्भा था' /मक्का की भुटिया हातों-हात बिग्गई/ 'मक्का की भुटिया हाथों-हाथ बिक गई' /बु एका-एक रोइ पर्‌इऔ/ 'वह अचानक रो पड़ा' /एकु-एकु आइ जाऔ/ 'एक-एक करके आजाओ' /धीरैं-धीरैं कैहै कोई सुन्न ले/ 'धीरे-धीरे कह-कोई सुन न ले'। /जहाँ-जहाँ जाइगौ भुआँ भुआँ ~ तहाँ-तहाँ फटकार मिलैगी/ 'जहाँ जायगा वहाँ ~ तहाँ फटकार मिलेगी' /तैनैं कब-कब बम्बफारी ऐं/ 'तूने कब-कब बम्ब फाड़ी है' /कहाँ-कहाँ जाइगो/ 'कहाँ-कहाँ जायगा'। /बैठैं-ब्रैठैं कामु नँ चलै गौ/ 'बैठे-ब्रैठे काम नहीं चलेगा' /मैं पैहलैं-पैहलैं अपनी सुसरारि गयौ/ 'मैं पहले-पहले अपनी सुसराल गया' /जैसैं-जैसैं रुपया आमन् जाँगे, तैसैं-तैसें दैन् जांगो/ जैसै-जैसै रुपये आते जायँगे, तैसै-तैसै देता जाऊँगा'।

/जब-जब भीर परी भगतन पै तब-तब आइ बचाए/ 'जब-जब भक्तों पर भीर पड़ी तब-तब आकर बचाया'।

/जिऔं-जिऔं गोह मौटी भई तिऔं-तिऔं बिलौ सकरौ भयौ/ 'जैसे-जैसे गोह मौटी हुई तैसे-तैसे बिल संकीर्ण हुआ'।

/सिआँपु भिल्स में सटा-सटा घुसि गौ/ 'साँप बिल में सटासट घुस गया' /बुआ की दुकान पै धड़ाधड़ बिकरी है रही ऐ/ 'उसकी दुकान पर धड़ाधड़ बिक्री हो रही है'।

/मास्टर नें छोरा में धैड़-धैड़ थप्पड़ मारे/ 'मास्टर ने छोरा में धैड़-धैड़ थप्पड़ मारे'।

/बुआनैं गटागट भाँग पीई/ 'उसने गटागट भाँग पी'।

/सौमत-सौमत जि बखतु हैगौ/ 'सोते-सोते यह वक्त हो गया'।

२. **दो समान क्रिया विशेषणों के बीच /-न-/ रख कर** भी क्रिया विशेषण रूप प्रस्तुत किये जाते हैं। जैसे—/कबऊ-न-कबऊ/ 'कभी-न-कभी'. /कहूँ-न-कहूँ/ 'कहीं-न-कहीं' जैसे—/कबऊ-न-कबऊ मेरौ दाउ लगैगौ/ 'कभी-न-कभी मेरा दाँव लगेगा' /कहूँ-न-कहूँ तौ जांगो/ 'कहीं न कहीं तो जाऊँगा'।

३. **दो भिन्न-भिन्न क्रिया विशेषणों का संयोग**—/जहाँ-तहाँ/, /जहाँ-कहूँ/ 'जहाँ कहीं' /जब-तब/, /जब-कबऊ/ 'जब-कभी' /तर-ऊपर/ 'तले ऊपर' /ओर पास/ /आसपास/, /आमुई-सामुई/ 'आमने-सामने' /कबऊ-जबऊ/ 'कभी-कभी' जैसे—/अब तौ जहाँ-तहाँ फोरा रहै गए ऐं/ 'अब तो कहीं-कहीं फोड़े रह गये हैं' /जहाँ-कहूँ जाहु हुसिआरी ते रहीजो/ 'जहाँ-कहीं जाय होशियारी से रहना' /मैं बुआ के निआँ जब-तब जाँतूं/ 'मैं उसके यहाँ कभी-कभी जाता हूँ' /जब कबऊ आवैगौ तौ तेरी कैहै दुंगो/ 'जब कभी आवेगा तो तेरी कह दूँगा' /किताब कबरा में तर-ऊपर परी ऐं/ 'किताब कमरे में एक के ऊपर एक पड़ी हैं' /घर के ओर पास घासु ठाड़ी ऐ/ 'घर के आसपास घास खड़ी है' /बु भोते आँमुंई-साँमुंई बात करै/ 'वह मुझसे आमने-सामने बात करै' /सुसरारि कूं कबऊ-जबऊ जाऔ करि/ 'सुसराल को कभी-जभी जाया कर।'

४. **संज्ञा+/के/+संज्ञा=क्रि० वि०**—जैसे—/महीना-के-महीना/, /दिनां के-दिना/ इसका अर्थ प्रत्येक होता है। जैसे—/तू अपने रुपिआ महीना-के-महीना लै जाऔ करि/ 'तू अपने रुपये महीने के महीने ले जाया कर' /दिनां-के-दिनां आइबौ ठीक नाएँ/ 'ऐन दिन आना ठीक नहीं है' /पैंठ के खन/ 'पैंठ के क्षण' /कलेऊ के बखत/ 'कलेऊ के वक्त' इनमें प्रत्येक का अर्थ न होकर समय की ओर इंगित है।

५. **संज्ञा+/हाँ/=क्रि० वि०** पेट+/हाँ/=/पिटि हाँ/, /बु पिटि हाँ परिगौ/ 'वह पेट के बल गिर पड़ा'।

६. **विशेषण+संज्ञा**=क्रि० वि० जैसे—(क) /एक पोत/, /दूसरी ओर/,

/हरि पोत/, /हरि घड़ी/, /एक पोत मैं बुआ के गाम्मैं गइऔ/ 'एक बार मैं उसके गाँव में गया' /दूसरी ओर देखि/ 'दूसरी ओर देख'।

ख—/जाखन/ 'इस क्षण' /जाठौर/ आदि 'इस जगह' /तू जाखन जाइगौ/ 'तू इस क्षण जायगा' /बु काखन आवैगौ/ 'वह किस क्षण आवेगा' /जा ठौर बैठि/ 'इस जगह बैठ'।

ग—/कुंसे बखत आवैगौ/ 'कौन से वक्त आवेगा ?

७. संज्ञा+क्रि० धा०+{ऐं}=क्रि० वि०। जैसे—दिन्+√चढ़+ऐं= /दिन चढ़ैं/, /वु दिन चढ़ैं सोइ कैं उठतु ऐ/ 'वह दिन चढ़ने पर सोकर उठता है' इसका एक दीर्घ रूप विशेषण से युक्त भी हो सकता है /चारि घंटा दिन चढ़ैं/ 'चार घंटे दिन चढ़े'।

८. वि० /तरह/=क्रि० वि० /अच्छी तरह बोलि/ 'अच्छी तरह बोल।' /मैंनें बु बुरी तह रोमद्देखिऔ/ 'मैंने बुरी तरह रोता देखा'।

९. वि०+क्रि० धा०+{ए}=क्रि० वि०। जैसे—

चारि+√बज्+{ए}=/चारि बजे/, /मैं चारि बजे जांगो/'मैं चार बजे जाऊँगा।'

१०. क्रि० वि०+/ऊँ/+क्रि० वि०=क्रि० वि० /तैंनै आगैं ऊँ आगैं कार्ज करे ऐं/ 'तूने पहले भी कार्य किया है'।

११. क्रि० वि०+/आँ/=क्रि० वि०=क्रि० वि० /अंत/ 'अन्यत्र'+/आँ/= /अंता/, /बुन्याते कहूँ अंताँ चलइआगौ/ 'वह यहाँ से कहीं अन्यत्र चला गया' /और/ 'और'+/आँ/=/औराँ/ 'और स्थान पर', /औराँ चल्यौगौ/ 'और स्थान पर चला गया'।

१२. क्रि० वि०+क्रि० वि०=क्रि० वि० जैसे—

/अब/+/हाल/=/अभाल/ जैसे /मैं अभाल आमतूं/ 'मैं अभी हाल जाता आता हूँ'।

३.३.२. क्रिया विशेषण के स्थानापन्न शब्द—जो शब्द विना किसी रूपान्तर के क्रिया विशेषण के समान प्रयुक्त हों उन्हें स्थानीय क्रिया विशेषण कहा जाता है।

१. संज्ञा—मुहावरों में कहीं-कहीं संज्ञा क्रि० वि० के रूप में प्रयुक्त होती है। जैसे—/तू मैंरौ मूँड़ पढ़ैगौ/ 'तू मेरा सिर पढ़ेगा'। अर्थात् तू नहीं पढ़ेगा'। तू मेरी /पत्थर मदति करैगो/ 'तू मेरी मदद नहीं करेगा'।

२. सर्वनाम—/मैं तौ जि चलिऔ/ 'मैं तो यह चला' /घोड़ा बु आमतु ऐ/ 'घोड़ा वह आता है' /छोरा बु रहि-औ/ 'छोरा वह रहा' /बु मौइ कहा मारैगौ/ 'वह मुझे क्या मारेगा।'

३. **विशेषण**—/छोरा अच्छौ गामतु ऐ/ 'छोरा अच्छा गाता है' /आदिमी उदास बैठिऔ ऐ/ 'आदमी उदास बैठा है' /छोरा कैसौ कूदिऔ/ 'छोरा कैसा कूदा।'

४. **पूर्व कालिक कृदन्त**—/छोरा भाजि कैं चल्तु ऐ/ 'छोरा भाग कर चलता है' /छोरा रोइ कैं भाजि गौ/ 'छोरा रोकर भाग गया'।

२.१५.२. **अन्य अव्यय**—इसके भी कई वर्ग हो सकते हैं: बलवर्द्धक, समानार्थक, समेतार्थक, केवलार्थक, सम्बन्धसूचक, समुच्चयबोधक, तथा विस्मयादि-बोधक अव्यय।

१. **बलवर्द्धक**—/तौ/ 'तो' /तक/ 'तक' इनके अतिरिक्त /हतु/ 'है'+/तौ/ 'तो'=/हतौ/ का प्रयोग भी होता है। जैसे—/छोरा तौ अच्छौ ऐ/ 'छोरा तो अच्छा है' /छोरा अच्छौ तौ ऐ/ 'छोरा अच्छा तो है' /छोरा हत्तौ अच्छौ ऐ/ 'छोरा है तो अच्छा' /बुआनैं पानी तक्की न पूछी/ 'उसने पानी तक की नहीं पूँछी' /हत्तौ/ के स्थान पर /तौ हतु/ का भी प्रयोग होता है/ जैसे—/छोरा अच्छौ तौ हतु ऐ/ 'छोरा अच्छा तो है'।

२. **समानार्थक**—/स्/+: लि० वच० : =/सौ ~ से ~ सी/ 'सा, से, सी' जैसे—/जि छोरा अपनी मां सौ ऐ/ 'यह लड़का अपनी मा के समान है' /जि छोरी मरी सी ऐ/ 'यह लड़की मरी सी है' /तुम से सैकन्नु देख् ऐं/ 'तुमसे सैकड़ों देखे हैं'।

३. **समेतार्थक**—/ऊ/ 'भी' जैसे—/मैं ऊ जांगो/ 'मैं भी जाऊँगा' /मैं रोटी ऊ खांगो/ 'मैं रोटी भी खाऊँगा।'

४. **केवलार्थक**—/ई/ 'ही' जैसे—/तुई जाइगौ/ 'तू ही जायगा' /छोरी ई जाइगी/ 'छोरी ही जायगी'।

५. **सम्बन्धसूचक**—सम्बन्धसूचक अव्यय, संज्ञा अथवा संज्ञा के समान प्रत्युक्त शब्दों के पीछे प्रयुक्त होकर वाक्य के किसी दूसरे शब्द के साथ उसको सम्बन्धित करता है। कुछ कालवाचक और स्थानवाचक क्रि० वि० भी सम्बन्धसूचक हो सकते हैं। जैसे—/मेए निआँ एकु नौंकरु रैहैंतु ऐ/ 'मेरे यहाँ एक नौकर रहता है' /बु जाइबे ते पैहलैं अपनीं कामु कर्जातु ऐ/ 'वह जाने से पहले अपना काम कर जाता है 'ये ही 'यहां' और 'पहले' स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त होकर क्रि० वि० ही रहते हैं। प्रयोग के अनुसार सम्बन्धसूचक अव्ययों को दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं: संज्ञाओं की विभक्तियों के पीछे प्रयुक्त होने वाले तथा संज्ञा के तिर्यक् रूप के साथ प्रयुक्त होने वाले।

क—संज्ञाओं की विभक्तियों के पीछे आने वाले सं० सू० अव्यय—/आगैं/, /पीछैं/, /बाद/, /पैहलैं/ 'पहले' /ऊपर/, /नीचैं/, /सामुंई/ /सामनैं/, /पास/, /जौरैं/, /नजीक/, /न्याँ/, 'यहाँ' /बीच/, /बाहिर/ 'बाहर' /दूरि/ 'दूर' /भीतर/, /और/

'तरफ' /आरंपार/ 'आरपार' /ओरआस/ 'आसपास' /बल/, /मारफत/, /सहारे/, /काजैं/, /लैं/ /लिएँ/ 'लिये' /खातिर/, /मारैं/ 'मारे' /जानैं/ 'जाने' /भरोसैं/, /मद्धे/, /सिवाइ/ 'सिवा /बिनां/, /बदले/, /जगै/ 'जगह' /तरह/, /लाक/ 'लायक' /देखा-देखी/, /संग/ इस सूची को मूल तथा यौगिक सं० सू० अव्ययों में विभक्त कर सकते हैं।

उदाहरण—/घर के आगैं एकु नीबु ऐ/ 'घर के आगे एक नीम है' /मोते आगैं कोई नांएँ/ 'मुझसे आगे कोई नहीं है' /मदर्से के पीछें मेऔ खेतु ऐ/ 'मदरसे के पीछे मेरा खेत है' /छोरा ते पोछें कोई नांएँ[1]/ 'छोरा से पीछे कोई नहीं है' /जाके बाद बु मरिगौ/ 'इसके बाद वह मर गया' /पेड़ के नीचें एकु बाबाजी बैठिऔ ऐ/ 'पेड़ के नीचे एक बाबाजी बैठा है' /मेए घर के सांमुई बुआ कौ घरु ऐ/ 'मेरे घर के सामने उसका घर है' /छोरा के पास कछू नांएँ/ 'छोरा के पास कुछ नहीं है' /गुरू के जौरैं जा/ 'गुरु के पास जा' /गाम के नजीक बागु ऐ/ 'गाँव के नज़दीक बाग है' /भंगी के निआँ-सूहर रैहैंत ऐं/ 'भंगी के यहाँ सूहर रहते हैं' /घर के बीच तुलसी ऐ/ 'घर के बीच तुलसी है' /गाम के बाहिर रहौ करि/ 'गांव के बाहर रहा कर' /बु घतैं दूरि रैहैंतु ऐ/ 'वह घर से दूर रहता है' /घर के भीतर जा/, /बुआ की ओर मेए सात रुपिआ निकर्त ऐं/, /लकड़िआं के आरंपार छेदु है गौ/ /घर के ओर पास चमार रैहैंत ऐं/, /बु घौंटून के बल गिरि पर्यौ/ 'वह घुटनों के बल गिर पड़ा' /चिटठी मेए इआर की मारफति आई/ /बु भीति के सहारें बैठ्िऔ ऐ/ 'वह भीत के सहारे बैठा है' /छोरा के काजैं दूधु ले आ/, /मेए लैं पानी ला/ 'मेरे लिये पानी ला' /जाकी खातिर मैंने पक्की घरु बनबाइऔ/, /डर के मारैं घर्ते नाएँ निकर्तु/, /बुआ के जानैं हम्मरि गए/ 'उसके जाने हम मर गये' /कौन के भरोसैं रैहैंतु ऐ/ 'किसके भरोसे रहता है' /दान के मद्धैं रुपिआ निकारे/, /जा के सिबाइ कछू चारौ नाँएँ/, /रोटी के बिनां आदिमी की जिंदगानी नाँएँ/, /खेत के बदले खेतु लै लै/, /बाकी जगै तू बैठिजा/, /जाकी तरह मोपै नं बनैगी/ /जिलता दुल्हा के लाकै/ 'यह कपड़ा दूल्हा के लायक है' /जाकी देखा देखी बुह् पढ़ि बे लगिऔ/, /भैया के संग जांगो/ 'भाई के साथ जाऊँगा'।

ख—संज्ञाओं के तिर्यक रूपों के साथ प्रयुक्त होने वाले—ये अव्यय संख्या में कम हैं : /तक/, /समेत/, /सुन्ना/, /सरीकै/ 'सरीखा' /पार/, /बस/, /भर/, /सौ/

उदाहरण—/घर्तक जांगौ/ 'घर तक जाऊँगा' /छोरा सुन्नाँ गए/ 'छोरा सहित गये' /जा सरी कौ कोई आदिमी नाँएँ/, /गंगा पार जांगौ/ 'गंगा पार जाऊँगा'

---

१. /के/ के पश्चात् प्रयुक्त हो कर ये अव्यय स्थानवाचक होते हैं तथा ।ते। 'से' के पश्चात् प्रयुक्त हो कर कालवाचक होते हैं।

/भागि बस ऐसौ हैगौ/ 'भाग्यवश ऐसा हो गया' /मोइ रत्ती भरी खबन्नाऐं/ 'मुझे रत्ती भर खबर नहीं है' /जा छोरा सौ कोई झूंटा नाऐं/ 'इस लड़के सा कोई बेईमान नहीं है'।

६. संयोजक अव्यय—संयोजक अव्यय शब्दों और वाक्यों को संयुक्त करते हैं। इनके दो भाग हो सकते हैं: समानाधिकरण (समान वाक्यों को संयुक्त करने वाले) तथा व्यधिकरण (एक या अधिक आश्रित वाक्यों को संयुक्त करने वाले)

अ—समानाधिकरण—अव्ययों के ४ उपभेद हो सकते हैं—समुच्चयबोधक, विभाजक, प्रतिषेधक तथा परिणामदर्शक।

क—समुच्चयबोधक—/औरु/, /बु जाइगौ औरु बैं जांगो/ 'वह जायगा और मैं जाऊँगा'

ख—विभाजक—/कै/~/इआ/ जैसे—/जिजाइगौ कै मैं जांगो/ 'यह जायगा इआ मैं जाऊँगा' /कै तौ छोरा होगौ कै छोरी/ 'या तो लड़का होगा या लड़की' /लौटैगौ इआ नँ लौटैगौ/ 'लौटेगा या नहीं लौटेगा'।

इन मुख्य विभाजकों के अतिरिक्त कुछ अन्य भी हैं: चाँइँ–चाँइँ, /कहा–कहा/ /नँ—नँ/, /चाँइँ तू दूधु पी चाँइँ अपने छोरा ऐं प्याइ/ 'चाहे तू दूध पी चाहे छोरा को पिला' /कहा देवता कहा आदिमी सबु देखत रहै गए/ 'क्या देवता क्या आदमी देखते रह गये' /नँजीबैगौ नँ जीमन्दे गौ/ 'नँ जीवेगा नं जीने देगा'।

ग—प्रतिषेधक—/परि/, /मैं जरूर जाँतौ परि अब नँ जांगो/ 'मैं अवश्य जाता पर अब नहीं जाऊँगा' 'कभी-कभी /परि/+/लेकिन/ रूप भी मिलता है /आवैगौ तौ हतु पल्लेकिन पिटि कैं आवैगौ/ 'आवेगा तो सही पर लेकिन पिट कर आवेगा'।

घ—परिणामदर्शक—/सो/ 'इसलिए' /अब्बु आइबै बारौ ऐ सो मैं चलिऔ जाऊँ/ 'अब वह आने वाला है सो मैं चला जाऊँ'।

आ—व्यधिकरण समुच्चयबोधक—इनके योग से एक वाक्य के साथ एक या अधिक आश्रित वाक्य संलग्न किये जाते हैं। इनके भी चार उपभेद हैं—

क—कारणवाचक—/चौं+कै/=/चौंकि/ 'क्योंकि' का प्रयोग मिलता है। जैसे—/मैं म्वाँ नाँऊँ जाइ सकतु चौं कै बु मेरौ दुसमनु ऐ/ 'मैं वहाँ नहीं जा सकता हूँ क्योंकि वह मेरा दुश्मन है' /मैं जाकी बात नं मानुंगो चौं कै जि तौ पागलु ऐ/ 'मैं इसकी बात नहीं मानूंगा क्योंकि यह तो पागल है'।

ख—उद्देश्यवाचक—/कै/ 'कि' /ताकि/; /जाते कै/ का प्रयोग होता है। जैसे—/मैं जाइबौ चांहतूं कै ब्वाई बुलाइ लाऊं/ 'मैं जाना चाहता हूँ कि उसको बुला लाऊँ' /मैं जोर्तें बात कैंहूं तूँ ताकि सबु सुंलै/ 'मैं ज़ोर से बात करता हूँ ताकि सब सुन लें' /मैं पैहलैं कहें देंतूं जातेकै पीछें कोई दोसु न दे/ मैं पहले कहे देता हूँ जिससे कि पीछे कोई दोष न दें'।

ग—संकेतवाचक—/जौ-तौ/ 'यदि-तो', जैसे—/जौ बु आवैगौ तौ मैं जांगो/ 'यदि वह आवेगा तो मैं जाऊँगा' /जौ तू बुलाबैगी तौ आइ जांगो/ 'यदि तूँ बुला-देगा तो आजाऊँगा' /चांइं-परि-/ का भी प्रयोग मिलता है। जैसे—/चांइ व्वाके मन में कछू होइ परि मैं तौ मान्तु नांऊं/ 'चाहे उसके मन में कुछ हो पर मैं तो मानता नहीं हूँ।'

घ—स्वरूपवाचक—/कै ~ ϕ/, 'कि' इस अव्यय के द्वारा संयुक्त शब्दों या वाक्यों में से पहले का स्पष्टीकरण दूसरे के द्वारा होता है। जैसे—/व्वानै कही। के मैं तौ जांतू/ 'उसने कहा कि मैं तो जाता हूँ' /मिए मन में ऐसी आमत्यै कै जाइ फट-कार्दू/ 'मेरे मन में ऐसी आती है कि इसको फटकार दूँ'।

७. **विस्मयादिबोधक अव्यय**—ये अव्यय भिन्न-भिन्न मनोविकारों को सूचित करते हैं। इनके अनेक प्रकार हैं। कुछ इस प्रकार हैं—

क—हर्षसूचक—/आहा/, /आहारे/

ख—शोकसूचक—/हाहा/ 'हाय' /अरे राम/ 'अरे राम' /अरे रे/ 'अरे रे'

ग—आश्चर्यसूचक—/व्वा/ 'वाह' /हैं/ 'हैं'। /ओ हो/ 'ओ हो'।

घ—अनुमोदनार्थक—/ठीक/ 'ठीक' /अच्छा/ 'अच्छा' /स्यावासि/ 'शाबास'।

ङ—तिरस्कारसूचक—/हट्/ 'हट' /हट्टि/, /चुप्/ 'चुप'।

च—स्वीकारबोधक—/हां/, /हम्त्रै/, /अच्छा/, /ठीक/, /अच्छी बात/

छ—सम्बोधन—/अरे/, /रे/, /अभी ओजी/

सन्धि विचार

४

सन्धि विचार

४.०. पिछले दो अध्यायों में पदग्रामों की रचना, वितरण और व्युत्पत्ति पर विचार किया गया है। प्रस्तुत अध्याय में पदग्रामों के ध्वनिग्रामात्मक रूपगठन के वैविध्यों पर विचार किया गया है। ये वैविध्य कभी स्वतन्त्र वैविध्य (free variations) के रूप में मिलते हैं, कभी प्रयोग की ध्वन्यात्मक या व्याकरणिक परिस्थितियों के प्रभाव से उत्पन्न होते हैं। परिस्थितिजन्य विविध रूप पूरक-बंटन में होते हैं। अतः इन्हें पदग्रामों के विविध रूप-ग्रामों (allomorphs) की स्थिति प्राप्त होती है। प्रस्तुत अध्याय में इन वैविध्यों तथा इनकी परिस्थितियों का विवरण दिया गया है।

४.१. स्वतन्त्र वैविध्य—इस शीर्षक के अन्तर्गत उन पदग्राम-वैविध्यों पर विचार किया गया है, जिनकी प्रयोग-स्थितियों में पूरक-बंटन नहीं है। एक ही वातावरण में दोनों रूप जाने-अनजाने प्रयुक्त होते हैं। स्वतन्त्र वैविध्यों की दो सीमाएँ हैं: एक तो समस्त ज़िले के स्तर पर मिलने वाले स्वतन्त्र वैविध्य हैं। इनके आधार पर तो ज़िले में प्राप्त होनेवाले बोली रूपों की स्थापना षष्ठ अध्याय में की गई है। दूसरे, कुछ वैविध्य एक ही बोलीरूप के क्षेत्र में, एक ही वक्ता की बोली में प्राप्त होते हैं। 'लोहबन' की बोली में प्राप्त होने वाले वैविध्यों पर यहाँ विचार किया गया है। एक पदग्राम के स्थान पर भिन्न पदग्राम के आने, एक पदग्राम-रूप के स्थान पर दूसरे रूप के आने, पदग्रामों के अप्रयोग, ध्वनिसंयोगों तथा ध्वनिग्रामों के लोप से ये उत्पन्न होते हैं।

४.१.१. एक पदग्राम के स्थान पर भिन्न पदग्राम—एक ही अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए एक उस क्षेत्र का एक वर्ग एक पदग्राम का प्रयोग करता है तथा दूसरा वर्ग दूसरे का। कभी-कभी एक व्यक्ति के भाषण में भी यह वैविध्य प्राप्त होता है, पर प्रमुखतः यह समुदायगत ही है। उस समुदाय से भाषण करते समय दूसरे समुदाय का व्यक्ति भी जाने-अनजाने उसका प्रयोग करने लगता है। इस

प्रकार का एक उदाहरण सम्प्रदान को व्यक्त करनेवाले एक संयुक्त परसर्ग-रचना में मिलता है। इस रचना में केवल प्रयुक्त होनेवाले धातु पदग्राम भिन्न हैं—रचना-क्रम भी कुछ भिन्न है।

/के/ (सम्बन्ध तिर्यक) + /काज-/ 'कार्य' + {-ऐं} = /के काजैं/ 'के लिए'
+ /ताई-/ 'तई' + × = /के ताईं/ 'के लिए'
+ √लै- 'लेना' + {-ऐं} = /के लैं/ 'के लिए'

/के काजैं/ ~ /के ताँईं/ ~ /के लैं/ ~ /के लईं आँ/ वैविध्य प्राप्त होते हैं। इनमें प्रथम संज्ञा के आधार पर, द्वितीय अधिकरण /ताईं/ 'तक' तथा तृतीय क्रिया के आधार पर सम्पन्न हुए हैं। इनमें से प्रथम का प्रयोग बहुधा ग्रामीण उच्चवर्ग के द्वारा, द्वितीय का प्रयोग नगर से प्रभावित वर्गों में तथा तृतीय का प्रयोग जिले के पूर्वी भागों से प्रभावित वर्गों में मिलता है।

इसी प्रकार का एक वैविध्य अधिकरण रूप में प्राप्त होता है। वैविध्य ये हैं /तक/ ~ /ता नूँ/ ~ /तानीं/ ~ /ताँईं/ 'तक'/ इनका प्रयोग बहुधा ग्रामीण वर्गों में प्राप्त होता है। अन्यों का प्रयोग नगरों से प्रभावित और विशेषतः दक्षिणपूर्वी भागों से प्रभावित वर्गों में मिलता है।

४.१.२. एक पदग्राम-रूप के स्थान पर दूसरा रूप—इसके अन्तर्गत वे रूप आते हैं जो ध्वन्यात्मक दृष्टि से कुछ भिन्न होते हैं, पर अर्थ और वितरण में समान होते हैं। इनमें एक उदाहरण कर्तृवाच्य के चिह्न /नैं/ के प्रयोग का मिलता है। यह वैविध्य /नैं/ ~ /उँ/ के बीच मिलता है। तिर्यक बहुवचन संज्ञाओं के साथ कभी /नैं/ का, कभी /उँ/ का प्रयोग मिलता है—

/छोरनुँ-/ = /छोर्-/ + {-अन्-} तिर्यक बहु० {-उँ} कर्तृ० 'छोरों नें'
/छोरन्नैं-/ = /छोर्-/ + {-अन्-} „ + {-नैं} कर्तृ० 'छोरों नें'
/गाइनुँ/ = /गाइ-/ + {-अन्-} „ + {-उँ} कर्तृ० 'गायो ने'
/गाइन्नैं/ = /गाइ-/ + {-अन्-} „ + /नैं/ 'गायों को'

/छोरनुँ/ ~ /छोरन्नैं/ ~ /गाइनुँ/ ~ /गाइन्नैं/ जैसे—वैविध्य पीढ़ीगत और वर्गगत हैं। समाप्त होती हुई उच्चवर्गीय पीढ़ियों और अशिक्षित तथा पिछड़े वर्गों में /-उँ/ वाले रूपों का प्रचलन है। शेष वर्गों और नवीन पीढ़ियों में /-नैं/ वाले रूप लोकप्रिय हो रहे हैं। पहली प्रकृति समाप्ति की ओर है। इन रूपों के प्रयोगों में अन्य कुछ परसर्गों के पूर्व भी वैविध्य मिलता है। कर्मकारक में भी ऐसे प्रयोग मिलते हैं। गाइनुँ देखौ/ ~ /गाइन्नैं देखौ/ ~ / गाइन कूँ देखौ/ 'गायों को देखो'। इनमें भी /नैं/ वाले रूप अधिक प्रचलित हैं।

इसी श्रेणी का एक अन्तर मध्यम पुरुष बहुवचन के रूपों में प्राप्त होता है।

एक रूप औकारान्त है, दूसरा उकारान्त। उदाहरण—/तुम जाऔ।~/तुम जाउ/ 'तुम जाओ'। /तुम खाऔ/~/तुम खाउ/ 'तुम खाओ।' /तुम आऔ/~/तुम आउ/ 'तुम आओ।' आदि। यह वैविध्य द्विविध है—गत होती हुई पीढ़ियों तथा पिछड़े वर्गों में -औ/ वाले रूप मिलते हैं, तथा /-उ/ वाले रूप अन्यत्र मिलते हैं। पर, ज़िले के पूर्वी तथा दक्षिण पूर्वी भागों में /-उ/ वाले रूप ही प्राप्त होते हैं।

संज्ञा के तिर्यक बहुवचन रूपों के साथ कुछ पीढ़ियाँ या वर्ग {-उ} का प्रयोग करते हैं, और कुछ {-अ} का।

/घर्-/ 'घर' + {-अन्-} तिर्यक बहु० + {-उ} = /घरनुँ-/ 'घरों'
/घर्-/ „ + {-अन्-} „ + {-अ} = /घरन-/ 'घरों'
/गाम्-/ गाँवँ + {-अन्-} „ + {-उ} = /गामनुँ-/ 'गावों'
/गाम्-/ „ + {-अन्-} „ + {-अ} = /गामन-/ 'गावों'

इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि कुछ पीढ़ियाँ या वर्ग {-उ} मूल एक० प्र० का प्रयोग तिर्यक रूपों में करते हैं और कुछ तिर्यक एक० {-अ} का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार /घरनुँ-/~/घरन-/ ; /गामनुँ/~/गामन। जैसा वैविध्य वर्गगत है। इनमें से {-उ} वाले रूप समाप्ति की ओर अग्रसर हैं। परसर्गों के साथ इनके प्रयोग के उदाहरण इस प्रकार हैं—

४.१.३. **पदग्रामों के प्रयोग और अप्रयोग के वैविध्य**—कभी किसी पदग्राम के संयोग से रूप-रचना की जाती है, कभी उनको छोड़ कर भी। ये वैविध्य एक ही वक्ता द्वारा प्रयुक्त हो सकते हैं, इनका आधार वर्गभेद या पीढ़ीभेद नहीं है। नीचे कुछ उदाहरण दिये गए हैं—

क—संज्ञाओं के परसर्ग रहित और सहित प्रयोग—

/घर जाऔ/~/घरकूँ जाऔ/ 'घर को जाओ'
/घर बैठिऔ ऐ/~/घर में बैठिऔ ऐ/ 'घर में बैठा है'

संज्ञा के तिर्यक बहुवचन के साथ {-उ} का प्रयोग करने वाले समुदायों में भी यह प्रवृत्ति मिलती है—

/मैं नैं अपने छोरनुँ एकु-एकु घरु दीऔ/~/मैं ने अपने छोरनुँ कूँ एकु-एकु घरु दीऔ 'मैंने अपने लड़कों को एक-एक घर दिया'

ये प्रवृत्तियाँ परस्पर सङ्घर्षशील हैं, इसका निर्णय भविष्य करेगा।

ख—भूतकालिक कृदन्तों की रचना में पिछड़े वर्ग धातु के मूलरूप के साथ लिङ्ग वच० प्रत्ययों का योग करते हैं, जबकि उच्चवर्ग -इ प्रातपदिक प्रत्ययों से युक्त धातुओं के साथ लि० वच० प्रत्ययों का योग करते हैं। उदाहरण—

√चल्- + /-इ/ + {-औ} = /चलिऔ/ = [चल्यौ] 'चला'
√चल्- – × + {-औ} = /चलौ/ 'चला'
√कर्- + /-इ/ + {-औ} = /करिऔ/ = [कर्यौ] 'किया'
√कर् × + {-औ} = /करौ/ 'किया'

इस प्रकार पिछड़े वर्गों में मध्यमपुरुष एक० आज्ञार्थक रूपों तथा व्यञ्जनान्त धातुओं के एक० भूत० कृद० के रूपों में कोई ध्वन्यात्मक अन्तर नहीं रह गया है, केवल वितरण और प्रयोग की परिस्थितियों से अन्तर प्रकट होता है। लोहबन की बोली के पूर्व और दक्षिण पूर्व में /-इ/ रहित रूप मिलते हैं। लोहबन की बोली के पिछड़े वर्गों में ये रूप मिलते हैं। लोहबन की बोली के पश्चिम में /-इ/ वाले रूप मिलते हैं। इस क्षेत्र में लोहबन की बोली पश्चिम वाली प्रवृति की ओर जा रही है।

ग—उच्चवर्गों में ही कुछ क्रियाओं के भूत० कृ० की संरचना में अन्तर मिलता है। कभी {-न्-} के संयोग से कभी इसको छोड़कर भूत० कृ० की संरचना होती है। जैसे—

√दै — से /दीऔ/ ~ /दीनौं/ 'दिया'
√लै — से /लीऔं/ ~ /लीनौं/ 'लिया'
√कर्- — से /कीऔ/ ~ /कीनौं/ 'किया'

आँकड़ों की दृष्टि से /-न-/ वाले रूप विरल है।

इसी प्रकार के उदाहरण ये हैं—/इतनौ/ ~ /इत्तौ/, 'इतना' /जितनौ/ ~ /जित्तौ/ 'जितना' /कितनौ/ ~ /कित्तौ/ 'कितना' /उतनौ/ ~ /उत्तौ/ 'उतना'।

इन रूपों के बहुवच० के साथ एक और स्वतन्त्र वैविध्य प्राप्त होता है— /इत्ते/ ~ /इतने/ ~ /इतेक/, 'इतने' /उत्ते/ ~ / उतने / ~ / उतेक / ~ /बितेक/ 'उतने'; /जित्ते/ ~ /जितने/ ~ /जितेक/, 'जितने' /तित्ते/ ~ /तितने/ ~ /तितेक/ 'तितने' /कित्ते/ /कितने/ ~ /कितेक/ 'कितने'।

४.१.४. ध्वनि-संयोगों पर आधारित वैविध्य—ये वैविध्य अपने आप में अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इनमें जो प्रवृत्तियाँ मिलती हैं, वे पदग्रामों के ध्वन्यात्मक परिस्थितिजन्य रूप-ग्रामों की स्थापना में भी दीखती हैं। ये प्रवृत्तियाँ स्वरों के प्रयोग और स्वर-संयोग की प्रणाली से सम्बन्ध रखती हैं।

क—आरम्भ में प्रयुक्त /उ- ~ गु-/ की प्रवृत्ति संख्यावाचक विशेषणों में दीखती हैं :—

/उन्नींस/ ~ / गुन्नींस/ '१९'
/उन्तीस/ ~ / गुन्तीस/ '२९'
/उन्तालीस/ ~ / गुन्तालीस/ '३९'

/उनंचास/~/ गुनंचास/ '४९'
/उंसटि/~/ गुंसटि/ '५९'
/उन्हैत्तरि/~/ गुन्हैत्तरि/ '६९'
/उन्यासी/~/ गुन्यासी/ '७९'

/उ-~ब-~-बु-/ की शैली का वैविध्य भी प्राप्त होता है। आरम्भ में प्रयुक्त /-उ/ के स्थान पर /ब-/ की प्रवृत्ति लोहबन-क्षेत्र में मुख्य रूप से मिलती है। इसके साथ-साथ /ग-/ की प्रवृत्ति पीढ़ीगत या वर्गगत रूप में प्राप्त होती है। जैसे—

/उन्नैं/~/बिन्नैं/~/बुन्नैं/~/गुन्नैं/ 'उन्हें'
/उतमें/~/बितमैं/~/बुतमैं/~/गुतमैं/ 'उधर को'
/उतनौं/~/बितनौं/~/बुतनौं/~/गुतनौं/ 'उतना'

इस प्रकार तिर्यक रूपों में वैविध्य प्राप्त होता है, पर मूलरूप एक० अन्य० सर्वनाम में वैविध्य /ब्-/~/ग्-/ का मिलता है: /बु/~/गु/ 'वह'। पश्चिम की बोली में /उ-/ की प्रवृत्ति है तथा पूर्व में /गु/ की प्रवृत्ति है। लोहबन बोली क्षेत्र एक ऐसा मिलन बिन्दु है, जहाँ तीनों प्रवृत्ति हैं। उ-~ब- की प्रवृत्ति इस क्षेत्र की अपनी है। उ-~ब- के आधार वाला वैविध्य इस समय सङ्घर्षशील है। ब-~ग-बाला वैविध्य वर्गीय है तथा गत होती हुई पीढ़ियों के साथ मिलता है—इसमें /ब्/ वाली प्रवृत्ति की विजय हो रही है।

ख—कुछ दो स्वरों वाले प्रत्ययों के दोनों स्वरों को अलग करता हुआ -ब- आकार वैविध्य उपस्थित करता है। इसके उदाहरण ये हैं:—

(अ) ईकारान्त√+{-आस-}=संज्ञा। इस रूप विधान में यह वैविध्य प्राप्त होता है—√पी-+{-आस-}=/पिआस/~/पिबास/ 'प्यास'। अन्य स्वरान्त धातुओं के साथ तो /बास-/ का ही प्रयोग होता है। √खा-से /खबास/ 'खाने की इच्छा'।

(आ) /आ/ तथा /-उ/ के बीच में /-ब्-/ आने से नियमित स्वतन्त्र वैविध्य प्राप्त होते हैं। उदाहरण—

√गिर्-+{-आउ}=/गिराउ/~/गिराबु/ 'गिराव'
√गर्- +{-आउ}=/गराउ/~/गराबु/ 'गलाव'
√नर्- +{-आउ-}+/नराउ/~/नराबु/ 'निराव'

(इ) /उ-/ तथा /-आ/ के बीच /-व्-/ के आने से भी वैविध्य प्रस्तुत हो जाता है √रो+{-आस्-}=/रुआसौ/~/रुबासौ/ 'रोने जैसा'।

(इ) /ओ-/ तथा /-आ/ के बीच /-ब-/ के आने से भी वैविध्य प्राप्त होते हैं—
/सोआ/=(√सो-+{-आ}) √/सोबा/(=√सो+{-बा}) 'सोना।'

(ई) /अ-/ तथा /-ई/ के बीच /-ब-/ के आने से भी स्वतन्त्र वैविध्य प्राप्त होता है—

√लड़्-+{-अई-}+{-आ}=/लड़ईआ/~/लड़वईआ/ 'लड़ने वाला'

√कर्-+{-अई-}+{-आ}=/करईआ/।~/करबईआ/ 'करनेवाला'

स्वरान्त धातुओं के साथ तो -ब- वाला रूप ही मिलता है—√खा-से /खबईआ/ 'खानेवाला' √लै-से /बिलईआ/ 'लेनेवाला' √दै-से /दिबईआ/ 'देनेवाला' √पी-से /पिबईआ/ 'पिअईआ'।

इस स्वतन्त्र वैविध्य से उक्तस्वरों को अलग करने के लिए -ब- के लाने की प्रवृत्ति दीखती है। यह प्रवृत्ति इससे रहित रूपों के प्रयोग की प्रवृत्ति से अधिक बलवती है।

(उ) /ई-/ तथा /-ओ/ के बीच में /-ज-/ आ जाने से भी स्वतन्त्र वैविध्य उपस्थित हो जाता है। उदाहरण—/छीजो/~/छीओ/ 'छूना' /दीजो/~/दीओ/ 'दोना' /पीजो/~/पीओ/ 'पीना' /र्‌हीजो/~/र्‌हीओ/ 'रहना'।

(ऊ) /-म्/ नासिक्य वातावरण में आने से भी कुछ वैविध्य प्रस्तुत हो जाते हैं—/खानौं/~/ख मनौं/ 'ख ना' /सुह नौं/~/सुहा नौं/ 'सुहावना' /पाँचमौं/ ~/पाँचइऔं/ 'पाँचवा' /पाँचमे/~/पाँचए/ 'पाँचबे' /प ँचमी/~/पाँचई/ 'पाँचवीं'।

४.१.५. ध्वनिग्रामों के लोप से उत्पन्न वैविध्य—सम्बन्धवाचक सार्वनामिक विशेषण प्रत्यय {-र} के लोप होने से स्वतन्त्र वैविध्य प्राप्त होते हैं। जैसे— /तेरौ/~/तेऔ/ 'तेरा' /तेरे/~/तेए/ 'तेरे' /तेरी/~/तेई/ 'तेरी' /मेरौ/~/मेऔ/ 'मेरा' /मेरे/~/मेए/ 'मेरे' /मेरी/~/मेई/ 'मेरी'।

/-क्/ में अन्त होनेवाली धातुओं के पश्चात् /-के-/ आदि आने से विभाग /+/ तथा /के/ का स्वरत्व समाप्त हो जाता है। इससे भी कुछ स्वतन्त्र वैविध्य व्युत्पन्न होते हैं—/घर+के+काजैं/~/घरक्काजैं/ 'घर के लिए' /हाती+के+काजैं/~ /हातीक्काजैं/ 'हाथी के लिए' इन उदाहरणों में /—+ए+—/~/ϕ/ परिवर्तन मिलते हैं।

स्वरों की सन्धि होने से भी किसी पदग्राम का लोप हो सकता है—जैसे— √चल्+{-ई}+{-ई}=/चलीई/~/चली/ 'चली थी; √चल्+{-ई}+{-ईं}= /चलीईं/~/चली/; √चल्+{-इ}+{-औ}+{-ओ}=/चल्यौओ/~/चल्यो/ 'चला था'।

४.२. रूपग्रामात्मक वैविध्य—(४.१) में एक ही परिस्थिति में वैकल्पिक रूप से प्रयुक्त होनेवाले स्वल्प ध्वन्यान्तरवाले पदग्रामों पर विचार किया गया है।

इस शीर्षक के अन्तर्गत अ ध्वन्यात्मक पदग्राम-वैविध्यों का विवरण प्रस्तुत किया है जिनके प्रयोग की ध्वन्यात्मक परिस्थितियाँ पूरक बंटन में हैं। ये वैविध्य रूपग्रामों (Allomorphs) की कोटि में आते हैं। इस विवरण को सुविधा के लिए दो भागों में विभाजित किया है—प्रत्ययों के संयोग से उत्पन्न प्रकृतियों के रूपग्राम तथा प्रत्ययों के रूपग्राम।

४.२.१. प्रकृतियों के सन्धिजन्य रूपग्राम—प्रकृतियों के रूपग्राम दो प्रकार के परिवर्तनों का द्योतन करते हैं—आन्तरिक परिवर्तन तथा अन्त्य परिवर्तन। दीर्घाक्षरात्मक प्रत्यय के संयोग से प्रकृति के आन्तरिक दीर्घस्वर पर प्रभाव पड़ता है। यदि प्रकृति का अन्त्य स्वर दीर्घ है तो वह भी प्रभावित होता है। इसको भी आन्तरिक परिवर्तन के अन्तर्गत रखा गया है। वाह्यपरिवर्तन से तात्पर्य है प्रत्यय के व्यञ्जन से प्रकृति के अन्त्य व्यञ्जन का प्रभावित होना। इन्हीं पर क्रमशः इस शीर्षक में विचार किया गया है।

४.२१.१. आन्तरिक परिवर्तन—यह परिवर्तन दो प्रकार का है—स्वरों का नासिक्यीकरण तथा दीर्घस्वरों का ह्रस्वीकरण।

४.२१.१.१. नासिक्यीकरण—यह दो प्रकार का हो सकता है—ध्वन्यात्मक परिस्थिति से उत्पन्न तथा पदवैज्ञानिक रूप से प्रभावित।

क—ध्वन्यात्मक परिस्थितिजन्य—नासिक्य स्वरात्मक प्रत्ययों से संयुक्त होने पर प्रकृति के स्वर का नासिक्यी भवन हो जाता है। नीचे इसके कुछ उदाहरण दिए गए हैं—यहाँ स्वर के ह्रस्वीकरण पर आधारित रूपग्रामों को छोड़ दिया गया है—

{√आ-}=/आँ/,/अँ/ यही परिवर्तन अन्य आकारान्त धातुओं में होता है।

=/आँ/ का प्रयोग नासिक्य परिस्थितियों में होता है तथा /अँ/ दीर्घ नासिक्य स्वरात्मक प्रत्यय के संयोग का फल है। जैसे—√आ- 'आना' से /आमैं/ /=(√आ+{ऐं}) 'आवें'। इसी प्रकार /आँऊँ/=(√आ+{-ऊँ}) 'आऊँ'। /जँइँऔं/ (√जा+{-इँ}+{-औं}) 'जाना।' /खाँऊँ/=(√खा-+{-ऊँ}) 'खाऊँ' /लाँमैं/=(√ला-+{ऐं}) 'लावें'।

नासिक्य परिस्थितियों में कुछ सर्वनामों का भी नासिक्यीभवन हो जाता है—

{हम्} =/हँमँ/,/हँम्/।

=/हँमँ/ का प्रयोग /आ/ के अतिरिक्त सभी स्वर ध्वनिग्रामों और ओष्ठ्यों को छोड़कर सभी व्यंजन ध्वनिग्रामों से पूर्व होता है। जैसे—/हँमँ ऊँ/ हम भी /हँमँई/ 'हमीं' /हँमँए/ 'हम थे' /हँमँते/ 'हमसे' /हँमँ नें/ 'हमने' आदि।

=/हँम्/ का प्रयोग ओष्ठ्य स्पर्शों से पूर्व होता है। जैसे हँम्पै/ 'हम पर' /हँम्फोरिंगे/ 'हम फोड़ेंगे' /हँम्बेचिंगे/ 'हम बेचेंगे' /हम्भए/ 'हम हुए'।

=/हम्/ का प्रयोग /आ-/ से पूर्व होता है। जैसे—/हमारौ/ 'हमारा'।

{तुम्} =/तुँमँ/, /तुँम्-/, /तुम/

=/तुँमँ/ का प्रयोग /आ/ के अतिरिक्त सभी स्वरस्वनग्रामों से पूर्व तथा ओष्ठ्य स्पर्शों के अतिरिक्त सभी व्यञ्जन स्वनग्रामों के पूर्व होता है। जैसे—/तुँमँऊ/ 'तुम भी' /तुँमँई/ 'तुम्हीं' /तुँमँए/ 'तुम थे' /तुँमँते/ 'तुम से' /तुँमँनें/ 'तुमने' आदि।

=/तुँम्-/ का प्रयोग ओष्ठ्य व्यञ्जन स्वनग्रामों से पूर्व होता है। जैसे। /तुँम्पै/ 'तुमपर' /तुँम्फोरौ/ 'तुम फोड़ो' /तुँम्बेचौ/ 'तुम बेचौ' /तुम्भरौ/ 'तुम भरौ।'

ख—पदवैज्ञानिक कारणों से प्रभावित नासिक्यीकरण—इस प्रकार के कुछ ही उदाहरण प्राप्त होते हैं। नीचे कुछ स्वरान्त धातुओं के उदाहरण दिए गए हैं—

√खा- =/खाँ/, /खा/—यही परिवर्तन अन्य आकारान्त धातुओं में होता है।

=/खाँ/ का प्रयोग /-त्/ से पूर्व होता है जो वर्त० कृद० प्रत्यय है। जैसे—/खाँत्-/=(√खा+{-त्-}) 'खाता'। इसी प्रकार /जाँत्-/= (√जा+{-त्-}) 'जाता'।

√लै- =/लैं/, /लै/—यही परिवर्तन अन्य ऐकारान्त धातुओं के साथ होता है। उदाहरण—√लै+{-त्-}=/लैंत/ 'लेता' √दै-+{-त्-}= /दैंत/ 'देता' √कैहै-+{-त्-}=/कैहैंत/ 'कहते'।

४.२१.१.२. दीर्घस्वरों का ह्रस्वीकरण—इसके उदाहरण अनेक हैं। इस प्रवृत्ति को स्पष्ट करने के लिए नीचे कुछ संज्ञाओं तथा क्रियाओं के उदाहरण दिए गए हैं। इन उदाहरणों का क्रम अक्षरात्मक शब्द-गठन के अनुसार है—

क—/-अ←आ/—परिवर्तन का यह रूप एकाक्षरात्मक पदग्रामों में ही नहीं, अधिक अक्षरों वाले पदग्रामों में भी मिलता है। नीचे अक्षर-गठन के आधार पर उदाहरण दिए गए हैं।

(अ) एकाक्षरात्मक पदग्राम—

पदग्राम-गठन	मूलप्रकृति	दीर्घप्रत्यय से संयुक्त	विश्लेषण	
ह अ (दी)[1]	√गा-	/गवाना/	(√गा+{-आ-})	'गवाना'
	√खा-	/खवाना/	(√खा+{-आ})	'खिलाना'
ह अ (दी) ह	/पान्-/	/पनबाड़ी/	(/पान्-/+{-आड़ी-})	'पानवाला'
	/लाल्-/	/ललाई/	(/लाल्-/+{-आई-})	'लालिमा'
	/बात्-/	/बतार-/	(/बात्-/+{-आर-})	'बात'
	/हात्-/	/हतिआ-/	(/हात्-/+{-इआ})	'हथियाना'
	√नाँच-	√नँचा-	(√नाँच्-+{-आ})	नँचाना'
	√आट्-	√अटवा	(√आट्-+{-आ})	'आटना'

(आ) द्वयक्षरात्मक—

ह अ ह अ (दी) ह	/सुनार-/	/सुनरा/	(√सुनार्-+{-आ})	'लघुत्वर्थ' सुनार
	/कुम्हार-/	/कुम्हारा/	(√कुम्हार्-+{-आ})	'कुम्हार'
	/किबार-/	/किबरिआ/	(√किबार-+{-इआ})	'छोटी किवाड़'
ह अ (दी) ह अ	/पानी/	/पनिआँ/	(/पानी/+{-आ})	'पानीका'
(दी) ह	/हाती/	/हतिनी/	(/हाती/+{-इनी-})	'हथिनी'
	/चाचा/	/चचेर-/	(/चाचा/+{-एर-})	'चचेरा'
	/मामा/	/ममेर्-/	(/मामा/+{-एर्-})	'ममेरा'
ह अ (दी) ह अ ह	/ठाकुर्-/	/ठकुराइसि/	(/ठाकुर्-/+{-आइस-})	'ठकुराइस'
	/मानिक्/	/मनिका/	(/मानिक्-/+{-आ})	'छोटा मनका'
	/बानिक्-/	/बनका/	(/बानक्-/+{-आ})	'बनाक'

ख—/-इ←ई/—यह परिवर्तन भी सभी प्रकार से गठित पदों में प्राप्त होता है। नीचे अक्षर-विधान के आधार पर वर्गीकृत उदाहरण दिए गए हैं—

(अ) एकाक्षरात्मक पदग्राम—

ह अ (दी)	/घी/	/घिआई/	(/घी/+{-आई})	'घी का व्यापार'
	√पी-	/पिबाई/	(√पी-+{-आई})	पीना'

---

१. ह=व्यञ्जन; अ=स्वर; (दी)=दीर्घ; (ह्र)=ह्रस्व।

पदग्राम गठन	भूलप्रकृति	दीर्घ प्रत्यय से संयुक्त	विश्लेषण	
	√सीं-	/सिमाई/	(√सीं-+{-आई})	'सीना'
ह अ (दी) ह	/पीर्-/	/पिरकाई/	(√पिर्-+{-काई})	'पीलापन'
	√मीज्-	/मिजोइ-/	(√मीज्+{-ओइ})	'मिगोना'
	/मीठ्-/	/मिठाई/	(/मीठ्-/+{-आई})	'मिठाई'

आ—द्वयक्षरात्मक पदग्राम—

ह अ ह (ई)	/जड़ी/	/जड़िआ/	(/जड़ी/+{-इआ})	'जड़िया'
	/छड़ी/	/छड़िआ/	(/छड़ी/+{इआ-})	'छड़ीदार'
ह अ (दी) ह (ई)	/रेती/	/रेतिआ/	(/रेती/+{-इआ-})	'रेती'
	/टीकौ/	/टिकुली/	(/टीकौ/+{-ली-})	'टीका'

इ—त्र्यक्षरात्मक पदग्राम—

ह अ (दी) ह (ई)	/पोटरी/	/पुटरिआ/	(/पोटरी/+{-इआ})	'पोटली'
ह (ई) ह अ ह अ	/पीतरि/	√पितरा-	(/पीतरि/+{-आ-})	'पितराना'

ग—/-उ←ऊ/—इस परिवर्तन के उदाहरण नीचे दिए गए हैं।

(अ) एकाक्षरात्मक—

ह (ऊ)	/गू/	/गुहेट/	(/गू-/+{-एट-})	'बच्चों को साफ़ वाना'
	√छू-	√छुबा-	(√छू-+{-आ-})	'छुबाना'
	√चू-	√चुआ	(√चू-+{-आ})	'चुआना'
ह (ऊ) ह	√मूँत-।	/मुतास/	(√मूँत+{-आस्-})	'मुतास'
	/सूत्-/	/सुतरी/	(/सूत/+{-अरई})	'सुतली'
	/चून-/	/चुनी/	(/चून्-/+{-ई-})	'चुनी'
(ऊ) ह	√ऊक्-	√उका-	(√ऊक्-/+{-आ-})	'उकाना'

(आ) द्वयक्षरात्मक—

ह अ ह (ऊ)	/लड्डू/	/लड़ुआ/=(/लड्ड्ऊ/+{-आ-})	'लड्डू'
	/कालू/	/कलुआ/=(/कालू/+{-आ-})	'व्यक्तिगतनल'
ह (ऊ) ह अ	/मूसौ/	/मुसेला/=(/मूँसौ/+{-ऐला})	'चूहे का बिल'
	/दूधु/	/दुधार/=(/दूधु/+{-आर-})	'दूध देनेवाली'

इस क्रम में आरम्भ में आनेवाला /ऊ-/ सुरक्षित रहता है—/ऊसर/ से /ऊसरिया/ 'ऊसरभूमि'। त्र्यक्षरात्मक पदग्रामों में बीच में स्थित /-ऊ-/ सुरक्षित रहता है। जैसे—/कथूला/, /कथूलिआ/ 'कंथा' /कपूरु/, /कपूरी/ 'कपूर जैसा'। वैसे /ऊ/ के /उ/ होने के निरपवाद उदाहरण तो अन्त्य /-ऊ/ के ही मिलते हैं। इस प्रकार यह प्रवृत्ति बोली में शिथिल है।

घ—/इ←ए/ के उदाहरण ये हैं—√घेर् 'घेरना'+{-आई-}=/घिराई/ 'घिराई' √फेर् 'फेरना' से /फिराई/=(√फेर्+{-आई}) 'फिराई'। ये रूप कम हैं।

ङ /उ←ओ/ इसके उदाहरण ये हैं—

(अ) एकाक्षरात्मक—

ह (ओ)	√सो-	√सुवा-	(√सो+{-आ})	'सुलाना'
	√रो-	√रुवा-	(√रो+{-आ})	'रुलाना'
	/दो/	/दुबारा/	(/दो/+{-आरा-})	'दुबारा'
(ओ) ह	√ओढ़-	√उढ़ा-	(√ओढ़+{-आ})	'उढ़ाना'
	/चोटी/	/चुटिआ/	(√चोटी/+{-इआ-})	'चोटी'
	/गोर-/	/गुराई/	(/गोर्-/+{-आई-})	'गोरापन'
	/लोट्-/	/लुटिआ/	(/लोट्-/+{-इआ})	'लुटिया'

आ—द्व्यक्षरात्मक—

ह (ओ) ह अ	/गोबर्-/	/गुबरीला/	(/गोबर्-/+{-ईला})	'गुबरीला'
	/कोठर्-/	/कुठरिआ/	(/कोठर्-/+{-इआ})	'कोठरी'
	/झोटा/	/झुटिआ/	(/झोट्-/+{-इआ})	'पड़िया'

च—/उ←औ/—=√औंघ्- √ऊँघा—(√औंघ्-+{-आ}) 'उँघाना' इसके उदाहरण कम मिलते हैं।

४.२१.१.३. पदवैज्ञानिक स्वर-परिवर्तन—नीचे कुछ उदाहरण दिये गए हैं—

{लै}=/ली/, /लै/; /ली/ का प्रयोग भविष्य आज्ञार्थक रूपों में होता है। जैसे—/लीजो/~/लीओ/ 'लेना' इसी प्रकार {दै}=/दै/, /दी/; /दी/ का प्रयोग भी भविष्य आज्ञार्थक रूपों में होता है। जैसे—/दीजो/~/दीओ/ 'देना'। इसी प्रकार √र्है से /र्हीजो/ रहना'! इन दो धातुओं के अन्य भी स्वर-परिवर्तनजन्य रूप मिलते हैं। इनकी रूपरेखा इस प्रकार है—

{लैं}=/ल/, /ली/, /ले/

=/ल/ का प्रयोग भूतकालिक कृद० बहु० /-ए/ के पूर्व तथा स्त्री० /-ई/ के पूर्व होता है। जैसे—/लए/ लिये' /लई/ 'ली'।

=/ली/ का प्रयोग भविष्य आज्ञार्थक प्रत्यय {-ओ} से पूर्व होता है। जैसे—/लीजो/ 'लेना।'

=/ले/ का प्रयोग भविष्यार्थक /-गौ/, -/गी/=({-ग्-}+{-ओ}, {-ई}) से पूर्व होता है। जैसे—/लेगौ/ 'लेगा' /लेगी/ 'लेगी।'

इसी प्रकार √-दै-, √र्‌है-के भी रूपग्राम प्र प्त होते हैं। जैसे—/दए/ 'दिये' /दई/ 'दी' /दीओ/ 'देना!' /देगौ/ 'देगा' तथा /देगी/ 'देगी'। √र्‌है के रूपग्राम भी इसी प्रकार हैं—/र्‌हए/ 'रहे' /र्‌हई/ 'रही' /रहीओ/ 'रहना' /र्‌हेगौ/ 'रहेगा' /र्‌हेगी/ 'रहेगी'। वैसे ऐकारान्त धातुएँ बोली में कम हैं। पर उनकी भी रूपग्राम-तालिका इसी प्रकार की होगी।

कुछ क्रियाएँ {-अ} प्रत्यय ग्रहण करने के कारण अपने स्वर को बदल देती हैं। जैसे—

(१) {ब्–ढ़्} + /अ/ =√बढ़- 'बढ़ना' (क्रिया) से—
{ब्–ढ़} + /-आ/ = /बाढ़्-/+{-अ}=/बाढ़/ 'बाढ़' (संज्ञा)
(२) {झ्–क्} + /उ-/ =√झुक 'झुकना' (क्रिया) से—
{झ्–क्} + /-ओ-/ =/झोक्/ स+{-अ}=/झोक/ (संज्ञा)
(३) {ट्–क्} + /-इ-/ =√टिक्- 'टिकना' (क्रिया)
{ट्–क्} + /-ए-/ =/टेक्-/+{-अ}=/टेक/ (संज्ञा)

४.२१.२. वाह्यपरिवर्तन—वाह्य परिवर्तन भी दो प्रकार का है—एक ध्वन्यात्मक परिस्थितिजन्य है तथा दूसरा पदग्रामात्मक। प्रकृति के अन्त्य व्यञ्जन में परिवर्तन सन्धिक /+/ के लोप के साथ सम्पन्न होता है। इसके लुप्त होने पर किसी प्रकृति का व्यञ्जन, आगे के पदग्राम या परसर्ग के प्रथम व्यञ्जन के सम्पर्क में आता है। इसीसे व्यञ्जन परिवर्तनजन्य रूपग्राम प्राप्त होते हैं। इस प्रक्रिया में प्रकृति का अन्त्य ह्रस्वस्वर या ह्रस्वस्वरात्मक प्रत्यय भी /+/ सन्धिक के साथ लुप्त हो जाता है। एक ही प्रकार के व्यञ्जनों के पास आने पर केवल ह्रस्व-स्वरात्मक प्रत्यय या सन्धिक /+/ के लुप्त होने से व्यञ्जन द्वित्व हो जाता है। इस पर यहाँ विचार नहीं किया गया है। अन्य परिवर्तनों के नियम और उदाहरण नीचे प्रस्तुत किए गए हैं।

४.२१.२.१. सन्धि-जन्य व्यञ्जनपरिवर्तन के नियम—पहले अनासिक व्यञ्जनों की सन्धिजन्य परिवर्तनों को नीचे दिया जा रहा है।

क—अघोष अल्पप्राण, सघोष अल्पप्राण और सघोष महाप्राण से पूर्व सघोष अल्पप्राण हो जाते हैं।

ख—अघोष महाप्राण, अघोष अल्पप्राण से पूर्व प्रयुक्त होने पर अघोष अल्पप्राण हो जाते हैं।

ग—अघोष महाप्राण, सघोष अल्पप्राण और सघोष महाप्राण से पूर्व प्रयुक्त होने पर सघोष अल्पप्राण हो जाते हैं।

घ—सघोष अल्पप्राण, अघोष अल्पप्राण और अघोष महाप्राण से पूर्व अघोष अल्पप्राण हो जाते हैं।

ङ—सघोष महाप्राण, सघोष अल्पप्राण से पूर्व सघोष अल्पप्राण हो जाता है।

च—सघोष महाप्राण, अघोष अल्पप्राण और अघोष महाप्राण से पूर्व, अघोष अल्पप्राण हो जाते हैं।

४.२१.२.२. **उदाहरण**—इन उदाहरणों में प्रथम प्रकृतिसंज्ञा-पदग्राम ही है। वैसे ये इन व्यञ्जनों में अन्त होनेवाले सभी प्रकार के पदग्रामों के रूपग्रामों को प्रदर्शित करते हैं। इनमें प्रयुक्त संक्षिप्त रूप इस प्रकार हैं—अ= अघोष; स=सघोष; अल्प०=अल्पप्राण; महा०=महाप्राण। अघोष अल्पप्राण हो जाता है।

ध्वन्यात्मक परिस्थिति	अन्त्य व्यञ्जन परिवर्तन		उदाहरण
१· स० अल्प०, स० महा० से पूर्व	–क्>–ग	—	/नाँग्गिरी/ 'नांकगिरी'
			/फाँग्घाइदै/ 'फांक दे दे'
	–च्>–ज	—	/काज्जरिगौ/ 'कांच जल गया'
			/काज्झरिगौ/ 'कांच झर गया'
	–ट्>–ड्	—	/खाड्डार्दै/ 'खाट डाल दे'
			/जाड़ँढुँड़िरौऐ/ 'जाट ढूंढ़ रहा है'
	–त>-द्	—	/भाद्दै/ 'भात दै'
			/लाद्धर्दै/ 'लात रख दे।'
	–प्>–ब्	—	/स्याँब्बारौ/ 'साँप वाला'
			/स्याँब्भारौऐ/ 'साँप भारी है'
२· अ० अल्प० से पूर्व	–ख्>–क्	—	/राक्कूँगयौ/ 'राख के लिये गया'
	–छ्>–च्	—	/गौंच्चूमि/ 'गौंछ (मूंछ) चूम'
	–ठ्>–ट्	—	/काट्टूटि गौ/ 'काठ टूट गया'
	–थ्>–त्	—	/लोत्ते/ 'लोथ ते' (से)'

ध्वन्यात्मक परिस्थिति	अन्य व्यञ्जन परिवर्तन		उदाहरण
	–फ्>–प्	—	/सप्परीऐ/ 'सफ पड़ी है'
३. स० अल्प०, स० महा० से पूर्व	–ख>–ग्	—	/राग्गई/ 'राख गई'
			/राग्घाइदै/ 'राख दे दे'
	–छ>–ज्	—	/गौंज्जरिगई/ 'मूंछ जल गई'
			/पूँज्झरि गई/ 'पूंछ झड़ गई'
	–ठ्>–ड़	—	/काड्डार्दै/ 'काठ डाल दे'
			/काड्ढोयौ/ 'काठ ढोया'
	–थ्>–द्	—	/चौद्देखि/ 'चौथ देखा'
			/लोद्घर्दै/ 'लोथ रख दे'
	–फ्>–ब	—	/जाब्बारौ/ 'जाफ वाला'
			/कब्भरौं ऐ/ 'कफ भर रहा है'
४. अ० अल्प, अ० महा० से पूर्व	–ग्>–क्	—	/राक्कूँ/ 'राग के लिये'
			/फाक्खेलि/ 'फाग खेला'
	–ज्>–च्	—	/नाच्चोरि/ 'अनाजचुरा'
			/लाच्छोड़ि/ 'लाज छोड़'
	–ड्>–ट्	—	(ड् अन्त वाली संज्ञाएँ नहीं हैं)
	–द्>–त्	—	/दात्ते/ 'दाद से'
			/लात्तर/ 'लाद के नीचे'
	–ब्>–प्	—	/नाप्पै/ 'नाव पर'
			/नाप्फिरेगी/ 'नाव फिरेगी'
५. स० अल्प० से पूर्व	–घ्>–ग्	—	/औंग्गई/ 'औंघ गई'
	–झ्>–ज्	—	/बूज्जाइ/ 'पूछ इसे'
	–ढ्>–ड्	—	(ढ—अन्त वाली संज्ञाएँ अप्राप्य हैं)
	–ध>–द्	—	/साद्देखि/ 'साध देख'
	–भ>–ब्	—	/लाब्बताइ/ 'लाभ बता'
६. अ० अल्प० अ० महा० से पूर्व	–घ्>–क्	—	/बाक्कूँ/ 'बाघ के लिए'
			/बाक्खाबैगौ/ 'बाघ खायगा'
	–झ्>–च्	—	/सूच्चली/ 'सूझ चली'
			/सूच्छोड़ि/ 'सूझ छोड़'
	–ढ्>–ट्	—	(ढ—अन्तवाली संज्ञाएँ अप्राप्य हैं)

ध्वन्यात्मक परिस्थिति	अन्य व्यञ्जन परिवर्तन		उदाहरण
	–ध्>–त्	—	/सात्ते/ 'साध से'
			/सात्थमि गई/ 'साध थम गई'
	–म्>–प्	—	/लाप्पै/ 'लाभ पर'
			/लापूफूल्लौऐ/ 'लाभ फूल रहा है'

यदि संज्ञा के मूल रूप का अन्त्य व्यञ्जन सघोष अल्पप्राण या सघोष महाप्राण है और इसके पूर्व नासिक्य दीर्घस्वर है तथा इसके पश्चात् कोई दन्त्य स्पर्श व्यञ्जन प्रयुक्त होता है तो मूल-संज्ञारूप के अन्त्य व्यञ्जन का परिवर्तन इस प्रकार होगा—

-द्>-न् : जैसे — /नाँद-/+ /-ते/ = /नाँन्ते/ 'नाँद से'
/गौंद्-/+ /-ते/ = /गौंन्ते/ 'गौंद से'
/गौंद्-/+ /थौरौऐ/=/गौन्थोरौऐ/ 'गौंद थोड़ा है'
/गौंद्-/+ /देखि/ = /गौन्देखि/ 'गौंद देख'
/गौंद्-/+ /धरि/ = /गौंन्धरि/ 'गौंद रख'
/बूंद्-/ + /ति/ = /बूंन्ते/ 'बूंद से'
/नींद्-/+ /-ते/ = ।नींन्ते।

-ध्>-न् : जैसे — /बाँध्-/+ /-ते/ = /बाँन्ते/ . 'बाँध से'
/बाँध-/+ /देखि/ = /बाँन्देखि/ 'बाँध देख'

दीर्घ नासिक्य स्वर के पश्चात् आने वाले पदग्राम का अन्त्य स्पर्श-सङ्घर्षी, सघोष, अल्पप्राण अथवा महाप्राण व्यञ्जन यदि दन्त स्पर्शों या स्पर्श-सङ्घर्षी व्यञ्जनों के पूर्व प्रयुक्त होता है तो निम्नलिखित परिवर्तन होता है—

-ज्>-[न्] जैसे — /झाँज्-/+/-तक/ = /झांन्तक/ 'झाँझ तक'
ये रूप विरल हैं।

-झ्>-[न्] जैसे — /साँझ्-/+ /-तक/ = /साँन्तक/ 'साँझ तक'
-झ्>[ञ]=/न्/ /सांझ-/+ /-जूँ/ = /साँन्जूँ/ 'साँझ तक'

अन्त्य /-ज्/>/-त्/; /त्/ और /थ्/ से पूर्व प्रयुक्त होने पर।
/ज्/ >/-द्/; /द्/ और /ध-/ से पूर्व प्रयुक्त होने पर।

जैसे /नाज्/+/-ते/=/नान्ते/ 'अनाज से'
/नाज्/+/-थोरोऐ/=/नात्थोरौ ऐ/ 'अनाज थोड़ा है'
/नाज्/+/दै/=/नाद्दै/ 'अनाज दे'
/नाज्/+/धरि/=/नाद् धरि/ 'अनाज रख'

अन्त्य /-ज्/ > /स/; /स-/ से पूर्व प्रयुक्त होने पर।

जैसे—/नाजु/+/सूग्गौ/=/नास्सू गौ/ 'अनाज सूख गया'

रकारान्त पदग्राम /-न/ के पूर्व प्रयुक्त होने पर नकारान्त हो जाते हैं। /घर्-/ +{-अन्-}=/घन्न। यह /नैं/ के अतिरिक्त समस्त परसर्गों से पूर्व प्रयुक्त होता है। /घन्न में/ 'घरों में' आदि।

यहाँ कुछ परसर्गों के ध्वन्यात्मक परिस्थिति-जन्य रूपग्राम देख लेना उपयुक्त होगा।

अ—कर्तृवाच्य— = /-नैं/, /-न्/

= /-न/ का प्रयोग /-त्/, /-ध्/, /-द्/, /-ध/ तथा /ना/ के पूर्व होता है। जैसे—

/मैंन्तोते कछू नाँइं कही/ 'मैंने तुझसे कुछ नहीं कहा है'

/मैंन्थारी देखी/ 'मैंने थाली देखी'

/मैंन्दौऊ देखे ऐं/ 'मैंने दोनों देखे हैं'

/मैंन्धोबी बुलायौ ए/ 'मैंने धोबी बुलाया है'

/बुआन्नौकरीं कल्लई/ 'उसने नौं करी करली'

= /-नें/ का प्रयोग अन्यत्र होता है।

आ—अधिकरण— = (१) /-में/, /-म्/

= /-म्/ का प्रयोग /प्/, /फ/, /ब/, /भ/, /म्/ से पूर्व होता है। जैसे—

/बुघरम्परिऔऐ/ 'वह घर में पड़ा है'

/बीजु खेतम्फैलिगौ/ 'बीज खेत में फैल गया'

/बुबागम्बैठ्इऔ ऐ/ 'वह बाग में बैठा है'

/पानी घरम्भरिगौ/ 'पानी घर में भर गया'

/बुआनें मोते दुसमनी मन माँनीं/ 'उसने मुझसे मन में दुश्मनी मानी'

= /-में/ का प्रयोग अन्यत्र होता है।

(२) /पै/, /-प्/, /-ब्/

/-प्/ का प्रयोग /प/, /फ/ के पूर्व होता है। जैसे—

/मैंने बु घरप्पकर्इऔ/ 'मैंने वह घर पर पकड़ा'

/बुआनें कपड़ा घरप्फारिऔ/ 'उसने कपड़ा घर पर फाड़ा'

/-ब्/ का प्रयोग /ब/, /भ/ के पूर्व होता है। जैसे—

/बु घरब्बैठिऔ ऐ/ 'वह घर पर बैठा है'
/पानी घरब्भर्‌यौ ऐ/ 'पानी घर पर भरा है'

(३) /-तक/=/तक्/, /तका/, /तग्/
=/तक्-/ का प्रयोग /क/, /ख/ के पूर्व होता है। जैसे—
/घर तक् कूँ ताँगौ मँगाइदै/ 'घर तक को ताँगा मंगादे'
/जा रोटीऐ पर तक्खाइलीजो/ 'इस रोटी को घर तक खालेना'
=/तग्-/ का प्रयोग /-ग/ और /-घा/ के पूर्व होता है। जैसे—
/मैं बुआ के घर तग्गइऔ/ 'मैं उसके घर तक गया'
/बु मेरे घर तग्घूमिऔ/ 'वह मेरे घर तक घूमा'
=/तक/ का प्रयोग अन्यत्र होता है।

(४) /तर्/, /तल्/, /-तर/, /तट्-/, /-तड्/
/तर/ का प्रयोग /-र/, के पूर्व होता है—
/पेड़ तर्राखियो/ 'पेड़ के नीचे रखना'
/पेड़ तर्रोइयो/ 'पेड़ के नीचे रोना'
/तल्/ का प्रयोग /ल्/ के पूर्व होता है। जैसे—
/पेड़ तल्लै/ 'पेड़ के नीचे ले'
/खाट तल्लोटि जा/ 'खाट के नीचे लेट जा'
/तट्/ का प्रयोग /-ट/ और /ठ/ के पूर्व होता है। जैसे—
/गाड़ी पेड़ तट्टू टी/ 'गाड़ी पेड़ के नीचे टूटी'
/मैं पेड़ तट्ठै र्‌यौ/ 'मैं पेड़ के नीचे ठहरा'
/तड्-/ का प्रयोग /-ड्/ तथा /-ढ़/ के पूर्व होता है। जैसे—

/खाट तड्डादै/ 'खाट के नीचे डाल दे'
/खाट तड्ढकि दै/ 'खाट के नीचे ढक दे'

इ—करण-अपादान = /ते/~/त/~/द्/ परिवर्तित रूप /त्/,/त/,/थ/, के पूर्व और /द्/,/द/,/ध/ के पूर्व प्रयुक्त होते हैं। पर ये प्रयोग नियमित नहीं। इनका प्रयोग धीरे और तेज़ बोलने पर निर्भर करता है। जैसे—

/म्वाँते थारी लेआ/~/म्वाँत्थारी लेआ/ 'वहाँ से थारी लेआ'
/म्वाँते तारी ले आ/~/म्वाँतारी लेआ/ 'वहाँ से ताली ले आ'
/न्याँ ते दारि ले जा/~/न्यांद्दारि लै जा/ 'यहाँ से दाल ले जा'
/न्याँ ते धोबती ले जा/ न्यां द्धोबती लै जा/ 'यहाँ से धोती ले जा'

४.२१.२.३. संक्षिप्ति—

१. $(\text{/-क्,-च,-ट्,-त्,-प/}+\{\phi\}\leftarrow\left\{\begin{matrix}\text{-अ-}\\\text{-इ-}\\\text{-उ-}\end{matrix}\right\}+/\phi/\leftarrow/+/)>\text{/-ग्,-ज्,-ड्,-द्,-ब्/}$[1]

२. $(\text{/-ख्,-छ्,-ठ्,-थ्,-फ्/}+\{\phi\}\leftarrow\left\{\begin{matrix}\text{-अ-}\\\text{-इ-}\\\text{-उ-}\end{matrix}\right\}+/\phi/\leftarrow/+/)>\text{/-क् च्,ट्,त्,प्/}$

३. $(\text{/-ख्,-छ्,-ठ्,-थ्,-फ्/}+\{\phi\}\leftarrow\left\{\begin{matrix}\text{-अ-}\\\text{-इ-}\\\text{-उ-}\end{matrix}\right\}+/\phi/\leftarrow/+/)>\text{/-ग,-ज्,-ड्,-द्-ब्/}$

४. $(\text{/-ग,-ज्,-ड्,-द्-ब्/}+\{\phi\}\leftarrow\left\{\begin{matrix}\text{-अ-}\\\text{-इ-}\\\text{-उ-}\end{matrix}\right\}+/\phi/\leftarrow/+/)>\text{/-क्,-च्,-ट्,-त्-प्/}$

५. $(\text{/-घ्-झ्,-ढ्,-ध,-भ/}+\{\phi\}\leftarrow\left\{\begin{matrix}\text{-अ-}\\\text{-इ-}\\\text{-उ-}\end{matrix}\right\}+/\phi/\leftarrow/+/)>\text{/-ग्-ज्-ड्-द्-ब्/}$

६. $(\text{/-घ्,-झ्,-ढ्,-ध्,-भ्/}+\{\phi\}\leftarrow\left\{\begin{matrix}\text{-अ-}\\\text{-इ-}\\\text{-उ-}\end{matrix}\right\}+/\phi/\leftarrow/+/)>\text{/क्-,च्,-ट्-,-त्-प्/}$

७. $(\text{/-द्,-ध,-/}\quad+\{\text{-}\phi\}\leftarrow\left\{\begin{matrix}\text{-अ-}\\\text{-इ-}\\\text{-उ-}\end{matrix}\right\}+/\phi/\leftarrow/+/)>\text{/-न्/}$[2]

८. (परिस्थिति—दन्त्यस्पर्शी अथवा स्पर्श सङ्घर्षी व्यञ्जनों के पूर्व): दीर्घनासिक्य स्वर के बाद।

$(\text{/-ज्,-झ्/})\quad+\{\phi\}\leftarrow\left\{\begin{matrix}\text{-अ-}\\\text{-इ-}\\\text{-उ-}\end{matrix}\right\}+/\phi/\leftarrow/+/)>\text{/-न्-/}$

---

१. (१) से (६) तक के परिवर्तन पीछे दिए हुए व्यञ्जनों से पूर्व के हैं। पीछे दिए हुए व्यञ्जन प्रकृतियों के पश्चात् प्रयुक्त होनेवाले पदग्रामों के प्रथम व्यञ्जन हैं। इन्हीं के प्रभाव से पहले के पदग्रामों के अन्त्य व्यञ्जन इन्हीं के तद्रूप हो जाते हैं।

२. इस परिवर्तन की परिस्थिति यह है /त, थ, द, ध/ से आरम्भ होनेवाले पदग्रामों से पूर्व पहले के पदग्रामों के अन्त्य व्यञ्जन /द, ध/, /न/ के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं।

९. (परिस्थिति—आगे आनेवाले पदग्रामों के आदि /त्,-थ्-/ तथा /द्-ध्/ से पूर्व)

क. (/-ज/ +{ϕ}← { -अ- / -इ- / -उ- } +/ϕ/←/+/)>/-त्/

ख. (/-ज/ +{ϕ}← { -अ- / -इ- / -उ- } +/ϕ/←/+/)>/-द्/

१०. (परिस्थिति ।स। से पूर्व)

(/-ज्/ +{ϕ}← { -अ- / -इ- / -उ- } +/ϕ/←/+/)>/-स्/

११. (/-र्-/+{-अन्-}=/-न्न/ (/न्नैं/ के अतिरिक्त अन्य पदसर्गों से पूर्व)

४.२१.२.४. पदवैज्ञानिक परिस्थितिजन्य रूपग्राम—कुछ व्यञ्जन परिवर्तन केवल पदग्रामों की परिस्थिति में बदलते हैं।

√जा 'जाना' =/जा/,/ग्-/

=/ग्-/ का प्रयोग केवल भूतकालिक कृ० प्रत्यय के साथ होता है।

जैसे—/गइऔ/ 'गया' /गए/ 'गये' /गई/ 'गई' ये रूप यद्यपि ध्वन्यात्मक रूप से बिल्कुल भिन्न हैं, तथापि दोनों एक ही पदग्राम के दो रूपग्राम ही हैं।

√हौ-'होना'=/हौ/,/भ-/; /भ/ का प्रयोग भूतकालिक कृदन्त की रचना में होता है। /भइऔ/ 'हुआ' /भई/ 'हुई' /भए/ 'हुए'।

{छ्—ट्}+{-ऊ-}=√छूट—'छूटना'। इसका एक पदग्राम है, जो {-ऊ-} के स्थान पर {-ओ-} पदग्राम के आने से प्राप्त होता है ; इस प्रकार—

{छ्—ट्}=/छ्—ट्/, /छ्—ड़्/

=/छ्—ट्/ का प्रयोग {-ऊ-} प्रत्यय के साथ होता है। जैसे— /छूट्/

=/छ—ड़्/ का प्रयोग {-ओ-} प्रत्यय के साथ होता है—/छोड़्/ 'छोड़ना'

इसी प्रकार के उदाहरण—{ज्—ट्}+{-उ-}=√जुट्— तथा {ज्—ट्}+{-ओ-}=√जोड़्- हैं।

एक और उदाहरण व्यञ्जन द्वित्व का है।

{छूट्-}=/छूट्-/, /छुट्ट्-/

=/छुट्ट्/ का प्रयोग {-ई-} प्रत्यय के साथ होता है: /छुट्टी/ 'छुट्टी'

=/छूट्/ का प्रयोग अन्यत्र होता है।

इसी प्रकार के उदाहरण और भी हैं—{मूँठ्-} का एक रूपग्राम /मुट्ठ्-/ है

जो {-ई} के पूर्व प्रयुक्त होता है। जैसे—/मुट्ठी/ 'मुट्ठी' इस प्रकार का परिवर्तन किसी विशेष पदग्राम के साथ प्रयुक्त होने पर ही मिलता है।

४.२.२. **प्रत्ययों के सन्धिजन्य रूपग्राम**—पिछले अध्यायों में प्रत्ययों के प्रयोग-वितरण, अर्थद्योतन आदि का विवरण प्रस्तुत किया गया है। इस शीर्षक के अन्तर्गत प्रत्ययों का रूपग्रामों का पदग्रामों के रूप में वर्गीकरण किया गया है। इससे प्रत्ययों की संख्या कम होती है। अर्थ की दृष्टि की भिन्न पर ध्वन्यात्मक रूप से समान प्रत्ययों के सन्धिजन्य रूपग्राम प्रायः समान होते हैं। ऐसे उपग्रामों को एक ही पदग्राम के साथ वर्गीकृत करना उपयुक्त होगा। केवल प्रयोग वितरण की दृष्टि से इनके पूरक बंटन को स्पष्ट किया गया है। यदि वितरणात्मक पूरक बंटन के सिद्धान्त को अपनाया जाय तो, ध्वन्यात्मक रूपगठन या परिवर्तन की भिन्नता भी प्रत्ययों के वर्गीकरण में बाधक नहीं हो सकती। इस प्रकार वितरण के वैसादृश्य के आधार पर ध्वन्यात्मक रूप से भिन्न प्रत्ययों का भी वर्गीकरण हो सकता है। प्रस्तुत विचार को दो भागों में बाँटा गया है—(१) ध्वन्यात्मक रूप से समान प्रत्यय-पदग्राम, उनका वितरणात्मक वैसादृश्य तथा सन्धिजन्य विकार; तथा (२) ध्वन्यात्मक दृष्टि से भिन्न पदग्राम, उनके वर्गीकरण का वितरणात्मक आधार तथा सन्धिजन्य रूपग्राम।

४.२२.१. **ध्वन्यात्मक रूप से समान पदग्राम**—ये पदग्राम एक स्वर वाले अथवा व्यञ्जनात्मक प्रत्यय-पदग्राम हैं और ये व्युत्पादक प्रत्यय पदग्रामों से भिन्न हैं। एक से अधिक अर्थों की सूचना भी इनके संयोग से मिलती है। अतः इनके प्रयोग की स्थितियों का वैसादृश्य पहले दे दिया जा चुका है: यहाँ ध्वन्यात्मक रूपग्रामों का विवरण दिया गया है। इन प्रत्यय पदग्रामों के ह्रस्व स्वरात्मक और दीर्घ स्वरात्मक रूप में विभाजित करने से कुछ संक्षिप्त कथन सम्भव हैं। अतः इसी प्रकार वर्गीकरण किया गया है।

४.२२१.१. **ह्रस्वस्वर पदग्राम**—ये पदग्राम तीन हैं: {/-अ/}, {/-इ/} तथा {/-उ/}। ध्वन्यात्मक रूप से इनके रूपग्रामों का विकास एक सा है। तीनों का लोप कुछ परिस्थितियों में हो जाने से /ϕ/ मिलता है। नासिक्य परिस्थितियों में तीनों के नासिक्य रूपग्राम भी मिलते हैं। कुछ परिस्थितियों में {/-अ/} का /-ब्/, {/-इ/} का [य्] तथा {/उ/} का [व] मिलता है। इन परिस्थितियों के उदाहरण नीचे दिए गए हैं—

{/-अ/} =/अँ/, /ब/, /ϕ/, /अ/

= /अँ/ का प्रयोग /म/ तथा /न/ के पूर्व होता है। जैसे—/कामँ/ 'काम' (बहु०) /कानँ/=(/कान्-/+/अँ/) 'कान'।

= /ब/ का प्रयोग उन स्थलों पर होता है जहाँ दो स्वरों का संयोग ध्वनिग्रामात्मक दृष्टि से असम्भव हो। ऐसी स्थिति में /ब्/ का योग /अ/ के साथ होकर यह रूपग्राम घटित होता है। जैसे— /कहाबति /=(√कहा- + {-अ-} + {-त्-} + {-इ}) 'कहावत' /आ/ के साथ /अ/ का संयोग नहीं हो सकता अतः /ब्/ का इनके बीच में आगम हो जाता है।

= /ϕ/ का प्रयोग एक ही वर्ग के व्यञ्जनों के बीच होता है। इस स्थिति में+संधिक /+/ का भी लोप सम्भव है: /दाम्भए/=(/दाम्-/ +/{-अ-}→ϕ/+/ϕ←+/+/भए/) 'दाम हुए'। इसी प्रकार /बात्ते/ 'बात से।'

= /अ/ का प्रयोग अन्यत्र होता है।

/इ/ = /इँ/, [-य्-], /ϕ/, /इ/

= /इँ/ का का प्रयोग /म/ तथा /न/ के पूर्व अथवा नासिक्य स्वर के पश्चात् होता है। जैसे—/झमिँ/=(/झम्-/+{-इ}>/इँ/) 'शरमकर, झुका' /मानेँ/=(√मान्-+{-इ}>/इँ/) 'मान !' /जाँइँ/=(√जा-/जाँ/+{इ}>/इँ/) 'जावें'

= [य] का प्रयोग /आ/, /ऊ/, /ओ/, /औ/ के पूर्व होता है। जैसे— /देखिआ/ [देख्या] =(√देख्-+{-इ-}+{-आ}) 'देख आ !' /जाँतिऊँ/ [जाँत्यूँ] =(√जा-{-त्-}+{-इ-}+{-ऊँ}) 'जाती हूँ'; /करिओ/ [कर्‌यो] =(√कर्-+{-इ-}+{-ओ})' किया था' /चलिऔ/ [चल्यौ]=(√चल्-+{-इ-}+{-औ}) 'चला'।

= /ϕ/ का प्रयोग ऐकारान्त तथा ईकारान्त धातुओं के साथ होता है। /लै/ 'लेकर' /पी/ 'पीकर' तथा निम्नलिखित स्थितियों में तथा निम्नलिखित व्यञ्जनों के बीच वर्त० कृ० के प्रत्यय के रूप में शून्य हो जाता है।

/-क/ और /क-/ के बीच जैसे /बक्कैं/=/बकि+कैं/, /-क/ और /-ख/ के बीच जैसे [फटक्खायो]=/फटकि+खायौ/, /-क/ और /ग/ के बीच में जैसे /बग्गो/= /बकि+गौ/, /-ख/ और /क-/ के बीच, जैसे /देक्कै/=/देखि+कैं/, /-ख/ और /ख-/ के बीच जैसे [देक्खायौ]=[देखि+खायौ], /-ख/ और /ग-/ के बीच जैसे /देग्गी/= /देखि+गौ/, /-ख/ और /घ-/ के बीच जैसे /देग्घेरीं/=/देखि+घेरीं/, इसी प्रकार /-ग/ और /क-/ के बीच, /ग-/ और /ख-/ के बीच, /ग-/ और /ग-/ के बीच, /-ग/ और /-घ-/ के बीच, {-इ} का लोप हो जाता है। चवर्ग व्यञ्जनों के बीच, टवर्ग के

व्यञ्जनों के बीच, तवर्गीय व्यञ्जनों के बीच पवर्गीय व्यञ्जनों के बीच, भी /ϕ/ का प्रयोग होता है। /-र/ और /च-/ के बीच जैसे /कर्चलि/=/करि+चलि/, /-र/ और /छ-/ के वीच जैसे [कछौंड़्यौ]=[करि+छोड्यौ], /-र/ और /ज-/ के बीच जैसे [फिरजयौ]=[फिरि+जैंयौ], /-र/ और /-झ-/ के बीच जैसे [पकझरियौ]=/पकरि+[झार्‌यौ], /-र/ तथा टवर्ग के व्यञ्जनों के बीच जैसे [कड्डार्‌यौ]=/करि+डार्‌यौ/ आदि, /-र/ तथा तवर्ग के व्यञ्जनों के बीच, जैसे [कर्दीयौ]=[करि+दीयौ], /-र/ और /र-/ के बीच जैसे [कर्राख्यौ]=[करि+राख्यौ], /-र/ और /ल-/ के बीच जैसे [कल्लीयौ]=[करि+लीयौ], /-र/ और /स-/ के बीच। जैसे [कर्सक्यौ]=[करि+सक्यौ], /-ल/ और चवर्गीय व्यञ्जनों के बीच, जैसे /कर्चलि/=/करि+चलि/, /-ल/ तथा टवर्गीय व्यञ्जनों के बीच, जैसे /मल्डारि/=/मलि+डारि/, /-ल/ तथा तवर्गीय व्यञ्जनों के बीच, जैसे /मल्दै/=/मलि+दै/, /-ल/ और /र-/ के बीच जैसे /चल्लौए/=/चलि+रहौ+ऐ/, /-ल/ और /ल-/, के बीच जैसे /मिल्लै/=/मिलि+लैं/, /-ल/ और /स-/ के बीच जैसे [मिलाक्यौ]=[मिलि+सक्यौ] 'मिलसका'

/उ/ = /उँ/, [व], /ϕ/, /उ/

= /उँ/ का प्रयोग नासिक्य व्यञ्जनों के पूर्व होता है। जैसे /नामुँ/ 'नाम' =(/नाम्-/+{-उ}); /धनुँ/ 'धन' (/धन्-/+{-उँ}) 'धन'

= [व] का प्रयोग /आ/, /ऐ/ के पूर्व होता है। जैसे—[ब्वा]=/बुआ/=(/ब-/+{-उ-}+{-आ-}) 'उस' /गुआला/=[ग्वाला] = /जाँतुऐ/=[जाँत्वै]=(√जाँ-{-त्-}+{-उ-}+{-ऐ}) 'जाता है'।

= /ϕ/ का प्रयोग तब होता है, जब प्रकृति का अन्त्य और आगे के शब्द का आदि व्यञ्जन एक ही वर्ग के हों। जैसे—/राम्बोलिऔ/ 'रामबोला' /कान्तोरिऔ/ 'कान तोड़ा' (/कान्-/+{-उ}) 'कान तोड़ा' आदि।

= /उ/ का प्रयोग अन्यत्र होता है।

इस प्रकार इन प्रत्ययों के ध्वन्यात्मक रूपग्राम स्पष्ट हो जाते हैं। पदग्रामात्मक दृष्टि से भी इसके रूपग्राम हैं। ये रूपग्राम ध्वन्यात्मक रूप से समान हैं, पर वितरण की दृष्टि से पूरक बंटन में होते हैं। पिछले अध्याय में इनके वितरण और अर्थद्योतन पर विचार किया गया है।

४.२२१.२. दीर्घ स्वरात्मक प्रत्यय—{/आ/}, {/ई/}, {/ऊ/}, {/ए/}, {/ऐ/}, {/ओ/} तथा {/औ/} इसी प्रकार के प्रत्यय हैं। इनके अर्थद्योतन और

वितरण की स्थितियों पर पिछले अध्याय में विचार किया जा चुका है। नीचे इनके ध्वन्यात्मक रूपग्रामों की स्थितियों का विवरण दिया गया है।

{/आ/}=/बा/, /ब्-/, /मा/, /म्-/, /हा/, /ओ/, /आ/, /अ/, /आर/, /अर/

=/बा/ तथा [या] का प्रयोग स्वरान्त पदग्रामों के साथ होता है। जैसे —

√गा–'गाना'+{-आ-}+{-ई}=/गबाई/ 'गाने का कार्य या पारिश्रमिक'

√छा–'छाना'+{-आ-}+{-ई}=/छबाई/ 'छाने का कार्य या पारिश्रमिक'

√पी–'पीना'+{-आ-}+{-ई}=/पिबाई/ 'पीने का कार्य या पारिश्रमिक'

√धो–'धोना'+{-आ-}+{-ई}=/धुबाई/ 'धोने का कार्य या पारिश्रमिक'

इन उदाहरणों में /ब/, अ—आ, इ—आ, उ—आ का मध्यस्थ होकर आया है। आ—आ के बीच भी /ब/ के आगम से यह रूप ग्राम सम्पन्न होता है। जैसे —

√बना=(√बन्+{-आ})+{-आ}=/बनाबा/ 'बनानेवाला'

√भिड़ा=(√भिड़+{-आ})+{-आ}=/भिड़ाबा/ 'भिड़ानेवाला'

यदि /बा/ के साथ फिर यही प्रत्यय-रूपग्राम आता है तो इसका एक रूप केवल /ब/ भी मिलता है। ऐसे उदाहरण स्वरान्त धातुओं के द्वितीय प्रेरणार्थक से पूर्व मिलते हैं।

√पी–+{-आ}=√पिबा–+{-आ}=√पिब्बा– 'पिलवाना'

√लै–+{-आ}=√लिबा–+{-आ}=√लिब्बा– 'लिबाना'

√खा–+{-आ}=√खबा–+{-आ}=√खब्बा– 'खिलवाना'

√रो–+{-आ}=√रुबा–+{-आ}=√रुब्बा– 'रुवाना'

/मा/ का प्रयोग नासिक्य स्वरान्त पदग्रामों के साथ होता है। जैसे—

√सीं– 'सीना'+{-आ-}+{-ई}=/सिंमाई/ 'सींने का कार्य या पारिश्रमिक'

√जैं– 'जीमना'+{-आ-}+{-ई}=/जिमाई/ 'जीमने का कार्य या पारिश्रमिक'

इस प्रत्यय से युक्त रूपों के साथ फिर इसी प्रत्यय का योग होने पर /मा/ के स्थान पर /म्/ का ही प्रयोग रह जाता है। जैसे —

√सीं–+{-आ}=√सिमा–+{-आ}=√सिम्बा– 'सिलवाना'

√जैं–+{-आ}=√जिमा–+{-आ}=√जिम्बा– 'जिमवाना'

/हा/ का प्रयोग ऐसे द्वयक्षरात्मक पदग्रामों के साथ मिलता है जिनका प्रथम अक्षर दीर्घ हो और {-आ-} के संयोग के परिणाम स्वरूप वह ह्रस्व हो गया हो। अन्त्य स्वर /-इ/ होना आवश्यक है। ऐसे अवसर पर इ—आ के बीच /ह्/ के आगम से यह रूपग्राम प्राप्त होता है। जैसे :—

/राति/ 'रात'+{-आ}=/रतिहा/ 'जिसे रात में कार्य करने का अभ्यास हो'

/गारी/ 'गाली'+{-आ}=/गरिहा/ 'गाली देने का अभ्यासी।

ये उदाहरण विरल हैं।

/ओ/ का प्रयोग केवल एक-धातु √भीज् के साथ होता है। अतः इसके प्रयोग का कारण ध्वन्यात्मक नहीं है। √भीज्-+/ओ/=√भिजो- 'भिगोना' या {/आ/} का स्थानापन्न है। अतः ध्वन्यात्मक रूप से भिन्न होने पर भी इस पदग्राम के रूपग्राम की भाँति वर्गीकृत किया गया है।

/आ/ का प्रयोग व्यञ्जनान्त पदग्रामों के साथ होता है। जैसे—√कर्+{-आ}+{-ई}=/कराई/ 'करना' √मल्-+{-आ-}+{ई}=/मलाई/ 'मलने का कार्य'; √पीट्-+{-आ-}+{-ई}=/पिटाई/ 'पीटने का कार्य' व्यञ्जनान्त धातुओं के प्रथम प्रेरणार्थक रूपों में भी इसके उदाहरण मिलते हैं: √उड़-+{-आ}=√उड़ा- 'उड़ाना' √उठ्-+{-आ}=√उठा-; √गिर्+{आ}=√गिरा- 'गिराना।'

/अ/ का प्रयोग द्वितीय प्रेरणार्थक प्रत्यय से पूर्व मिलता है। जैसे—√लूट्- 'लूटना' +{-आ-}=√लुटा- 'लुटाना' +{-आ}=√लुटबा- लुटवाना' √दौड़- 'दौड़ना' +{-आ}=√दौड़ा- 'दौड़ाना' +{-आ}=√दौड़बा- 'दौड़वाना'।

/आर्-/ का प्रयोग भी केवल एक धातु के साथ मिलता है—√बैठ्-+{आ}=।बैठार्-। 'बिठाना।'

/अर्-/ द्वितीय प्रेरणार्थक से पूर्व /आर्-/ का एक संकुचित रूप है। जैसे-- √बैठ्-+'बैठना' +{-आ-}=/बैठार्-/ 'बिठाना' +{-आ}=√बैठरबा- 'बिठलवाना'।

{/ई/} यह प्रत्यय पदग्रामों की संरचना तथा व्युत्पादन दोनों के लिए प्रयुक्त होता है। इसके रूपग्रामात्मक वैविध्य अधिक नहीं मिलता। केवल दीर्घध्वनियों से पूर्व इसका ह्रस्वीकरण हो जाता है। पर यह ह्रस्वीकरण ई > इ के परिमाण का नहीं होता। पर विशेष परिवर्तन [य] श्रुति के आगम का होता है। जैसे—[खबइ^य आ]=/खबईआ/ 'खानेवाला' /गबईआ/ [गबइ^य आ] 'गानेवाला'। रूपग्रामात्मक दृष्टि से, इस प्रत्यय के अधिक वैविध्य हैं।

{/ऊ/}—इस प्रत्यय का प्रयोग मूल संरचना में कम होता है इसका विशेष प्रयोग व्युत्पत्ति प्रक्रिया में होता है। इसके ध्वन्यात्मक रूपग्रामात्मक वैविध्य अधिक नहीं प्राप्त होते। केवल [^व] श्रुति के आगम से [ऊ ^व] रूपग्राम प्राप्त होता है, जिसका प्रयोग /आ/ तथा /औ/ के पूर्व होता है। /औ/ का प्रयोग विशेषतः सम्बोधन के रूप में आता है—√कर्-+{-ऊ}=/करू/ 'चलाक'+{-औ}=[करू ^व औ] 'करुओ' ऐसे रूप विरल हैं। /आ/ के पूर्व इस रूपग्राम का

प्रयोग विशेष पाया जाता है। /नाऊ/ 'नाई'+{-आ}=[नऊ^{व} आ] 'नाई' (लघुत्वर्थक) √आ-+{-ऊ}+{-आ}=[आऊ^{व} आ] 'आनेवाला'।

{/ए/}—इस पदग्राम के ध्वन्यात्मक रूपग्राम प्राप्त नहीं होते। इसका प्रयोग प्र० बहु० (मूल), पु० एक० (तिर्यक), आज्ञावाचक, तथा भूत० कृ० के बहु० के साथ होता है। दीर्घस्वर के पूर्व प्रयुक्त होने पर भी इसकी दीर्घता प्रभावित नहीं होती।

{/ऐ/}=/इ/, /ऐं/, /बै/, /ए/, /ऐ/

=/इ/ का प्रयोग तिर्यकरूप आकारान्त सर्वनामों के साथ होता है। जैसे—/जा-/ 'इस' /जाइ/ 'इसको' /बुआ-/ [ब्वा] 'उस' /बुआइ/ 'उसको' /का-/ 'किस' /काऊ/ 'किसको'

=/ऐं/ का प्रयोग नासिक्य व्यञ्जनान्त संज्ञा-पदग्रामों के कर्म० सम्प्र० रूपों की रचना में होता है। /गाम्-/+{-ऐं}=/गामैं/ 'गाँव को' /कान्-/+{-ऐं}=/कानैं/ 'कान को' /रामैं/ 'राम को' /कामैं/ 'काम को।'.

=/बै/ का प्रयोग ।ऐ। के अतिरिक्त सभी दीर्घस्वरों में अन्त होनेवाली धातुओं की आज्ञावाचक रूप-रचना में होता है। यह रूप-रचना अन्यपुरुष-एकवचन की है। जैसे—/आबै/ 'आवे' /कमाबै/ 'कमावे' /पीबै/ 'पिये' /जीबै/ 'जीवे' /सोबै/ 'सोवे' /छूबै/ 'छुए'।

/ए/ का प्रयोग ऐकारान्त धातुओं के अन्य० एक० आज्ञावाचक रूपों की रचना में प्रयुक्त होता है। जैसे—√लै-से /ले/ 'ले' √दै- से /दे/ 'दे' √र्है- 'रहना'+{-ऐ}=/र्हे/ 'रहे'।

/ऐ/ का प्रयोग अन्यत्र होता है। दीर्घस्वरान्त संज्ञाओं तथा व्यञ्जनान्त संज्ञा के कर्म० सम्प्र० रूपों में इसके प्रयोग के उदाहरण ये हैं: /हातीऐ/ 'हाथी को' /गधाऐ/ 'गधा को' /गऊऐ/ 'गाइको' /नब्बोऐ/ 'नब्बो को' /चीते ऐ/ 'चीते को' व्यञ्जनान्त धातुओं के आज्ञावाचक रूपों में इसके प्रयोग के उदाहरण हैं—√कर्+{-ऐ}=/करै/ 'करे'। इसी प्रकार /चलै/ 'चले' /उठै/ 'उठे'।

/मैं/ का प्रयोग बहुवचन /ँ/ से युक्त होने पर उन्हीं परिस्थितियों में होता है जिनमें /बै/ एक० का प्रयोग होता है। जैसे—/खामैं/ 'खावें' /पीमैं/ 'पीवें' /छूमैं/ 'छुएँ' /रोमैं/ '[illegible]'।

{/ओ/} के कोई ध्वन्यात्मक वैविध्य प्राप्त नहीं होते।

{/औ/}=/उ/, /भौ/, /औं/, [यौं ~ [ह्यौं], -/ओ/, /औ/

/उ/ का प्रयोग ऐकारान्त धातुओं के मध्यम० बहु० के आज्ञावाचक रूपों की

रचना में होता है—अन्य धातुओं के साथ /औ/ का ही प्रयोग होता है। अतः यह /औ/ का स्थानापन्न है। उदाहरण—√लै-+{-औ}=/लिउ/ 'लो' √दै-+{-औ}=/देउ/ 'दो' √र्‌है- {-औ}=/र्‌हेउ/।

/मौ/ का प्रयोग संज्ञावाचक शब्दों के साथ प्रयुक्त होकर क्रमार्थकरूपों की रचना में होता है—/आठ/ 'च' /आठमौ/ 'आठवाँ' /दस/ '१०' /दसमौ/ 'दसवाँ' इसी प्रकार अन्य क्रमार्थक रूपों में इसका प्रयोग होता है।

/औं/ का प्रयोग /न्/ के पश्चात् होता है। जैसे √खा-+{-न्-}+{-औ}=/खानौं/ 'खाना' √जा-+{-न्-}+{-औ}=/जानौं/ 'जाना' इत्यादि संज्ञार्थक क्रिया के रूपों में इसके उदाहरण प्राप्त होते हैं।

/औं/=[यौं]~[ह्‌यौं] रूपग्राम का प्रयोग औ—औ के बीच में [य्] अथवा /ह्/ के आगम से प्राप्त होता है: √ढरक्+{-औ}+{-औं}=/ढरकौऔं/ [ढरकौंयौं]~[ढरकौंह्-यौ] 'ढालू'। ऐसे ही अन्य रूपों की रचना में इसके प्रयोग के उदाहरण प्राप्त होते हैं।

/ओ/ का प्रयोग उत्तम० एक० के भविष्य पदग्राम {-ग्-} के पश्चात् होता है। जैसे /मैं जांगो/ 'मैं जाऊँगा।' यह प्रयोग पदवैज्ञानिक कारणों से प्रभावित है।

/औ/ का प्रयोग अन्यत्र होता है।

४.२२१.३. व्यञ्जनात्मक पदग्राम—कुछ व्यञ्जनात्मक प्रत्यय व्युत्पादक होते हैं जिनके संयोग से कुछ पदग्रामों से भिन्नार्थक पदग्राम व्युत्पन्न होते हैं। कुछ प्रत्यय मूल रूपरचना से सम्बद्ध हैं। नीचे इन्हीं के ध्वन्यात्मक रूपग्रामों का विवरण प्रस्तुत किया गया है। ऐसे प्रत्यय पदग्राम {-त्-,} {-न्-} तथा {-ब्-} हैं।

{-त्-} इस प्रत्यय का प्रयोग मुख्यतः वर्तमानकाल कृद० की रचना में होता है। संज्ञाओं के साथ प्रयुक्त होकर यह विशेषणों की व्युत्पत्ति भी करता है। इस व्युत्पादन-प्रक्रिया में ध्वन्यात्मक वैविध्य नहीं मिलते। इसके ध्वन्यात्मक रूपग्राम ये हैं—

{-त्-}=/-अत्-/, /मत्/, /च्/, /-ज्-/, /त्/, /गत्-/, /बात्/

/-अत्-/ का प्रयोग /-द्/, /-ध्/, /-न्/, /-र्/, /-ल्/, /-स्/ तथा /ऐह्-/ अन्तवाली धातुओं के अतिरिक्त समस्त व्यञ्जनान्त धातुओं के साथ होता है। इनके साथ लिङ्ग वच० प्रत्यय संयुक्त होकर रूप को पूर्ण करता है। नीचे लिङ्गवचन प्रत्ययों से युक्त कुछ रूप उदाहरण के लिए दिए गए हैं—

√बक्- से /बकतौ/, तिर्यक- /बकते/ स्त्री० /बकती/ 'बकती'
√देख्- से /दिखतौ/, तिर्यक- /देखते/ स्त्री० /देखती/ 'देखती'
√जग्- से /जगतौ/, तिर्यक- /जगते/ स्त्री० /जगती। 'जगती'

√सूँघ्- से /सूँघतौ/, तिर्यक- /सूँघते/ स्त्री० /सूँघती/ 'सूंघती'
√बाँच्- से /बाँचतौ/, तिर्यक- /बाँचते/ स्त्री० /बाँचती/ 'पढ़ती'
√पूछ्- से /पूछतौ/, तिर्यक- /पूछते/ स्त्री० /पूछती/ 'पूछती'
√बज् से /बजतौ/, तिर्यक- /बजते/ स्त्री० /बजती/ 'बजती'
√सूझ्- से /सूझतौ/, तिर्यक- /सूझते/ स्त्री० /सूझती/ 'सूझती'
√आट् से /आटतौ/, तिर्यक- /आटते/ स्त्री० /आटती/ 'आटती'
√बैठ्- से /बैठतौ/, तिर्यक- /बैठते/ स्त्री० /बैठती/ 'बैठती'
√लड़्- से /लड़तौ/, तिर्यक- /लड़ते/ स्त्री० /लड़ती/ 'लड़ती'
√चढ़् से /चढ़तौ/, तिर्यक- /चढ़ते/ स्त्री० /चढ़ती/ 'चढ़ती'
√कात्- से /काततौ/, तिर्यक- /कातते/ स्त्री० /कातती/ 'कातती'
√कथ् से /कथतौ/, तिर्यक- /कथते/ स्त्री० /कथती/ 'बनाती'
√काँप्- से /काँपतौ/, तिर्यक- /काँपते/ स्त्री० /काँपती/ 'काँपती'
√लफ् से /लफतौ/, तिर्यक- /लफते/ स्त्री० /लफती/ 'लफती'
√नब्- से /नबतौ/, तिर्यक- /नवते/ स्त्री० /नबती/ 'नबती'
√निभ्- से /निभतौ/, तिर्यक- /निभते/ स्त्री० /निभती/ 'निभती'
√थम्- से /थमतौ/, तिर्यक- /थमतै/ स्त्री० /थमती/ 'थमती'

/ँत्/ का प्रयोग /ऐह्-/ अन्तवाली धातुओं के साथ होता है। जैसे √र्है-+{-त्-इ्}=/रहैंत्-/ 'रहता' √लै-+/ँत्/=/लैंत-/ 'लेते' √दै-+/ँत्/=/दैत्-/ 'देत्-' आदि।

/-मत्-/ का प्रयोग केवल √जा-'जाना' तथा ऐकारान्त धातुओं के अतिरिक्त समस्त दीर्घस्वरान्त धातुओं के साथ होता है—

√आ- से /आँमतौ/ तिर्यक- /आंमते/ 'आता हुआ'
√जी- से /जीमतौ/ तिर्यक- /जीमते/ 'जीवित'
√से- से /सेमतौ/ तिर्यक- /सेमते/ 'सेवा करते'
√सौ- से /सोमतौ/ तिर्यक- /सोमते/ 'सोते हुए'

इनके स्त्रीलिङ्ग रूप क्रमशः /आंमती/, /जींमती/, /सेमती/, /सोमती/ हैं।

/-च्-/ तथा /ज्/ का प्रयोग वर्त० कृद० के आगे आने वाले पदग्राम के प्रथम व्यञ्जन /च्/, /छ्/ तथा /ज्/ के प्रभाव से होता है। उदाहरण—/देखच्चलि/ 'देखता चल' /देखच्छोड़िऔ/ 'देखता छोड़ा', /देखज्जा/ 'देखता जा',। /रकारान्त धातु के वर्तमानकाल कृद० के पश्चात् ऐसे पद आने से ये रूपग्राम नहीं प्राप्त होते।

/त्/ का प्रयोग /द्/, /ध्/, /न्/, /र्/, /ल्/ तथा /स्/ अन्त वाली धातुओं के साथ होता है। जैसे—

=/-त्-/ का प्रयोग /द्/, /ध्/, /न्/, /र्/, /ल्/ तथा /स्/ अन्तवाली धातुओं के साथ होता है। जैसे—

√कूद् 'कूदना' से /कून्तौ/ तिर्यक- /कून्ते/ स्त्री० /कूत्ती/
√साध् 'साधना' से /सात्तौ/ तिर्यक- /सात्ते/ स्त्री० /सात्ती/
√बन् 'बनना' से /बन्तौ/ तिर्यक- /बन्ते/ स्त्री० /बन्ती/
√कर् 'करना' से /कर्तौं/ तिर्यक- /कर्ते/ स्त्री० /कर्ती/
√चल् 'चलना' से /चल्तौ/ तिर्यक- /चल्ते/ स्त्री० /चल्ती/
√हँस् 'हँसना' से /हँस्तौ/ तिर्यक- /हँस्ते/ स्त्री० /हँस्ती/

/गत्-/ का प्रयोग अकारान्त प्रातपदिक रूप के साथ /अत्-/ रूपग्राम के संयुक्त होने के समय होता है। इस अवस्था में अ—अ के बीच /-ग्-/ का आगम हो जाता है। इस रूपग्राम से युक्त रूप सदैव संज्ञा के स्थानापन्न तथा {-इ} स्त्री० प्रत्यय से संयुक्त होते हैं। जैसे—/चलगति/, 'चलने की शैली' /बनगति/ 'बनने का ढङ्ग'।

/बत्/ रूपग्राम आकारान्त प्रातपदिक के साथ /अत्/ रूपग्राम के प्रयुक्त होने पर /-ब्-/ के आगम से प्राप्त होता है। यह भी संज्ञा का स्थानापन्न और {-इ} प्रत्यय से युक्त होता है। इस रूपग्राम से युक्त एक ही शब्द मिलता है—/कहाबति/ 'कहावत'।

{-न्-} इस प्रत्यय का प्रयोग संज्ञा के तिर्यक् बहु०, क्रियार्थक संज्ञा तथा कुछ सम्बन्धवाचक स्त्री० पदग्रामों के साथ होता है। पर ध्वन्यात्मक रूप से इसके पदग्राम समान हैं—/-अन्-/, /अन/, /मन्/, /न्/, /न/, /ँ/

/अन्-/ का प्रयोग व्यञ्जनों के पश्चात् होता है। जैसे—/टाट्-/ 'टाट'+{-न्-}=/टाटन्-/ 'टाटों' /बात्-/ 'बात' +{-न्-}=/बातन्-/ 'बातों' पर इन हलन्त रूपों का प्रयोग इन बहु० संज्ञा प्रातपदिकों का प्रयोग केवल दन्त्य व्यञ्जनाश्रित परसर्गों से पूर्व होता है। जैसे—/टाटन्नैं/ 'टाटों को' /बातन्ते/ 'बातों से'। क्रियार्थक संज्ञाओं की रचना में यह प्रत्यय सदैव ही स्वरात्मक प्रत्ययों से युक्त होता है, अतः यह हलन्त पदग्राम /-ल्/, /-न्/, तथा /-र्/ अन्तवाली धातुओं के अतिरिक्त सभी व्यञ्जनान्त धातुओं के साथ प्रयुक्त होता है। उदाहरण—

√नाँप् से /नाँपनौं-/ 'नाँपना' √बच् से /बचनौं/ 'बचना'
√लफ् से /लफनौ/ 'लफना' √बिछ्- से /बिछनौं/ 'बिछना'
√नब् से /नबनौं/ 'नबना' √बज् से /बजनौं/ 'बजना'
√चूम् से /चूमनौं/ 'चूमना' √रीझ्- से /रीझनौं/ 'रीझना'
√कात् से /कातनौं/ 'कातना' √काट्- से /काटनौं/ 'काटना'
√नाँध् से /नाँधनौं/ 'नांधना' √गूँठ्- से /गूँठनौ/ 'गूँठना'

√कूद् से /कूदनौं/ 'कूदना' √लड् ड् से /लड़नौं/ 'लड़ना'
√बाँध् से /बाँधनौं/ 'बाँधना' √बढ़- से /बढ़नौं/ 'बढ़ना'
√बक्- से /बकनौं/ 'बकना' √औंघ- से /औंघनौं/ 'औंघना'
√देख्- से /देखनौं/ 'देखना' √कस् से /कसनौं/ 'कसना'
√जग्- से /जगनौं/ 'जगना'

/अन/ इस स्वरान्त रूपग्राम का प्रयोग व्यञ्जनों के पश्चात् तथा दन्त्यों के अतिरिक्त, अन्य व्यञ्जनों पर आश्रित परसर्गों के पूर्व होता है। इस दशा में /+/ सुरक्षित रह कर इस रूपग्राम को भी स्वरान्त रखता है। /टाटन पै/ 'टाटों पर' /बातन में/ 'बातों में'। क्रियार्थक संज्ञाओं के पश्चात् व्यञ्जन आते ही नहीं, सदैव ही ये स्वरान्त प्रत्ययों से युक्त रहते हैं। अतः यह रूपग्राम उसके साथ नहीं मिलते।

/-मन्-/ का प्रयोग √जा- तथा ऐकारान्त धातुओं के अतिरिक्त सभी स्वरान्त धातुओं के क्रियार्थक संज्ञा रूप की रचना तक सीमित है। उदाहरण—

√आ-+{-न्-}=/आमन्-/ 'आना' √जैं- +{-न्-}=/जैंमनौं/ 'जीमना'
√पी- +{-न्-}=/पीमन्-/ 'पीना' √सीं-+{-न्-}=/सींमनौं/ 'सींना'
√सो-+{-न्-}=/सोमन्-/ 'सोना'

/-न्/ का प्रयोग संज्ञा बहुवचन रूपों में दीर्घस्वरों के पश्चात् और दन्त्य स्पर्शों से युक्त परसर्गों के पूर्व होता है—/हाती/ 'हाथी' +{-न्-}+/ते/=/हातीन्ते/ 'हाथियों से' /गाइन्नैं/ 'गायों ने' +/कैन्ते/ 'कितनों से'। क्रियार्थक संज्ञा में /-ल्/, /-न्/, तथा /-र्/ अन्तवाली धातुओं तथा √जा- के साथ इसी रूपग्राम का प्रयोग होता है—

√चल्- से /चल्नौं/ 'चलना' √मल्- से /मल्नौं/ 'मलना'
√बन्- से /बन्नौं/ 'बनना' √जन्- से /जन्नौं/ 'जनना'
√कर्- से /कन्नौं/ 'करना' √धर्- से /धन्नौं/ 'रखना'
√ल- से /लैनौं/ 'लेना' √दै- से /दैनौं/ 'देना'
√जा- से /जानौं/ 'जाना'

/न/ इस स्वरान्त रूपग्राम का प्रयोग स्वरान्त संज्ञा-पदग्रामों तथा दन्त्येतर व्यञ्जनवाले परसर्गों से पूर्व होता है। जैसे—/हातीन पै/ 'हाथियों पर', /गाइन पै/ 'गायों पर'।

/ँ/ का प्रयोग एकवचन के द्योतक पदग्रामों के अन्त्यस्वर के साथ बहुवचन की रचना के लिए होता है। जैसे—/ऐं/=(/ऐ/+/ँ/) 'हैं' /ईं/=(/ई/+/ँ/) 'थीं'।

{-बृ-} इसका प्रयोग क्रियार्थक संज्ञा की रचना में होता है। इस प्रत्यय-

पदग्राम के ध्वन्यात्मक रूपग्राम ये हैं—/-म्-/, /-इब-/, तथा /-ब्-/। नीचे इनके उदाहरण दिए गए हैं—

/-म्-/ का प्रयोग धात्वान्तक /-ईं-/ तथा /-ऐं-/ के पश्चात् होता है (अन्य नासिक्य स्वर धात्वान्त में नहीं आते)। उदाहरण—

√सीं- + {-ब्-} = /सीम्-/ 'सीना'
√जैं- + {-ब्-} = /जैंम्-/ 'जीमना'

इनके पश्चात् स्वरात्मक प्रत्यय प्रयुक्त होते हैं। जैसे—/सींमौ/, /जैंमौ/ आदि।

/-इब्/ का प्रयोग सभी व्यञ्जनान्त तथा /ई/ /ऐ/ के अतिरिक्त सभी स्वरान्त धातुओं के पश्चात् होता है। जैसे—

√बक्- से /बकिबौ/ 'बकना' √कस्- से /कसिबौ/ 'कसना'
√बच्- से /बचिबौ/ 'बचना' √आ- से /आइबौ/ 'आना'
√बट्- से /बटिबौ/ 'बटना' √उठा- से /उठाइबौ/ 'उठाना'
√कात्- से /कातिबौ/ 'कातना' √उठबा- से /उठबाइबौ/ 'उठवाना'
√काँप्- से /काँपिबौ/ 'काँपना' √तुइ- से /तुइबौ/ 'समय से पूर्व जन्म देना (पशुओं के लिए प्रयुक्त)
√कर्- से /करिबौ/ 'करना' √पइ- से /पइबौ/ 'रोटी तवे पर डालना'
√चल् से /चलिबौ/ 'चलना' √रो- से /रोइबौ/ 'रोना'

/-ब्-/ का प्रयोग /म्-/, /ब्-/, /-ई/, तथा /-ऐ/ अन्तवाली धातुओं के पश्चात् होता है। जैसे—

√घूम्- से /घूम्बौ/ 'घूमना' √नब्- से /नब्बौ/ 'नबना'
√चूम्- से /चूम्बौ/ 'चूमना' √पी- से /पीबौ/ 'पीना'
√थम्- से /थम्बौ/ 'थमना' √लै- से /लैबौ/ 'लेना'
√थाम्- से /थाम्बौ/ 'थामना'

४.२२.२. ध्वन्यात्मक रूप से असमान पदग्राम—ऊपर ध्वन्यात्मक रूप से समान पदग्रामों के रूपग्रामात्मक वैविध्यों को देखा गया है। कुछ पदग्राम हैं जो ध्वन्यात्मक दृष्टि से समान नहीं हैं, फिर भी उनका वर्गीकरण एक साथ किया जा सकता है। इनको एक वर्ग में रखने का आधार पूरक बंटन ही है। इस प्रकार का एक वर्ग मूलरूपों का है और दूसरा व्युत्पादक-प्रत्यय वर्ग का।

४.२२२.१. मूलरूप—√हो-के रूप बोली में सहायक क्रिया के रूप में प्रयुक्त होते हैं। पुरुष, वचन और लिङ्ग के अनुसार इनके रूपों में अन्तर होता है। साथ ही इनका पूरक बंटन भी स्पष्ट है। अतः इन सब रूपों को एक ही वर्ग में

रखना सुविधाजनक है। इनके ध्वन्यात्मक रूपग्राम भी हैं। उनको भी दे दिया गया है।

{हो}=/ऊँ/, /औ/, /ऐ/, /ओ/, /ए/, /ई/

/ऊँ/ का प्रयोग केवल 'मैं' (उत्तम० एक०) के साथ हो सकता है। इसके ध्वन्यात्मक रूपग्राम ये हैं—/ऊँ/=/-उन्-/, /-न्-/, /-ऊँ-/। इनके प्रयोग की स्थितियाँ इस प्रकार हैं—

=/-उन्-/ का प्रयोग व्यञ्जनान्त धातुओं के भविष्य रूपों में {-ग-} के पूर्व होता है। जैसे—

/-अन्-/ /मैं चलुंगो/ 'मैं चलूँगा'∼/मैं चलंगो/

/मैं करुंगो/ 'मैं करूँगा'∼/मैं करंगो/

=/-न-/ का प्रयोग स्वरान्त धातुओं के भविष्य रूपों में {-ग-} के पूर्व होता है। जैसे—

/मैं आंगो/ 'मैं आऊँगा' /मैं पींगो/ 'मैं पिऊँगा'

/मैं सों गो/ 'मैं सोऊँगा' /मैं सोंगो/ 'मैं खाँऊँगा'

=/-ऊँ/ का प्रयोग उच्चारान्त होता है। जैसे—

/मैं आँऊँ/ 'मैं आँऊँ' /मैं पीऊँ/ 'मैं पीऊँ'

/मैं सोऊँ/ 'मैं सोऊँ' /मैं चलूँ/ 'मैं चलूँ'

/मैं ऊँ/ 'मैं हूँ'

/औ/ का प्रयोग केवल 'तुम' (मध्यम० बहु०) के साथ होता है। जैसे—/तुमऔ/ 'तुम हो'। इसके अन्य ध्वन्यात्मक वैविध्य प्राप्त नहीं होते।

/ऐ/ का प्रयोग उत्तम पुरुष एक० के अतिरिक्त सभी एकवचन पदग्रामों के साथ होता है। इसके ध्वन्यात्मक वैविध्य इस प्रकार हैं—

/ऐ/=/-इ-/, /-बै-/, /-मै-/, /ऐ/ {-ग-} के पूर्व तथा अन्य० आज्ञा में

=/-इ-। का प्रयोग√जा- के भविष्य रूप में होता है। जैसे—

/बु जाइगौ/ 'वह जायगा' /तू जाइगौ/ 'तू जायगा'

/जि जाइगौ/ 'यह जायगा' /छोरा जाइगौ/ 'लड़का जायगा'

/बु जाइ/ 'वह जाय'

= /-बै-/ का प्रयोग स्वरान्त धातुओं तथा भविष्य {-ग-} के बीच होता है—

/बु खाबैगौ/ 'वह खायगा' /बु खाबैगी/ 'वह खायगी'

/तू पाबैगौ/ 'तू पियेगा' /जि सोबैगौ/ 'यह सोयेगा'

= /-मै-/ का प्रयोग नासिक्य स्वरान्त धातुओं के भविष्य रूप में {-ग-} के पूर्व होता है। जैसे—

√जैं- 'जीमना' /जैमैगौ/ 'जीमैगा'
√सीं- 'सींना' /सीमैगौ/ 'सियेगा'

= /-ऐ/ का व्यञ्जनान्त धातुओं के साथ तथा उच्चारान्त होता है। जैसे—

/बु झुकैगौ/ 'वह झुकेगा' /तू नाँखैगौ/ 'तू नांखेगा'
/जि बचैगौ/ 'यह बचेगा' /छोरा लोटै/ 'लड़का लेटे'
/तूऐ/ 'तूहै' /बुऐ/ 'वह है'

इसके साथ बहुवचन {/ँ/} का भी प्रयोग हो सकता है। इस प्रकार बहुवचन रूप /ऐं/=(/ऐ/+/ँ/) हो जायगा। इसके ध्वन्यात्मक वैविध्य अनुस्वार के अनुसार कुछ भिन्न हो जाते हैं। ये इस प्रकार हैं—

/ऐं/ = /-न्/~/-मिन्-/, /-मैं/ /-इँ/, /-इन्-/, /-ऐं-/

/-न्-/ का प्रयोग समस्त स्वरान्त धातुओं के भविष्य रूपों में होता है। पर इसका रूपान्तर /-मिन्-/ का प्रयोग केवल जा—के साथ नहीं होता।

/हम जांगे/ 'हम जायंगे'
/हम खांगे/ ~ /हम खामिंगे/ 'हम खायंगे'
/हम्पींगे/ ~ /हम्पीमिंगे/ 'हम पीवेंगे'
/हम सोंगे/ ~ /हम सीमिंगे/ 'हम सोयंगे'

इनमें /-मिन्-/ वाले रूप अब समाप्त हो रहे हैं। पूर्व पीढ़ियों के वक्ताओं द्वारा इन रूपों का प्रयोग होता है।

= /मैं-/ = का प्रयोग स्वरान्त धातुओं में उच्चारान्त होता है। जैसे—

/हम आमैं/ 'हम आवैं'
/हम खामैं/ 'हम खावैं' ~ /खाँइँ/
/हम पीमैं/ 'हम पियें'
/हम सोमैं/ 'हम सोवैं'

= /-इँ-/ का प्रयोग √जा, √खा के अभिप्रायार्थक रूप में होता है तथा स्वरान्त धातुओं के भविष्य रूपों में होता है। जैसे—

/हम जाँइँ/ 'हम जायं'
/हम खाँइँ/ 'हम खावैं'

= /-इन्-/ का प्रयोग व्यञ्जनान्त क्रिया धातुओं के भविष्य रूपों के {-ग-} के पूर्व होता है। जैसे—

/हम करिंगे/ 'हम करैंगे' /बे बचिंगे/ 'वे बेचेंगे'
/हम हँसिंगे/ 'हम हसैंगे' /बे बकिंगे/ 'वे बकेंगे'

= /-ऐं-/ का प्रयोग व्यञ्जनान्त धातुओं में उच्चारान्त होता है।

/हम करैं/	'हम करें'	/वे बकैं/	'वे बकें'
/हम हंसें/	'हम हंसें'	/वे बचैं/	'वे बचैं'
/हम ऐं/	'हम हैं'	/वेऐं/	'वे हैं'

अर्थ की दृष्टि से ये सभी वर्तमानकालिक रूप हैं।

/ओ/, /ए/ ये रूपग्राम ऊपर के रूपग्रामों से वितरण में भिन्न हैं। ऊपर के सभी रूपग्राम अपने ध्वन्यात्मक वैविध्य के साथ पद के मध्य में भी प्रयुक्त हो सकते हैं, पर ये दोनों सदैव ही उच्चारान्त प्रयुक्त होते हैं। ऊपर के सभी रूपग्राम दोनों लिङ्गों के एक०-बहु० में प्रयुक्त हो सकते हैं जब कि ये दोनों क्रमशः पु० एक० तथा पु० बहु० में प्रयुक्त हो सकते हैं। /ई/ सभी दृष्टियों से इनके समान हैं, केवल यह स्त्री० एक० में प्रयुक्त होती है। साथ ही स्त्री० बहु० के रूप लेने के लिए /ँ/ से युक्त हो जाती है। /ईं/=(/ई/+/ँ/)। उच्चारान्त प्रयुक्त होने के कारण इनके ध्वन्यात्मक वैविध्य प्राप्त नहीं होते।

अर्थ की दृष्टि से /ओ/, /ए/, /ई/ भूतकालिक हैं—/ओ/=/ 'था' /ए/='थे' /ई/ 'थी' /ईं/= 'थीं'।

४.२२२.२. **व्युत्पादक प्रत्यय**—ध्वन्यात्मक रूप से इन प्रत्ययों का वैविध्य प्रायः नहीं मिलता। इनके वितरण का विवरण पिछले अध्याय में दिया जा चुका है। उनके प्रयोग की स्थितियों का पूरक वण्टन नहीं मिलता है। इनके अर्थ आदि का विवरण भी दिया जा चुका है। सन्धि-जन्य वैविध्य न होने के कारण, यहाँ उनकी चर्चा अप्रासङ्गिक होगी।

वाक्य विचार

५ वाक्य विचार

५.०. प्रस्तुत अध्याय में वाक्यों के वर्गीकरण, विश्लेषण, विस्तार लोप, अन्वय और पद-क्रम पर विचार किया गया है।

५.१. वाक्यों का वर्गीकरण—रूप विन्यास की दृष्टि से मथुरा जिले के वाक्यों को मुख्यतः दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—एक क्रिया वाले वाक्य और दूसरे एक से अधिक क्रिया वाले वाक्य।

५.१.१. एक क्रिया वाले वाक्य—इनके भी दो वर्ग किये जा सकते हैं—लुप्त क्रिया वाले वाक्य और प्रकट क्रिया वाले वाक्य।

अ—लुप्त क्रिया वाले वाक्य—आह्वान वाक्य होते हैं। इन वाक्यों में केवल उद्देश्य प्रकट रहता है। क्रिया का प्रयोग नहीं होता। इनके भी दो उप-विभाग होते हैं—मात्र संज्ञा वाले वाक्य तथा संज्ञा+सम्बोधन~सम्बोधन+संज्ञा वाक्य।

क—मात्र संज्ञावाले वाक्य—इन वाक्यों को सुर-सरणि के अनुसार दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—आरोही सुरान्त वाक्य तथा अवरोही सुर+मोड़ (T)[/→] अन्त वाले वाक्य।

१. आरोही सुरान्त वाक्य—ये आह्वान वाक्य दूरस्थ के लिए होते हैं। इसके प्रति श्रोता की प्रतिक्रिया आयौ 'आया' कथन होती है। जैसे—/छोरा↑/ 'छोरा'।

२. अन्त वाले वाक्य—इनका प्रयोग निकटस्थ के लिये होता है और श्रोता की प्रतिक्रिया उपस्थितिसूचक हाँ 'हां!' होती है। जैसे—/छोरा↓T/ =[छोरा↓ ↑] 'छोरा'।

ख—सम्बोधन+संज्ञा, संज्ञा+सम्बोधन वाक्य—आह्वान वाक्यों में /ओ/~

/हो/, /अरे/~/रे/ सम्बोधनों का प्रयोग होता है। वाक्य के आरम्भ में ओ तथा अरे का प्रयोग होता है। वाक्य के अन्त में /हो/ तथा /रे/ का प्रयोग होता है। जैसे—

/ओ छोरा/ 'ओ लड़के'! /छोरा हो/ 'लड़के हो!'

/अरे छोरा/ 'अरे लड़के!' /छोरा रे/ 'लड़के रे!'

आ—प्रकट क्रिया वाले वाक्य—इन वाक्यों के प्रकार ये हैं:—

क—अवरोही सुरान्त वाक्य—सामान्य कथन में अन्त्य सुर अवरोही होते हैं। जैसे:—

/मैं जांगो ↓/ 'मैं जाऊँगा' /बु आवैगौ ↓/ 'वह आवेगा'

ख—/↓ T/ [/→] अन्त वाले वाक्य—ऐसे वाक्यों की क्रिया के साथ दृढ़ निश्चय का भाव संलग्न होता है। जैसे—/मैं जांगो ↓ T/ = [मैं जांगो] 'मैं अवश्य जाऊँगा' /बु आमतु ऐ ↓ T/ = [बु आमतु ऐ] 'वह आता है।'

ग—आज्ञार्थक प्रत्ययों से युक्त वाक्य—इसके निम्नलिखित प्रकार हो सकते हैं:—

१. धीर सुरान्त /→/ वाक्य—इस प्रकार के वाक्य सामान्य आज्ञा का द्योतन करते हैं। जैसे /तू अपनौ कामु करि/ 'तू अपना काम कर!' /तुम गाम कूं जाऔ/ 'तुम गाँव को जाओ!'

२. अवरोही सुरान्त वाक्य—इस प्रकार के आज्ञार्थक प्रत्यय-युक्त वाक्य आशीर्वादात्मक होते हैं। जैसे—/भगमान् सबकौं भलौ करै ↓/ 'भगवान् सबका भला करे!' /तेरी बड़ी उमरि होइ ↓/ 'तेरी बड़ी उम्र हो!'

३. अवरोही+/T/ अन्त वाले वाक्य—इस प्रकार के वाक्य प्रार्थनात्मक होते हैं। जैसे—/भैया चल्यौ जा ↓ T/ [भैया चल्यो जा] 'भैया चला जा।'

घ—सन्देहार्थक अव्ययों से युक्त वाक्य—इस प्रकार के तीन अव्यय हैं—/स्याइति/ 'शायद' /चाँइँ/ तथा /कै तौ/ सामान्यतः /स्याइति/ का प्रयोग वाक्य के आरम्भ में, /चइं/ का प्रयोग वाक्य के अन्त में तथा /कै तौ/ का प्रयोग भी आरम्भ में होता है। इसके प्रकार निम्नलिखित हैं:—

१. आज्ञार्थक वाक्यों के आरम्भ में सन्देहार्थक अव्ययों के प्रयोग वाले वाक्य। इनका अन्त्य सुर /→T/ होता है [/↓] जैसे—/स्याइति बु जा इ /= [स्याइति बु जा इ] 'शायद वह जाय।' /चांइँ बु आवा T/= [च.इ बु आबै] 'शायद वह आवे।'

२. अन्य प्रकार के वाक्यों के साथ भी सन्देहार्थक अव्ययों का योग होता है। इन वाक्यों का अन्त्य सुर अवरोही रहता है। जैसे—/स्याइति बु जांतु ऐ ↓ / 'शायद वह जाता है' /कै तौ बु गयौ ↓ / 'शायद वह गया'।

ङ—प्रश्नवाचक वाक्य—प्रश्नवाचक वाक्यों की रचना दो प्रकार से की जाती है—अन्त्य सुर को आरोही करके अथवा प्रश्नवाचक अव्ययों का योग करके।

१. आरोही सुरान्त वाक्य—इसके भी तीन भेद होते हैं:—

अ—सामान्य आरोही सुरान्त—यह सामान्य प्रश्न होता है। जैसे—

/बु गयौ/ 'वह गया?' /छोरा जाइगौ/ 'छोरा जायगा?'

आ—/↑S/=आरोहण+प्लुति अन्त वाले वाक्य—इस प्रकार के प्रश्न के साथ निराशा का भाव संलग्न रहता है। जैसे /बु गयौ/ 'वह गया।' छोरा जाइगौ 'छोरा जायगा'।

इ—आरोहण+अतिरिक्त ध्वनि वर्द्धन=/→L/ अन्त वाले वाक्य—इस प्रकार के प्रश्नवाचक वाक्यों में आश्चर्य का तत्व संलग्न रहता है। जैसे—

/बु गयौ/ 'वह गया'। /छोरा जाइगौ/ 'छोरा जायगा'।

२. प्रश्नवाचक अव्यय वाले वाक्य—इन वाक्यों के तीन प्रकार हैं—अन्त में /का/ 'क्या' ग्रहण करने वाले वाक्य, प्रश्नवाचक विशेषण ग्रहण करने वाले वाक्य तथा प्रश्नवाचक क्रिया विशेषण वाले वाक्य।

अ—/का/ 'क्या' वाले वाक्य—/का/ की स्थिति वाक्यान्त में रहती है। इसका सुर अवरोही होता है। इसके पूर्व स्थित क्रिया का सुर आरोही होता है। जैसे—

/छोरा जाइगौ का ↓ / 'छोरा जायगा क्या'। /गाइ व्याइ परी का ↓ / 'गाय व्या गई क्या।'

आ—प्रश्नवाचक विशेषणों से युक्त वाक्य—/कैसौ/ 'कैसा' प्रकार वाचक,

/कितनौं/ 'कितना' (परिमाणवाचक) तथा /कितने/ 'कितने' /कै/ (संख्यावाचक) आदि विशेषण कर्ता के पूर्व स्थित रहते हैं। अन्त्य सुर अवरोही होता है। जैसे—

/कैसौ आदिमी ऐ ↓ / 'कैसा आदमी है'। /कितनौ घी लेगौ ↓ / 'कितना घी लेगा'। /कै आदिमी ऐं ↓ / 'कितने आदमी हैं'। प्रश्नवाचक सर्वनाम /को/ 'कौन' अथवा /कुन्सौ/ 'कौन सा' भी इसी रूप में प्रयुक्त होते हैं। जैसे—/को जाइगौ ↓ /~ /को आदमी जाइगौ/ ↓ 'कौ ~ कौन सा आदमी जायगा ?'

इ—**प्रश्नवाचक क्रिया विशेषणों से युक्त वाक्य**—/कब/ 'कब ?' /कहाँ/ 'कहाँ' /कैसे/ 'कैसे' /चौं/ 'क्यों ?' आदि क्रिया विशेषण क्रिया के पूर्व प्रयुक्त होते हैं। इन पर बल /E/ रहता है और अन्त्य सुर अवरोही होता है। जैसे—

/छोराEकब जाइगौ ↓ / 'छोरा कब जायगा ?' /तू E कहां जांतु ऐ ↓ / 'तू कहाँ जांतु ऐ ?' /जा कामै E कैसे करैगौ ↓ / 'इस कार्य को कैसे करेगा ?' /तूEचौं रोमतु ऐ ↓ / 'तू क्यों रोता है ?

च—निषेधार्थक अव्ययों से युक्त वाक्य—इनके दो भाग हो सकते हैं—/नं/ ~ /नंईं/ 'नहीं' वाले वाक्य तथा /ना/ वाले वाक्य।

१. **/न ~ नंईं/ वाले वाक्य**—संयोजक क्रियाओं से रहित होते हैं। जैसे—

/मैं E नं जांगो ↓ / 'मैं नहीं जाऊँगा', /छोरा E न आयौ ↓ / 'छोरा नहीं आया', अथवा /मैं E नंईं जांगो ↓ / 'छोरा नईं आयौ'।

२. /नां/ का प्रयोग संयोजक क्रिया वाले वाक्यों में होता है। सहायक क्रिया निषेधार्थक अव्यय के साथ युक्त हो जाती है। जैसे—/मैं E नांऊं जांतु ↓ / 'मैं नहीं जाता हूँ', /हम E नांएं जांत ↓ / 'हम नहीं जाते हैं' /तुम E नाऔ जांत ↓ / 'तुम नहीं जाते हो' आज्ञार्थक वाक्यों में /मति/ 'मत' का प्रयोग होता है। जैसे—

/तू E मति जाइ ↓ / 'तू मत जा'।

छ—जोर बल /E/ तथा बलवर्द्धक निपात /तौ/ वाले वाक्य। जैसे :—

१. **/E/ वाले वाक्य**—बल वाक्य के किसी भी अङ्ग पर हो सकता है।

जैसे—/E रामु कल्लि रोटी खाइगौ ↓ / 'राम (और कोई नहीं) कल रोटी खायगा' /रामु E कल्लि रोटी खाबैगौ ↓ / 'राम कल (आज नहीं) रोटी खायगा', /रामु कल्लि E रोटी खाबैगौ ↓ / 'राम कल रोटी (और कुछ नहीं) खायगा', /रामु कल्लि रोटी E खाबैगौ ↓ / 'राम कल रोटी खायगा (निश्चय)। प्रथम तीन वाक्यों में /E/ [↑] के स्थान पर केवलार्थक /ई/ 'ही' का प्रयोग हो सकता है, पर क्रिया के साथ नहीं। अतः /E/ जब क्रिया के साथ प्रयुक्त हो तब 'निश्चय' को प्रकट करता है तथा अन्यत्र केवलार्थक रहता है।

२. /तौ/ 'तो' इससे 'निश्चय' का भाव व्यक्त होता है। वाक्य में जिस पद से यह सम्बद्ध होता है वह बल /E/ से युक्त रहता है। जैसे—

/E मैं तौ कल्लि रोटी खांगो ↓ / 'मैं तो कल रोटी खाऊँगा' (चाहे और कोई नं खाए)' /मैं E कल्लि तौ रोटी खांगो ↓ / 'मैं कल तो रोटी खाऊँगा (चाहे नहीं खाऊँ)', /मैं कल्लि E रोटी तौ खांगो ↓ / 'मैं कल रोटी तो खाऊंगा (चाहे और कुछ नं खाऊं)',। /तौ/ का प्रयोग क्रिया के साथ निश्चयार्थक रूप में नहीं होता। क्रिया की पुनरावृत्ति और दोनों के बीच /-ई-/ का प्रयोग करके क्रिया का निश्चय प्रकट किया जाता है। पूर्व के किसी पद के साथ /तौ/ भी प्रयुक्त रहता है। /-ई-/ का सुर आरोही होता है। जैसे—

/E रामु तौ रोटी खाइगौ E ई खाइगौ ↓ / 'राम तो रोटी निश्चय खायगा'। /हत्-/ 'है'+/तौ/ 'तो'=/हन्तौ/ का प्रयोग भी बलवर्द्धन के लिए होता है। जैसे—

/रामु हन्तौ अच्छौ आदिमी ऐ ↓ ।।/ 'राम है तो अच्छा आदमी'।

५.१.२. एक से अधिक क्रिया वाले वाक्य—ऐसे वाक्य एक से अधिक वाक्यों के समूह होते हैं। मुख्य वाक्य तथा उसके एक या अधिक समानाधिकरण वाक्यों के संयुक्त समूह को संयुक्त वाक्य तथा एक मुख्य वाक्य तथा उसके एक या अधिक आश्रित वाक्यों के समूह को मिश्र वाक्य कहा जा सकता है।

५.१.२.१. संयुक्त वाक्य—इनके भी दो वर्ग हो सकते हैं—ऐसे वाक्य

जिनमें प्रथम वाक्य किसी विशेष पद से आरम्भ न होकर संयोजक अव्यय के द्वारा दूसरे वाक्य से सम्बद्ध रहता है। दूसरे ऐसे वाक्य जिनमें प्रथम वाक्य एक विशेष पद से आरम्भ होकर दूसरे वाक्य के साथ सम्बद्ध होता है।

क—ऐसे वाक्य जिनमें प्रथम वाक्य किसी विशेष पद से आरम्भ नहीं होता— इसके रूप इस प्रकार हैं:—

अ—/ ↑ /औरु ↓ ॥/ जैसे /बु जाइगौ ↑ / औरु आबैगौ ↓ ॥/

आ—/ ↑ /परि ↓ ॥/ जैसे /मैं चल्यौ जांतौ ↑/ परि अब नं जांगौ ↓ ॥/

इ—/ ↑ /जाते ↓ ॥/ जैसे /बु जाइबे की कहैगौ ↑/

सो　　　जाते } पैहै लैंईं चले जांइं ↑॥/
　　　　सो }

ख—ऐसे वाक्य जिनमें प्रथम वाक्य किसी विशेष पद से आरम्भ होते हैं— इसके रूप इस प्रकार हैं:—

अ—कालवाचक अव्यय से युक्त वाक्य—

/पैहैलैं } ↑ । फिरि- } ↓ ॥/ जैसे—
ϕ }　　औरुफिरि- }

/पैहै लैं बु जाइगौ ↑। फिरि } मैं जांगो ↓ ॥/ 'पहले वह जायगा
औरुफिरि }　　फिर औरुफिर मैं जाऊँगा'

/ϕछोरा रोटी खाबैगौ ↑।　फिरि मैं खांगो ↓ ॥/ 'छोरा रोटी खायगा
फिर मैं खाऊँगा'

आ—निषेधार्थक अव्यय वाले वाक्य—

नं } ↑ / नं } ↓ ॥/ जैसे
ϕ }　औरुनं }

/नं बु आबैगौ ↑ । नं जि जाइगौ ↓ ॥/ 'नं वह आवेगा नं यह जायगा'।

/बाबा आबै ↑ । नं } घंटा बाजै ↓ ॥/ (नं) बाबा आवे न घंटा बजे'।
औरुनं }

इ—विभाजक अव्यय वाले वाक्य—इसके रूप इस प्रकार हैं:—

१. /कै तौ ↑ । कै । / औरुकै } ↓ ॥/ जैसे:—

/कै तौ मैं जांगो ↑ । कै बु जाइगो ↓ ॥/ 'या तो मैं जाऊँगा या वह जायगा'

/मैं ई खांगो ↑ । कै / और कै } बुही खाबैगौ ↓ ॥/ 'मैं ही खाऊँगा या वही खावेगा'

२. /चां इं / चांइतौ } ↑ । चांइं ↓ ॥/ इस रूप का प्रयोग केवल आज्ञावाचक वाक्यों के साथ है।

/चांइं तू जा ↑ । चांइं बु जाइ ↓ ॥/ 'चाहे तू जा चाहे बु जाइ'।

/चांइं तू करि ↑ । चांइं व्वापै कर बाइ ↓ ॥/ 'चाहे तू कर चाहे उससे करवा'

५.१.२.२. मिश्र वाक्य—इसके भी तो भाग हो सकते हैं: ऐसे वाक्य जिनमें मुख्य वाक्य किसी विशेष पद से आरम्भ न हो तथा ऐसे वाक्य जिनमें मुख्य वाक्य एक विशेष पद से आरम्भ हो। आश्रित वाक्यों का वर्गीकरण इस प्रकार है:—

अ—संज्ञा वाक्य—वे आश्रित वाक्य हैं जो किसी संज्ञा की स्थिति में प्रयुक्त हो सकें। इनके रूप इस प्रकार हैं:—

क—ऐसे वाक्य जिनमें मुख्य वाक्य किसी विशेष पद से आरंभ नहीं होता—

/——↑ । कै ↓ ॥/ /कै/ से आरम्भ होने वाला संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त होता है और मुख्य वाक्य की क्रिया अथवा किसी कृदन्त के कर्म के स्थान पर होता है। जैसे:—

/मैं जान्तूं ↑। कै तू मैरौ सग्यौ नं होगौ ↓ ॥/ 'मैं जानता हूँ कि तू मेरा सगा नहीं होगा'।

ख—अन्य वाक्य जिनमें मुख्य पद किसी विशेष पद से आरम्भ होता है—

१. आरम्भ में ।जि। सर्वनाम (एक० तृ० पु० समीपतासूचक) ग्रहण करने वाले वाक्य। दूसरा वाक्य इसी /जि/ का समानाधिकरण होता है। इसकी रूप-रचना इस प्रकार होती है:—

२. /जि/ का तिर्यक् रूप /जा-/+का० चि० /ते-/ से आरम्भ होने वाले मुख्य वाक्य के साथ /-कै/ से आरम्भ होने वाला आश्रित वाक्य जुड़ कर वाक्य को परिणाम-सूचक बना देता है। रूप-रचना यह है:—

/जाते । कै ↓ ॥/ जैसे—

/मैं तोइ जाते भेत्तूं। कै सबै समझाइ आवै ↓ ॥/ 'मैं तुझे इसलिए भेजता हूँ कि सबको समझा आवे'।

आ—विशेषण वाक्य—वे आश्रित वाक्य हैं जो मुख्य वाक्य के किसी पद के विशेषण के स्थानापन्न हो सकते हैं। सम्बन्धवाचक सर्वनाम से आरम्भ होकर विशेषण वाक्य में पहले और उसी के नित्य सम्बन्धी से आरम्भ होकर मुख्य वाक्य पीछे प्रयुक्त होते हैं। रूप इस प्रकार हैं—

क—/जो } । सो~बु } ↓ ॥/ जैसे—
जानैं- } व्वानैं- }

/जो गयो। सो आइगौ ↓ ॥/ 'जो गयो सो आइगौ'।

/जानैं चोरी करी। बु पकर्‌यौ गौ ↓ ॥/ 'जिसने चोरी की वह पकड़ा गया'।

/हल्ला मचाबै गौ। बु पिटैगौ ↓ ॥/ 'हल्ला मचावेगा वह पिटेगा'।

/जो मेरी सरम्मैं सामिल ऐ। जरूल आवैगौ ↓ ॥/ 'जो मेरी शरम में शामिल है, ज़रूर आवेगा'।

ख—/जैसौ। वैसौ } ↓ ॥/ जैसे—
तैसौ }

/जैसौ चाहै। बैसौ } करि ↓ ॥/ 'जैसा चाहे वैसा कर'।
तैसौ

ग—/ऐ सौ । जो ↓ ॥/ जैसे—

/ऐसौ कोऐ। जो साधून्ने सतावै ↓ ॥/ 'ऐसा कौन है जो साधुओं को सतावे'।

घ—/कैसौ। } कै } ↓ ॥/ जैसे —
ऐसौ मन्तौ
कै मन्तौ

/कैसौ अच्छौ सरूपु ऐ। कै तीन्यों लोकन में न मिलै ↓ ॥/ 'कैसा अच्छा' स्वरूप है कि तीनों लोकों में न मिले'।

/ऐसौ कमजोरु ऐ। मन्तौ बीमार ऐ ↓ ॥/ 'ऐसा कमज़ोर है मानो बीमार है'।

ङ—/जितनौं। उतनौ } ↓ ॥/ जैसे —
बितनौ

/जितनौं तू बोल्तु ऐ। उतनौ कोई नांइं बोल्तु ↓ ॥/ 'जितना तू बोलता है, उतना कोई नहीं बोलता'।

च—/जितने। बे } ↓ ॥/ जैसे —
बे सबु
उनैं

/जितने गुन हौंत ऐं। बेजा छोरा में मौजूद ऐं ↓ ॥/ 'जितने गुण होते हैं वे इस लड़के में मौजूद हैं'।

/जितने अच्छे आदिमीं हौंइ। उनैं बुलाइला ↓ ॥/ 'जितने अच्छे आदमी हों उन्हें बुला ला।"

छ—/बु । जहाँ ↓ ।।/ जैसे —
व्वा जब

/बु नंगरु धन्यैं। जहाँ तू पैदा भयौ ↓ ।।/ 'उस नगर को धन्य है जहाँ तू पैदा हुआ।'

/व्वा ठौर के अहो भागि ऐं। जहाँ जग्गि होइ ↓ ।।/ 'उस स्थान के अहो भाग्य हैं जहाँ यज्ञ हो।'

/बु घड़ी कुंसी होगी। जब तैरौ व्याहु होगौ ↓ ।।/ 'वह घड़ी कौन-सी होगी जब तेरा विवाह होगा'।

/जैसें । सो- ↓ ।।/ जैसे —
बु-
बैसे-

/जैसे तोइ सन्तोसु होइ। सो करि ↓ ।।/ 'जैसे तुझे सन्तोष हो सो कर।

इ—क्रिया विशेषण वाक्य—वे वाक्य हैं जो विधेय के विस्तारक हों। इनके ये रूप प्राप्त होते हैं :—

क—कालवाचक वाक्य—

१. /जब । तब ↓ ।।/ जैसे—

/जब बु बुलाबैगौ। तब जांगो ↓ ।।/ 'जब वह बुलावेगा तब जाऊँगा'।

/जब/ के स्थान पर /जब-+-ते/=/जब-+-तक/=/जब तक/, इसी प्रकार /तब-/ के स्थान पर /तबते/ तथा /तब तक/ का भी प्रयोग हो सकता है। जैसे —

/जब ते गयौ ऐ। तब ते आयौ नां ऐं ↓ ।।/ 'जब से गया है तब से आया नहीं है'।

/जब तक बु नं आवैगौ। तब तक मैं नं जांगो ↓ ।।/ 'जब तक वह नहीं आवेगा तब तक मैं नहीं जाऊँगा'।

/तब ते/ तथा /तबतक/ के स्थान पर /जब ते/ तथा /जब तक/ का भी प्रयोग होता है।

/जब/ के स्थान पर मिश्र क्रि० वि० का भी प्रयोग हो सकता है। जैसे—

/जा बखत जा खन जा समै जा टैमि	'जिस वक्त' 'जिस क्षण' 'जिस समय' 'जिस टाइम'	।	तब ताबखत ताखन ता समै ता टैमि	'तब' ↓ ॥/ जैसे— 'उस वक्त' 'उस क्षण' 'उस समय' 'उस टाइम'

/जा बखत बु आयौ काओ। ता बखत बड़ौ मेहु परौ ओ ↓ ॥/ 'जिस समय वह आया था उस समय बड़ा मेह पड़ रहा था'।

२. / -ई- । सोई- ↓ ॥/
कै-
झट्ट-
गद्द-
इतने में-

यह रूप पूर्ण भूतकालिक क्रिया वाले वाक्यों के साथ रह सकता है। संयोजक-क्रिया /ओ ए ई ईं/ से पूर्व केवलार्थक /ई-/ का प्रयोग आरोही स्वर के साथ करके त्वरित घटना क्रम का बोध किया जाता है। जैसे—

/मैं भ्वां बैठ्यौई ओ । सोई बुआइगौ ↓ ॥/

३. त्वरित क्रम को व्यक्त करने के लिए निम्नलिखित रूप भी प्रयुक्त होता है—

/कैतौ । सोई- झट्ट गद्द इतने में ↓ ॥ जैसे—

कै तौ व्वा नैं अबाद्दई । सबरौ ग्राम चल्यौ आयौ ↓ ॥/ 'जैसे ही उसने आवाज़ दी, सारा गाँव चला आया'।

/कै तौ बुआयौ । सोई सबु चुप्पु है गए ↓ ॥/ 'जैसे ही वह आया, सब चुप हो गये'।

४. त्वरित क्रम को व्यक्त करने वाले वाक्य इस प्रकार के भी हो सकते हैं—

/जैसैं ईं ↑ । वैसैं ईं ↓ ।।/ जैसे —
सोहें

/जैसैं ईं बु घर में घुस्यौ ↑ । ब्वा पै आदिमी राईं परे ↓ ।।/ 'जैसे ही वह घर में घुसा, उस पर आदमी अर्राइ पड़ें'।

/जैसैं ईं मैं ब्वाके सामुईं आमतूं ↑ । सोई वैसैंईं बु चुप्पु है जांतु ऐ ↓ ।।/ 'जैसे ही मैं उसके सामने आता हूँ वैसे ही वह चुप हो जाता है'।

ख—स्थान वाचक क्रि० वि० वाक्य—इनके रूप इस प्रकार हैं :—

१. जहाँ / जहाँ ते / जहाँ तक ↑ । ब्वाँ ~ जहाँ / ब्वाँते ~ तहाँते / ब्वाँ तक ~ तहाँ तक ↓ ।।/ जैसे—

/जहाँ बु बैठ्यौ काओ ↑ । ब्वाँ एकु स्यांपु निकर्यौ ↓ ।।/ 'जहाँ वह बैठा था, वहाँ एक साँप निकला'।

/जहाँ ते तू खाबैगौ ↑ । तहाँ ते मैं खांगो ↓ ।।/ 'जहाँ से तू खायगा वहाँ से मैं खाऊँगा'।

२. /जित मैं / जितकूं ↑ । उतमैं ~ तितमैं / उतकूं ~ तितकूं ~ बितकूं ↓ ।।/ जैसे —

/जित मैं देखौ ↑ । उतमैं टींड़ी दीखैं ↓ ।।/ 'जिधर देखो उधर टिड्डी दीखें'।

/जितकूं जाइगौ ↑ । उतकूं जान्ते मिलिंगे ↓ ।।/ 'जिधर जायगा उधर परिचित मिलेंगे।'

ग—रीतिवाचक क्रि० वि० वाक्य—इन वाक्यों के निम्नलिखित प्रकार हैं :—

१. /ऐसैं ↑ । जैसैं / मन्तौ ↓ ।।/ जैसे —

/बु ऐसें डकरामतु ऐ ↑ । जैसे गाइ डकरामतु ऐ ↓ ।।/ 'वह ऐसे रोता है जैसे गाय रोती है'।

/बु मेरे अगार ऐसे चुप्पु हैं जातु ऐ । जैसैं बिल्ली के अगार मूंसौ है जांतु ऐ ↓ ।।/
'वह मेरे सामने ऐसे चुप हो जाता है जैसे बिल्ली के आगे चूहा हो जाता है'।

२. /जा तरह ↑ । जा तरह } ↓ ।।/ जैसे—
व्वा तरह }

/जा तरह बनै ↑ । व्वा तरह मेरी मदत्ति करि ↓ ।।/ 'जिस तरह बने उस तरह मेरी मदद कर'।

/जा तरह बनी ↑ । मैंन्तेरी बात मानी ↓ ।।/ 'जिस तरह बनी मैंने तेरी बात मानी'।

३. /जैसैं जैसैं } ↑ । वैसैं बैसैं } ↓ ।।/
ज्यों ज्यों } तैसैं तैसैं }
त्यों त्यों }

/जैसैं जैसैं रुप्या मिल्तु जाइगौ ↑ । तैसैं तैसैं दुंगो ↓ ।।/ 'जैसे जैसे रुपया मिलता जायगा तैसे तैसे दूंगा'।

/ज्यौं ज्यौं गोह मौंटी मई ↑ । त्यौं त्यौं बिलौ सकरौ भयौ ↓ ।।/ 'ज्यों ज्योंगोह मोटी हुई त्यों त्यों बिल सकरा हुआ'।

घ—सङ्केतार्थक क्रि० वि० वाक्य—

/जौ } ↑ । तौ } ↓ ।।/
जौ जौ } तौ तौ }

/जौ तू जांतु ऐ ↑ । तौ बु नं जाइगौ ↓ ।।/ 'यदि तू जाता है तो वह नहीं जायगा'।

/बु आयौ ↑ । तौ मैं जांगो ↓ ।।/ 'वह आया तो मैं जाऊँगा'।

ङ—कारणार्थक क्रि० वि० वाक्य—

/जाते ↑ । कै ↓ ।।/ जैसे—

/मैं तोइ जाते सावधान करौ ऊँ । के खतरा नं उठाइ जाइ ↓ ।।/ 'मैं तुझे इसलिए सावधान कर रहा हूँ कि ख़तरा न उठा जाय'।

च—विरोधार्थक क्रि० वि० वाक्य—

/हालांकि । तौऊ / फिरिऊ } ↓ ।।/ जैसे—

/हालांकि मैं न्नांही करी । तौऊ बु नं मान्यौ ↓ ।।/ 'यद्यपि मैंने मना की थी तब भी वह नहीं माना'।

/व्याके मनमैं आइबेकी ऐं । फिरिऊ नाहीं करौ ऐ ↓ ।।/ 'यद्यपि उसके मन में आने की है, फिर भी मना कर रहा है'।

५.२. वाक्य का विश्लेषण—व्यक्त या अव्यक्त रूप से प्रत्येक वाक्य में एक उद्देश्य, एक विधेय तथा एक संयोजक क्रिया होती है। इन सभी अङ्गों का विस्तार (५, ४) और लोप (५.५) दोनों सम्भव हैं।

५.२.१. उद्देश्य—संज्ञा अथवा संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त हो सकने वाला पद या वाक्यांश उद्देश्य हो सकता है।

५.२.१.१.

क—संज्ञा : /घोड़ा दौड़तु ऐ ↓ / 'घोड़ा दौड़ता है'।
/छोरा जांतु ऐ ↓ / 'छोरा जाता है'।

ख—सर्वनाम । /मैं रोटी खांतूं ↓ / 'मैं रोटी खाता हूँ'।
/तू जा ↓ / 'तू जा'।

ग—विशेषण : /भले कूं भले ई मिल्त ऐ ↓ / 'भले को भले ही मिलते हैं'।
/द्वै गए ↓ / 'दो गये'।

घ—सम्बन्धवाचक : /कल्लू कौ गयौ ↓ / 'कल्लू का (लड़का) गया'।

ङ—क्रिया विशेषण: /व्याकौ भीतर-बाहिरु ऐ कुसौ ऐ ↓ / 'उसका हृदय और शरीर एक सा है'।

च—क्रियार्थक संज्ञा: /घूम्बौ अच्छौ ऐ ↓ / 'घूमना अच्छा है'।
/तुमैं जानौं ऐ ↓ / 'तुम्हें जाना है'।

छ—वाक्यांश : /जादा खाइबौ अच्छौ नां ऐ ↓ / 'ज्यादा खाना अच्छा नहीं है'।
/कैहै कैं फिरिबौ बरौ ऐ ↓ / 'कह कर लौटना बुरा है'।
/एकु आदिमीं तक न आयौ ↓ / 'एक भी आदमी नहीं आया'।

५.२.१.२. कुछ परिस्थितियों में कर्ता गुप्त भी रहता है:—

अ—जब प्रसङ्ग से उसका अर्थ समझा जा सके—प्रश्न के उत्तर में प्रायः ऐसे प्रयोग होते हैं—

↑ ↓
/बु आइगौ का/ 'वह आ गया क्या', /हाँ आइ गौ/ 'हाँ आ गया'।

आ—जब क्रिया के रूप से वह स्पष्ट हो सके:—

↑
/बेटा जि कहा चालि निकातौ ↓ / 'बेटा यह क्या चाल (तुम) निकालते हो'।

→
/कमाइ कैं खा/ '(तू) कमाकर खा'।

५.२.१.३. कभी-कभी कर्ता कारक बिना किसी क्रिया के भी रहता है—

↑ ↑
/छोरा जो पढ़तो। सो आइगौ ↓ ॥/ 'लड़का, जो पढ़ता था, वह आ गया'।

उक्त वाक्य में /छोरा/ से सम्बन्धित कोई क्रिया नहीं है।

५.२.१.४. उद्देश्य का विस्तार—संज्ञा के विस्तार के साथ उसका विवरण दिया गया है।

५.२.२. विधेय—निम्नलिखित पद विधेय हो सकते हैं:—

अ—क्रिया : /बु **जाइगो**/ 'वह जायगा'।
/छोरा **आमंतु** ऐ/ 'छोरा आता है'।

आ—संज्ञा—अथवा सर्वनाम—

/व्वा कौ नांमु **रामुं** ऐ/ 'उसका नाम राम है' (कर्ता कारक)
/जि **राजा कौ** ऐ/ 'यह राजा का है' (सम्बन्ध कारक)
/बु **घर पै** ऐ/ 'वह घर पर है' (अधिकरण)
/कारनु जि ऐ/ 'कारण यह है' (सर्वनाम: कर्ता)
/ऐसी सामर्थ **काऊ मैं** नां ऐं/ 'ऐसी सामर्थ्य किसी में नहीं है' (सर्व० अधि०)
/जौ बेटा **मेरौ होगौ** तो—/ 'यदि मेरा बेटा होगा तो-' (सर्व० सम्बन्ध)

इ—विशेषण—

/छोरा **अच्छौ** ऐ/ 'लड़का अच्छा है'।
/राजा सिसुपाल **बड़ौ बली और प्रतापी** ऐ/ 'राजा शिशुपाल बड़ा बली और प्रतापी है'।

/मेरे पांइं द्वै ऐं/ 'मेरे पैर दो हैं' (संख्यावाचक)

ई—वाक्यांश—जो संज्ञा के रूप में प्रयुक्त हो सके—

/मैं पंडिज्जी को भेज्यौ भौ ऊँ/ 'मैं पण्डित जी का भेजा हुआ हूँ'।

५.२.२.१. विधेय लुप्त भी हो सकता है, जब कि प्रसङ्ग से उसका अर्थ समझा जा सके। जैसे—

/दोऊ **भैय्यन्नें** रामु रामुं करी **एक नें** बा़ु समझि कैं **एक नें** गुरु समझि कैं/
'दोनों भाइयों ने राम-राम की, एक ने बाप समझ कर, एक ने गुरु समझ कर'।

५.२.२.२. विधेय का विस्तार (दे० ४.४)।

५.२.३. संयोजक-क्रिया—कभी स्पष्टतः कभी क्रिया-रूप में सन्निविष्ट होकर संयोजक क्रिया उद्देश्य और विधेय को सम्बद्ध करती है। कुछ परिस्थितियों में यह लुप्त भी रहती है।

अ—**सामान्य वर्णन** में यह लुप्त रह सकता है। जैसे—

१. /एक राजा कैं द्वै बेटा ए/ 'एक राजा के दो बेटे थे'।
/एक्कौ नांमु हीरा/ 'एक का नाम हीरा (था)'।
/दूसरे कौ नांमु पन्नां/ 'दूसरे का नाम पन्ना (था)'।
२. /अब गाम कूं जाइबौ कैसौ/ 'अब गाँव का जाना कैसा (है)'।

आ—तुलनात्मक वाक्यों में—भी दूसरे वाक्य में संयोजक क्रिया लुप्त रह सकती है:—

/ऐसो मींठौ आमु ऐ, जैसौ सहतु/ 'ऐसा मीठा आम है जैसे शहद'।
/धर्ती ऐसी अच्छी लगति ऐ जैसी कोई कामिनी/ 'धरती ऐसी सुन्दर लगती है जैसी कामिनी'।

इ—कभी कभी **निषेधात्मक वाक्यों** में भी संयोजक क्रिया लुप्त रहती है:—
/जाइ काऊ बात कौ ज्ञान नहीं/ 'इसको किसी बात का ध्यान नहीं (है)'।

ई—लोकोक्तियों में भी यह लुप्त रह सकती है:—
/चोरी कौ गुर मीठौ/ 'चोरी का गुड़ मीठा (है)'।
/बिंधि गए सो मोती/ 'बिंध गये सो मोती (हैं)'।

५.२.३. विस्तार—संज्ञा, विशेषण, क्रिया और क्रिया विशेषण के विस्तार पर यहाँ विचार किया जाना अभीष्ट है। इनके स्थानापन्न पदों का विस्तार भी इन्हीं के साथ संलग्न है।

५.३.१. संज्ञा का प्रयोग—

क—संज्ञा का प्रयोग—कर्ता, कर्म और समानाधिकरण रूप में होता है। उदाहरण—

/**रामु** गयौ/ 'राम गया' (कर्ता)

/**रामु** रोटी खांतु ऐ/ 'राम रोटी खाता है' (कर्म)

/मेरौ **छोरा**, रामु गयौ/ 'मेरा लड़का राम गया' (समानाधिकरण)

ख—संज्ञा के स्थानापन्न पद सर्वनाम, विशेषण, कृदन्त, क्रियार्थक संज्ञा, क्रिया विशेषण, विस्मयादिबोधक पद संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त हो सकते हैं। जैसे :—

/**रामु** गयौ/ 'राम गया' (संज्ञा)

/**मैं** गयौ/ 'मैं गया' (सर्वनाम)

/**बड़ेकिला** गयौ/ 'बड़ा गया' (विशेषण)

/**कल्लू कौ** गयौ/ 'कल्लू का गया' (सम्बन्धवाचक)

/**रोभनौ** गयौ/ 'रोने वाला गया' (क्रियार्थक संज्ञा, विशेषण के रूप में)

/**बोलिबौ** गयौ/ 'बोलना समाप्त हुआ' (क्रियार्थक संज्ञा)

/**बन्ता** बनी/ 'बनता बनी' (व० कृदन्त)

/**आयौ भयौ** बोल्यौ/ 'आया हुआ बोला' (भू० कृदन्त)

/ब्वाब्वा भई/ 'वाह वाह हुई' (विस्मयादिबोधक)

/व्वा कौ **भीतर बाहर** एकुसौ ऐ/ 'उसके भाव और कार्य एक से हैं' (क्रिया विशेषण)

ग—संज्ञा और सर्वनाम का विस्तार नीचे दिया जाता है। विशेषण का विस्तार, क्रिया का विस्तार और क्रिया विशेषण का विस्तार आगे दिया गया है।

संज्ञावाक्यांश भी संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त हो सकते हैं—

/**आदिमी तक** नं आयौ/ 'आदमी भी नहीं आया'।

/**छोरा ऊ** नं गयौ/ 'छोरा भी नहीं गया'।

/**छौरा ई** गयौ/ 'छोरा ही गया'।

/**एकतै सौ तक** इखिट्टे भए/ 'एक से सौ तक इकट्ठे हुए'।

/**आठ वर्ष के ते लैकें सौ बर्स तक के** आए/ 'आठ वर्ष के ते लेकर सौ वर्ष तक के आये'।

संज्ञा उपवाक्य संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त हो सकता है—

१. उद्देश्य के रूप में—

/जाते मालिम पत्यैं कै **बुरी संगति कौ फलु बुरौ होंतु ऐं**'/

/पांइनं के निसानन्ते मालिम परत्यै **कै चौर छतई मैं है कै गए ऐ**/

२. कर्म के रूप में—

/व्वानैं कही **एक भैंसि दै दै**/

/भैन्सुनी कै **तू जाइ रौ ऐ**/

/राजाऐ खबन्नपरी **कै मंत्री कहा करा ऐ**/

३. पूर्ति के रूप में—

/मेरौ विचारु ऐ **कै तीरथ करि आंऊँ**/

/व्वाकी इच्छा ऐ **कै मैं बरात मैं जांऊं**/

४. समानाधिकरण के रूप में—

/चोरी कौ फलु **जि हौगौ कै तू जेलखाने जाइगौ**/

/मैं औ **बिस्वासु** ऐ कै **कै बु जरुल्लोटैं गौ**/

संज्ञा उपवाक्य बहुधा समुच्चयबोधक /कै/ से आरम्भ होता है। पर /जो/ का प्रयोग भी /कै/ के स्थान पर मिलता है। जैसे —

/उन्ते पूछौ/ ↑ जो चले जांइं तौ/ 'उनसे पूछो यदि चले जायँ तौ'।

/उन्ते कहौ/ ↑ जो रोटी खांइ तौ/ 'उनसे कहो यदि रोटी खायँ तौ'।

/जि बात ऐ/ ↑ जो बुनांइ समन्तु/ 'यह बात है जो वह नहीं समझता'।

/कै/ का लोप भी हो जाता है—

क—जब संज्ञा उपवाक्य पहले आवे—जैसे—

/परमातमा हतुऐ/ ↑ जाइ सबु जान्त ऐ/ 'परमात्मा है इसको सब जानते हैं'।

/मैं भौतु गरीबू ↑ /जितोइ नांऐं खबरि/ 'मैं बहुत ग़रीब हूँ यह तुझे नहीं खबर'।

ख—कर्म के स्थान पर आने वाले संज्ञा उपवाक्य के पूर्व—जैसे—

/मौह खबरि ऐ। ↑ तू न्जाइगौ/ 'मुझे खबर है तू नहीं जायगा'।

/व्वानैं कही। ↑ मैं दबाई नं खांगौ/ 'उसने कही मैं दबाई नहीं खाऊँगा'।

५.३.२. संज्ञा का विस्तार—

१. विशेषण अथवा विशेषण के स्थान पर प्रयुक्त हो सकने वाले पदों के द्वारा संज्ञा का विस्तार हो सकता है। जैसे—

विशेषण	—	/**अच्छौ** छोरा-/	'अच्छा लड़का'
सार्वनामिक विशेषण	—	/**जि** छोरा-/	'यह लड़का'
सम्बन्धवाचक	—	/**कल्लू कौ** छोरा-/	'कल्लू का लड़का'
संज्ञा-भूत विशेषण	—	/**गाम्बारौ** छोरा-/	'गाँव वाला लड़का'
		/**गुनमान्छौरा**/	'गुणवान् छोरा'
संख्यावाचक	—	/**एक** छोरा/	'एक लड़का'
क्रियार्थक संज्ञा	—	/**रोभनौ** छोरा/	'रोने वाला लड़का'
वर्त० कृ०	—	/**चल्तौ** छोरा/	'चलता लड़का'
भू० कृ०	—	/**मर्‌यौ** छोरा/	'मरा लड़का'

यदि एक ही प्रकार के दो विशेषण एक साथ आते हैं तो वे /औरु/ 'और' जैसे संयोजक पदों के द्वारा संयुक्त रहते हैं। जैसे—/**अच्छौ** औरु **लंबौ** छोरा/ 'अच्छा और लम्बा लड़का', /**अच्छौ** या **बुरौ** छोरा/ 'अच्छा या बुरा लड़का'।

२. एक से अधिक विशेषणों द्वारा भी संज्ञा का विस्तार हो सकता है। असमान विशेषणों का /औरु/ अथवा अन्य किसी संयोजक पद के द्वारा संयुक्त होना आवश्यक नहीं है। उक्त विशेषणों का क्रम इस प्रकार रहता है:—

/अच्छौ छोरा/
/जि अच्छौ छोरा/
/जि कल्लू कौ अच्छौ छोरा/
/जि कल्लू कौ गाम्बारौ अच्छौ छोरा/
/जि कल्लू कौ गाम्बारौ एकु अच्छौ छोरा/
/जि कल्लू कौ गाम्बारौ एकु रोमनौं छोटौ छोरा/
/जि कल्लू कौ गाम्बारौ एकु रोमनौं चल्तौ छोटौ छोरा/
/जि कल्लू कौ गाम्बारौ एकु रोमनौं चल्तौ मर्‌यौ छोटौ छोरा/

३—विशेषण वाक्यांशों द्वारा संज्ञा का विस्तार—

क—क्रि० संज्ञा (तिर्यक्) + /बारौ ~ बारे ~ बारी/ = विशेषण वाक्यांश। जैसे—/**जाइबे बारौ** छोरा/ 'जाने वाला छोरा', /**गाइबे बारी** छोरी/ 'गाने वाली छोरी', /**आइबे बारे** आदिमी/ 'आने वाले आदमी'।

ख—पू० कृ० + भू० कृ० संज्ञा (तिर्यक्) + /बारौ ~ बारे ~ बारी/ = विशेषण वाक्यांश। जैसे—/**कमाइकें खाइबे बारौ** आदिमी/ 'कमा कर खाने वाला आदमी', /**पढ़िकें आइबे बारी** छोरी/ 'पढ़ कर आने वाली छोरी'।

ग—पू० कृ०+भू० कृ०+भू० कृ०=विशेषण वाक्यांश। जैसे—/**कामु करिकैं थक्यौ भयौ** आदिमी/ 'काम करके थका हुआ आदमी'।

घ—भू० कृ०+ भू० कृ०=विशेषण वाक्यांश। जैसे :—

/**मर्‌यौ भयौ** बन्दरु/ 'मरा हुआ बन्दर'।

ङ—वर्त० कृ०+भू० कृ०=विशेषण वाक्यांश। जैसे—/**चल्तु भयौ** छोरा/ 'चलता हुआ लड़का', /**गामति भई** छोरी/ 'गाती हुई लड़की'।

४. **समानाधिकरण पदों द्वारा संज्ञा का विस्तार**—/**छोरा**। रामु गयौ/ 'छोरा, रामु गयौ', /**सामनु**/ महीनां आयौ/ 'सावन महीना आया' /सबरे गाम्वासी/ **कहा मर्द कहा ल्यरि** जुरि आए/ 'सब गाँव-बासी क्या मरद क्या स्त्री जुड़ आये', /मोइ **द्वै जोड़ी** कपड़ा मिले/ 'मुझे दो जोड़ी कपड़े मिले'।

५. **विशेषण उपवाक्यों द्वारा भी संज्ञा का विस्तार हो सकता है**—

५.३.३. विशेषण का विस्तार—

१. **अन्य विशेषणों द्वारा विशेषण का विस्तार होता है**। इस दशा में वे अव्यय होते हैं। जैसे—/अच्छौ/ 'अच्छा' से /**भौतु** अच्छौ-/ 'बहुत अच्छा', /**ऐसौ** अच्छौ-/ 'ऐसा अच्छा', /**कैसौ** अच्छौ/ 'कैसा अच्छा।' /**कितनौं** अच्छौ/ 'कितना अच्छा !', /**इतनौं** अच्छौ/ 'इतना अच्छा'। दो विशेषणों द्वारा भी विशेषण का विस्तार हो सकता है। जैसे—/**भौतु कछू अच्छौ**/ 'बहुत कुछ अच्छा', /**भौतु कछू जादा अच्छौ**/ 'बहुत कुछ ज्यादा अच्छा'।

२. **बलवर्द्धक निपातों द्वारा विशेषण का विस्तार**—इन निपातों का प्रयोग विशेषण के पश्चात् होता है। जैसे—/अच्छौ **सौ**/ 'अच्छा सा', /अच्छौ **ऊ**/ 'अच्छा भी', /अच्छौ **ई**/ 'अच्छा ही'।

३. **क्रि० सं० (तिर्यक्)—अधिकरण /मैं/ 'में'**=विशेषण विस्तारक अव्यय वाक्यांश इससे भी विशेषण का विस्तार हो सकता है। जैसे—/खाइबे मैं अच्छौ/ 'खाने में अच्छा', /**चलिबे** में ठस्स/ 'चलने में सुस्त' /**देखिबे में** बुरौ/ 'देखने में बुरा'।

क्रि० सं० के स्थान पर व० कृ० भी प्रयुक्त हो सकता है। जैसे—/**देखत मैं** भयानकु/ 'देखने में भयानक' पर ऐसे प्रयोग विरल हैं।

४. क्रि० सं० (तिर्यक्)+सम्प्र० /कूं/ 'को'~/के काजैं/ 'के लिए'=**क्रि० वि०** वाक्यांश। इससे भी विशेषण का विस्तार हो सकता है। जैसे—/खाइबे कूं पैनौं/ 'खाने को तेज़', /खाइबे के काजैं पैनौं/ 'खाने के लिये तेज़', /कामु करिबे क बेकार/ 'काम करने के लिए बेकार'।

५.३.४. क्रिया का विस्तार—क्रिया विशेषण पद अथवा वाक्यांशों द्वारा क्रिया का विस्तार होता है।

१. क्रिया विशेषणों द्वारा क्रिया का विस्तार—क्रिया विशेषण सामान्यत: क्रिया के पूर्व प्रयुक्त होकर क्रिया का विस्तार करते हैं। जैसे—/अब ~ कब ~ जब/ जाइगौ 'अब, कब, जब जायगा', /जहाँ ~ कहाँ ~ कित में जाइगौ/ 'जहाँ, कहाँ, किधर जायगा' आदि।

२—क्रिया विशेषण वाक्यांशों द्वारा क्रिया की वृद्धि—

क—/क्रि० वि० + निपात = क्रि० वि० वाक्यांश/ जैसे :—

/अब + ई गयौ/ 'अभी गया', /अब + तक/ गयौ 'अब तक गया',

/अब + ऊ गयौ/ 'अब भी गया' /अब + तौ/ गयौ 'अब तो गया',

/अब + ऊ + तो गयौ/ 'अब भी तो गया'। इसी रूप के साथ निषेधात्मक पद भी युक्त हो सकता है। जैसे—

/अब + ऊ + नं गयौ/ 'अब भी नहीं गया' प्रश्नवाचक अव्यय भी इस रूप के साथ आते हैं। /अब + ई चौं + गयौ/ 'अभी क्यों गया', /अब + ई चौं + नं + गयौ/ अभी क्यों नहीं गया', /अब + ई + तक चौं + नं + गयौ/ 'अभी तक क्यों नहीं गया'।

ख—सं० (तिर्यक्) + { सम्प्रदान /कूं/ 'को' = क्रि० वि० वाक्यांश। इससे भी
अधिकरण /मैं/ 'मैं' /पै/ 'पर'
करण /ते/ 'से' }

क्रिया का विस्तार होता है। जैसे—/घर + कूं गयौ/ 'घर को गया', /कोठे + मैं घुस्यौ/ 'प्रकोष्ठ में घुसा', /छत्ति + पै + बढ्यौ/ 'छत पर चढ़ा'। इनमें से /कूं/ 'को' के स्थान पर /ϕ/ का प्रयोग भी हो सकता है। जैसे—/घर गयौ/ 'घर को गया'।

इनके साथ बलवर्द्धक निपात भी संयुक्त हो सकते हैं। जैसे :—

/घर कूं + ई ~ ऊ गयौ। 'घर को ही ~ भी गया'

/खेत मैं + ई ~ ऊ जर्‌यौ। 'खेत मैं + ही ~ भी जला'

ग—पू० कृ० + कें 'कर' + निपात { ऊ / ई } = क्रि० वि० वाक्यांश। जैसे—

/आइ कें गयो/ आकर गया' /खाइ कैं आयौ/ 'खा कर आया' /गाइ कैं मान्यौ/ 'गाकर ही माना /सौ कैं ऊँ—सुस्ती नं गई/ 'सोकर भी सुस्ती नहीं गई।

घ—पू० कृ० + क्रि० वि० निपात { ऊ / ई } = क्रि० वि० वाक्यांश। जैसे—

/बु आइकैं झट्ट गयौ/ 'वह आकर झट गया'. /बु सोइ कैं झट्ट जगि परयौ/ 'वह सो करके झट ही जग पड़ा', /जाइ कैं लौटि -आयौ/ जाकर लौट भी आया'।

ङ—व० कृ० /ई/ 'ही' व० कृ० (तिर्यक्) क्रि० वि० वाक्यांश। जैसे—
/बु आमत-ई-आमत बोल्यौ/ वह आते ही आते बोला'
/व्वानैं वु जांत् जांत मर्‌यौ/ 'उसने वह जाते जाते मारा'
च—८ क्रि० वि० की द्विरुक्ति—क्रि० वि० वाक्यांश। जैसेः—
/धीरैं धीरैं चल्यौ/ 'धीरे धीरे चला'
/बु जोर् जोर्तें बोल्यौ/ 'बु जोर जोर से बोला'

५. ४. **लोप**— सामान्यत: जिन वाक्यांशों का जो लोप होता है, विवरण साथ-साथ दिया जाता रहा है (३२.१.२)' (३.२.२.१), (३.२.३) पर प्रश्नों के उत्तर में प्रश्न से सम्बन्धित पद के अतिरिक्त सभी अंश लुप्त हो सकते हैं।

१. केवल कर्ता अवशिष्ट—

प्रश्न	**उत्तर**
/को गयौ/ 'कौन गया ?	/छोरा/ 'छोरा (गया)'

२. केवल कर्म अवशिष्ट—

प्रश्न	**उत्तर**
/तैनैं कहा कर्‌यो/ 'तू ने क्या किया था?'	/कामु/ (मैंने) कामु (कर्‌यो)'

३. केवल विशेषण अवशिष्ट—

प्रश्न	**उत्तर**
/कैसौ छोरा ऐ/ 'कैसा लड़का गे ?'	/अच्छौ/ 'अच्छा (लड़का है)।।
/कुंसी छोरा गयो/ 'कौन सा छोरा गयाथा?'	/गाम्बारौ/ 'गाँव वाला (लड़का गया)'।
/कै आदिमी ऐं/ 'कितने आदमी हैं ?'।	/चरि/ 'चारि (आदमी हैं)'।

४. केवल किया अवशिष्ट—

क–आज्ञावाचक वाक्य—/जा/ '(छोरा) आ'। /मरि/ 'छोरा (जाइ मारि')।
ख–आह्वान वाक्य का प्रतिक्रिया वाक्य—आहवान—/छोरा/ 'छोरा।'
उत्तर—/आयौ/ '(मैं) आया'। आज्ञा—/जा/ 'जा'।
उत्तर—जांतूं '(मैं) जाता हूँ।चे

५. केवल क्रियाविशेषण अवशिष्ट

क—जब क्रियाविशेषण के सम्बन्ध में प्रश्न होता है तो उत्तर में मात्र क्रियाविशेषण कहा जा सकता है। जैसे—

प्रश्न—/तू कब जाइगौ/ 'तू कब जायगा ?' उत्तर—/कल्लि/ 'कल', /अबई/ 'अभी' प्रश्न—/बु कहाँ रंहतु ऐ/' वह कहां रहता है ?' उत्तर—/म्वां/ 'वह (रहता है)'। प्रश्न—/तू जाइगौ का/' तू जायगा क्या ?' उत्तर—/आंहां/ॉं 'हाँ' (जाऊँगा), /नं अ/ 'नहीं (जाऊँगा)'।

६. **विशेषण और संज्ञा दोनों अवशिष्ट**—प्रश्न /को जाइगौ/ 'कौन जायगा', उत्तर /छोटौ छोरा/ 'छोटा लड़का'।

७. **क्रिया और क्रियाविशेषण दोनों अवशिष्ट**—प्रश्न /कैसैं जाइगौ/ 'कैसे जायगा ?' उत्तर /धीरैं धीरैं जांगो/ 'धीरे धीरे जाऊँगा'।

३.५. अन्वय—

५.५.१. क्रिया के लिङ्ग और वचन कर्ता के लिङ्ग वचन के अनुसार होते हैं। जैसे :—

/चीतौ गयौ/ 'चीता गया' (प्र० एक०)
/चीते गए/ 'चीते गये' (प्र० बहु०)
/छोरा गयौ/ 'छोरा गया' (प्र० एक०)
/छोरी गई/ 'छोरी गई' (स्त्री० एक०)
/छोरी गईं/ 'छोरी गईं' (स्त्री० बहु०)

५.५.२. (क) जब कर्ता एक से अधिक होते हैं तो निकटतम कर्ता के लिङ्ग और वचन के अनुसार क्रिया के लिङ्ग और वचन होते हैं। जैसे—/मर्द औरु बय्यरि जांति ऐं/ 'पुरुष और स्त्रियाँ जाती हैं'।

(ख) दूसरी सम्भावना यह भी हो सकती है कि क्रिया बहुवचन में हो और लिङ्ग निकटतम कर्ता के समान अथवा पुल्लिङ्ग में हो। जैसे :—

/हवा औरु पानी म्वां बिकत ऐं/ 'हवा और पानी वहाँ बिकते हैं'।
/छोरा औरु छोरी आमन्त ऐं/ 'लड़का और लड़की आते हैं'।
/छोरा औरु छोरी आमन्ति ऐं/ 'लड़का और लड़की आती हैं'।

(ग) साधारणतः सभी कर्ताओं को एकत्र करके उनके पश्चात् संख्यावाचक अथवा ।सबु। जोड़ दिया जाता है। जैसे :—

/रामु औरु सीता दोऊ गए/ 'राम और सीता दोनों गये'।
/छोरा औरु छोरी सबु गए/ 'लड़का और लड़की सब गये'।
/मर्द औरु बय्यरि सबु देवी की पूजा कूं गए-/ 'पुरुष और स्त्री सब देवी की पूजा के लिए गये'।

(घ) जब दूसरा कर्ता प्रथम के विधेय के रूप में होता है तो क्रिया प्रथम के लिङ्ग और वचन के अनुसार होती है। जैसे—

/बय्यरि आदिमी के गिरिबे कौ कारनुं होति ऐ/ 'स्त्री पुरुष के गिरने का कारण होती हैं'।

/गांमुं छाछि है गौ/ 'गाँव छूंछ हो गया'।

५.५.३. जब कर्ता में दो या अधिक शब्द भिन्न पुरुषों के होते हैं, तो सामान्यतः क्रिया के लिङ्ग वचन प्रथम पुरुष कर्ता के समान होते हैं। जैसे—

/हम औरु तुम म्वां चलिगै/ 'हम और तुम वहाँ चलेंगे'।

/तुम औरु बु म्वां जां तौ/ 'तुम और वह वहाँ जाते हो'।

अथवा क्रिया पुल्लिङ्ग बहुवचन में हो जाती है। जैसे—

/मैं औरु तुम चलिगै/ 'मैं और तुम चलेंगे'।

/तू औरु बु जाऔगै/ 'तू और वह जाओगे'।

५.५.४. कर्तृकारक (Agentive) सकर्मक क्रियाओं के पू० कृ० के साथ प्रयुक्त होता है। /राम नैं रोटी खाई/ 'राम ने रोटी खाई'। इसका कारक चिह्न नैं है।

क—इस प्रकार के वाक्यों में कर्म परसर्ग सहित और रहित दोनों प्रकार से प्रयुक्त होता है। यदि कर्म परसर्ग रहित है तो क्रिया के लिङ्ग-वचन कर्म के अनुसार होंगे। जैसे—

/छोरी नैं अपनौं घरु छोड्यौ/ 'छोरी ने अपना घर छोड़ा'।

/सिपाहीन्न लड़ाई छेड़ी/ 'सिपाहियों ने लड़ाई छेड़ी'।

/अर्जुन्नै भौतु बान्चलाए/ 'अर्जुन ने बहुत बाण चलाये'।

यदि कर्म सप्रत्यय होता है तो क्रिया सदैव ही पुल्लिङ्ग एकवचन में होगी। जैसे—

/व्वानैं घर मैं घुसि बै बारेन कूं रोक्यौ/ 'उसने घर में घुसनेवालों को रोका'।

/मैया नैं छोरा कूं खूप्पीट्यौ/ 'माता ने लड़के को खूब पीटा'।

ख—यदि अप्रत्यय कर्म वाली वाक्यरचना में कर्म दो होते हैं तो क्रिया निकटतम कर्म के अनुसार लिङ्ग-वचन धारण करती है। जैसे:—

/व्वानैं लड्डू औरु पूरी खांईं/ 'उसने लड्डू और पूड़ी खांइ'।

/भूकेन्नैं रोटी औरु चामर खाए/ 'भूखों ने रोटी और चावल खाए'।

सभी कर्मों का /सबु/ में अन्तर्भाव भी हो जाता है। जैसे:—

/व्वानैं लड्डू, पूरी, चामर सबु खाए/ 'उसने लड्डू, पूड़ी, चावल सब खाए'।

ग—सप्रत्यय कर्म वाली वाक्यरचना में भी /सबन/ मैं सभी कर्मों का अन्तर्भाव किया जा सकता है। जैसे—

/व्वानैं अपने छोरा छोरी बय्यरि सबन कूं देख्यौ/ 'उसने अपने लड़कों, लड़कियों, स्त्री सब को देखा'।

घ—यदि द्वितीय कर्म प्रथम के विधेय के रूप में हो, तो क्रिया की रचना प्रथम के अनुसार होती है। जैसे—

/महाराज नैं दिल्ली कूं अपनी राजधानी बनायौ/ 'महाराज ने दिल्ली को अपनी राजधानी बनाया'।

ङ—सप्रत्यय कर्म कारक का विशेषण पुल्लिङ्ग एकवचन में होता है, चाहे कर्म किसी लिङ्ग-वचन का हो। जैसे :—

/मैंनैं बिन आदिमींन कूं अच्छौ समझ्यौ/ 'मैंने उन आदमियों को अच्छा समझा'

/तैंनैं जिन बातन कूं अच्छौ न समझ्यौ/ 'तूने इन बातों को अच्छा न समझा'

च—/अप्रत्यय कर्म के लिङ्ग वचन के अनुसार विधेयात्मक (Predicative) विशेषण के भी लिङ्ग वचन होते हैं। यदि दो या अधिक कर्म हों तो निकटतम कर्म के अनुसार विशेषण की रूप रचना होती है। जैसे—

/व्वानै अच्छे घोड़ा व्वा के सामुंई ठाड़े कर्दीये/ 'उसने अच्छे घोड़े उसके सामने खड़े कर दीये'।

/व्वानैं अपनां कामुं अधूरौ समझ्यौ/ 'उसने अपना काम अधूरा समझा'।

/मैंनैं अपनी घोड़ी अच्छी नं समझी/ 'मैंने अपनी घोड़ी अच्छी नहीं समझी'।

५.५.५. जब दो या अधिक संज्ञाएँ एक ही कारक से सम्बन्ध रखती हैं तो कारक-चिह्न अन्तिम कर्म से सम्बद्ध रहता है। जैसे—

/बु अपने छोरा औरु छोरीन्नैं लैकैं गांमंकूं चल्यौगौ/ 'वह अपने लड़के और छोरी को लेकर गाँव को चला गया'।

/बाप और बेटानैं रोटी खाई/ 'बाप और बेटा ने रोटी खाई'।

ऐसे स्थलों पर /सबु/, /दोऊ/, /तीन्यौं/ आदि में संज्ञाओं का अन्तर्भाव हो सकता है और इन्हीं शब्दों के साथ कारक-चिह्न संलग्न होता है। जैसे—

/बु अपने छोरा औरु छोरी दोअन्नैं लैकैं गांमं कूं गयौ/ 'वह अपने छोरा और छोरी दोनों को लेकर गाँव को गया'।

/मर्द और बय्यरि सबनैं रोटी खाई/ 'पुरुष और स्त्री सबने रोटी खाई'

/जितने लोग म्वाँ ए, सबनैं देखी/ 'जितने लोग वहाँ थे सबने देखी'।

कभी-कभी दोनों कर्मों के साथ भी कारक चिह्न प्रयुक्त हो सकते हैं। जैसे—

/राम नैं औरु सीता नैं रोटी खाई/ 'राम ने और सीता ने रोटी खाई'

/व्वानैं दुल्हा की ओर दुल्हैनि की दावति करी/ 'उसने दूल्हा की और दुल्हिन की दावत की'।

५.५.६. विशेषण का लिङ्ग वचन विशेषण के अनुसार होता है। स्त्रीलिङ्ग में वचन भेद नहीं होता। जैसे—

/अच्छौ छोरा/, /अच्छी छोरी/, /अच्छे छोरा/

५.६. **पद-क्रम**—वाक्य में पदों की स्थिति का निश्चित विवरण नहीं दिया जा सकता। बल वृद्धि, प्रश्नवाचक, निषेधात्मक आदि रूपों में पद-क्रम बदलता रहता है। सामान्यतः पद-क्रम के सम्बन्ध में कुछ नियम निर्धारित किये जा सकते हैं—

५.६.१. सामान्यतः पद-क्रम इस प्रकार रहता है—कर्ता→कर्म→क्रिया। जैसे —/बु कामु कर्तु ऐ/ 'वह काम करता है' /कन्हैयां पहलमांनु ऐ/ 'कन्हैया पहलवान है'।

५.६.२. उद्देश्यात्मक विशेषण से पूर्व और विधेयात्मक विशेषण उसके पश्चात् स्थित रहता है। जैसे—/विद्वानु आदिमीं सबुजगैं आदरु पामुंतु ऐ/ 'विद्वान् आदमी सब जगह आदर पाता है', /दयालू आदिमीं अच्छौ हौंतु ऐ/ 'दयालु मनुष्य अच्छा होता है'।

५.६.३. क्रिया विशेषण भी सामान्यतः विशेष्य पदों के पूर्व ही प्रयुक्त होते हैं। जैसे—/बुकल्लि गयौ/ 'वह कल गया'।

५.६.४. सम्प्रदान कारक सामान्यतः कर्ता और कर्म के बीच में स्थित रहता है। जैसे—/मैंनें व्वाकूं किताब दई/ 'मैंने उसको किताब दी।
/व्वानें मोइ रुप्या दीयौ/ 'उसने मुझे रुपया दिया'।

५.६.५. करण कारक, कर्म कारक से पूर्व प्रयुक्त होता है। जैसे—
/पण्डित नें छड़ी से छोरा पीट्यो/ 'पण्डित ने छड़ी से लड़का पीटा'।
/मैंने पक्की ईंटन्ते अपने धर कूं बनायौ/ 'मेंने पक्की ईंटों से अपने धर को बनाया'

५.६.६. अपादान कारक की स्थिति कर्ता और क्रिया के मध्य में कहीं अपने महत्व के अनुसार होती है। जैसे—/रिस हैकैं बुम्वां ते हटिगौ/ 'रिस होकर वह वहाँ से हट गया', /बु बजार ते तरकारी लायौ/ 'बु बाज़ार से तरकारी लाया'।

बहुधा अपादान कारक अकर्मक क्रियाओं के पूर्व, अथवा सकर्मक क्रियाओं के कर्म के पूर्व प्रयुक्त होता है।

५.६.७. अधिकरण कारक सामान्यतः वाक्य के आरम्भ में स्थित रहता है। जैसे—/घर में स्यांपु घुसि गौ/ 'घर में स प घुस गया', /मेज पै काग दूधरे ऐं/ 'मेज़ पर कागज़ रखे हैं'।

५.६.८. सम्बोधन कारक भी वाक्य के आरम्भ में प्रयुक्त होता है—/हे परमातमा मेरी मट्टी ऐ समैंटिलै/ 'हे परमात्मा मेरे जीवन को समाप्त कर दे', /धन्नि ऐ बु मा जान ऐसौ बेटा जन्यौ/ 'उस मा को धन्य है जिसनें ऐसा बेटा उत्पन्न किया'।

५.६.९. संयोजक क्रिया सामान्यतः वाक्य के अन्त में रहती है। जैसे— /जि छोरा ऐ/ 'यह छोरा है'।

बोली भूगोल

ज़िला गुरगाँव
(पंजाब)
मथुरा
वृन्दावन
गोवर्धन
कोसी कलाँ
शेरगढ़
छाता
बरसाना
नन्दगाँव
राधाकुंड
भरतपुर
(राजस्थान)
ब्रह्मदत्त वर्मा, आगरा।

६ बोली भूगोल
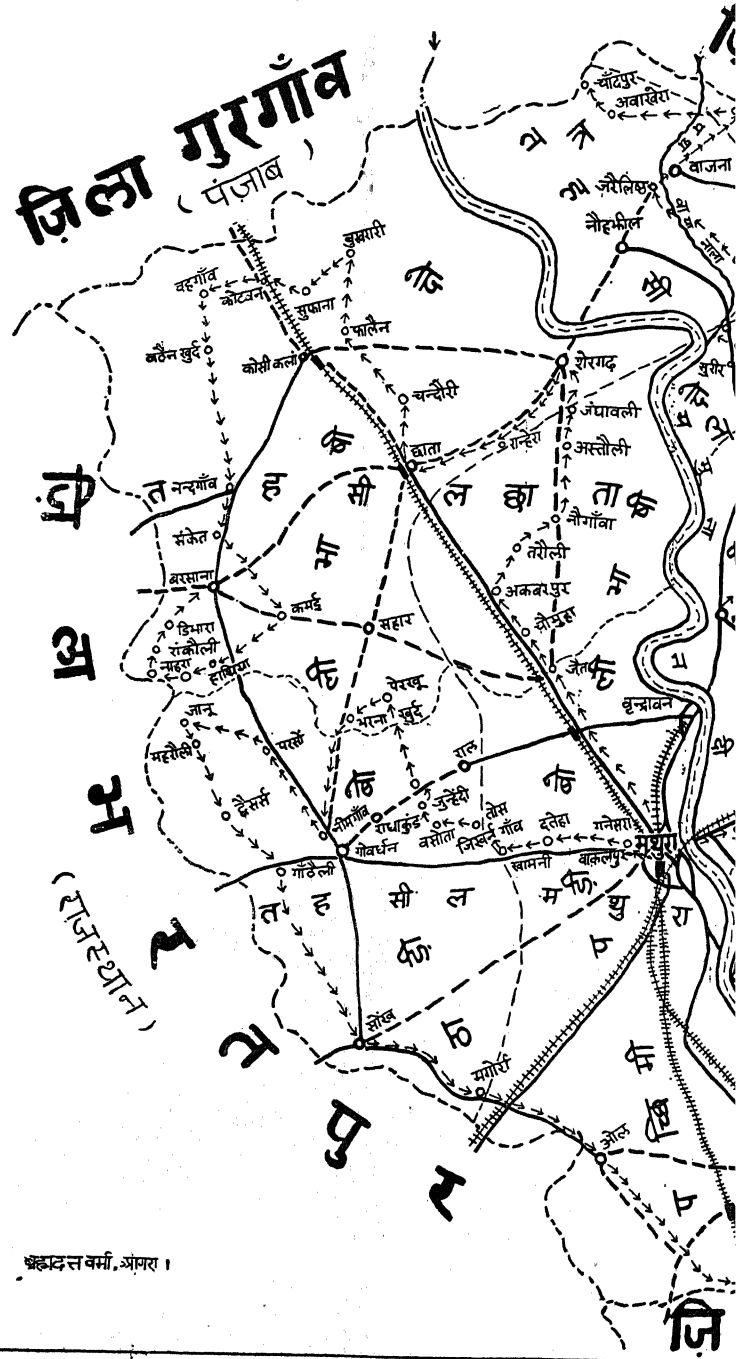
६.०. बोली में मिलने वाले स्वतन्त्र वैविध्यों का विवरण पीछे दिया जा चुका है (४.१)। उसमें यह भी स्पष्ट हो गया था कि विगत होती हुई पीढ़यों और नवीन पीढ़ियों द्वारा प्रयुक्त कुछ रूपों में समान भौगोलिक और भाषागत परिस्थितियाँ होते हुए भी वैविध्य मिलते हैं। इससे किसी प्रवृत्ति-विशेष की दिशा ही सूचित होती है। यह स्वतन्त्र वैविध्य सामाजिक स्तरों पर भी मिलता है। कुछ निम्न-स्तरों की बोली रूपों का साम्यगत होती हुई पीढ़ियों में प्रचलित रूपों से है। पर कुछ ऐसे रूप भी हैं, जिनका साम्य उसी स्थान की भूतोन्मुख पीढ़ियों से नहीं, ज़िले के भौगोलिक दृष्टि से भिन्न भूभाग के बोली रूपों से है। साथ ही कुछ जातियों की कुछ बोलीगत विशेषताएँ उनको अन्य जातियों से पृथक् करती हैं। इस प्रकार ज़िले की बोली के वैविध्य सामाजिक स्तरों पर भी मिलते हैं और स्थानीय विभेद भी मिलते हैं। प्रस्तुत अध्याय का उद्देश्य है, इन वैविध्यों के आधार पर मथुरा ज़िले का बोलीगत विभाजन। यह विभाजन दो आधारों पर किया जा सकता है—ध्वनि के आधार पर, तथा पदग्रामात्मक आधार पर। इस प्रकार के विभाजन के बाद भी जातीय तथा ग्राम-नगर के आधारों पर कुछ उपविभाग हो सकते हैं।

६.१. ध्वनि भेद के आधार पर मथुरा ज़िले को दो भागों में बाँटा जा सकता है। इन भागों को सुविधा के लिए 'ठाड़ी बोली भाग' तथा 'पड़ी बोली भाग' नामों से पुकारा जा सकता है।[1] नीचे इन दोनों भागों के ध्वन्यात्मक अन्तर दिए गए हैं।

---

१. 'पड़ी बोली' भाग के निवासी दूसरे भाग की बोली को 'ठाड़ी बोली' कहते हैं। ठाड़ी बोली-भाग के निवासी दूसरे भाग की बोली को 'पारुआ'—यमुना के पूर्वी किनारे की बोली अथवा 'गिरी बोली' कहते हैं। पर 'पारुआ' नाम तथ्य से विपरीत है। पश्चिमी किनारे पर भी गिरी बोली मिलती है। अतः दूसरी को पड़ी बोली नाम दिया गया है।

६.१.१. ध्वनिग्राम-स्तरीय अन्तर—इस स्तर पर विशेष अन्तर नहीं मिलता। पड़ी बोली भाग में अर्द्ध स्वर, य, व स्वतन्त्र ध्वनि ग्राम नहीं हैं, पर ठाड़ी बोली भाग में /व/ एक स्वतन्त्र ध्वनि ग्राम है। पड़ी बोली भाग में /ब/ से इस पृथक् करने वाला स्वल्पान्तर युग्म प्राप्त नहीं हैं पर ठाड़ी बोली में प्राप्त है /बाइ/ 'वायु सम्बन्धी एक रोग' तथा /वाइ/ 'उसको'। पड़ी बोली में [व] एक /उ/ ध्वनि ग्राम का एक संस्वन मात्र है।

[य्] ठाड़ी बोली में स्वतन्त्र ध्वनि ग्राम तो नहीं सिद्ध होता है, पर इसके प्रयोग-वितरण के सर्वेक्षण से ज्ञात होता है कि, इस ध्वनि के प्रयोग की स्थितियाँ ठाड़ी बोली में अधिक हैं। कुछ शब्द तो ऐसे हैं जिनमें पड़ी बोली क्षेत्र में /ज्/ मिलता है, वहाँ ठाड़ी बोली क्षेत्र में [य्] मिलता है :

पड़ी बोली	**ठाडी बोली**
/जाइ/	/इआइ/ [याइ] 'इसको'
/जाकूँ/	/इआकूँ/ [याकूँ] 'इसको'

ठाड़ी बोली में /किऔं/ [क्यों] 'क्यों' मिलता है, पर पड़ी बोली में इसके स्थान पर /चौं/ 'क्यों' ही मिलता है। इस प्रकार /व्/ ध्वनिग्राम तथा [य्] के प्रयोग की अधिक प्रवृत्ति ठाड़ी बोली में प्राप्त होती है। पड़ी बोली में /इआ/ [या] कभी अधिक /+/ के पूर्व प्रयुक्त नहीं हो सकता, जब कि ठाड़ी बोली में हो सकता है। /या+कूँ/ 'इसको'। पड़ी बोली में [या] व्यञ्जन से पूर्व तो प्रयुक्त हो सकता है— /इआरु/ [यारु] 'यार'। /इआदि/ [यादि] 'याद' पर स्वर से पूर्व इसके प्रयोग के उदाहरण नहीं मिलते। ठाड़ी बोली में इस प्रकार के उदाहरण मिलते हैं—/याइ/ 'इसको'।

६.१.२. संस्वनात्मक अन्तर—ऊपर [य्] तथा /व्/ का अन्तर स्पष्ट किया गया है। कुछ स्वरों के संस्वनों में भी दोनों क्षेत्रों के ध्वनि-विधान में अन्तर मिलता है। इस दृष्टि से /ए/ तथा /ओ/ का संस्वनात्मक अन्तर विशेष रूप से द्रष्टव्य है। /ए/ के जो संस्वन पड़ी बोली क्षेत्र में मिलते हैं, उनसे एक अधिक ठाड़ी बोली में मिलता है। पद के आदि में तथा दो व्यञ्जनों के बीच प्रयुक्त होने पर इनके क्रमशः [$^{\text{य}}$ए] तथा [$^{\text{व}}$ओ] श्रुत्यात्मक संस्वन प्राप्त होते हैं, जो पड़ी बोली में नहीं मिलते। उदाहरण-- /एक/=[$^{\text{य}}$एक] 'एक' तथा /ओखरी/=[$^{\text{व}}$ ओख्री] 'ओखली'; /खेत्/=[ख् $^{\text{य}}$एत्] 'खेत' तथा /पोख्रा/=[प $^{\text{व}}$ओख्रा] 'पोखर'। पड़ी बोली के शिथिल व्यञ्जन-संस्वन (जैसे /ब/ का शिथिल रूप) नहीं प्राप्त होते।

ह्रस्व स्वरों के लोप की प्रवृत्ति ठाड़ी बोली में मिलती है। पड़ी बोली में [अ̥], [इ̥] तथा [उ̥] संस्वनों का प्रयोग सीमित है। विशेषतः ये तीनों अघोष संस्वन पड़ी बोली में पदान्त प्रयुक्त होते हैं। ठाड़ी बोली में इनके प्रयोग की स्थितियाँ पद के मध्य में भी हैं, अथवा इनका लोप ही हो जाता है। यह भी कह सकते हैं कि इनके प्रयोग और अप्रयोग में स्वतन्त्र वैविध्य है। ठाड़ी बोली में ह्रस्व स्वरों का पदान्त प्रयोग तो मिलता ही नहीं है; केवल व्यञ्जनान्त पद के उच्चारान्त होने पर यदि बल देने की आवश्यकता हो तो /इ/ का प्रयोग मिलता है—

पड़ी बोली	**ठाड़ी बोली**
/बात/ 'बात'	/बात्-/ ~ /बाति/
/गामु/ 'गाँव'	/गाम्-/ ~ /गामि/
/मति/ 'मति'	/मत्-/ ~ /मति/

ठाड़ी बोली में ये पद अधिकांशतः एकाक्षरात्मक हैं और पड़ी बोली में द्वयक्षरात्मक। तीन अक्षर वाले पदों में आदि और अन्त के दीर्घाक्षर होने पर भी पड़ी बोली में मध्य का अक्षर ह्रस्व स्वरात्मक हो सकता है। ठाड़ी बोली में इसके तीन स्वतन्त्र वैविध्य मिलते हैं—अघोष स्वरात्मक, ह्रस्व स्वरों के लोप होने से द्वयक्षरात्मक अथवा /अ/ तथा /इ/ का प्रथम दीर्घ अक्षर के पास आने से संयुक्त स्वरात्मक। संयुक्त स्वरात्मक स्थिति उस समय विशेष स्वाभाविक है, जब बीज में /इ/ हो और इससे पूर्व अक्षर /ई/ अतिरिक्त किसी अन्य दीर्घ स्वर से युक्त हो। नीचे उदाहरण दिए गए हैं—

पड़ी बोली	**ठाड़ी बोली**	
/आमरौ/	[आम्अ̥रौ] ~ /आम्रौ/ ~ /आअम्रौ/	'आँवला'
/आदिमी/	[आद्इ̥मी] ~ /आद्मी/ ~ /आइद्मी/	'आदमी'
/पातुरी/	[पात्उ̥री] ~ /पात्री/ ~	'पातुरी'
/आँधरे/	[आँध्अ̥रे] ~ आँध्री। ~ /आँअध्रौ/	'अंधा'

इसी प्रकार कितने ही उदाहरण दिए जा सकते हैं। ह्रस्व स्वरों में /इ/ के स्थान विपर्यय के उदाहरण द्वयक्षरात्मक पदों में भी मिल जाते हैं—

पड़ी बोली	**ठाड़ी बोली**
/राति/	/राइत्-/ 'रात'
/जाति/	/जाइत्-/ 'जाति'

पड़ी बोली	ठाड़ी बोली	
/माँदि/	/माँइँद्-/	'माँद'
/जोति/	/जोइत्-/	'ज्योति'
/कूति/	/कूइत्-/	'अनुमान कर ले'

पड़ी बोली में दो ह्रस्व स्वरों तथा अन्त्य दीर्घ स्वर वाला तीन अक्षरों का पद सम्भव है, पर ठाड़ी बोली में बीच का ह्रस्व स्वर लुप्त होने से ऐसे शब्द द्व्यक्षरात्मक ही रह जाते हैं—

पड़ी बोली	ठाड़ी बोली	
/पतरी/	/पत्री/	'पतली'
/पतरौ/	/पत्रौ/	'पतला'
/पतरे/	/पत्रौ/	'पतला'
/पकरी/	/पक्री/	'पकड़ी'
/कितनौ/	/कित्नौ/	'कितना'

६.१.३. ध्वनि-संयोग—

क—व्यञ्जन-संयोग—ह्रस्व स्वरों के अघोषीकरण अथवा लोप के कारण, पड़ी बोली की अपेक्षा ठाड़ी बोली में अधिक व्यञ्जन-संयोग सम्भव है। स्ववर्गीय व्यञ्जन-संयोगों के अतिरिक्त सभी व्यञ्जनों का संयोग सम्भव है। पड़ी बोली में दीर्घाक्षरों के पश्चात् संयुक्त व्यञ्जन प्राप्त नहीं होते, पर इस लोप की प्रक्रिया से ठाड़ी बोली में दीर्घाक्षरों के पश्चात् भी संयुक्त व्यञ्जन मिलते हैं।

व्यञ्जन संयोग की एक विशेष प्रवृत्ति पूर्वी पड़ी बोली भाग को शेष ज़िले से अलग करती है। /र्-/+व्यञ्जन अन्य स्थानों पर सम्भव है, पर पूर्वी पड़ी बोली क्षेत्र में समीकरण होने से व्यञ्जन-द्वित्व मिलता है। उदाहरण—

अन्यभाग	पूर्वी प० बो०	
/मिर्च/	/मिच्च/	'मिरच'
/पार्छौ/	/पाच्छौ/	'पारछा'
/कर्जु/	/कज्जु/	'करज'
/सुर्झिबौ/	/सुज्झिबौ/	'सुलझना'
/बर्त/	/बत्त/	'मोटा रस्सा'
/दर्दु/	/दद्दु/	'दरद'
/बर्धु/	/बद्धु/ /बद्द/	'बैल'
/बर्स/	/बस्स/	'वर्ष'

ख—स्वर-संयोग—पड़ी बोली क्षेत्र में /अई/, /अए/, तथा /अऐ/ स्वर-संयोग मिलते हैं; पर ठाड़ी बोली क्षेत्र में इनकी सन्धि क्रमशः /ई/, /ए/ तथा /ऐ/ के रूप में हो जाती है।

प० बोली		ठा० बोली	
/बात्-/+{-अ-}+{-ई-}=/बातई /	'बात थी'	/बाती/	'बात थी'
/बात्-/+{-अ-}+{-ऐ-}=/बात ऐ /	'बात हैं'	/बातै/	'बात हैं'
/घर्-/+{-अ-}+{-ए-}=/घर ए /	'घर थे'	/घरे/	'घर थे'

दूसरा अन्तर--/औ/+/ओ/=/ओ/ (पड़ी बोली) तथा /औ/ (ठाड़ी ोली)। पड़ी बोली में /औ ओ/~/ओ/ में स्वतन्त्र वैविध्य मिलता है। पूर्वी पड़ी बोली में /चलौ ओ/=(√चल्-+{औ}+{-ओ}) 'चला था'। पश्चिमी बोली क्षेत्र के अन्य भागों में /चलिऔ ओ/~/चलिओ/=(√चल्+{-इ-}+{औ}+{-ओ}) 'चला था'। पर ठाड़ी बोली में, /चलिऔ/=(√चल्-+{-इ-}+{-औ}) 'चला था' ही मिलता हैं।

तीसरा अन्तर—पड़ी बोली क्षेत्र में /इऐ/ संयुक्त स्वर सम्भव है, पर ठाड़ी बोली क्षेत्र में /इऐ/7/ऐ/: /खरि+ऐ/=/खरिऐ/ (पड़ी बोली में) तथा /खरै/ (ठाड़ी बोली में) 'खल हैं'।

एक और विशेष अन्तर मिलता है। यह अन्तर भी पूर्वी पड़ी बोली भाग को शेष ज़िले से पृथक् करता है। /ई—आ/ तथा /ऊ—आ/ के बीच शेष भागों में क्रमशः [य] तथा [व] श्रुतियाँ आ जाती हैं; पर पूर्वी पड़ी बोली भाग में [ग्य] तथा [ग्व] का आगमन होता है। नीचे के उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है। इन उदाहरणों की स्पष्टता के लिए संस्वनात्मक लेख में लिखा गया है—

अन्य स्थान			पू० पड़ी बोली
/भईआ/	'भाई'	[भई्य्आ]	[भईग्यआ]~[भग्ग्या]
/गईआ/	'गाय'	[गई्य्आ]	[गईग्यआ]~[गग्ग्या]
/कऊआ/	'कौआ'	[कऊव्ा]	[कऊग्व्आ]~[कग्ग्वा]

इस सबसे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मध्य पड़ी बोली भाग अनिश्चित है। यह कभी पूर्वी पड़ी बोली के साथ, तथा कभी ठाड़ी बोली के साथ दीखता है। पूर्वी पड़ी बोली भाग तथा ठाड़ी बोली भाग जो ज़िले के सीमावर्ती भाग हैं, सुनिश्चित हैं। मध्य पड़ी बोली भाग की प्रवृत्ति ठाड़ी बोली की ओर ही दीखती है।

इस भाग की विगत होती हुई पीढ़ियाँ पूर्वी पड़ी बोली के रूपों को बोलती-बोलती समाप्त हो रही हैं, तथा नवीन पीढ़ियाँ अनेक ठाड़ी बोली की प्रवृत्तियों को लेकर उदय हो रही हैं। यह बात आगे पड़ी बोली भाग के उपविभागों की चर्चा में और अधिक स्पष्ट हो जाती है। जहाँ तक ध्वनि की मूल प्रवृत्तियों का प्रश्न है, मध्य पड़ी बोली भाग ठाड़ी बोली से अलग है।

६.१.४. प्रवृत्तिगत अन्तर––पड़ी बोली की प्रवृत्ति उकार बहुला है।[1] ठाड़ी बोली इस प्रवृत्ति के विरोध में है। ठाड़ी बोली को एक प्रकार से इकार बहुला कहा जा सकता है। किसी पद में यदि अन्त्य /इ/ हो तो उससे पूर्व वाला /अ/ भी इससे प्रभावित होकर लुप्त हो जाता है और /इ/ उसके स्थान पर आ जाता है––

प० बो०	**ख० बो०**	
/खबरि/	/खिबिरि/ ~ /खबिर/	'खबर'
/निकरि/	/निकिरि/ ~ निकिसि/	'निकल
/पकरिबौ/	/पकिरिबौ/	'पकड़ना'

ठाड़ी बोली में व्यञ्जनान्त पद अन्त्य होने पर /इ/ ग्रहण करता है। जैसे––

प० बोली०	**ठा० बो०**	**खड़ी बोली**
/घरु/ (एक० पु०)	/घर्/ ~ /घरि/	'घर'
/घर/ (बहु० पु०)	/घर्/ ~ घरि/	'घर'
/वात/	/बात्/ ~ /बाति/	'बात'

पड़ी बोली में व्यञ्जनों के शिथिलीकरण की प्रवृत्ति मिलती है। इसका प्रमाण है कुछ व्यञ्जनों के शिथिल संस्वन। पर ठाड़ी बोली में इस प्रकार के शिथिल संस्वन प्राप्त नहीं होते। अतः ठाड़ी बोली में व्यञ्जन दृढ़ और सुरक्षित हैं, जिनके बीच में आकर ह्रस्व स्वर समाप्त हो जाते हैं। किन्तु पड़ी बोली में स्वर सुरक्षित हैं व्यञ्जनों के बीच में आकर ह्रस्व स्वर स्वयं समाप्त नहीं होते, व्यञ्जन को शिथिल कर सकते हैं।

पड़ी बोली में / च्-/ पद के मध्य में /स्-/ के पश्चात् रह सकता है। ठाड़ी बोली में उसी स्थान पर /-स्-/ मिलता है––

प० बो०	**ठा० बोली**	
/साँचौली/	/साँसौली/	'एक गाँव का नाम'
/सोचिकैं/	/सोसिकैं/	'सोच कर'
/साँची/	/साँसी/	'सच'

---

१. इस प्रवृत्ति का इतिहास (०.६)

पड़ी बोली में स्वर मध्यवर्ती [-ड़-] मिलता है। ठाड़ी बोली में -ड़-7-र्- की प्रवृत्ति मिलती है। वैसे दोनों में स्वतन्त्र वैविध्य भी प्राप्त होता है, पर प्रबलता इसी प्रवृत्ति की है—

प० बो०	ठा० बोली
/लड़की/	/लरकी/ 'लड़की'
/सड़क/	/सरक/ 'सड़क'
/तगड़ौ/	/तगरौ/ 'तगड़ा'

६.२. पदग्रामात्मक विभाजन—पद ग्रामात्मक विभाजन संज्ञा के साथ प्रयुक्त होने वाले ह्रस्व स्वर लिङ्ग वचन पद ग्रामों के लोप आधार पर पड़ी बोली तथा ठाड़ी बोली, इन दो भागों में ही होगा। पर अन्य रूपों की तुलना से ज़िले का बोलीगत विभाजन अधिक भागों में होता है।

६.२.१. संज्ञा रूप—पड़ी बोली में संज्ञा के लिङ्ग-वचन को व्यक्त करने वाले प्रत्यय ठाड़ी बोली की अपेक्षा अधिक हैं। पड़ी बोली में व्यञ्जनान्त संज्ञा के अन्य० मूल० कर्ता एक० पु० में {-उ-} तथा {-औ} तथा इनके बहुवचन में क्रमशः {-अ} तथा {-ए} का प्रयोग होता है। स्त्री० रूपों में {-ई} प्रयुक्त होता है। ठाड़ी बोली में {-अ}, {-इ} तथा {-उ} का प्रयोग नहीं मिलता। नीचे इनकी तुलनात्मक तालिका दी गई है—

प० बो०	ठा० बो०
/घरु/ : /घरुऐ/ 'घर है'	/घर्-/ : /घरै/ 'घर है'
/घर/ : /घर ऐं/ 'घर हैं'	/घर्-/ : /घरैं/ 'घर हैं'
/खरि/ : /खरिऐ/ 'खल है'	/खर्-/ : /खरै/ 'खल है'
/नटु/ : /नटुओ/ 'नट था'	/नट्/ : /नटौ/ 'नट था'
/नट/ : /नट ए/ 'नट थे'	/नट्-/ : /नटे/ 'नट थे'

६.२.२. सर्वनाम—सर्वनामों में मिलने वाले वैविध्यों की दृष्टि से मथुरा ज़िले के चार भाग किये जा सकते हैं—पूर्वी पड़ी बोली, मध्य पड़ी बोली, पश्चिमी पड़ी बोली तथा ठाड़ी बोली। इनमें मिलने वाले स्वतन्त्र वैविध्य तथा स्पष्ट वैविध्य प्रवृत्तियों के द्योतक हैं। इनमें मिलने वाले रूपों की तुलनात्मक तालिका इस प्रकार है—

पू० प० बो०	म० प० बो०	प० प० बो०	ठा० बो०	
/हूँ/	/हूँ/→/मैं/	/मैं/	/मैं/	'मैं'
/गु/	/गु/→/बु/	/बु/→/ऊ/	/ऊ/	'वह'
/गुआ-/	/गुआ-/→/बुआ/	/बुआ/→/वा-/	/वा/	'उस'
/ग्वे-/	/गुए-/→/बे/	/बे/→/वे/	/वे/~/वै/	'वे'
/गुन्-/	/गुन्-/→/बिन्-/	/बिन्-/→/उन्-/	/उन्-/	'उन-'
/गि/	/गि/→/जि/	/जि-/→/ई/	/ई/	'यह'
/गिआ/	/गिआ/→/जा/	/जा-/→/इआ/	/इआ/	'इस'
/गिन्-/	/गिन्-/→/जिन्-/	/जिन्-/→/इन्-/	/इन्-/	'इन'
/तुम्-/	/तुम्/	/तुम्/→/तम्/	/तम्/	'तुम'

मध्यम पुरुष बहुवचन /तुम/ के आधार पर केवल दो भाग ही होते हैं। इस तालिका से यह भी स्पष्ट होता है कि पूर्वी पड़ी बोली तथा ठाड़ी बोली भाग तो सुस्थिर हैं पर बीच के मध्य पड़ी बोली तथा पश्चिमी पड़ी बोली भाग ठाड़ी बोली के प्रभाव की ओर गतिशील हैं।

६.२.३. क्रिया रूप—सहायक क्रियाओं, कृदन्तों तथा कुछ काल रचनाओं में अन्तर प्राप्त होता है।

क—सहायक क्रिया—√हो- धातु के रूप ही इस रूप में प्रयुक्त होते हैं। इसके वर्तमान रूप सारे ज़िले की बोली में समान हैं। केवल इसके भूतकाल के एकवचन में अन्तर है। इस दृष्टि से भी ज़िले की बोली को पड़ी बोली तथा ठाड़ी बोली —इन दो रूपों में विभक्त कर सकते हैं। पड़ी बोली /ओ/ ठाड़ी बोली /औ/ 'था'। अन्य रूप समान हैं। √हो- के भूतकालिक कृदन्त में भी अन्तर मिलता है। पड़ी बोली में इसके रूप /भइऔ/ 'हुआ' /भए/ 'हुए' तथा /भई/ 'हुई' मिलते हैं। ठाड़ी बोली में ये क्रमशः /हुइऔ/~/हुऔ/ [हुवौ], /हुए/ तथा /हुई/ हैं। इस दृष्टि से समस्त ठाड़ी बोली भाग भी एकरूप नहीं हैं, वहाँ भी वैविध्य मिलते हैं। पड़ी बोली क्षेत्र में भी इन दोनों रूपों में स्वतन्त्र वैविध्य मिलता है, पर अत्यन्त शिथिल। वहाँ भी /भ/ वाले रूप अधिक प्रचलित हैं।

ख—कृदन्त—वर्तमानकालिक कृदन्त के ध्वन्यात्मक वैविध्यों में अन्तर मिलता है। कर्त० कृ० {-त्-} के सबसे अधिक वैविध्य मध्य तथा पश्चिमी पड़ी बोली में मिलते हैं। इनकी सूची नीचे दी जा रही है, पीछे इसकी तुलना अन्य बोली भागों से की गयी है—

{-त्-}=/-मत्-/, /-ँत्-/, /-अत्-/, /-ऐंन्-/, /-त्-/

/-मत्-/ -का प्रयोग √जा- तथा ऐकारान्त धातुओं के अतिरिक्त सभी स्वरान्त

धातुओं के साथ होता है। जैसे √आ- से /आमत्-/,√जी- से/ /जीमत्-/,√से-से /सेमत्-/ 'सेता',√सो- से /सोमत्-/ 'सोता',√खा- से /खामत्-/ और /खाँत्-/ दोनों रूपों में स्वतन्त्र वैविध्य (Free variation) मिलता है।

/-ँत-/ -का प्रयोग √खा-,√जा- तथा सभी एकारान्त धातुओं के साथ होता है। जैसे—√खा- से /खाँत्-/ 'खाता'; √जा- से /जाँत-/ 'जाता',√दे- से /देंत-/

/-अत्-/-का प्रयोग /-द्-/, /-ध्-/, /-न्-/, /-र्-/, /-ल्-/, /-स्-/ तथा /-ह्-/ अन्तवाली धातुओं के अतिरिक्त सभी व्यञ्जनान्त धातुओं के साथ होता है। जैसे—√बक्- से /बकत्/,√देख्- से /देखत्/,√जग्- से /जगत्/,√सूँघ- से /सूँघत्/, √बाँच्- से /बाँचत्/,√पूछ्- से /पूछत्/,√बज्- से /बजत्/,√सूझ- से /सूझत्/, √कट्- से /कटत्/,√बैठ- से /बैठत्-/,√लड़- से /लड़त्-/,√चढ़- से /चढ़त्-/, √कात्- से /कातत्-/,√पाथ्- से /पाथत्-/,√काँप्-से /काँपत्-/,√लफ्- से /लफत्-/, √नब्- से /नबत्-/,√निम्- से /निमत्-/ जिन व्यञ्जनान्त धातुओं के उदाहरण नहीं हैं, वे बोली में अप्राप्य हैं।

/-ऐंत्-/ का प्रयोग हकारान्त धातुओं के साथ होता है, जैसे—√रैह्-से /रैहैंत्-/,√कैह्- स /कैहैंत्-/

/-त्-/ का प्रयोग /-द्-/, /-ध्-/, /-न्-/, /-र्-/, /-ल्-/ तथा /-स्-/ अन्तवाली धातुओं के साथ होता है। जैसे—√कद्- से /कूत्त्-/,√साध्- से /सात्त्-/,√बन्- से /बन्त-/,√कर्- से /कर्त-/,√चल्- से /चल्त्-/,√हँस्- से /हँस्त्-/।

ठाड़ी बोली में केवल ये रूपग्राम मिलते हैं—/-मूत्-/, /-त्-/={-त्-}। पूर्वी पड़ी बोली में /-मत्-/ के स्थान पर /-बत्-/ मिलता है तथा /-ँत्-/ नहीं मिलता। साथ ही /-ऐंत्-/ के स्थान पर /-एत्-/ मिलता है। इनके साथ लिङ्ग वचन प्रत्ययों का योग करके इनको विशेषण के समान प्रयोग में लाया जाता है। नीचे जो तुलनात्मक तालिका दी जा रही है, उसमें केवल {-औ} पुल्लिङ्ग एकवचन से संयुक्त रूप हैं। सबसे अधिक रूप मध्य पड़ी बोली के क्षेत्र में मिलते हैं। अतः सबसे पहले उसी के रूप दिए गए हैं:—

मध्य प० बो०	**पूर्वी प० बो०**	**ठा० बो०**	
/आमतौ/	/आबतौ/	/आम्तौ/~/आतौ/	'आता'
/खाँमतौ/	/खाबतौ/	/खाम्तौ/~/खातौ/	'खाता'
/देखतौ/	/देखतौ/	/देख्तौ/	'देखता'
/र्हैँतौ/	/र्हैंतौ/~/र्हैतौ/	/र्हैतौ/	'रहता'
/बन्तौ/	/बन्तौ/	/बन्तौ/	'बनता

इन रूपों के रचना-क्रम का विश्लेषण इस प्रकार है :—

√आ-+/मत्-/+{-औ} √आ+/बत्-/+{-औ} √आ-+/-म्त्-/+{-औ}
√खा-+/ँत्-/+{-औ}√खा-+/-त्-/+{-औ}√खा-+/-म्त्-/~/-त्-/+{-औ}
√देख्-+/-अत्-/+{-औ} √देख-+/-अत्-/+{-औ} √देख्-+/-त्-/+{-औ}
√रैह्-+/-ऐंत्-/+{-औ} √रैह्-+/-एत्-/+{-औ} √रैह्-/-ऐत्-/+{-औ}

/त्/ का प्रयोग सभी स्थानों पर समान है। वर्तमान कृदन्त के आधार पर जो विभाजन है, वह जटिल है। /-अत्-/ रूप ग्राम की दृष्टि से मध्य प० बो० भाग पूर्वी प० बो० के समान है तथा /-मत्-/7/-म्त्-/ के आधार पर ठाड़ी बोली के समान है।

भूतकालिक कृदन्त की दृष्टि से मध्य पड़ी बोली भाग से लेकर ठाड़ी बोली भाग तक एक प्रवृत्ति मिलती है तथा पूर्वी पड़ी बोली में दूसरी। ठाड़ी बोली वाले भाग में {-इ-}=[-य्-] वाला भूतकालिक कृदन्त मिलता है, और पूर्वी प० बो० क्षेत्र में यह पदग्राम प्राप्त नहीं होता। यह अन्तर मुख्यतः व्यञ्जनान्त क्रियाओं के पुल्लिङ्ग एकवचन भूतकालिक कृदन्त में मिलता है। उदाहरण--

अन्य स्थान	**पूर्वी प० बोली**	
√देख्-+{-इ-}+{औ}=/देखिऔ/	√देख्-+{-औ}=/दिखौ/	'देखा'
√चल्-+{-इ-}+{-औ}=/चलिऔ/	√चल्-+{-औ}=/चलौ/	'चला'
√कर्-+{-इ}+{-औ}=/करिऔ/	√कर्-+{-औ}=/करौ/	'किया'

पूर्वकालिक कृदन्तों में ठाड़ी बोली भाग शेष ज़िले से पृथक् हो जाता है। पूर्वकालिक कृदन्त प्रत्यय {-इ-} है—/जाइ/ 'जाकर', /करि/ 'करके'। ठाड़ी बोली में /-इ-/ अन्त में रह नहीं सकता, अतः मूल धातुओं का प्रयोग ही इस कृदन्त का द्योतन करता है। ({-इ-}+/कैं/) का प्रयोग भी शेष भागों में होता है, पर ठाड़ी बोली भाग में, इस संयुक्त रूप का प्रयोग न होकर केवल /कैं/ का प्रयोग मिलता है, जैसे—ठाड़ी बोली /जाकैं/ (अन्यत्र /जाइकैं/) 'जाकर', /कर्कैं/ (अन्यत्र /करिकैं/) 'करके'।

ग—आज्ञा-अभिप्राय आदि—व्यञ्जनान्त धातुओं के मध्यमपुरुष एकवचन आज्ञा के रूपों में जहाँ अन्यत्र {-इ} वाले रूप मिलते हैं (जैसे /करि/ 'करा') वहाँ ठाड़ी बोली में /कर्-/ ही आज्ञावाचक रूप मिलता है। अन्य अभिप्रायार्थक, आज्ञार्थक या इच्छार्थक रूप समस्त ज़िले में समान हैं। भविष्य-आज्ञा के रूप में ठाड़ी बोली भिन्न हैं।

अन्य स्थानों की बोली में /-ओ/ एक वचन तथा /औ/ बहुवचन का प्रयोग होता है। पर ठाड़ी बोली क्षेत्र में /-ओ/ के स्थान पर /-औ/ का प्रयोग मिलता है। जैसे—

धातु	अन्यत्र	ठा० बोली
√दै-	/दीजो/~/दीओ/	/दीजौ/ 'देना'
√लै-	/लीजो/~/लीओ/	/लीजौ/ 'लेना'
√कर्-	/करिओ/	/करिऔ/ 'करना'
√बक्-	/बकिओ/	/बकिऔ/ 'बकना'
√उठ्-	/उठिओ/	/उठिऔ/ 'उठना'

घ—क्रियार्थक संज्ञा—के दो पद ग्राम मिलते हैं {-न्-} तथा {-ब्-}; पर रूप ग्रामों में विभेद मिलता है। पूर्वी पड़ी बोली तथा मध्य पड़ी बोली में इनके /-अन्-/ तथा /-इब्-/ ध्वन्यात्मक रूप ग्राम मिलते हैं, पर पश्चिमी पड़ी बोली तथा ठाड़ी बोली में ये रूप ग्राम प्राप्त नहीं होते—

अन्य भाग			ठा० बो०	
√चल्- से	/चलिबौ/	'चलना'	/चल्बौ/	'चलना'
√पकर्- से	/पकरिबौ/	'पकड़ना'	/पकर्बौं/	'पकड़ना'
√भर्- से	/भरिबौ/	'भरना'	/भर्बौं/	'भरना'

/-इब्-/ रूप ग्राम अन्य भागों में व्यञ्जनान्त धातुओं के साथ प्रयुक्त होता है। ठाड़ी बोली में यह इस स्थिति में प्रयोग में नहीं आता। इसी प्रकार {-न्-} का एक प ग्राम /-अन्-/ अन्यत्र मिलता है, ठाड़ी बोली में नहीं मिलता—

अन्य भाग			ठा० बो०	
√नाँप्- से	/नाँपनौं/	'नापना'	/नाँप्नौ/	'नाँपना'
√नब्- से	/नबनौं/	'नबना'	/नब्नौं/	'नबना'
√बाँध्- से	/बाँधनौं/	'बाँधना'	/बाँध्नौं/	'बाँधना'
√सीख्- वे	/सीखनौं/	'सीखना'	/सीख्नौं/	'सीखना'

ङ—काल-रचनागत अन्तर—अनिश्चित वर्तमान और भूतकाल की रचना वर्त० कृदन्त के साथ वर्तमान तथा भूत की सहायक क्रियाओं के रूप में प्रयुक्त पुरुष वचन पद० या वचन पद के योग से होती है। इसकी रूप-रचना में भी अन्तर है तथा भविष्य के रूपों में भी वैविध्य मिलता है। नीचे इस बोलीगत वैविध्य का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

अ—अनिश्चित वर्तमान की रचना—इस रचना के आधार पर मथुरा ज़िले के बोलीगत चार विभाग हो सकते हैं—कुछ धातुओं के सानुनासिक रूप (जो वर्त० कृदन्त प्रत्यय के साथ युक्त होते हैं), मध्य पड़ी बोली में तथा पूर्वी पड़ी

बोली क्षेत्र को छोड़ कर समस्त ज़िले में प्राप्त होते हैं; पूर्वी पड़ी बोली तथा मध्य पड़ी बोली में वर्त० कृदन्त प्रत्यय [-त्-] के पश्चात् लिङ्ग वचन प्रत्यय रहते हैं, जो पश्चिमी पड़ी बोली और ठाड़ी बोली भागों में नहीं प्रयुक्त होते; तथा ठाड़ी बोली भागों में वर्त० कृदन्त प्रत्यय से रहित रूप-रचना होती है। इस विभाजन का रूप यों स्पष्ट किया जा सकता है—

पूर्वी पड़ी बोली=वर्त०कृ० (=√+×+{-त्-}) +{-उ-}[1]+{-ऊँ}[2]=वर्त० अनि०
{-इ-} {-ऐं}
{-अ-} {-ऐं}
{-औ}

मध्य पड़ी बोली=वर्त० कृ० (=√±/ँ/~/-म्-/+{-त्-}) +{-उ-}+{-ऊँ}= वर्त० अनि०
{-इ-}+{-ऐं}
{-अ-}+{-ऐं}
{-औ}

पश्चिमी पड़ी बोली=वर्त० कृ० (=√±/ँ/~/-म्-/+{-त्-}) +०+{-ऊँ}= वर्त० अनि०
{-ऐं}
{-ऐं}

ठाड़ी बोली=धातु० ० + ० +{-ऊँ}=वर्त० अनि०
{-ऐं}
{-ऐं}
{-औ}

इस तालिका से ये बातें स्पष्ट होती हैं—ठाड़ी बोली की अनिश्चित वर्तमान की रचना, वर्त० कृदन्त के आधार पर नहीं होती। पूर्वी तथा मध्य पड़ी बोली क्षेत्रों में लिङ्ग वचन का द्योतन होता है, शेष स्थानों पर नहीं। पूर्वी पड़ी बोली में कुछ धातुओं के सानुनासिक रूप नहीं मिलते।[3] नीचे उदाहरणों की तुलनात्मक

---

१. {-उ}=पु० एक०; {-इ-}=स्त्री; {-अ-} पु० बहु०

२. {-ऊँ}=उत्तम० एक०; {-ऐं} एक० {-ऐं} बहु०; {-औ} मध्यम० बहु०

३. **इस सानुनासिकता का विकास पुरानी हिन्दी के -न्त वाले रूपों (जैसे—बिचरन्त, फिरन्त वाले रूपों से है। इसके /-न्-/ का विकास कुछ बोली रूपों में**

तालिका दी गई है। इसमें उस धातु को लिया गया है, जिसमें सानुनासिकता रहती है—

मध्य पड़ी बोली—

√जा-+/ँ/+{-त्-}+{-उ-}+{-ऊँ}=/जाँतूँ/ 'जाता हूँ'
,, +{-इ-}+{-ऊँ}=/जाँतिऊँ/ 'जाती हूँ'
,, +{-अ-}+{-ऐं}=/जाँतऐं/ 'जाते हैं'
,, +{-अ-}+{-औ}=/जाँत औ/ 'जाते हो'

पूर्वी पड़ी बोली—

√जा+० +{-त्-}+{-उ-}+{-ऊँ}=/जातूँ/ 'जाता हूँ'
,, +{-इ-}+{-ऊँ}=/जाति ऊँ/ 'जाती हूँ'
,, +{-अ-}+{-ऐं}=/जात ऐं/ 'जाते हैं'
,, +{-अ-}+{-औ}=/जातौ/ 'जाते हो'

पश्चिमी पड़ी बोली—

√जा+/ँ/+{-त्-}+०+{-ऊँ}=/जाँतूँ/ 'जाता/ जाती हूँ'
{-ऐ}=/जातै/ 'जाता/ जाती है'
{-ऐं}[१]=/जाँतैं/ 'जाते/ जाती हैं'

ठाड़ी बोली—

√जा+०+०+०+{-ऊँ}=/जाऊँ/ 'जाता/ जाती हूँ'
+{-ऐ}=/जाऐ/ 'जाता/ जाती है'
+{-ऐं}=/जाऐं/ 'जाते/ जाती हैं'
+{-औ}=/जाऔ/ 'जाते/ जाती हो'

शून्यवत् हो गया है तथा कुछ में // के रूप में। विकास-क्रम यों दीखता है—

—न्–7*उँ7 { पूर्वी प० बो०—व्— ; अन्य स्थान { –ँ– ; –म्– } }

हिन्दी की प्रायः सभी बोलियों में अनुनासिक रूप ही मिलते हैं। मथुरा जिले के मध्य में सानुनासिक रूप के अवशेष मिलते हैं। आगरा की बोली में सानुनासिकता का लोप मिलता है। (दे० मध्यभारती, वर्ष २, अङ्क २ (१९५९) में लेखक का 'ब्रज और बुन्देली में वर्तमानकालिक कृदन्त' लेख)।

१. मध्यम पुरुष बहु० {-औ} का प्रयोग न करके {-ऐं-} का ही प्रयोग किया जाता है।

आ—अपूर्ण या अनिश्चित भूत की संरचना में भी ज़िले में कुछ बोलीगत विभेद मिलते हैं। इस अन्तर के आधार पर पहले मथुरा ज़िले के दो भाग किए जा सकते हैं—वर्तमानकालिक कृदन्त के आधार पर ठाड़ी बोली के क्षेत्र के अतिरिक्त सभी स्थानों पर रचना होती है। ठाड़ी बोली में इसके आधार पर रचना नहीं होती। पश्चिमी पड़ी बोली क्षेत्र में रचना तो वर्तमानकालिक कृदन्त के आधार पर होती है, पर भूतकालिक सहायक क्रिया की भाँति प्रयुक्त पु० एकवचन प्रत्यय में अन्तर है। पश्चिमी पड़ी बोली क्षेत्र में {-औ} 'था' का प्रयोग होता है, अन्यत्र {-ओ} का। इनकी रूप रचना की तुलनात्मक तालिका इस प्रकार है :—

(i) पूर्वी तथा मध्य० प० बोली—

वर्त० कृदन्त+लिङ्ग वचन {-उ}+{-ओ}=पु० एकवचन
{-अ}+{-ए}=पु० बहुवचन
{-इ}+{-ई}=स्त्री० एकवचन
{-इ}+{-ई}=स्त्री० बहुवचन

(ii) पश्चिमी प० बोली—

वर्त० कृदन्त+० +{-औ}=पु० एकवचन
+{-ए}=पु० बहुवचन
+{-ई}=स्त्री० एकवचन
+{-ई}=स्त्री० वहवचन

(iii) ठाड़ी बोली—

धातु+{-ऐ}+० +{-औ}=पु० एकवचन
{-ए}=पु० बहुवचन
{-ई}=स्त्री० एकवचन
{-ई}=स्त्री० बहुवचन

√कर्-धातु से इस प्रकार की रूप-रचना के उदाहरणों की तुलनात्मक तालिका इस प्रकार है :—

(i) पूर्वी-मध्य प० बो०—

√कर्-+{-त्-}+{-उ-}+{-ओ}=/कर्तो/~/कत्तो/ 'करता था'
{-अ}+{-ए}=/कर्तए/~/कत्ते/ 'करते थे'

{-इ}+{-ई}=/कर्ती/–/कत्ती/ 'करती थी'
{-इ}+{-ईं}=/कर्तीं/–/कत्तीं/ 'करती थीं'

(ii) पश्चिमी प० बोली—

√कर्+{-त्-}+० +{-औ}=/कर्तौ/ 'करता था'
+{-ए}=/कर्ते/ 'करते थे'
+{-ई}=/कर्ती/ 'करती थी'
+{-ईं}=/कर्तीं/ 'करती थीं'

(iii) ठाड़ी बोली—

-√कर्-+{-ऐ}+० +{-औ}=/करैऔ/ 'करता था'
+{-ए}=/करैए/ 'करते थे'
+{-ई}=/करैई/ 'करती थी'
+{-ईं}=/करैईं/ 'करती थीं'

इ—भविष्यत् रूपों की संरचना में भी अन्तर मिलता है। ठाड़ी बोली और पड़ी बोली को उत्तम पुरुष एक वचन के रूप के आधार पर अलग किया जा सकता है। मध्यम पुरुष पु० बहुवचन के भविष्य रूपों में भी भेद है। अन्य रूप समान हैं। उत्तम पुरुष स्त्री० एकवचन दोनों में समान मिलते हैं। इनका विभेद नीचे की तुलनात्मक तालिका से स्पष्ट हो जाता है:—

अन्य स्थान—√चल्-+/उं/(={-ऊँ})+{-ग्-}+{-ओ}=/चलुंगो/ 'चलूँगा'
ठाड़ी बोली—√चल्-+/अं/ +{-ग्-}+{-औ}=/चलंगो/ 'चलूँगा'

इस प्रकार /उं/ के स्थान पर /अं/ मिलता है। {-ओ} उत्तम पुरुष एकवचन अन्य स्थानों पर मिलता है। ठाड़ी बोली में {-औ} मिलता है जो तीनों पुरुषों के एकवचन में मिलता है। अन्य स्थानों पर उत्तम पुरुष (एकवचन) भविष्य-रूपों में व्यक्त होता है, ठाड़ी बोली में नहीं।

मध्यम पुरुष में अन्य स्थानों पर {-ग्-} के पूर्व {-औ} मध्यम पुरुष बहुवचन का प्रयोग होता है, पर ठाड़ी बोली के क्षेत्र में, यहाँ भी पुरुष का द्योतन नहीं होता : केवल वचन का द्योतन होता है। उदाहरण--

अन्य स्थान-√चल्-+{-औ}+{-ग्-}+{-ए}=/चलौगे/ '(तुम) चलोगे' (पु०)
चल्-+{-औ}+{-ग्-}+{-ई}=/चलौगी/ '(तुम) चलोगी' (स्त्री०)
ठाड़ी बोली-√चल्-+/इं/+{-ग्-}+{-ए}=/चलिंगे/ '(तुम) चलोगे'
चल्-+/इं/+{-ग्-}+{-ई}=/चलिंगी/ '(तुम) चलोगी'

भविष्य रूपों का एक और अन्तर प्राप्त होता है। पश्चिमी पड़ी बोली क्षेत्र के दक्षिणी भाग में (जो आगरा ज़िले से संलग्न है) फ़रह के आसपास जो रूप मिलते हैं, वे इस भाग के ज़िले के अन्य भागों से अलग करते हैं। नीचे मध्य पड़ी बोली के रूपों की इससे तुलना की गयी है:—

मध्य पड़ी बोली—

√चल्-+/उं/+{-ग्-}+{-ओ}=/चलुंगो/ 'चलूँगा' (उत्तम० एकवचन)
चल्-+/इं/+{-ग्-}+{-ए}=/चलिंगे/ 'चलेंगे' (उत्तम० अन्य० बहु०)
चल्- /इं/ {-ग्-}+{-ई}=/चलिंगी/ 'चलिंगी' (उत्त० अन्य० बहु०)
चल्-+/औ/+{-ग्-}+{-ए}=/चलौगे/ 'चलोगे' (मध्य० बहु०)
चल्- /औ/ {-ग्-}+{-ई}=/चलौगी/ 'चलोगी' (मध्य० बहु०)

फ़रह बोली—

√चल्-+/अं/+{-ग्-}+{-ओ}=/चलंगो/ 'चलूँगा'
चल्- /अं/ {-ग्-}+{-ए}=/चलंगे/ 'चलेंगे'
चल्- /अं/ {-ग्-}+{-ई}=/चलंगी/ 'चलेंगी'

इस तालिका से स्पष्ट हो जाता है कि /-अं/ केवल बहुवचन का द्योतक है। अन्त्य {-ओ} उत्तम पुरुष एकवचन को प्रकट करता है। {-ग्-} से पूर्व किसी प्रकार पुरुष का द्योतन नहीं होता, जब कि मध्य पड़ी बोली तथा पश्चिमी पड़ी बोली में /उं/=({-ऊँ-}) से उत्तम पुरुष एकवचन तथा {-औ-} से मध्यम पुरुष बहुवचन की सूचना मिलती है। एकवचन रूप सर्वत्र समान हैं।

६.२.४. क्रिया विशेषण—क्रिया विशेषणों में केवल निम्नलिखित वैविध्य देखने में आए हैं:—

पड़ी बोली	ठा० बोली
/न्याँ/~/ञ्याँ/~/ज्ञाँ/	[ह्याँ]~[हियाँ] 'यहाँ'
/म्वाँ/~/माँ/~/म्हाँ/	[ह्वाँ]~[हुवाँ]~/हुआँ/ 'वहाँ'

पूर्वी पड़ी बोली क्षेत्र में /ज्ञाँ/ तथा /म्हाँ/ रूप स्वतन्त्र वैविध्य के रूप में मिलते हैं। ठाड़ी बोली क्षेत्र के वैविध्य जातीय हैं।

६.३. अन्य आधारों पर उपविभाग—दो आधारों पर उपविभाग और हो सकते हैं—जातीय आधार पर तथा नगर-ग्राम के आधार पर।

६.३.१. जातीय आधार पर—पड़ी बोली तथा ठाड़ी बोली दोनों की

भौगोलिक सीमाओं के अन्तर्गत जातीय उपविभाग मिलते हैं। नगरों में चौबों की बोली का उपविभाग है।

६.३१.१. **पड़ी बोली का उपविभाग**—जातीय आधार पर इसके दो उपविभाग हो सकते हैं—-चमारों की बोली और अन्यों की बोली। इन दोनों में एक अन्तर इस उपविभाग में सर्वत्र मिलता है। /ल/+व्य० अन्यों की बोली में मिलता है। चमारों की बोली में वहाँ /न्/+व्य० है। जैसे :—

अन्य	**चमार**	
/बेल्चा/	/बेंन्चा/	'बेलचा'
/सल्जम/	/संजम/	'शलजम'
/चल्तौ/	/चंतौ/	'चलता'
/जल्दी/	/जन्दी/	'जल्दी'
/पल्टा/	/पंटा/	'पलता'
/कल्सा/	/कंसा/	'कलश'
/झल्सा/	/झंसा/	'जलसा'

चमारों और अन्यों की बोली में अन्य अन्तर भी हैं। एक प्रकार से यह जाति पड़ी बोली क्षेत्र के जिस भाग में जहाँ कहीं मिलती है, पूर्वी पड़ी बोली क्षेत्र की विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करती है। मध्य पड़ी बोली भाग की पूर्व पीढ़ियों से चमारों में प्रचलित रूपों का साम्य मिलता है। इस प्रकार मध्य पड़ी बोली भाग में अव्यक्त रूप से पूर्वी पड़ी बोली क्षेत्र के रूपों की नाशोन्मुख परम्परा पूर्व पीढ़ियों में मिलती है। इस बात को स्पष्ट करने के लिए नीचे कुछ उदाहरण दिए गए हैं :—

क—'वह' /बु/ तथा 'यह' /जि/ रूप नवीन पीढ़ियों में मिलते हैं, पर चमार और पुरानी पीढ़ियों में पूर्वी पड़ी बोली वाले रूप चलते हैं—

अन्य नई पीढ़ी	**अन्य पुरानी पीढ़ी**	**चमार**	
/बु/	/गु/	/गु/	'वह'
[व्वा]	[ग्वा]	[ग्वा]	'उस'
/बे/	[ग्वे]	[ग्वे]	'वे'
/जि/	/गि/	/गि/	'यह'
/जा/	[ग्या]	[ग्या]	'इस'

ख—उत्तम पुरुष एक वचन के रूपों की दृष्टि से पूर्वी भाग शुद्ध /हूँ/ वाला क्षेत्र है तथा मध्य पड़ी बोली भाग मिश्रित क्षेत्र है—/मैं/~/हूँ/ इस दृष्टि से मध्य क्षेत्र के पुरानी पीढ़ी चमारों के समान है। यह अन्तर यों है—
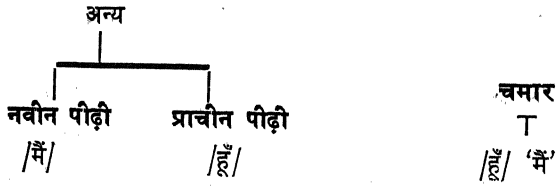
चमारों की बोली के अन्य रूप पूर्वी पड़ी बोली के समान हैं। इनकी समानता पड़ी बोली क्षेत्र के उच्च वर्गों की पुरानी पीढ़ियों से नहीं है। अन्य निम्नतर वर्गों में भी ये विशेषताएँ नहीं मिलतीं। इस प्रकार चमारों के माध्यम से पूर्वी पड़ी बोली भाग मध्य तथा पश्चिमी पड़ी बोली क्षेत्र में घुस आया है। ठाड़ी बोली क्षेत्र में भी यह जाति इन रूपों को ले गई है, पर उतनी प्रबलता के साथ नहीं। वैसे संख्या की दृष्टि से यह जाति महत्त्वपूर्ण है। इस जाति की प्रगति पूर्व से पश्चिम को हुई दीखती है।

६.३१.२. ठाड़ी बोली के उपविभाग—जातीय आधार पर इस विभाग के चार उपविभाग दीखते हैं- गूजर-बोली, जाट-बोली, ठाकुर-बोली तथा मेव-बोली। ये चारों इस क्षेत्र की प्रमुख जातियाँ हैं और एक दूसरे के बोली-रूपों के वैविध्यों से अवगत है। चाहे स्पष्ट रूप से बोलीगत अन्तरों को न बता सकें, पर सामान्यत: उन्हें अन्तरों का ज्ञान है। इन उपविभागों की सीमाएँ तो आगे दी गयी हैं, यहाँ उनमें मिलने वाले अन्तर स्पष्ट किए गए हैं।

अ—गूजर, जाट और जादों बोलियों का अन्तर—इनकी बोलियों में कुछ ध्वनिगत अन्तर भी मिलता है तथा पदग्रामीय अन्तर भी। नीचे इन अन्तरों का विवरण प्रस्तुत किया गया है—

१. ध्वनि—ध्वनियों की दृष्टि से तीनों की प्रवृत्तियाँ समान हैं। मुख्य प्रवृत्तियाँ ये हैं:—

क—पड़ी बोली में जिन शब्दों में /स्-/ के पश्चात् स्वरमध्यवर्ती /च्/ मिलता है, वहाँ इन तीनों बोलियों में /स्/ मिलता है। जैसे—/साँचौली/=/साँसौली/~[साँस्यौली] 'साँचौली', /सोचिबौ/=/सोसिबौ/ 'सोचना'।

ख—/क्/ को /ख/ करने की प्रवृत्ति मिलती है। पड़ी बोली का /क्/ इसमें मुख्यत: /ख्/ मिलता है। जैसे—/किस्सा/=/खिस्सा/ 'क़िस्सा', /मुलाकाति/=/मुलाखाति/ 'मुलाक़ात', /चौकीदार/=/चौखीदार/ 'चौकीदार'।

ग—आरम्भिक /उ/ संख्यावाचक विशेषणों में पड़ी बोली में मिलता है तथा ठाड़ी बोली में /गु०/ मिलता है। इस दृष्टि से तीनों बोलियाँ समान हैं। जैसे—/उन्नीस/=/गुन्नीस/ 'उन्नीस'; /गुन्तीस/=/गुन्तीस/ 'उन्तीस'; /उन्तालीस/=

/गुन्तालीस/ 'उन्तालीस'; /उनंचास/=/गुनंचास/ 'उनंचास'; 'उन्हैंत्तरि।=/गुन्है-त्तरि/ 'उनहत्तरि'; /उन्यासी/=/गुन्यासी/ 'उन्यासी'।

घ—गूजरों की बोली में /आ/ जिन स्थानों पर मिलता है, वहाँ जाटों की बोली में /औ/ मिलता है। इस दृष्टि से जादों गूजरों के समकक्ष हैं।

गूजर	जाट	
/कहा कामैं/	/कहा कौमैं/	'क्या काम है?'
/राम्राम सा/	/रौम् रौम् साब/	'राम राम साहब!'
/खानैं/	/खौनैं/	'खान है'

२. **संज्ञा की रूप रचना**—जाट और गूजरों में समान है, पर जादों-बोली में /-उ/ पुल्लिङ्ग एकवचन मूल कर्ता तथा /-अ/ इसका बहुवचन रूप में मिलते हैं। जाट=/घर्/ एकवचन तथा बहुवचन। जादों=/घरु/ एकवचन तथा /घर/ बहुवचन। इस प्रकार पड़ी बोली क्षेत्र की इस विशेषता की वाहिका इस क्षेत्र में जादों जाति है।

एक ही वस्तु के द्योतक कुछ शब्द दोनों जातियों की बोली में नियमित रूप से भिन्न हैं। इस प्रकार कुछ संज्ञा शब्दों का अन्तर दोनों जातियों को एक दूसरी से अलग करता है। कुछ उदाहरण ये हैं—

गूजर	जाट	
/ढोर्/	/चौपे/	'चौपाये'
/पाम्/	/पाव/	'पैर'
/डाइरिबो/	/लाइरिबौ/	'डालना'

३. अन्य पुरुष सर्वनाम रूपों में जाटों तथा गूजरों की बोली बहुधा समान तथा जादों-बोली सर्वथा भिन्न है। जादों बोली के ये सर्वनाम जादों बोली को पड़ी बोली के समकक्ष रख देते हैं। नीचे तुलनात्मक सूची दी जाती है—

गूजर	जाट	जादौं	प० बो०	
/ऊ/	/ऊ/	/गु/~ /बु/	/गु/~ /बु/	'वह'
[वा]	[वा]	[ग्वा]~[वा]	[ब्वा]~[ग्वा]	'उस'
/ई/	[यो]	/गि/~ /इ/	/जि/~ /गि/	'यह'
/ये/	/यू/	/गे/	/जे/~ /गे/	'ये'
/या/	/या/	/ग्या/~ /या/	/जा/~ [ग्या]	'इस'

गूजर और जाटों की बोली में अन्तर नगण्य सा है। केवल [यो], [यू] जाटों

की बोली की विशेषता है। किन्तु जादों-बोली पड़ी-बोली के समकक्ष है। रूपान्तर ठाड़ी बोली के मिलते हैं। /ग/ वाले रूप पड़ी बोली के पूर्वी भाग में है। बीच में मध्य पड़ी बोली मिलती है जहाँ /बु/ और /गु/ वाले दोनों रूप प्राप्त होते हैं। फिर शुद्ध /बु/ वाले रूप वाला पश्चिमी पड़ी बोली है। इन दो पट्टियों को पार करके जादों ठाकुर पूर्व से पश्चिम की ओर अग्रसर रहे हैं।

४—क्रिया रूपों की भिन्नता—क—√हो के कृदन्त रूप जाट और गूजरों में बहुधा समान हैं। जादों-बोली में इनसे कुछ भिन्नता है।

भू० कृदन्त	**गूजर-जाट**	**जादौं**	**प० बो०**	
	[हुवौ] ~ [हुयौ] ~ /हुऔ/	[भयौ]	[भयौ]	'हुआ'
	/हुई/	/भई/	/भई/	'हुई'
	[हुवे] ~ [हुये] ~ /हुए/	/भए/	/भए/	'हुए'
वर्त० कृ०	/है/	/हतै/	/हतुऐ/	'है'
भूत०	/है/	/हते/	/हतए/	'थे'

इस दृष्टि से भी जादों रूप पड़ी बोली के समकक्ष रहे।

ख—क्रिया के भविष्य मध्यम पुरुष एकवचन आज्ञावाचक रूप गूजर और जाटों में पुल्लिङ्ग द्योतक /-औं/ से युक्त होता है। जादों की बोली में /-ओ/ का संयोग रहता है। जैसे—

गूजर-जाट	**जादौं**	**प० बो०**	
/जांगौ/	/जांगो/	/जांगो/	'जाऊँगा'
/दंगौ/	/दुंगो/	/दुंगो/	'दूंगा'
/दीजौ/	/दीजौ/	/दीजो/ ~ [दीयो]	'देना'

यहाँ भी जादों-बोली पड़ी बोली के समकक्ष है। इस बोली में उत्तम पुरुष का द्योतन {-ओ} के द्वारा हो रहा है। अन्यों में केवल वचन का द्योतन {-औ} के द्वारा होता है।

ग—वर्तमान एकवचन संयोजक क्रिया गूजरों में। है—। 'है' है। जादों में भी यही रूप है; पर जाटों में [ह्वै] रूप मिलता है। जैसे—[ह्वाँ गानौ ह्वै रौ] 'वहाँ गाना हो रहा था', [तू त्यार ह्वै लीजौ] 'तू तैयार हो लेना'।

५. क्रिया विशेषण—कुछ क्रिया विशेषण जाट और गूजर बोली में भिन्न हैं। जादों इस दृष्टि से गूजरों के समकक्ष हैं। जैसे—

गूजर	जाट	
[ह्याँ]	[हियाँ]	'यहां'
[ह्वाँ]	[हुवाँ]	'वहाँ'
×	[हियाँ सीकन]	'यहाँ'
×	[हुवाँ सीकन]	'वहाँ'
/ताँई/ ~ /तानी/	/लौं/ 'तक', /अबलौं/	'अब तक'
/काज/ ~ /काजैं/	[लैयाँ]	'लिये'
/इत्कूँ/	/इत्कर/	'इधर'
/कित्कूँ/	/कित्कर/	'किधर?'
[ह्वाँ है कैं]	[हुवाँकर]	'वहाँ होकर'

निष्कर्ष—जाट और गूजर अधिकांश बातों में समान हैं। जादों बोली में कुछ रूप पड़ी बोली के प्रचलित हैं। जिन दृष्टियों में जाट और गूजर भिन्न हैं, उनमें जादों गूजर के साथ हैं।

आ—मेव की बोली—इस बोली का व्याकरणात्मक ढाँचा प्राय: ठाड़ी बोली के समान है। किन्तु कुछ अन्तर भी हैं। कुछ ध्वन्यात्मक अन्तर इसको शेष मथुरा ज़िले की बोली से पृथक् करते हैं।

२. ध्वनि सम्बन्धी विशेषता—क—मथुरा ज़िले की किसी भी अन्य बोली में /ण/ नहीं मिलता। पर मेवों की बोली में इस ध्वनि का प्रयोग स्वर मध्यवर्ती अथवा अन्त्य रूप में होता है। जैसे—/कौंण/ 'कौन', /ठिकाणौं/ 'ठिकाना'।

ख—ठाड़ी बोली में जहाँ /-ल्/ अथवा ।-र्। आता है। वहाँ मेवों की बोली में ।-ड़। का प्रयोग होता है। जैसे :—

अन्य	मेव	
/दिवाली/ ~ /दिवारी/	/दिवाड़ी/	'दिवाली'
/सालौ/ ~ /सारौ/	/साड़ा/	'साला'
/साली/ ~ /सारी/	/साड़ी/	'साली'
/हल/ ~ /हर/	/हड़/	'हल'
/बालक/	/बाड़क/	'वालक'
/गलौ/ ~ /गरौ/	/गड़ा/	'गला'

ठाड़ी बोली में /ड़/ का प्रयोग किञ्चित् मात्र नहीं है। पड़ी बोली में /-ड़/ का प्रयोग बहुत कम मिलता है। मेवों की बोली में इसका प्रयोग बहुत है।

२. क्रिया—(क)—ठाड़ी बोली में /रहिबौ/ ~ /र्हैबौ/ क्रिया संयुक्त क्रिया

का अङ्ग बन कर आती है तो मेवों की बोली में /राँ/ रूप ग्रहण करती है। जैसे —

ठा० बोली	मेव बोली
/बोल् र्हे/	/बोल् राँ/ 'बोल रहे'
/माँग र्हे/	/माँगराँ/ 'माँग रहे।'
/पूछ र्हे/	/पूछराँ/ 'पूछ रहे'

ख—भविष्य आज्ञावाचक, जैसे—/जईओ/ 'जाना' ठाड़ी बोली /जईऔ/ मेवों की बोली में [जायौ] 'जाना' मिलता है। [अईये]=[आयौ] 'आना'।

ग—भूतकालिक संयोजक क्रिया एक०~/ओ/ ठाड़ी बोली /औ/ 'था' मेव बोली में /हा/~/आ/ रूप में मिलती है। जैसे /मैं हा~आ/ 'मैं था'।

घ—ठाड़ी बोली में तथा पड़ी बोली में भी क्रिया का भूतकालिक कृदन्त {-औ} (एकवचन पुल्लिङ्ग) प्रत्यय धारण करता है। बहुवचन में {-ए} प्रत्यय का योग होता है; किन्तु मेव-बोली में {-आ} एकवचन {आँ} बहुवचन प्रत्यय जोड़े जाते हैं। जैसे :—

प० बोली	ठा० बोली	मेव बोली
[भयौ]	[हुयौ]~[हुवौ]	[हुया] 'हुआ'
/भए/	[हुये]~[हुवे]	[हुयाँ] 'हुए'

ङ—संज्ञा के साथ भी ये ही प्रत्यय प्रयुक्त हो सकते हैं। जैसे—/तेरा छोरा/ ठाड़ी बोली /तेरौ छोरा/ 'तेरा लड़का', /तेरा छोराँ/ 'तेरे लड़के!' तिर्यक रूप में भी {-ए} नहीं मिलता।

३. क्रिया-विशेषण—मेवों की बोली में कुछ क्रिया विशेषण ठाड़ी बोली से भिन्न हैं।

क—स्थानवाचक—/हींन/ 'यहाँ', /हूँन/ 'वहाँ', /अगालू/ 'आंगे से', /पिछालू/ 'पीछे से' मेवों में मिलते हैं, खड़ी बोली में नहीं /उरै/ 'इधर', [वरै] 'उधर'।

ख—कालवाचक—/कदी/ 'कभी', /कदी मदी/ 'कभी जभी'।

ग—रीतिवाचक—/ऐसाँ/ ठाड़ी बोली /ऐसैं/ 'ऐसे'; [यूँ] /नूं/ रूप भी मिलते हैं।

४. अन्य चिह्नों का अन्तर—ठाड़ी बोली में करण चिह्नों /से/~/ते/ जाट /सौं/ 'से' मिलता है। पर मेवों की बोली में /सूँ/ रूप प्राप्त होता है। कर्म-चिह्न

/कूँ/ 'को' के स्थान पर मेवों की बोली में /लूं/ मिलता है। जैसे—/मोलूँ/ 'मुझको', /तोलूँ/ 'तुझको'।

यही मोटे-मोटे अन्तर हैं जिनके आधार पर मेवों की बोली अलग मानी जा सकती है।

इ—नगर की बोली तथा चौबों की बोली

नगर की बोली अधिकांशतः ठाड़ी बोली के समकक्ष आती है। वैसे नगर की बोली प्रस्तुत अध्ययन की सीमा से बाहर है। नगर में बोलियों के कई रूपान्तर मिलते हैं। चौबौं की बोली का सामान्य परिचय यहाँ दे दिया जाता है।

१. रहस्यमयी बोली—भी चौबों में प्रचलित है। विशेषतः संख्या-द्योतन के लिए प्रतीकों का प्रयोग किया जाता है। जैसे—नेत्र=३, पाए=४, हत्तू=५, ऋषि=७, वर्ग=८, ग्रह=९, सूतरी भर=२०, छदाम भर=२५, टाले भर=५०, गज भर=१००, मांसों=चवन्नी, टाली=अठन्नी, वेंदी=दुअन्नी, छपका=रुपया। कुछ खाद्य सामग्री के भी प्रतीक हैं। जैसे—घासीराम=घी, चुन्नीलाल=चून, डालचन्द=दाल, आदि।

२. ध्वनियों की विशेषताएं

क—/व/ ध्वनि प्राप्त होती है। जैसे—/वाइ/ 'उसे', /वि/ 'वे', /वो/ 'वह'।

ख—/ऊँ/ का प्रयोग जहाँ 'ठाड़ी बोली' में होता है वहाँ चौबों की बोली में /औं/ का प्रयोग होता है। जैसे—/जाऊँ/ के स्थान पर /जांऔं/ 'जाता हूँ', /कूँ/ के स्थान पर /कौं/ 'को', /सूं/ ~ /सि/ के स्थान पर /सौं/ 'से'।

ग—/औ/=/ऐ/ से पूर्व प्रयुक्त होने पर /उ/ हो जाता है। जैसे—/गयौ/ से /गउऐ/ 'गया है'।

३. संज्ञाओं की रूपरचना—

ठाड़ी बोली की भाँति व्यञ्जनान्त संज्ञाएँ /उ/ एकवचन पुल्लिङ्ग तथा /अ/ बहुवचन पुल्लिङ्ग प्रत्ययों को कर्ताकारक में स्वीकार नहीं करतीं। केवल एक ही रूप कर्ता कारक में प्रयुक्त होता है। बहुवचन रूप तिर्यक् रूपरचना में मिलता है। /-अन्/ प्रत्यय का योग होता है।

एक०	बहु०
/घर्/ 'घर'	/घरन/ 'घरों'
/गाम्/ 'गाँव'	/गामन्/ 'गाँवों'

औकारान्त तथा आकारान्त संज्ञाएँ अन्य बोलियों में कर्ताकारक में एकवचन बहुवचन में एक सी रहती हैं। पर चौबों की बोली में /-ऐं/ जोड़ कर उनको भी बहु-वचन कर देने की प्रवृत्ति दिखती है। जैसे—/लड्डुआ/ 'एकवचन से /लड्डुआऐं/, /पेड़ा/ से /पेड़ाऐं/ 'पेड़े', /चीतौ/ से /चीतेऐं/ 'चीते'। कभी ऐसी संज्ञाओं को भी बहुवचन रूप प्रदान कर दिया जाता है जिनको अन्य बोलियों में एकवचन में ही रखा जाता है। जैसे—/मैदन् की पूरी/ 'मैदा की पूड़ी', /आलून् के साग/ 'आलू का साग'।

४. सर्वनाम रूप

उत्तम पुरुष एकवचन	/मैं/,	/मेरौ/,	/मोइ/ ~ /मोकौं/	'मैं, मेरा, मुझे'
उत्तम पुरुष बहुवचन	/हम्/,	/हमारौ/,	/हमें/ ~ /हम्कौं/	'हम, हमारा, हमको'
मध्यम पुरुष एकवचन	/तू/,	/तेरौ/,	/तोइ/ ~ /तो कौं/	'तू, तेरा, तुझको'
मध्यम पुरुष बहुवचन	/तुम/,	/तुमारौ/,	/तुमैं/ ~ /तुम्कौं/	'तुम, तुम्हारा, तुमको'
अन्य पुरुष एकवचन	/वौ/,	/वाकौ/,	/वाइ/ ~ /वाकौं/	'वह, उसका, उसको'
अन्य पुरुष बहुवचन	/वे/,	/विनकौ/,	/विन्नैं/ ~ /विन्कौं/	'वे, उनका, उनको'
सङ्केत एकवचन	/ये/,	/याकौ/,	/याइ/ ~ /या कौं/	'यह, इसका, इसको'

५. क्रिया

क—संयोजक क्रिया—वर्तमान एकवचन /ऐ/ 'है' वर्तमान बहुवचन /ऐं/ वर्तमान एकवचन उत्तम पुरुष /औं/ 'हूँ', मध्यम पुरुष बहुवचन वर्तमान /औ/ 'हो', भूत एकवचन /हो/ /ओ/ 'था', भूत बहुवचन /है/ ~ /ऐ/ 'थे'।

ख—भूतकालिक कृदन्त अन्य बोलियों की भाँति औकारान्त ही है। जैसे—/गयौ/ 'गया' /आयौ/ 'आया', /लीयौ/ ~ /लीनौं/ 'लिया' /दीयौ/ ~ /दीनौं/ 'दिया'।

व्यञ्जनान्त धातुओं के साथ /-यौ/ का संयोग करके पूर्वी पड़ी बोली के अतिरिक्त सभी बोलियों में भूतकालिक कृदन्त की रचना की जाती है। पर नगर की बोली तथा चौबों की बोली में /-यौ/ के स्थान पर पूर्वी पड़ी बोली की भाँति केवल /-औ/ का संयोग भूतकालिक कृदन्त की रचना की जाती है। जैसे—/कर्‍यौ/ के स्थान पर /करौ/ 'किया', /धर्‍यौ/ के स्थान पर /धरौ/ 'रक्खा', /बन्यौ/ के स्थान पर /बनौ/ 'बना'।

क—वर्तमान अनिश्चयार्थक रूप ठाड़ी बोली की भाँति मिलते हैं। जैसे—/मैं जां औं/=ठाड़ी बोली /मैं जांऊँ/ 'मैं जाता हूँ' /हम जांऐं/ 'हम जाते हैं', /तुम जाऔ/ 'तुम जाते हो', /बु जाऐ/ 'वह जाता है'।

ख—भूतकालिक अनिश्चयार्थक रूप पड़ी बोली के अधिक समीप हैं। जैसे—

नगर तथा चौबे	**प० बोली**	**ठा० बोली**
/कैतो/ ~ /कहतो/	/कैंहैं तो/	/कहै ओ/ 'कहता था'
/रौतो/ ~ /रोउतो/	/रोम तो/	/रोबै ओ/ 'रोता था'
/जातो/ ~ /जातौ/	/जांतो/	/जाऐ ओ/ 'जाता था'

ग—हो के रूप भी पड़ी बोली के अधिक समीप हैं। जैसे—

नगर तथा चौबे	**प० बोली**	**ठा० बोली**
/भयौ/	/भयौ/	/हुयौ/ ~ /हुवौ/ 'हुआ'
/भई/	/भई/	/हुई/ ~ /हुयी/ 'हुई'
/भए/	/भए/	/हुए/ ~ /हुये/ 'हुए'

घ—हकारान्त धातुओं के हकार के लोप की प्रवृत्ति मिलती है। जैसे—कह् से /कइ/ 'कह !' /कइदै/ 'कहदे' /कयौ/ 'कहा' रह् से /रयौ/ ~ /रौ/ 'रहा' /रई/ 'रही' आदि। ठाड़ी बोली में हकार अपने से पूर्व व्यञ्जन में आ मिलता है। जैसे—/खै/ 'कह'। /खै दै/ 'कह दे', /खयौ/ 'कहा', /रह्यौ/ 'रहा' /रही/ 'रही' आदि।

ङ—वर्तमानकालिक कृदन्तों के रूप नगर तथा चौबों की बोली में ठाड़ी बोली से अधिक मिलते जुलते हैं। जैसे—

नगर तथा चौबे	**ठा० बोली**	**प० बोली**
/जातौ/	/जातौ/	/जांतु/ ~ /जांतौ/ 'जाता'
/खातौ/	/खातौ/	/खांतु/ ~ /खांतौ/ ~ /खांमतौ/ 'खाता'
/पीतौ/	/पीतौ/	/पीमतौ/ 'पीता'
/रोते/	/रोते/	/रोमत/ 'रोते'
/सोते/	/सोते/	/सोमत/ 'सोते'

६ **क्रिया विशेषण**—स्थानवाचक और निषेधार्थक क्रिया विशेषणों में कुछ अन्तर मिलता है। स्थानवाचक क्रिया विशेषण अधिकांश में ठाड़ी बोली से मिलते-जुलते हैं। जैसे—

नगर तथा चौबे	**ठा० बोली**	**प० बोली**	
/ह्याँ/ ~ /हियाँ/	[हन्याँ]	[न्याँ]	'यहाँ'
/म्हाँ/	[ह्वाँ]	[म्वाँ]	'वहाँ'

दिशासूचक—

/इत्तिन/	/इत्मैं/	/इतमैं/ 'इधर'
/बित्तिन/	/बित् मैं/	/बित मैं/ /उतमैं/ 'उधर'

निषेधार्थक /नाँइँनैं/ चौबों की बोली की विशेषता है जो अन्य बोलियों में नहीं मिलती।

७. कारक चिह्नों में कोई विशेषता नहीं मिलती। केवल करण चिह्न /ते/~/से/~/सूँ/ 'से' चौबों की बोली में /सौं/ मिलता है।

६.४ बोलीगत भागों और उपविभागों की भौगोलिक स्थिति—इस विवरण की अपनी एक सीमा है। इन सभी भागों तथा उपविभागों की भौगोलिक स्थितियों को स्पष्ट करने के लिए कई मानचित्रों की आवश्यकता थी, पर इतने मानचित्र यहाँ नहीं दिए जा सकें हैं। एक ही मानचित्र संलग्न हैं, जिससे मथुरा ज़िले के मुख्य भागों का परिचय मिल सकता है। जातिगत उपविभाग इन भौगोलिक भागों पर बिखरे हुए हैं। यहाँ केवल उन जातियों के मुख्य बस्तियों के नाम भर दे दिए गए हैं। इन गावों की स्थिति चित्र में भी दिखाई जा सकती थी। प्रस्तुत विवरण में भागों की सीमाओं का विवरण और जातीय उपविभागों की बस्तियों की सूची दे दी गई है। भौगोलिक उपविभागों की भी सीमाओं का विवरण दे दिया गया है।

६.४.१ विभाजन—ब्रोली की दृष्टि से मथुरा ज़िले को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है: 'ठाड़ी बोली' (ठा० बो०) भाग और 'पड़ी बोली' (प० बो०) भाग। विभाजक-रेखा पूर्ण सुस्पष्ट और सुनिश्चित नहीं है क्योंकि दोनों के बीच में पड़ी बोली का पश्चिमी भाग ऐसा है जो मिश्रित बोली-भाग कहा जा सकता है। उस पट्टी के निवासी अज्ञात रूप से दोनों रूपों का प्रयोग करते हैं। इस भाग के निवासियों की प्रवृत्ति 'ठाड़ी बोली' की ओर दीखती है।

६.४.१.१ ठाड़ी बोली भाग : सीमाएँ

यह भाग मांट तहसील के उत्तरी भाग से आरम्भ होकर, छाता तहसील के अधिकांश पश्चिमी भाग से होता हुआ मथुरा तहसील के पश्चिमी भाग तक विस्तृत है। इस प्रकार इस भाग का उत्तरी भाग यमुना के दोनों किनारों पर स्थित है। ठा० बो० के सीमान्त भाग इस प्रकार हैं—इसकी उत्तरी सीमा गुड़गाँवां ज़िले की सीमा को स्पर्श करती है । पश्चिमी सीमा पर ज़िला भरतपुर (राजस्थान) मिलता है। इसके पूर्व में पड़ी बोली क्षेत्र का पश्चिमी भाग है। इसका अधिकांश भाग यमुना के पश्चिमी किनारे पर है। उत्तर में खड़ी बोली और पश्चिम में राजस्थानी का क्षेत्र रहा।

६.४.१.२ प० बोली भाग : सीमाएँ

यह भाग ज़िले का पूर्व और दक्षिण का भाग है। पूर्व में इस भाग की सीमा अलीगढ़ और एटा की सीमा से मिलती है ; ––दक्षिण में आगरा, उत्तर और पश्चिम में ठा० बो० क्षेत्र। यह भाग भी यमुना के दोनों किनारों पर स्थित है, पर अधिकांश भाग पूर्वी किनारे पर ही स्थित है। अधिकांश भाग पूर्वी बोलियों के क्षेत्र को स्पर्श करता है।

६.४.२ उपविभाग––उक्त दोनों मुख्य भागों के उपविभाग भी हैं। इनका विवरण नीचे दिया जा रहा है।

६.४.२.१ पड़ी बोली के उपविभाग––ये उपविभाग दो प्रकार के हैं–– स्थानीय तथा जातीय।

अ––स्थानीय उपविभाग––ये तीन हैं––पूर्वी प० बो० भाग, मध्य पड़ी बोली भाग तथा पश्चिमी प० बो० भाग। इन उपविभागों की सीमाएँ इस प्रकार हैं––

क––पूर्वी प० बोली––यह भाग मथुरा ज़िले के दक्षिण पूर्वी भाग में है। इसके उत्तर में ज़िला अलीगढ़, पूर्व में ज़िला एटा और दक्षिण में ज़िला आगरा है। इस स्थान पर चमार और अन्यों की बोली में केवल एक ही अन्तर प्राप्त होता है। अन्य––/चल्तु/ च० /चन्तु/ 'चलता'।

ख––मध्य प० बोली––यह भाग मुख्यतः यमुना के पूर्व में है। इसके उत्तर में पश्चिमी पड़ी बोली का क्षेत्र, पूर्व में पूर्वी प० बो० का क्षेत्र और ज़िला अलीगढ़ है।

ग––पश्चिमी पड़ी बोली

यह क्षेत्र विशेषतः यमुना के पश्चिम में है। कुछ भाग यमुना के पूर्व में माँट तहसील के सुरीर के पास से होकर अलीगढ़ जिले की उत्तरी पश्चिमी सीमा को स्पर्श करता है। इस भाग में चमार तथा अन्यों की बोली में वे ही अन्तर विद्यमान हैं जो मध्य प० बो० के अन्यों और चमारों की बोली में विद्यमान हैं। एक अन्तर इसे पूर्वी पड़ी बोली तथा मध्य पड़ी बोली से पृथक् करता है। यह अन्तर प्रत्ययों का है। /उ/ पु० एक० कर्त्ता० वर्त० तथा /आ/ पु० बहु० कर्त्ता० वर्त० अन्य दो उपविभागों में मिलते हैं, पर पश्चिमी प० बो० में नहीं। इसका आगरे की सीमा को स्पर्श करता हुआ भाग (फ़रह) अपनी कुछ स्वतन्त्र विशेषताएँ रखता है।

आ––जातीय विभाग––केवल चमारों (जाटवों) का है। यह एक प्रकार से समस्त ज़िले पर बिखरा हुआ है और प्रायः सर्वत्र अपनी कुछ विशेषताएँ लिए हुए हैं। सम्भवतः जिले में एक भी बड़ा गाँव ऐसा नहीं है, जिसमें इस जाति की

छोटी-मोटी बस्ती न हो। इसकी विशेषताएँ मुख्यतः पूर्वी प० बो० से मिलती हैं, जिनको लेकर यह जाति पश्चिम की ओर प्रसारित हुई है।

६.४.२-२ ठाड़ी बोली के उपविभाग—इसके उपविभाग जातीय आधार पर ही हैं। नीचे इन जातियों के वितरण का विवरण दिया जा रहा है। जातीय आधार पर इस भाग को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है—गूजर, जाट, ठाकुर तथा मेव।

क—गूजर[1]-बस्तियाँ—गूजरों के गाँव बरसाने की पहाड़ियों के नीचे होते हुए राजस्थान में जा मिलते हैं। बरसाने के पास ऊँचागाँव, डभारा, राँकौली और हथिया गाँव मुख्यतः गूजरों के हैं। यमुना के पश्चिमी किनारे से लगे हुए छाता तहसील में ये गांव हैं—लाडपुर, बहरावली, पेंगरी, करहारी, जटवारी, हुसैनी, खुरसी, उझानी, बड़वाई, बसई, गढ़ी, अस्तौली, धीमरी, गुलालपुर, मझोई। गूजरों को जाने-अनजाने इतना ज्ञान है कि उनकी बोली जाटों और ठाकुरों से भिन्न है।

ख—जाट[2] बोली—एक वृद्ध जाट से पूछने पर ज्ञात हुआ कि इस क्षेत्र में जाटों के पाँच मुख्य गोत्र हैं—नँदगाँव के लौहकने, पैगाम के रावत, बठेन के गठौने, कामरि के बहनवार, तथा दहगाँव के डींड़े। जाटों के अन्य मुख्य गाँव ये हैं—जाब, गिड़ोह, बदनगढ़, साँचौली, खिटावटौ, महरानौ, सिरतरा, पीपरवारौं, काद्यौनीं। जाटौं की पालि आगे गुड़गाँवाँ, मेरठ तथा बुलन्दशहर की ओर चली गयी है। पड़ी बोली क्षेत्र में भी उनके गाँव हैं, पर बोली की दृष्टि से वहाँ ये उल्लेखनीय नहीं हैं। माँट तहसील का उत्तरी भाग जो ठाड़ी बोली भाग में है, वहाँ के जाटों की बोली ठाड़ी बोली वाले भाग की बोली के समान है। अन्य स्थानों के जाटों की बोली पड़ी बोली के समान हैं। फिर भी वहाँ की जनता जाटों की भाषा के 'ठाड़ेपन' को अनुभव करती है। यह ठाड़ापन शिष्टाचारगत है, भाषागत नहीं।

ग—जादों[3] ठाकुर—ठाड़ी बोली क्षेत्र में जादो लोगों के मुख्यतः ये गाँव हैं—हातिया, कमई, करहला, चिकसौली, सङ्केत, गाजीपुर, आजनोंख, लोधौली, पिसायौ, मड़ोई, रहेरा, उमरायौ, अरबाई, सांखी, नरी, सेमरी, डिरावली, देवपुरा, ततारपुर, छाता, मुखरारी, बरकौ, घानौ तौ, रूपनगर, खैरार, बढ़ा, सहजादपुर, रनवारी। पश्चिमी प० बो० क्षेत्र में पाली, कौन्हई (तहसील मथुरा)। पड़ी बोली क्षेत्र में एक गांव है, बन्दी। इनकी बोली को जाट और गूजर दोनों ही अपनी से पृथक् बताते हैं।

---

१. गूजरों पर टिप्पणी (०.९.१.२)।

२. जादों पर टिप्पणी (०.९.१.५)

३. जादों पर टिप्पणी (०.९.१.६)

घ—मेव[१]-बोली—मेवों की मुख्य बस्तियां हाथिया, जंघावली (छाता) तथा द्वैसेरस (मथुरा) में हैं। इन स्थानों पर छुटपुट बस्तियाँ और हैं—सहार का नगला मंड़ौरा, ल्हैबोड़ा, अकातियों का नगला, दौताना, सांचौली, हमाम खां का नगला, कर्‌हारी, पेंगरी (छाता) जलालपुर, विसम्भरा, छोंकरवास, कैरियान की गढ़ी, बड़ा का नगला। इनकी बोली निश्चित रूप से सबसे पृथक् है, पर इनकी बोली का पूर्ण सर्वेक्षण नहीं किया गया। सामान्य रूप से दीखने वाली विशेषताओं का विवरण पीछे दिया जा चुका है। इस विवरण का आधार सर्वेक्षण ही है, पर इससे इनकी भाषा के व्याकरण का पूर्ण रूप स्पष्ट नहीं होता।

---

१. मेवों का संक्षिप्त परिचय दिया जा सकता है। इस परिचय का आधार इस जाति के बड़े-बूढ़ों से प्राप्त सूचनाएँ ही हैं। यह परिचय इस प्रकार है—

मेव मथुरा ज़िले की एक मुसलमान जाति है। मेवों के गाँवों की अन्य जातियाँ इन्हें अत्यन्त सीधा कहती हैं। ये लोग अधिकांश अशिक्षित हैं। स्त्रियों का पहनावा मुसलमानी ढङ्ग का है—कुर्त्ता और सलवार। पुरुषों का पहनावा अन्यों से भिन्न नहीं है। मेवों ने अपना इतिहास बताया कि हम ९८९ वर्ष पूर्व मुसलमान हुए थे। राजगढ़ (जैपुर) का कन्हैया नामक 'जगा' (वंशावली कहने वाला) आता है। अधिकांश ने यह बताया कि हमारा 'निकाड़' (उत्पत्ति) मथुरा से है और हम यदुवंशी हैं। इन्होंने कहा कि हमारे ५२ गोत्र हैं। जिनमें से कुछ ये हैं— चौफाड़, छिरकलौत, पूँगलौत, बाल त, डूलौत, डेमरौत, सींगल, गौरवाड़, सौगण, देड़वाड़, धेंगड़, पाहट, बाधौड़िया, तूमर, गूमल, बड़ गूजर आदि। गोत्रों से ज्ञात होता है कि ये सभी पहले राजपूत थे।

परिशिष्ट

प १ | बोली के नमूने

प १.०. इस परिशिष्ट में मथुरा जिले की बोली के वैविध्यों को व्यक्त करने वाले कुछ अंश दिए गए हैं। पहले पूर्वी प० बो०, मध्य प० बो० तथा ठाड़ीबोली में प्राप्त अन्तरों को व्यक्त करने के लिए एक ही कहानी के तीन रूपान्तर दिए गए हैं। उसी कहानी को पहले परिनिष्ठित हिन्दी में दे दिया गया है, जिससे तुलना सरल हो सके और आगे के रूपान्तर को समझा जा सके। पीछे गूजर और मेवों में प्रचलित कुछ लोग-गीत दिए गए हैं। जाटों का साहित्य बहुत अधिक पृथक् नहीं है। पश्चिमी पड़ी बोली प्रायः मध्य पड़ी बोली के समान है।

प १.१. कथा का हिन्दी रूप—"एक राजा था। उसके सात बेटियाँ थीं। राजा उनकी खूब देखभाल करता था और सब तरह के आराम-सुख देता था। उनको किसी बात की चिन्ता नहीं थी। एक दिन राजा ने अपनी बेटियों से पूछा—'तुम किसके भाग्य का खाती हो?' छै ने तो कहा, 'पिताजी! तुम्हारे ही भाग्य का खाती हैं।' पर, एक ने कहा कि पिता जी! 'मैं तो अपने ही भाग्य का खाती हूँ।' इस बात पर राजा बहुत रिस हुआ और उसने अपने जल्लाद बुलाए और उनसे कहा कि इस लड़की को बियाबान-बनखण्ड में छोड़ आओ। वे उस लड़की को ऐसी जगह ले गए, जहाँ मनुष्य नहीं। वहाँ उन्होंने उस लड़की को छोड़ दिया और लौट आए। अब वह लड़की रोवे-सो-रोवे—न कोई धैर्य रखनेवाला और न बात पूछनेवाला। इतने में भगवान ने एक साधु भेजा। उसने आकर उस लड़की से पूछा—'बेटी, क्यों रोती है?' लड़की ने सारी बात कह दी। साधु ने कहा—'बेटी किसी चिन्ता की बात नहीं है। जहाँ तू है, वहाँ एक बहुत बड़ा खजाना दब रहा है। तू उसको खुदवा ले। छोरी ने कहा—'बाबा, मेरे पास कुछ नहीं है। वह खजाना कैसे मिलेगा? कौन खोदेगा?' इतने में उस लड़की को अपने सिर के खुजलाने में एक लाल मिला। उसने वह लाल बाबाजी को दिया। बाबा उसे लेकर बाज़ार को गया और फावड़े खरीदे और मजदूर भी लेते आया।

खुदाई का काम शुरू हुआ और नीचे एक बहुत बड़ा खजाना मिला—हीरे, पन्ने, जवाहरात सब मिले।

उस धन से वहाँ एक शहर बना। चौपड़ का बाजार बना। अच्छे-अच्छे घर बने। बहुत से सेठ-साहूकार वहाँ बस गए। एक दिन राजा की लड़की, लड़के का वेश रख कर अपने पिता के दरबार में गई और राजा से कहा—'तुम मेरे यहाँ निमन्त्रित हो। अपने सारे अमीर-उपरावों को लेकर, फौज-फ़ाई सहित मेरे यहाँ दावत के लिए आओ। राजा ने बड़ा आश्चर्य किया 'यह कौन है।'अब तक तो इसका नाम सुना नहीं था। पर, खैर! देखेंगे। सब जायँगे इसके यहाँ।' फिर उससे अपने आने की बात कह दी।

ठीक निश्चित दिन राजा उसके यहाँ पहुँचा। उस लड़की ने सबका ठीक इन्तजाम कर दिया और जैसा जिसका मुँह था वैसा ही उसके लिए साज-सामान दिया। घोड़े अस्तबल में बँधे और हाथी हतखानों में। सबके दाने-पानी का ठीक इन्तजाम हो गया। राजा को दावत में छत्तीसों व्यञ्जन खाने को मिले। राजा अपने मन में बड़ा परेशान। आखिर में जब राजा जीम चुका तब लड़की ने उसके आगे दो थाल अशर्फियों के भर कर भेंट में रखे। राजा ने कहा—'यह क्या है?' उसने कहा—'यह तिहारी भेंट है श्रीमहाराज।' तब राजा ने कहा—'तू अपना परिचय दे।' सोई वह वहाँ से चलने लगी। राजा ने कहा, 'यह क्या करता है।' उसने कहा, 'अभी आया' और फिर वह छोरी का वेश बदलकर राजा के सामने आ खड़ी हुई। राजा ने उसे पहचान ली और बहुत कुछ शरमिन्दा हुआ।

सो भाई! सब इस संसार में अपने ही भाग्य का खाते हैं। कोई किसी के भाग्य का नहीं खाता।"

प १.२. कथा का पूर्वी पड़ी बोली रूपान्तर—

"एकु राजा ओ। गुआकें सात बेटी ईं। राजा गुन की खूबु देखभार कत्तो औरु सबु तरै के आराम-सुख देतो। गुनैं काऊ बात की चिन्ता नाईं। एक दिनाँ राजा नैं अपनी बेटीन्ते पूछी—'तुम कौन के भाक्कौ खाति औ?' छै न्नैं तो कई 'पिता तिहारे ई भाक्कौ खातिऐं।' परि एक नैं कई कै 'हूँ तौ पिता अपनेई भाक्कौ खातिऊँ।' जाबात पै राजा भौतु रिस भौ औरु गुआनैं अपने कनास बुलाए और अन्ते कई कै जा छोरी ऐ बिआबान-बनखड़ मैं छोड़ि आऔ। ग्वे ग्वा छोरी ऐ ऐसी जगै लैं गए, जहाँ मांसु-न मती। भुआँगुन्नैं गु छोरी छोड़ि दई औरु लौटि आए। अब गु छोरी रोबै-सो-रोबै—न कोई धीर को धरग्गिआ और न बात कौ पुछईग्या। इतने मैं भगमान् नैं एक साधू भेजौ। गुआ नें आइकै गुआ छोरी ते पूछी—'बेटी

चौं रोबति ऐ?' छोरी नें सगरी बात कै दीनीं। साधू नें कई 'बेटी कोई चिन्ता की बात नाँ ऐं। झाँ तू हटि काऐ, म्हाँ एकु भौतु बड़ौ खजानौं दबि र्‌हौ ऐ। तू गुआइ खुदबाइ लै। छोरी नैं कही, 'बाबा मेरे पास कछू नाँऐं। कसैं गु खजानौं मिलैगौ। को खोदैगौ?' इतने में गुआ छोरी ऐ अपनौं मूँड़् खुजाबत में एकु लालु पाऔ (=पाइऔ)। गुआनैं गुलालु बाबाजी ऐ दीऔ। बाबाजी गुआइ लैकैं बजार कूँ गऔ। (=गौ) और पाबरे खरीदे औरु मजूर करि कैं लाऔ। खुदाई कौ कामु सुरू भौ (=भऔ) और नीचैं एकु बड़ौ खजानौं पाऔ (=पाइऔ)—हीरा, पन्ना, जवाह्‌राति, सगु मिले।

गुआ धन्‌ते म्हाँ सैरु बनबाइऔ। चौफड़ कौ बजारु बनौ। अच्छे-अच्छे घर बने। भौस्से सेठि-साऊ काल म्हाँ बसि गए। एक दिनाँ राजा की बेटी छोरा कौ भेसुधरिकैं अपने पिता के दरबार में गई औरु राजा ते कई—'तुम म्हारे न्याँ निऔंते औ। अपने सबरे अमीर-उमराबन्नैं लै कै, फौज-फाई समेत मेरे निआँ दाबति कूँ आऔ।' राजा नैं बड़ौ अचम्भौ कीऔ—'गि को ऐ। अब तक तौ गिआ कौ नामु सुनौ नाओ। परि खेरि देखिगे। सगु जांगे ग्या के निआँ।' फिरि गुआते अपने आइबे की बात कै दई।

ठीक दिनाँ राजा गुआ के निआँ पौंहौंचौ। गुआ छोरी नैं सबकौ माकूल इन्तिजामु कद्दी औ। जैसौ जाकौ म्हौं ओ तैसौई गुआ कूँ सास्सामानु दीऔ। घोड़ा घुड़साल में बंधे औरु हाती हतिखानेनुं में। सबके दाने-पानी कौ ठीक इन्तिजामु हैगौ। राजा ऐ दाबति में छत्तीसौ बिंजन खाइबे कूँ मिले। राजा अपने मन में बड़ौ परेसान्। अखीर में जब राजा जैं चुकौ तब गुआनैं गुआ के अगार हुऐ थार असरफीन के भरिकैं भेट के धरे। राजा ने कई—'गि कहा ऐ।' गुआ छोरी नें कई—गि तिहारी भेट ऐ, सिरी महाराज।' तब राजानैं कई, तू अपनौ पर्‌चौ दै। सोई बुम्हाँ ते चलिबे लगी। राजा नें कई, 'जि कहा कत्तु ऐ।' गुआनें कई 'अमाल आऔ।' फिरि गु छोरी कौ भेसुबदलि कै राजा के सामुई आइ ठाड़ी भई। राजा नैं गु पैहैंचान् लई और भौतु कछू सरभिन्ना भौ।

सो, भईगिआ सगु ग्या संसार में अपने ई भाक्कौ खातऐं। कोई काऊ के भाक्कौ नाऐं खाँतु।"

प १.३. कथा का मध्य प० बो० रूपान्तर—

"एकु राजाओ। बुआकें सात बेटी ईं। राजा उनकी खूबु देखभार कर्तो और सबु तरै के आराम-सुख दें तो। उनैं काऊबात की चिन्ता नाँईं। एक दिनाँ राजा नें अपनी बेटीन्‌ते पूछी—'तुम कौन के भाक्कौ खाँतिऔ?' छैन्नैं तौ कही,

'पिता तिहारे ई भाक्कौ खाँति ऐं।' परि एक नें कही कै मैं तौ पिता अपने ई भाक्कौ खाँतिऊँ। जा बात पै राजा बड़ौ रिस भइऔ और बुआनें अपने कनास बुलाए औरु उन्ते कही कै जा छोरी ऐ बिआबान-बनखंड में छोड़ि आऔ। बे बुआ छोरी ऐ ऐसी जगै लै गए, जहाँ मांसु-न-मती। मुआँ उन्नैं बु छोरी छोड़ि दई और लौटि आए। अब्बू छोरी रोबै-सो-रोबै—न कोई धीर को घरईआ औरु न बात कौ पुछईआ। इतने मैं भगमान्नैं एक साधू भेजिऔ। बुआनैं आइकें बुआ छोरी ते पूछी—'बेटी चौंरोमति ऐ?' छोरी ने सबरी बात कहै दीनी। साधू नें कही, 'बेटी कोई चिन्ता की बात नाँऐं। जहाँ तू हति का ऐ मुआँ एक भौतु बड़ौ खजानौं दबिर्हौ ऐ। तू बुआइ खुदबइलै। छोरी नें कही—'बाबा मेरे पास कछू नाँऐं। कैसें बु खजानौं मिलैगौ। को खोदैगौ।' इतनें मैं बुआ छोरी ऐ अपनौं मूंड़ खुजामत में एकु लालु पाइऔ। बुआनें बुलालु बाबा जी ऐ दीऔ। बाबाजी बुआइ लैकैं बजार कूँ गइऔ औरु पाबरे खरीदे औरु मजूर करिकैं लाइऔ। खुदाई कौ काम सुरू भइऔ औरु नीचैं एकु बड़ौ खजानौं पाइ औ—हीरा, पन्ना, जबाहिराति सम्मिले।

बुआ धन्ते मुआँ एकु सैंहैरु बनबाइऔ। चौपड़ कौ बजारु बनिऔ। अच्छे अच्छे घर बने। भौस्से सेठि-साहुकार मुआँ बसि गए। एक दिनाँ राजा की बेटी छोरा कौ भेसु धरिकैं अपने पिता के दरबार में गई और जाते कही—'तुम हमारे निआँ निऔते औ। अपने सबरे अमीर अमराबन्नैं लै कैं, फौज-फाई समेत मेरे निआँ दाबति कूँ आऔ। राजानैं बड़ौ अचम्मौ कीऔ—'जि कोऐ! अब तक तौ जाकौ नामु सुनिऔ नाओ! परि खैरि देखिंगे। सबु जांगे जाके निआँ।' फिरि बुआते अपने आइबें की बात कैहै दई।

ठीक दिनाँ राजा बुआ के न्याँ पौंहौंचिऔ। बुआ छोरी नैं सबकौ माकूल इन्तिजामु कर्दीऔ। जसौ जाकौ म्हौं ओ बैसोई बुआ कूँ सास्सामानु दीऔ। घोड़ा घुड़सार में बँधे और हाती हतिखानेन में। सबके दाने-पानी कौ ठीक इन्तिजामु हैगौ। राजा ऐ दाबति मैं छत्तीसौ बिंजन खाइबे कूँ मिले। राजा अपने मन में बड़ौ परेसान्। अखीर में जब राजा जैं चुकिऔ तब बुआनें बुआ के अगार दुऐ थार असर्फीन के भरि कें भेट के धरे। राजा ने कही—'जि कहा ऐ!' बुआ छोरी नें कही, 'जि तिहारी भेट ऐ, सिरी महाराज।' तब्ब राजा नें कही, 'तू अपनौ पचौ" दै। सोई बुमुआँते चलिबे लगी। राजा नें कही, 'जिकहा कतुंऐ।' बुआनें कही', 'अमा ल आइऔ'। फिरि बु छोरी कौ भेसु बदलि कैं राजा के सामुईं आइ ठाड़ी भई। राजा नैं बु पैहैंचान्लई और भौतु कछू सरमिन्दा भइऔ।

सो भईआ सबु जा संसार मैं अपनेई भाक्कौ खाँत ऐं। कोई काऊ के भाक्कौ नाँइँ खाँतु।"

प १.४. कथा का ठाड़ी बोली रूपान्तर—

एक् राजा औ। वाकैं सात्बेटीं। राजा उन्की खूब देख्भार करैऔ और सब्तरै के आराम्सुख देऔ। उनैं काऊ बात्की चिन्ता नाई। एक् दिनाँ राजानैं अपनी बेटीन्ते पूछी—'तुम कौन्के भाक्कौ खाऔ?' उन्मेंते छैन्नैं तौ कही, 'पिता तमारे ई भाक्कौ खाँमैं।' पर एक्नैं क्ही क मैं तौ पिता अप्ने ई भाक्कौ खाऊँ। जा बात् पै राजा बड़ौ रिस् हुइऔ (भयौ) और वानैं अप्ने कनास बुलाए और उन्ते क्ही क जा छोरी ऐ बिआबान-बनखड़ मैं छोड़ाऔ। बे वा छोरी ऐ ऐसी जगैं लै गए जहाँ भांस्-न-मती। माँ (=हुवाँ) उन्नैं ऊ छोरी छोइड़ दी। और लौइट् आए। अब् ऊ छोरी रोबै-सो-रोबै—न कोई धीर् कौ धरईआ और् न बात्कौ पुछईआ। इत्ने में भगमान्नैं एक् साधू भेजिऔ। वानैं आइकैं वा छोरी ते पूछी—'बेटी क्यों रोबै?' छोरी नें सन्नी बात कैहै दी। साधू नैं क्ही (=कही)—'बेटी कोई चिन्ता की बात नाहैं। जहाँ तू है का ऐ माँ एक् भौत् बड़ौ खजानौ दब् रहौ ऐ। तू वाइ खुद्बाइ लै।' छोरी नें क्ही, 'बाबा! मेरे पास् कछू ई नाँऐं। कैसैं ऊ खजानौं मिलैगौ। कौन्-खोदैगौ!' इत्ने में वा छोरी ऐ अपनौं मूँड़् खुजामते में एक्लाल पाइऔ। वानें ऊ लाल बाबाजी कूँ दीऔ। बाबाजी वाइ लै कैं बजार् कूँ गइऔ। और पान्ने खरीदे और् मजूर कर्कैं लाइऔ। खुदाईं कौ काम् सुरू हुयौ। और् नींचैं एक् बड़ौ खजानौं पाइऔ—हीरा, पन्ना जवारात सम्मिले।

वा धन्ते माँ एक सैहैर् बन्बाइऔ। चौफड़ कौ बजार् बनिऔ। अच्छे अच्छे घर्बने। भौस्से सेठ्-साहू काल माँ बस्गए। एक् दिनाँ राजा की बेटी छोरा कौ भेस्धर्कैं अप्ने पिता के दर्बार् में गई और् राजा ते क्ही—'तुम हमारे हिआँ निऔंते औ। अप्ने सब्रे अमीर् उम्राबन्नैं लै कै, फौज्-फाई समेत् मेरे हिआँ दाबत्कूँ आऔ। राजानैं बड़ौ अचम्भौ कीइऔ। 'ई कौनैं! अब्तक्तौ इआकौ नाम् सुनिऔ नाऔ! पर्खैर, देखिंगे। सब जांगे इआके हिआँ।' फिर वाहे अप्ने आबे की बात क्हैदी।

ठीक् दिनाँ रा वा के हिआँ पौंचिऔ। वा छोरी नैं सब्कौ माकूल् इन्तजाम् कर्दी औ। जैसौ जाको म्हौं औ बैसौई वाकूँ सास्सामान् दी औ। घोड़ा घुड़सार में बँधे और हाती हत्खानेन् में। सब्के दाने-पानी कौ ठीक् इन्त्जाम् हैगौ। राजा ऐ दाबत् मैं छतीसौ बिंजन खाबे कूँ मिले। राजा अप्ने मन् मैं बड़ौ परेसान्। अखीर् मैं जब् राजा जैं चुकिऔ तब् वानैं वाके अगाड़ी दो थार असर्फीन् के भर्कें भेट् के

धरे। राजा नैं क्ही—'ई कहा ऐ'। वा छोरी नें क्ही, 'ई तमारी भेटै स्त्री म्हाराज्!' तब् राजा नैं क्ही, 'तू अप्नौं पर्चौं दै। सोई ऊ माँ (=हुआँ) ते चल्बे लगी।' राजा नैं क्ही, 'ई कहा करै!' वानें कही, 'अभी आऊँ।' फिर् ऊ छोरी कौ भेस् बदल्कैं राजा के साम्नैं आ ठाड़ी हुई। राजा नैं ऊ प्हैंचान् ली और् भौत् कछू सरमिन्दा हुइऔ।"

सो भीआ सब् जा संसार मैं अप्ने ई भाक्कौ खामैं। कोई काऊ के भाक्कौ नाँइँ खावै।"

प १.५. गूजरों के गीत—इस जाति में प्रचलित कुछ 'रसिया' नामक गीत नीचे दिए जाते हैं—

[१]

होली

सब् तन् स्क्गयौ
मोइ नारि उचाइ गागरिया।
पिया तू तौ भूलि गयौ
तेरौ बिगरि धरमु जाइ रसिया।
तुम तौ नीर भरत भंगी कौ
हम रहें बिरफ[1] के पास
पीतम गहरे जल में जैयौ।
उचि घड़ा सहज में जैयौ।

[२]

नँगर में मच्यौ भेज कौ हेला
दुनियाँ जोरै धेला ई धेला
चकिया पै बिकि रहे सौरि गदेला।[2]
सौनौं है रह्यो मंदे तोला।
मोकूँ गढ़ाइ दै बलमा झेला झूमिकी
बलमा की मुरकी[3] कानन में
जैसे घूमत् डोलै गायन् में
बूरौ लावैगौ बलम् मेरौ सामन् में

× × × ×

१ विप्र। २ गद्दा। ३ पुरुषों के कानों का गहना।

बूरौ लै र'! चल्यौ याकौ रसिया
उतकी[1] बरखा लगि रई ऐं
आगें ते नदिया बहि रई ऐ।
ठाड़ौ तकि र्ह्यौ पार उतबें कूँ।
नाँइ पाई याइ गैल् निकबें कूँ।
हिबरा[2] बाँधि कूदि पर्यौ नदिया में।
नाँइ टिके पाय याके धरनी में।
बिन आई जानि गमाइ दई ऐ।
कीकर कूँ दोसु लगाइ र्हई ऐ,
स्यारस[3] कौसौ जोड़ा बिछबाइ र्हई ऐ।

[३]

टुँड़ी ते नीचें मोर गुदाइ लए
औरु गुदाइ लए बाँह्न में
लौठा यारु समार्यौ दोऊ जाँघन में
सकर[4] राति मोते ऐं चाखेंचि मँची ऐ
पलिका पै सोमति ह्बकि[5] लई ऐ
फूलनदार टूल[6] की अँगिया,
मसकट फाटि गई रसिया।
गोरी! मैं तौ जाइ रह्-यौ बसनेर
दुख ना पाबै नटिया
घर पै रहियौ तौ हुस्यार
आड़ी लै लै खटिया
ड्यौढ़ौ[7] है जा बेईमान
ढीली दै दै जँघिया।
सबरी राति सेज पै कूदृयौ
मेरी फाटी जाइ छतिया।

---

१ अति की। २ हियरा, हिम्मत। ३ सारस। ४ सकल, समस्त। ५. अचानक। ६. एक प्रकार का कपड़ा। ७. अलग।

[४]

ठिक्का

१. गन्ना चूंस्यौ रसभर्यौ, छोली[1] अलग करी।
जाकी ही सो लै गयौ, तैनें कोरी ठसक करी॥
२. पतरी पतरी पींड़री, बिस की एकई बेलि।
बैरी मारै दावते (तिरिया), तू मारै हँसिखेलि॥
३. कारी चूँदरि चटक रँग, भौं कारे नैना।
तोते छोरी न्यों कहूँ, तेरे कहाँ लगे नैना।

[५]

बिछुआ बजें बगल के घर में
देबरिया, तेरौ बाज्रौ सौ भीजै रे।
हँस्नी नार् निरख्नौं ढोला
कैसें बन् बैठी आज् अन्बोला
पूरी सौ पेट, कतन्नी सी पाँखें[2]
मौंटे मौंटे नैंन ढरकि रहे आँसू,
मेरे मन के प्यारे।—बिछुआ०

[६]

कोरी कँसिया सीतल पानी
या रँड़ुआ की ढरि गई ज्वानी
मन के प्यारे!
घोंड़ी कूँ दानौं जबई दउंगी रे!
मेरे हातन कूँ गढ़ाइ दै हतफूल[3]
सेज तेरी जबई चढ़ुगी रे।

प १-६. मेवों के गीत—मेवों के कुछ गीत ही मिल पाए थे। **इनको नीचे** दिया जा रहा है। जिन स्थानों पर मेव रहते हैं, वहाँ के अन्य **पुरुष-स्त्री भी बड़े** चाव से मेवों के गीत गाते हैं।

---

१. छूंछ। २. पसली। ३. कलाई का गहना।

[१]

गढ़ाइ दै मोलूँ पँचमनियाँ
मेरी टूँड़ी ऊपर टुल्लक टुल्लक होइ।
बाबुड़[1] कुर्ती सिड़ाइदै, आठ कड़ी नौ जोड़
हिरिणी कीसी सींगड़ी मेरी निकड़ी ऐं छतिया फोरि। गढ़ाइदै०...
बाबुड़ व्याअ रचाइदै मेरौ, ज्वानी चढ़िआई मोइ।
घर बिगड़ै काई छैल् कौ, दाग लगैगौ तोइ। गढ़ाइदै०।...
घरवाड़ा ने घरभड़ा पाखाड़ें वाड़ी
रोटी जेंजा साहिबा मैं झाड़ौ दै हाड़ी।[2]

[२]

नद्दी चढ़ि आई, चलैगौ कनाँइ रे।
जब नद्दी मेले टकणन लूँ आई
जूती मेरी भीजै चलैगौ कनाँइरे।
जब नद्दी मेरे घुठुअण पै आई
खुसनी मेरी भीजै चलैगौ कनाँइरे।
जब नद्दी मेरे पेड़ पै आई
नालौ मेरौ भीजै, चलैगौ कनाँइरे।
जब नद्दी मेरी छतिअन पैं आई
कुर्ती मेरी भीजै चलैगौ कनाँइरे।

---

१. बाबुल, पिता। २. हारी।

प २ | सहायक-पुस्तकें

प २. १. संस्कृत-प्राकृत

१. ऋग्वेद।
२. अथर्ववेद।
३. शाङ्खायन आरण्यक।
४. गोपथ ब्राह्मण।
५. शतपथ ब्राह्मण।
६. कौषीतकी उपनिषद्।
७. अष्टाध्यायी, पाणिनि।
८. महाभाष्य: पतञ्जलि (सम्पा० किलहार्न)।
९. नाट्य-शास्त्र (भरत)।
१०. मनुस्मृति।
११. रामायण।
१२. महाभारत
१३. विष्णु पुराण।
१४. वराह पुराण।
१५. पद्म पुराण।
१६. वायु पुराण।
१७. हरिवंश पुराण।
१८. श्रीमद्भागवत।
१९. ब्रह्म पुराण।
२०. देवी भागवत।

२१. वाजसनेयी संहिता।
२२. काठक संहिता।
२३. रघुवंश।
२४. कर्पूर मञ्जरी (वासुदेव की टीका)।
२५. दश रूपक।
२६. सिद्ध हेमचन्द्र।
२७. काव्यानुशासन—हेमचन्द्र।
२८. देशीनाम माला—हेमचन्द्र।
२९. शब्दानुशासन—हेमचन्द्र।
३०. प्राकृत व्याकरण—हेमचन्द्र।
३१. अभिधान चिन्तामणि—हेमचन्द्र।
३२. प्राकृत प्रकाश—वररुचि।
३३. प्राकृतानुशासन—पुरुषोत्तमदेव।
३४. काव्यालंकार—रुद्रट।
३५. वाग्भटालंकार—नमिसाधु।
३६. गौड़ बहो—वाक्पतिराज (सम्पा० एस० पी० पण्डित)।
३७. भावप्रकाश—शारदा तनय।
३८. प्रबन्ध चिन्तामणि—मेरुतुंगाचार्य (प्र०—सिन्धी जैन ग्रन्थमाला)।
३९. काव्यादर्श—दंडी।
४०. प्राकृत धम्मपद (सम्पा० बरुआ और मित्रा कलकत्ता विश्वविद्यालय)।
४१. ललित विस्तर (सम्पा० डा० एस० लेफमान)।
४२. अङ्गुत्त निकाय।
४३. मज्झिम निकाय।
४४. काम्पिल्यपुरतीर्थकल्प।
४५. वृहत्कल्पभाष्य।
४६. उक्तिव्यक्ति प्रकरण।
४७. पुरातन प्रबन्ध संग्रह।
४८. सन्नेहयरासच (अब्दुर्रहमान)।
४९. पउमचरिउ (सं० मुनिजिन विजयजी)।
५०. अविस्सयत्तकहा।

प २.२. हिन्दी पुस्तकें

१. केशवदास—कविप्रिया।

२. बनारसीदास—अर्द्ध कथानक।
३. भिखारीदास—काव्यनिर्णय।
४. सूरजमल—वंशभास्कर।
५. बेलिक्रसन रुक्मिणीरी।
६. बांकीदास ग्रन्थावली।
७. रामचन्द्र शुक्ल—बुद्धचरित।
८. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी—पुरानी हिन्दी।
९. दशम ग्रन्थ, प्रका० गुरुमत् प्रेस, अमृतसर।
१०. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा—ब्रजभाषा व्याकरण, ब्रजभाषा, हिन्दी भाषा का इतिहास, विचार-धारा।
११. किशोरीदास बाजपेयी—ब्रजभाषा का व्याकरण।
१२. डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी—भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, राजस्थानी भाषा, ऋतम्भरा एवोल्यूशन ऑफ़ बंगाली लैंग्वेज।
१३. राहुल सांकृत्यायन—हिन्दी काव्यधारा।
१४. मुरारिदान—डिंगल कोष।
१५. पोद्दार-अभिनन्दनग्रन्थ (ब्रजसाहित्य मण्डल, मथुरा)।
१६. डॉ० सत्येन्द्र—ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन, ब्रज की लोक कहानियाँ।
१७. कृष्णदत्त बाजपेयी—ब्रज का इतिहास (दो भाग)।
१८. मोतीलाल मेनारिया—राजस्थान का पिंगल साहित्य।
१९. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय—हिन्दुई साहित्य का इतिहास।
२०. भरतसिंह उपाध्याय—पालि साहित्य का इतिहास।
२१. डॉ० सरजूप्रसाद अग्रवाल—प्राकृत विमर्श।
२२. कोशोलनवस्मारक ग्रन्थ (ना० प्र० सभा, काशी)।
२३. डॉ० बाबूराम सक्सेना—सामान्य भाषाविज्ञान।
२४. डॉ० उदयनारायण तिवारी—भोजपुरी भाषा और साहित्य, हिन्दी भाषा का विकास।
२५. वाकर आगाह, मद्रास में उर्दू (हैदराबाद)
२६. कामताप्रसाद गुरु—हिन्दी व्याकरण।
२७. श्यामसुन्दरदास—भाषाविज्ञान, भाषा-रहस्य।

अनुक्रमणिका

१

नामानुक्रमणिका

२

शब्दानुक्रमणिका

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	शुद्ध	अशुद्ध
१२१	१४	कोंड़ी	कौंड़ा
१२५	२३	बँन्ध	बंध
१२५	२४	बँन्द	बंद
१२६	६	फूला	फूल
१२६	१२/१३	गट्ठ / गड्ढ	गट्ठा/गड्ढा
१३०	३१	भाँतौ	माँतौ
१३३	२३	टौटा	टोंटा
१३३	३१	टँ्कु	टूंकु
१३४	२२	गड्ठौ	गड्ढौ
१३५	१	पैंडा	पैंड़ा
१३९	२०	पन्ता	पत्ता
१३९	२८	कर्रो	करौ
१४३	१३/१४	ब्र	बु
१४४	१–६	ब्र	बु
१४४	२९	/ड/	/उ/
१४५	१५	गव्वरु	गब्बरू
१४५	१७	अन्तारु	अत्तारु
१५१	२०	हैरि	गैरि
१६१	२१	परबर्गों	परसर्गों
१६२	७	तों	तो
१६९	२०	करबे	करिबे
१७२	३०	आड	आड़ू
१७९	११	सीर्	सील्
१८०	३१	करता	कर्ता
१८२	२३	/औद्/	/औटी/

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१८७	५	घोड़े	फोड़े
१९०	१	/पिछायौ/	/पिछाऔ/
१९३	७	/मगोड़ा / माग	/भगोड़ा/ भाग
१९३	२२	/लैठैतु/	/लठैतु/
१९५	८	/माजनि/	/भाजनि/
१९६	३२	/कोटरा/	/कोठरा/
१९७	१५	/सुरारि/	/सुसरारि/
१९८	१	/ममेरा/	/ममेरौ/
१९८	२६	/उपल्लौ/	/ऊपल्लौ/
१९९	१६	/घाइला/	/घाइल/
२०१	३	/फैटैला/	/फटैला/
२१३	१७	रूप	रूप पर
२१५	५	/अथपक्यौ/	/अधपक्यौ/
२१५	६	अधभरे/अधभरी	अधमरे/अधमरी
२१७	६	अवाछैं	अबाद्दैं-
२२३	१३	प्रेर	प्रेरणार्थक
२२५	१६	ज्यांते	न्याँते
२२५	१७	जाइयो	जइयो
२२५	२४	वाह	ब्वाइ
२२६	१८/१९/२०	/दीजियो/लीजियो/ रहीजियो	/दीजियौ/लीजियौ/ रहीजियौ
२२९	१२	चल्यो ऐ	चल्यौ ऐ
२२९	२४	भोइ जातौं	मोइ जानौं
२२९	२६	भोइ	मोइ
२३०	१५	/हाइ/	/होइ
२३०	२१	ये	यह
२३०	२४	जो	जौ
२३०	२६/२८	तो	तौ
२३२	३	देत्या	देख्या
२३२	४	आभतूँ	आमतूँ
२३२	२६	बुखा	बुखार

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२३२	३०	चल्लूं	चल्तूं
२३२	३१	चलियै	चलिऔ
२३३	२४	आँभति	आमति
२३३	२८	दे	दै
२३४	७	छत्ति	छत्ति पै
२३४	३०	भुआँ	मुआँ
२३५	६/७	दे/ले	दै/लै
२३५	२५	परह्यौ	पर्ह्यौ
२३५	२६	घाट	खाट
२३५	२७	रहै	रहौ
२३५	३१	घरे	घरै
२३६	३	भल्लाभतिऐ	भल्लामति ऐ
२३६	५	लाभतु	लामतु
२३६	८	कितप्पढ़ि	कितापढ़ि
२३६	१९	बाते	बातै
२३७	१६	तेर	तेरे
२३७	२२	कँहैतें	कँहैति
२३८	११	रोन्तेरे औरें	रोत्तेरे जौरें
२३८	२३	चइऔ	चढ़िऔ
२३८	३०	जुती	जुती
२३९	२१	आन्ते	आत्ते
२३९	२९	मैं	मे
२४०	१३	चौ	चोंन्-
२४१	१५/१६	चाँहिऐं	चँहिऐं
२४२	९	आवतौ	अबतौ
२४२	२४	सोयै	सोइऔ
२४५	२६	चलिजौ	चलिऔ
२४६	५	स्याहृति	स्याइति
२४६	२६	डिड़ोले	हिड़ोले
२४७	१/१८	आभनौं/कुटम	आमनौं/कुटमु
२४८	५	जन/विहाहु	अन/बिआहु

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२४८	२६	ज्याँ	ञ्याँ
२४९	२१	ज्यौं~ज्यौं	न्यों~ञों
२४९	२४	वौं	चौं
२५०	१०	हुए	दुऐ
२५२	३	भिल्स	भिल्ल
२५२	१८	रहीजो	रहीओ
२५२	२२	भो	मो
२५३	१८	चलइआगौ	चलिऔगौ
२५५	१४	घतै	घर्ते
२५६	१	भरी	भरि
२५६	८	बैं	मैं
२६६	६	बिलईआ	लिबईआ
२७०	२०	भूँत	मूँत
२७३	२०	काज्वरिगौ	काज्जरिगौ
२७३	२३	जाइँढुँड़िरौऐ	जाड्ढूँड़िरौ ऐ
२७६	१३	मैन्दौऊ	मैन्दोऊ
२७६	२३	धरम्भरिगौ	धरम्भरिगौ
२७६	२४	मनमाँनी	मनम्माँनी
२७७	३	/तका/	/तक/
२७७	७	/ -धा/	/घ/
२७७	२३	/तड्डादै/	/तड्डादैं/
२७७	३१/३२	ले	लै
२८०	५	का	की
२८०	२१	के	को
२८०	३१	पूर्व	पश्चात्
२८१	२९	देग्गी	देग्गौ
२८५	३०	/भौ/	/मौं/
२८६	४	/भौ/	/मौं/
२८९	२४	√लं-	√लै
२९१	१४	/सोंगो/	/खांगो/
२९२	१८	/-भिन्/	/-मिन/

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२९७	१८	-अंतवाले	अवरोही अंतवाले
३०१	१९	हन्तौ	हत्तौ
३०४	४	मालिम्पत्यै	मालिम्पत्यैं
३०७	४	सम	समै
३०७	२३	अबाहई/ग्राम	अबाद्दई/गामु
३०८	८/९/१०	म्वाँ	म्वाँ
३०८	२३	डकरामतु	डकरामति
३१०	१	करौ	करौं
३११	२	बरौ	बुरौ
३११	९	निकातौ	निकातौं
३१३	२९	पत्यैं	पत्यैं
३१३	३०	चौर/छतई	चोर/छातई
३१४	१०	मै औ	मेओ
३१४	२१	मौह	मोइ
३१५	७	रोभनौ	रोमनौ
३१७	२०	बढ्यौ	चढ़िऔ
३१७	२७	सौ	सोइ
३१८	२०	कुंसी	कुंसौ
३१८	२२	किया	क्रिया
३२०	६	म्वाँ	म्वाँ
३२१	१४	अपनां	अपनौं
३२१	२३	दोअन्नें	दोऊन्नें
३२२	८	आद	आदरु
३२२	३०	जान	जानें
३३३	१७	कद्	कूद

लेखक

- जन्म : जनवरी, १६२५ : लोहबन : मथुरा।
- रुचि, रुझान : भाषा तत्त्व, शैली तत्त्व
- सम्प्रति : रीडर हिन्दी, श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, तिरुपति।
- लेखन :

१. प्रकाशित पुस्तकें—'मथुरा जिले की बोली' (स्वीकृत शोध-प्रबन्ध), 'दृष्टि और दिशा' (साहित्यिक निबन्ध), 'रामचरितमानस में लोकवार्ता' तथा 'लोकोक्ति और मुहावरे'।

२. प्रकाशित वृहत् निबंध (Monographs) 'ब्रज का साहित्य', 'ब्रज में भाषा का विकास', 'ब्रज का लोक-जीवन और लोक-साहित्य', 'शोध : प्रविधि और प्रक्रिया', 'मेरी बोली', Hindi Verb

३. यंत्रस्थ : 'हिन्दी भाषा : तत्त्व और स्वरूप', 'दंपति वाक्य विलास'। (संपादित)

४. प्रेस के लिए तैयार : प्रेमदास कृत 'हितचतुराशी की ब्रजभाषा टीका' (संपादित); 'कामायनी : विचार एवं पुनर्विचार'; 'सूर : एक पुनर्मूल्यांकन तथा 'शैली तत्त्व।'